

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक
विनोद कपूर I.A.S.
(निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

ग्रन्थांक-200

राजस्थान का ऐतिहासिक गद्य-साहित्य

सम्पादक
डॉ. डी. बी. क्षीरसागर
ओउम्प्रकाश शर्मा

© प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक
विनोद कपूर
आई. ए एस.
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रंथांक-200

राजस्थान का ऐतिहासिक गद्य-साहित्य

सम्पादक
डॉ डी. बी. क्षीरसागर
ओउम्प्रकाश शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE
JODHPUR

2000 ई. मूल्य रु. 110.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थानप्रदेशीय
पुरातनकालीन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश-हिन्दी-राजस्थानी आदि
भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

सम्पादक
डॉ. डी. बी. क्षीरसागर
ओउम्प्रकाश शर्मा

राजस्थान का ऐतिहासिक गद्य-साहित्य

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रथमावृत्ति 500 मूल्य रु. 110.00

2000 ई.

निदेशकीय

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में ग्रन्थों के रूप में सुरक्षित सामग्री के अध्ययन के लिए अधिकाधिक व्यक्ति प्रवृत्त हो तथा शोध सन्दर्भ में इस सामग्री की उपादेयता का निरन्तर मूल्यांकन होता रहे इस दृष्टि से विगत दशक से प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों को आधार बनाकर विभाग ने वैचारिक संगोष्ठियो का आयाजन किया था। प्रादेशिक इतिहास के सन्दर्भ में उपलब्ध साहित्य की चर्चा कर इतिहास के अध्ययन के लिए उसकी सार्थकता पर इन गोष्ठियों में विचार किया गया। ऐसी संगोष्ठियों के अन्तर्गत राजस्थान से सम्बद्ध संस्कृत में लिखे गए साहित्य की संगोष्ठी के परिणामों से उत्साहित होकर हमने राजस्थानी में उपलब्ध काव्यों की इतिहासपरकता पर भी सङ्गोष्ठी का आयोजन किया और इसी कड़ी में वर्ष 1996-97 में ब्रज-राजस्थानी के अथवा राजस्थानी की अन्य बोलियों में रचित साहित्य पर भी एक सङ्गोष्ठी आयोजित की गई।

राजस्थानी में उपलब्थ होने वाले गद्य की प्राचीनतम सीमा 14 वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। यहाँ से प्रारम्भ हुए गद्य को ताम्र-पत्र, ख्यात, हकीकत, वचनिका, हाल, विगत आदि कई प्रकार की विधाओं में देखा जा सकता है। हमें गद्य का वह भी एक स्वरूप उपलब्ध होता है जिसे लिखने के बजाय मौखिक परम्परा में सुरक्षित रखना ही हमारे पूर्वजों ने उचित समझा। इस प्रकार मिलने वाले प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य का आलोडन "राजस्थान का ऐतिहासिक गद्य साहित्य" नामक सङ्गोष्ठी के अन्तर्गत सम्पन्न हो सका। इस सङ्गोष्ठी में मारवाड़, मेवाड़, हाड़ौती, ढूंढाड़, शेखावाटी एव मत्स्याचल के इतिहास को लक्षित करने वाली 50 से अधिक रचनाओं पर प्रस्तुत किए गए शोधपत्रों पर हुई चर्चा ने इस तर्क को बल दिया है कि प्रदेश विशेष का साहित्य अपने प्रदेश के इतिहास के अध्ययन के लिए निश्चित रूप से उपादेय होता है।

सङ्गोष्ठी के ऐसे शोधपत्रों को मुद्रित रूप में आपके हाथों सौंपते हुए

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है। मुझे आशा है कि संगोष्ठियों के माध्यम से इस प्रकार से सामने आने वाली अज्ञात/अल्पज्ञात सामग्री शोध के लिए उपकारक सिद्ध होगी, साथ ही ऐसे प्रयासों से पुराने ग्रन्थों का आधुनिक दृष्टि से अध्ययन करने की शोधकर्त्ताओं की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा।

विनोद कपूर
निदेशक
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

अनुक्रम

भूमिका

इतिहास जानने हेतु प्रायः जिन साधनों का उपयोग किया जाता है उनमें साहित्य को कितना महत्व दिया जाना चाहिये, इस विषय पर मंतैक्य होना यद्यपि सहज नहीं, तथापि उसके महत्व को नकारना भी संभव नहीं है। इस दृष्टि से विभाग ने संस्कृत साहित्य की इतिहासपरक उपादेयता पर संगोष्ठी के माध्यम से जो चर्चा आयोजित की थी, उससे यह प्रकट हो गया कि केवल सांस्कृतिक इतिहास के लिये ही नहीं अपितु राजनैतिक इतिहास के घटनाचक्र में पाई जाने वाली कमियों की पूर्ति भी समकालीन साहित्य से की जा सकती है। इसी से प्रेरित होकर राजस्थान के भाषा काव्यों और तत् पश्चात् राजस्थान के गद्य साहित्य की इतिहासपरकता की परख के लिये चर्चाएं आयोजित करने का अवसर उपलब्ध हुआ। राजस्थान के भाषाग्रंथों के गद्य की इतिहासपरकता पर की गयी चर्चा को यहाँ पर लिपिबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

राजस्थान के विभिन्न अंचलों में बोली जाने वाली मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाड़ी, शेखावाटी, हाड़ौती, बागड़ी, ब्रज एवं मेवाती में मिलने वाले विगत सहस्राब्दि के गद्य की भाषा जिसमें पिंगल व डिंगल भी सम्मिलित हैं, के संयुक्त प्रतिनिधि स्वरूप को राजस्थानी कहा जाये अथवा डिंगल अथवा पिंगल में प्रचुर साहित्य उपलब्ध होने के कारण उसे ही राजस्थानी मान लिया जाय, इस विवाद को टालते हुये इस चर्चा में उपलब्ध होने वाले सभी प्रकार के भाषा गद्यों का उनकी इतिहासपरकता को देखते हुये समावेश किया जाना उचित प्रतीत होता है। इसलिये यहाँ पर राजस्थानी गद्य का अर्थ "राजस्थान में उपलब्ध होने वाला भाषा गद्य" यह अर्थ स्वीकार किया गया है। विषय को व्यापक बनाने के लिये संगोष्ठी के समय पर्शियन, उर्दू, अपभ्रंश, प्राकृत के इतिहासपरक गद्य की चर्चा भी यद्यपि अपेक्षित थी तथापि पठित आलेख मात्र डिंगल, पिंगल, ब्रज, मेवाती आदि आंचलिक भाषाओं में लिखे ऐतिहासिक गद्य पर आधारित हैं। अतः इस चर्चा को राजस्थानी व ब्रज की विकास यात्रा से प्रारम्भ करना उचित रहेगा।

राजस्थानी भाषा के अस्तित्व को सर्वानुमति से 9वीं शती से

स्वीकार किया गया है। इस स्वीकृति का आधार उद्योतनसूरि द्वारा "कुवलयमाला" में किया हुआ मरुभाषा का उल्लेख है। 9वीं शती से प्रारम्भ हुई राजस्थानी की यात्रा को तीन कालों में विभाजित किया जाता है – (1) 800–1460 वि.सं., (2) 1460–1900 वि.स. एवं (3) 1900 वि.सं. के पश्चात्। लगभग एक हजार वर्ष से अधिक की अवधि में उपलब्ध राजस्थानी साहित्य को जैन साहित्य, चारण साहित्य, भक्ति साहित्य तथा लोक साहित्य इन चार प्रकारों से स्व. श्री सीतारामजी लालस ने विभाजित करते हुये भाषा के प्राचीनतम स्वरूप के संकेत रूप में 'कुवलयमाला' के एक पद्य को उद्‌धृत किया है जो चर्चरी छन्द में है एवम् राजस्थानी भाषा की एक झलक प्रस्तुत करता है। तत् पश्चात् संवत् एक हजार में लिखे गये "ढोला मारू का दूहा" को राजस्थानी भाषा के प्राचीनतम पद्य के रुप में स्वीकार किया गया है परन्तु राजस्थानी गद्य साहित्य की चर्चा करते हुये श्री लालस ने बीकानेर के समीप 'नाथूसर' गाँव में उपलब्ध वि.सं. 1280 के एक शिलालेख को उद्‌धृत किया है।

यद्यपि इससे पूर्व वि.स. 1210 का जसोल का विजयसिंह का शिलालेख वि.स. 1200 का पाल झंवर (जोधपुर) का जोधराम की माता के सती होने का शिलालेख अथवा वि.स. 1138–1210 की अवधि के अनेक शिलालेख उपलब्ध होते है जिन्हें राजस्थानी गद्य के प्राचीनतर स्वरूप के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। यह बात दूसरी है कि इन पर पर्याप्त चर्चा अब तक प्रतीक्षित है।

13वीं सदी के पश्चात् जैन साहित्य की 1330 वि.सं. की "आराधना, 1336 वि.सं. की "बालशिक्षा व्याकरण" में संग्रामसिंह द्वारा उद्‌धृत राजस्थानी शब्द व वि.सं. 1358 के "नवकार व्याख्यान" यद्यपि गद्य शैली के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं तथापि नाथूसर गाँव के शिलालेख तथा वि.सं. 1478 का वडली ग्राम से प्राप्त "राव चूंडा का ताम्रपत्र" इतिहासपरक गद्य की यात्रा में गद्य के प्रारम्भिक नमूने माने जा सकते हैं। वि.सं. 1478 का ही माणिक्यसुन्दर सूरि द्वारा लिखित "प्रथीचन्द चरित्र" में मिलने वाला 'मरहट्ठ देश वर्णन' भी सांस्कृतिक इतिहासपरक गद्य का प्रारम्भिक उदाहरण है। वि.सं. 1512 में रचित "कान्हड़दे प्रबन्ध" में मिलने वाले गद्य को प्रथम ग्रन्थगत गद्य कहना उचित होगा। इस ग्रन्थ के पश्चात् वि.सं. 1516 के प्रसिद्ध ताम्रपत्रों में जो राव जोधा के द्वारा

श्रीपति के पुत्र ऋषभदेव को दिये गये ताम्रपत्र में उन्हें पौरोहित्य कर्म के लिए अधिकृत किया गया है। 16वीं सदी के पूर्वार्द्ध में संवत् 1548 में राव सातल का परिचय देने के लिए की गई रचना तथा खरतरगच्छ के श्री शान्तिसागर सूरि के वैशिष्ट्यों पर रचित 1566 वि.सं. की रचनाएं राजस्थानी साहित्य, भाग 1 में प्रकाशित हुई हैं। 16वीं सदी का उत्तरार्द्ध ऐसा समय है जहाँ से अपभ्रंश एवं गुर्जरी के प्रभाव से राजस्थानी के स्वतंत्र होने का काल माना जा सकता है। यही काल ब्रज के विकास एवं उत्कर्ष का है।

1556 वि.सं. की वैशाख शुक्ला 1 को श्री गोवर्धनजी में श्रीनाथजी के विशाल मन्दिर की नींव रखी गयी थी। डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार यही तिथि साहित्यिक ब्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है। ब्रज के गद्य को प्रायः मौलिक तथा परतन्त्र भेद से विभाजित किया जाता है। मौलिक ग्रन्थों में वल्लभ संप्रदाय के उपदेश, वार्ताग्रन्थ, सैद्धान्तिक रचनाएं, प्रबन्धकाव्य की वचनिकाएं तथा शिलालेखों का समावेश होता है तथा परतन्त्र गद्य में टीका, अनुवाद, टिप्पणी और तिलक वार्ता। ब्रज के प्राचीन गद्य के प्रथम उदाहरण के रूप में दामोदर जैन के द्वारा संवत् 1569 में लिखी 'मदनशतक' नामक गद्यपद्यात्मक रचना का उल्लेख किया जा सकता है। धौलपुर नरेश के निजी पुस्तकालय में सुरक्षित एक पत्र व्यावहारिक ब्रजभाषा के गद्य का नमूना है। वि.सं. 1595 के आसपास श्रीहितहरिवंश द्वारा लिखित दो पत्र धार्मिक स्वरूप के गद्य को प्रस्तुत करते हैं।

ब्रज के इतिहासपरक गद्य के रूप में "पृथ्वीराजरासो" की गद्यवचनिकाओं को प्रायः उद्धृत किया जाता है। वचनिकायें जिस ग्रन्थ में उपलब्ध होती हैं, उसका लिपिकाल वि.सं. 1668 है। परन्तु इससे पूर्व वृन्दावन के गोविन्ददेव मन्दिर में मिलने वाले वि.सं. 1647 के शिलालेखीय गद्य को ऐतिहासिक गद्य कहना उचित होगा। शिलालेख के अनुसार जयपुर के राजा मानसिंह ने वि.सं. 1647 में इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। इसी प्रकार स्वामी गोकुलनाथ का वार्ता साहित्य जिनमें "84 वैष्णवन की वार्ता " तथा " 252 वैष्णवन की वार्ता" है, को सांस्कृतिक इतिहासपरक गद्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। वार्ता साहित्य के विषय में डा. जयकिशन प्रसाद का यह मानना है कि वार्ताएं 1585 वि.सं. पूर्व तक की मानी जा सकती हैं परन्तु वे वि.सं. 16।3

से 1642 तक की अवधि में लिपिबद्ध हुई होंगी। किन्हीं विद्वानों के मत में 'गोरखसार' या गणेशगोरख गुष्टि' के गद्य को संवत् 1400 का ब्रज भाषा का गद्य माना जा सकता है परन्तु इस विषय में कोई सार्वजनीन सहमति नहीं है।

गोकुलनाथजी की वार्ताओं के पश्चात् नाभादास (1630–1700 वि. सं.), दामोदर जैन (1664 वि.सं.), कवि बनारसीदास (1670 वि.सं.), मुकन्ददास (1672 वि.सं.) आदि अनेक गद्य लेखकों को उद्धृत किया जा सकता है जिसमें पुष्टिमार्गीय गद्य की बहुलता है। यह साहित्य पुष्टिमार्ग के इतिहास को जानने के लिये निश्चय ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इनमें मन्दिरों के निर्माण, उनकी व्यवस्था तथा गोस्वामियों की वंशावलियों के संबंध में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। ब्रज का शिलालेखीय गद्य भी राजनीतिक इतिहास की अपेक्षा सांस्कृतिक इतिहास के लिये अधिक उपादेय है जबकि राजनीतिक इतिहास के लिए ख्यात आदि अनेक विधाओं में राजस्थानी का गद्य अधिक उपादेय सिद्ध हो सकता है।

राजस्थानी के इतिहासपरक गद्य में ऐतिहासिक और अर्द्ध–ऐतिहासिक बात साहित्य ही संभवत पहले ऐतिहासिक गद्य के नमूने के रूप में माना जा सकता है। "राव रिणमल री बात" या 'नापे सांखले री बात' को शुद्ध ऐतिहासिक बात माना जा सकता है जबकि "गोगेजी री बात" या 'जोगराज चारण री बात' 'पिरोजशाह पातिसाह री बात' को अर्द्ध–ऐतिहासिक बात कहा जा सकता है। बात साहित्य में साहित्य प्रधान रहता है जबकि पीढ़ियावली या वंशावलियॉ इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। वंशावलियाँ आदि लिखने का काम भाट या मथेरण जाति के लोग करते थे। वंशावली में व्यक्तियों के साथ कभी–कभी उनका परिचय भी दिये जाने की परम्परा है।

प्रबन्ध काव्यों में पद्य के साथ दिये जाने वाले गद्य को वार्ता, वचनिका या दवावैत आदि भिन्न–भिन्न नामों से अभिहित किया जाता है। स्वतंत्र वचनिका ग्रन्थ में एक चरित्र नायक होता है तथा उसी के यश का वर्णन होता है। वचनिका व दवावैत पद्यात्मक व गद्यात्मक दोनों तरह की मिलती है। इनका गद्य तुकान्त होता है। वि. 1715 में रची गई 'राठौड़ रतनसिंह महेशदासोत की वचनिका' या "अचलदास खीची की वचनिका" की ज्ञात इतिहास में उपादेयता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हुई है।

अनेक ऐतिहासिक बातों का संकलन मुंहता नैणसी ने किया जिसे 'मुंहता नैणसी री ख्यात' कहा जाता हैं। यह ख्यात अनेक राजवंशों के इतिवृत्त को प्रस्तुत करती है परन्तु परवर्तीकाल में उपलब्ध होने वाली ख्यातें एक ही शासक के कालक्रम को संवलित करती चली जाती हैं जिसके उदाहरण के रूप में "महाराजा जसवन्तसिंह जी री ख्यात" आदि का उल्लेख किया जा सकता है। "राठौड़ां री ख्यात" में भी प्रत्येक शासक का क्रमानुसार ही विवरण उपलब्ध कराया गया है। ख्यात-लेखन के विषय में यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मारवाड़ के शासकों की अधिकतर ख्यातें उपलब्ध होती हैं अन्य रियासतों की पीढ़ियावलियाँ या वंशावलियाँ ही उपलब्ध हैं। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि "नैणसी री ख्यात" लेखन की परम्परा को जिस प्रकार मारवाड़ में सुरक्षित रखा गया, वैसे प्रयास अन्य रियासतों में नहीं हुये। ख्यात लेखन की इस परम्परा में कभी-कभी इतिहासोपयोगी फुटकर बातों के संग्रह को भी ख्यात कहा गया है। इन बातों में कोई क्रम नहीं रहता है और न ही कोई समय का समन्वय। "बांकीदास की ख्यात" इसी प्रकार की ख्यात है। शासकों के अलावा अन्य जातियों में भी ख्यात लिखने की परम्परा रही है। अमरसिंह राठौड़ के सेनापति गिरधर व्यास के परिजनों द्वारा तैयार की गई "गिरधरोत व्यासों" की ख्यात या झींथड़ा ठिकाने के महंतों की ख्यात को इसी प्रकार की ख्यातों के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

ख्यातों की तरह लिखे गये इतिवृत्तों में तवारीख का भी उल्लेख यहाँ पर करना आवश्यक है। मुस्लिम शासकों के इतिहासकारों द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध तवारीखों के अलावा स्थान विशेष तथा वहाँ के शासक परिवार के इतिवृत्त को संजोने वाली तवारीखों का संकलन राजस्थान में भी हुआ है जिनमें जैसलमेर की तवारीख, बेदला की तवारीख अथवा कोठारिया की तवारीख को नमूने के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। इसी प्रकार से हाल और विगत भी इतिवृत्त लिखने का एक तरीका प्रचलित रहा है। नैणसी द्वारा लिखी गई "मारवाड़ रा परगना री विगत" तत्कालीन मारवाड़ की भौगोलिक एवं आर्थिक स्थिति के अध्ययन के लिये एक महत्वपूर्ण दस्तावेज सिद्ध हुआ है।

सांस्कृतिक इतिहासपरक ब्रज की जिन रचनाओं की ऊपर चर्चा की गई है, उनके क्रम में 18वीं शती की "राजा जयसिंह की वार्ता",

1802–10 वि. में सूदन माथुर द्वारा विरचित "सुजान चरित्र" तथा भरतपुर के राजाओं की वंशावलियाँ ऊपर चर्चित राजस्थानी के ऐतिहासिक गद्य की तरह राजनीतिक इतिहास के लिये उपादेय गद्य है। इसी प्रकार ब्रज में लिखी गई जन्म पत्रिकाओं, ऐतिहासिक पत्र तथा आचार्यों की वंशावलियाँ राजनीतिक इतिहास के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। राजस्थान की अनेक रियासतों के शासकों ने मथुरा, वृन्दावन व गोवर्धन के मन्दिरों के नाम जारी किये गये ताम्रपत्र या भूमिदान पत्र भी ब्रजभाषा के ऐतिहासिक गद्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। महाराजा जगत्सिंह प्रथम द्वारा द्वारकाधीश को मेवाड़ में आने से पूर्व कांकरोली के समीप आसोटिया गाँव के दान किये जाने का दानपत्र भी इसी प्रकार का एक उदाहरण है।

राजस्थानी व ब्रज के ऊपर चर्चित गद्य साहित्य के अतिरिक्त राजस्थान की पूर्व रियासतों के शासकों तथा प्रशासनिक गतिविधियों को सुरक्षित रखने वाली अभिलेखीय सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। रियासतों के अधीन भौगोलिक प्रदेशों के तत्–तत् स्थानों पर प्रयुक्त शब्दों का अधिक उपयोग होने पर भी कुल मिलाकर इस सामग्री की भाषा का स्वरूप राजस्थानी है। इन अभिलेखों में पट्टे–परवाने, शासकों द्वारा व्यक्तिगत रूप से लिखे गये रुक्के, राजस्व अधिकारियों द्वारा जारी की गई सनदें, अन्य शासकों अथवा अपने अधीनस्थ उमरावों को लिखे गये पत्र, रियासतों के विशिन्न विभागों यथा कपड़ों का कोठार, जरगरखाना, अन्न–कक्ष के कोठार की बहियाँ, आय और व्यय की खजाना बहियाँ, परगना की बहियाँ, कोतवाली चौंतरे की बहियाँ, खासा खजाना री फरद, रोकड़ भण्डार की बहियाँ, पड़ाखा बहियाँ, रुजनामा–बहियाँ, सीवाए खर्च री चिट्ठी, ठाकुरजी के मन्दिर के पड़ाखे, सम्भाला बहियाँ आदि हैं।

पूर्व रियासतों के शासकों के दैनिक कार्यकलापों को लिपिबद्ध रूप में प्रस्तुत करने वाली हकीकत बहियाँ अथवा वैवाहिक समारोहों का विवरण दर्ज करने वाली ब्याह की बहियाँ तथा राजकीय शिष्टाचारों से संबंधित हकीकत खाता बहियाँ अथवा दस्तूर बहियाँ सांस्कृतिक इतिहास की अमूल्य धरोहर है। इन अभिलेखों को कदाचिद् गद्य साहित्य के रूप में अन्तर्भूत करने में कोई आपत्ति की जा सकती है तथापि इनका गद्य निर्विवादरूप से इतिहास के अध्ययन के लिये प्रारम्भिक स्रोत हैं। इस महत्व को दृष्टिगत रखते हुये ही वि.सं. 1642 में सम्राट् अकबर की ओर

से लाखा बारहठ द्वारा कुलगुरु गंगारामजी के नाम जारी किये गये परवाने से लेकर रियासतों के स्वतंत्र भारत में विलीन होने तक के अभिलेखों की चर्चा को संगोष्ठी में स्थान दिया गया है।

उपलब्ध गद्य साहित्य तथा अन्य स्रोतों की विशालता को निश्चय ही दो या तीन दिन की संगोष्ठी में समेटा नहीं जा सकता था तथापि वि. सं. 1202 से 2004 (1947 ई.) की दीर्घ अवधि में उपलब्ध साहित्य में से अत्यन्त महत्वपूर्ण गद्य साहित्य पर उपयोगी चर्चा हो सकती है। इस चर्चा के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को यहाँ पर उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है।
शिलालेख –खेड़ के गोहिलों के सौराष्ट्र में प्रवेश के सिलसिले में ऊपर चर्चा में आये 1202 वि.सं. के शिलालेख से भाषागद्य के नमूने उपलब्ध होना प्रारम्भ होता है जो परम्परा वर्तमान शताब्दी में "शिलान्यास" के माध्यम से भी चल रही है। शिलालेखीय गद्य में कीर्तिस्तम्भ, मन्दिर, देवलियाँ, तड़ाग, वापी– यहाँ तक कि मन्दिरों की व्यवस्था के लिये आवंटित भूमियों के शिलालेखांकन उपलब्ध होते हैं। 18वीं सदी तक मिलने वाले शिलालेखों में एक मुख्य बात परिलक्षित होती है कि इनकी भाषा राजस्थानी होते हुये भी उस पर संस्कृत का प्रभाव दिखाई देता है। वल्ल–मण्डल के शिलालेखों में यह बात विशेष रूप से देखी गई है। इन शिलालेखों की चर्चा करते हुये श्री ब्रजभानु शर्मा ने जैसलमेर के अमरसागर स्थित शिलालेख को संकेतित किया है। जैसलमेर के महल के अन्दर लगे शिलालेखों में व्यापार, मृत्युभोज, विवाह जैसी सामाजिक विधियों पर लगाये गये करों का उल्लेख है– जैसे एक ऊँट पर एक आना, विवाह पर दो रुपये (इसमें से एक रुपया कन्या पक्ष की ओर से देय था), ग़मी के मौके पर आठ आने जैसे करों का शिलालेखांकन भी हुआ है।

वृंदावन और सोरों के शिलालेखों की चर्चा करते हुए राजस्थान के प्रायः सभी राजाओं के द्वारा ब्रज के मन्दिरों को भूमिदान करने का संकेत किया गया है। इसी लेख में अकबर के वि.सं. 1655 में जारी किये गये एक फर्मान की भी चर्चा है जिसमें ब्रज के 35 देवालयों को अकबर ने सैकड़ों बीघा जमीन प्रदान की थी।

मारवाड़ में जोधपुर शहर तथा परगनों में इस प्रकार की शिलालेखीय सामग्री को श्री किशन पुरोहित ने संकलित किया था और इसे "जोधपुर परगना रा निजरां देखिया" नाम से एक लेख संग्रह बनाया था। इसमें

228 शिलालेखों का वर्णन समाहित है। इतिहासपरक गद्य के रूप में इस ग्रन्थ पर चर्चा करते जोधपुर के राणीसर तालाब के बायीं ओर मालदेव के समय के एक शिलालेख की चर्चा श्री रामदत्त थानवी ने की है। यह शिलालेख वि.सं. 1613 का है। गुलाबसागर पर लगे एक शिलालेख पर तो महाराजा विजयसिंह की पासवान गुलाबराय को धर्मपत्नी का ही दर्जा दे दिया है – "महाराजा श्री 108 श्री श्री विजयसिंहजी कस्य धर्मपत्नी महाराणीजी श्री पासवानजी गुलाबरायजी परापती पुत्र महाराजकुमार श्री 108 शेरसिंहजी सागरस्य नाम"। पासवान को महाराणी के रूप में अंकित करते हुए राजपूती मर्यादा के उड़ाये गये ऐसे मखौल की मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है।

हिन्दू मन्दिरों की तरह जैन मन्दिरों में मिलने वाले शिलालेख व प्रतिमालेख यद्यपि इतिहास के अध्येताओं के लिए नवीन नहीं है तथापि बीकानेर के संदर्भ में डा. उषा गोस्वामी के द्वारा की गई जैन शिलालेखों की चर्चा से यह तथ्य प्रकट होता है कि बीकानेर की स्थापना के समय से ही बीकानेर में जैन मन्दिरों का बनना प्रारम्भ हो गया था। वि. सं. 1561 में "चिन्तामणि मन्दिर" व वि. 1571 में "सुमतिनाथ मन्दिर" के निर्माण की जानकारी इन मन्दिरों में लगे शिलालेखों से होती है। वि.सं. 1670 तक आठ मन्दिर बने फिर उसके बाद 150 वर्षों तक कोई मन्दिर नहीं बन सका। जैन मन्दिरों के निर्माण का प्रारम्भ पुनः वि.सं. 1871 में ही हो सका था। इन शिलालेखों से जैन धर्म के अनुयायियों संघ, गच्छ, यतियों के क्रमिक विकास की जानकारी मिलती है। इनमें से अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठापक आचार्य महिलाएँ भी हैं।

राज्य के चार सिद्धान्तों में दैवी सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना में शासक को देवता का अंश माना जाता था और इसीलिए क्षत्रिय राजवंशों ने अपना सम्बन्ध सूर्य, चन्द्र या अग्नि से जोड़ना उचित समझा होगा। अपने वंश को सूर्य, चन्द्र से जोड़ने के लिये वंशावलियों की संकल्पना की गई। इस संकल्पना का साकार रूप प्रायः प्रत्येक पुराण में देखा जा सकता है। वंशावली या पीढ़ियावली इन शासकों के उत्तराधिकारियों की केवल सूचीमात्र नहीं है बल्कि उसमें यदा–कदा शासकों की कुछ उपलब्धियों का विवरण भी प्राप्त होता है। पौराणिक काल से चला आ रहा वंशावलियों के लेखन का क्रम विगत शताब्दी तक निर्बाध चलता रहा।

इस संगोष्ठी में भी वंशावलियों पर कुछ चर्चा हुई, यद्यपि ये वंशावलियाँ अपेक्षाकृत परवर्तीकाल की हैं।

जयपुर के निकट नीमराणा के चौहान वंशीय शासकों की वंशावली का संकलन ई. 1842 के पश्चात् किया गया, परन्तु डा. एम. पी. शर्मा का यह कथन महत्वपूर्ण है कि इस वंशावली में पृथ्वीराज चौहान तृतीय के पुत्र पौत्रों से सम्बद्ध उपलब्ध होने वाली सामग्री में मिलने वाल संकेत उन चौहानवंशीय शासकों के इतिहास को जानने में महत्वपूर्ण हैं जो इतिहास में नामशेष भी नहीं रहे हैं, इस वंशावली का प्रारम्भ वि.सं. 708 से होता है।

कानोड़ ठिकाने की वि.सं. 1877 की वंशावली शासकों के विवाह संबंध पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती है। कानोड़ ठिकाने के वैवाहिक संबंध अधिकांशतः राठौड़ व चौहानों से हुये हैं तथापि बहुविवाह प्रथा होते हुए भी पुरुष सन्तानोत्पत्ति अधिक न होने के कारण इस ठिकाने का अन्यत्र विस्तार नहीं हो पाया। राठौड़ दुर्गादास के विवाह के संबंध में डॉ. रघुवीरसिंह तथा श्री जगदीशसिंह गहलोत ने यह लिखा है कि उनका विवाह कानोड़ ठिकाने में हुआ था जबकि इस वंशावली से स्पष्ट होता है कि दुर्गादास राठौड़ की पुत्री ब्रजकंवर बाई कानोड़ के इग्यारहवे वंशधर शाङ्‌र्गदेव द्वितीय की सातवीं रानी थी। ठिकानों की वंशावलियाँ इस प्रकार इतिहास की कुछ भूलों को सुधारने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

शासक वर्ग में ही नहीं अपितु अन्य जातियों में वंशावलियाँ लिखने की प्रथा रही है, अब तो हर जाति अपना इतिहास लिखवा रही हैं। डॉ. अंबादान रोहड़िया ने जिस चारण वंशावली की चर्चा की है, वह मारवाड़ मेवाड़ से सौराष्ट्र जा बसे चारण कवियों के वंशक्रम का ही केवल उद्‌घाटन नहीं करती अपितु उनके कवित्व से प्रभावित होकर गुजरात के शासकों द्वारा दी गई जागीरों का वृत्तान्त भी प्रस्तुत करती है। ईसरदास रोहड़िया को जाम रावळ ने वि.सं. 1618 के पूर्व करोड़पसाव के साथ संचाणा गाँव दिया था तो प्रसिद्ध कवि सांयाजी झूला को कुवांवा गाँव 1661 वि.सं. की फाल्गुन वद तृतीया को ईडर के राव कल्याणमलजी ने दिया था। इसी प्रकार हरदासजी मीसण को पनोदिया, जोधाजी मीसण को सगखाव तथा अन्य कवियों को दिए गए गाँव वं लाख पसावों का इस वंशावली में उपलब्ध होने वाला वृत्तान्त केवल वंशक्रम के लिए ही नहीं

अपितु सरस्वती की साधना में सत्य का अवलम्ब लेते हुए चारण कवियों के स्थानान्तरित होते रहने की प्रक्रिया को जानने के लिये भी महत्वपूर्ण साधन हैं। यह कवियों की विवशता थी या शासकों का स्वविवेक, इसका निर्णय आपको ही करना है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में ज्ञान को मौखिक रूप से सुरक्षित रखने और उसे उसी रूप में अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित करने की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वेद और संगीत इस प्रकार की परम्परा के सबसे उत्तम उदाहरण हैं। इतिहासलेखन में उदासीन होने का भारतीय चिन्तकों पर आरोप लगाने वालों ने ज्ञान की मौखिक परम्परा को उपेक्षित–सा कर दिया है। विगत सहस्राब्दी के प्रथम दो या तीन शतकों से लिखित गद्य के उदाहरण के रूप में जिन शिलालेखों की यहां चर्चा की गई है उसी के समकाल में राजस्थान के ही नहीं भारतीय इतिहास की अनेक घटनाओं को बात के रूप में संप्रेषित करने की प्रक्रिया भी परिपक्व होती जा रही थी (क्षत्रिय समाज में अफीम की) मनुहार करते समय भी "रंग देने" की प्रक्रिया में समस्त भारत के भूगोल और इतिहास को मौखिक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। बहुत संभव है कि इन बातों की बहुतायत होने पर इन्हें लिखना भी प्रारम्भ किया गया। ऐसे प्रयत्नों में "नैणसी की ख्यात" को देखा जा सकता है। यह ख्यात वस्तुतः बातों का ही संग्रह है। लिखित रूप में मिलने वाली वंशावलियों के विवरण के साथ बातों को लिखते हुए ख्यात लेखन के क्रमिक विकास की कल्पना की जा सकती है। राजस्थान के गद्य साहित्य में इतिहासपरक बातों की कोई कमी नहीं है। बातों के संदर्भ में उनकी इतिहासपरक उपादेयता को अन्यान्य प्रमाणों से पुष्ट करने की आवश्यकता होती है। फिर भी जिस काल के कोई प्रमाण या अभिलेख उपलब्ध नहीं हैं उस काल के लिए बातों से इतर कोई प्रमाण नहीं हो सकता है। क्योंकि बात ऐसी ऐतिहासिक घटना को प्रस्तुत करती है जिसे जानने–जनाने की शताब्दियों से लोकाभिरुचि बनी हुई है।

कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक बातों की सर्वश्री डॉ. मनमोहन स्वरुप माथुर, मनोहरसिंह राठौड़, डॉ. पी. एल. मेनारिया, प्रतापसिंह राठौड़, रतनलाल कामड़, मोतीलाल बैरवा व मोहब्बतसिंह राठौड़ ने चर्चा की है। इनमें से जयसिंह की वार्ता राजा जयसिंह द्वारा मेवों के दमन की घटना का जिक्र करती है ज़ो अन्यथा इतिहास ग्रन्थों में चर्चित नहीं है।

राजनीतिक इतिहास से भी अधिक इस प्रकार की बातें राजपूत परम्पराओं के सांस्कृतिक अध्ययन हेतु उपयोगी हैं। बात की तरह उवाको नामक भी एक गद्य का प्रकार उपलब्ध होता है जिसकी चर्चा डॉ. शिवदत्तदान बारहठ ने की है। "अमरसिंहजी रो उवाको" में चर्चित घटनाओं की फारसी स्रोतों से भी पुष्टि होती हैं। यह उवाको 1703 वि. के फाल्गुन में लिखे ग्रन्थ की प्रतिलिपि है। राव अमरसिंहजी के डेरे पर 1701 विक्रमी में शाही सेना ने आक्रमण किया था अर्थात् घटना के समकालीन मिलने वाले इस प्रकार के गद्य निश्चय ही अंसदिग्ध रूप से इतिहास लेखन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

मुंहता नैणसी द्वारा प्रारम्भ की गई ख्यात लेखन परम्परा में अद्यावधि अनेक रियासतों की ख्यातें प्रकाश में नहीं आ पाई हैं। ऐसी ख्यातों में गुरां नारायणदासजी की ख्यात, जोशी तिलोकचन्द की ख्यात, डूंगरपुर व शाहपुरा राज्य की ख्यात या मुंदियाड़ री ख्यात के नाम गिनाये जा सकते हैं। इन ख्यातों की चर्चा करते हुए डा. राणावत ने ख्यातों में उपलब्ध विवरणों की समीक्षा की है। विशेषकर मेवाड़ की ख्यातों में व्यापारियों पर लगने वाले कर और धार्मिक अनुष्ठानों का भी विवरण प्राप्त होता है। जोधपुर की उपलब्ध ख्यात की अपेक्षा मूंदीयाड़ की ख्यात राव मालदेव से लेकर परवर्ती शासकों का अधिक विस्तार से वर्णन करती है। यों डॉ. राणावत द्वारा इन ख्यातों की पहली बार की गई चर्चा ख्यात साहित्य में नये अध्ययन का सूत्रपात करती है जबकि राठौड़ों की ख्यात में मिलने वाले सिन्धल राठौड़ों के संदर्भों को संकलित कर मारवाड़ के इतिहास में उनके द्वारा किये गये योगदान की चर्चा श्रीमती उषाकंवर राठौड़ ने की है। इस चर्चा में सिन्धल राठौड़ों के द्वारा मारवाड़ के शासकवर्गीय राठौड़ों के विरुद्ध की गई कार्यवाहियों को कदाचित् तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता को दृष्टिगत रखते हुये उनकी विवशता भी मानी जा सकती है।

"बीकानेर रै राठोड़ां री ख्यात" के उपलब्ध होने पर भी सिंढायच दयालदास द्वारा लिखे गये ख्यात "देशदर्पण" का महत्व इसलिये माना जाता है कि उपर्युक्त ख्यात में छूटी हुई कुछ घटनाओं का समावेश ख्यात "देशदर्पण" में किया गया है। इसके लेखन में डॉ. गिरजाशंकर शर्मा के अनुसार, रियासत में उपलब्ध समस्त अभिलेखों का अध्ययन दयालदास ने

किया था। ख्यात देशदर्पण से बीकानेर के राजनीतिक घटनाचक्र के साथ–साथ राज्य की कानून व्यवस्था, बाजार की स्थिति तथा सामाजिक स्थिति पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ख्यात देशदर्पण का दूसरा भाग बीकानेर रे पट्टा री विगत नाम से अभिहित किया गया है जिसमें शासन में दिये गये गाँवों के विवरण के पश्चात् जागीरदारों के कुरब के अनुसार दिये गये गाँवों का विवरण दिया गया है जिसमें गांव की पैदावार, घर तथा जनसंख्या को भी समाहित किया गया है। सन् 1871 में लिखे गये इस ख्यात देशदर्पण में (जैसा कि इसका नाम है) ख्यातों में उपलब्ध होने वाले शासकवंश के वर्णन के साथ यह देश, काल, परिस्थिति का भी वास्तव में दर्पण है जिसमें दयालदास के युगबोध के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार जैसलमेर की ख्यात जिसकी चर्चा डॉ. एस. पी. भनोत ने की है, जैसलमेर के राजनीतिक वृत्तान्त के साथ सांस्कृतिक पक्ष को भी छूती है। तणोटियाजी, सांगतियाजी, तेमड़ारायजी इन देवियों के प्रति जैसलमेर के योद्धाओं की अटूट आस्था, भाटियों से उत्पन्न मेवाड़ी मुसलमान और मांगोलियोजी से उत्पन्न मांगलिया मुसलमान अथवा जाट–गूजर जातियों के अभ्युदय के सूत्र भी इस ख्यात में दिखाई देते हैं। यह बात दूसरी है कि इस ख्यात की इतिहास के अध्ययन में उपादेयता पर यदि विचार करें तो इसमें दी गई तिथियों तथा घटनाक्रम को पुनः जाँचने, संयोजित करने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त जैसलमेर की ख्यात के अलावा, 1880 ई. में जोधपुर रियासत के इतिहास कार्यालय में "भाटियों की ख्यात" नाम से एक अलग ख्यात का संकलन किया गया था। भाटियों के ठिकानों के इतिहास के लिए यह ख्यात इसीलिये अधिक उपयोगी है क्योंकि इसमें भाटियों के 70 ठिकानों का इतिहास संजोया हुआ है। भाटियों से संबन्धित इन दोनों ख्यातों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए डॉ. हुकमसिंह भाटी ने हुसेनखां कुली के साथ में युद्ध, कुण्डल की लड़ाई (1627 वि.सं.) व बलूचों के साथ हुए (1662 वि.सं.) आदि अनेक युद्धों में उरजनोत तथा अन्य भाटियों द्वारा किये गये उत्सर्ग का विवरण दिया है जो जोधपुर अथवा जैसलमेर की ख्यात में उपलब्ध नहीं है। साथ ही यह भी यहाँ पर संकेत करने योग्य है कि उनके सहयोग की तुलना में उनको दी गई जागीरें अधिकांशतः कम उपजाऊ भूभाग की थी, इसलिये उनका जीवन–स्तर भी मारवाड़ के अन्य

जागीरदारों की तुलना में सामान्य–स्तर का ही रहा।

भाटियों की ख्यात की तरह मेवाड़ में भी कविराजा श्यामलदास के निर्देशन में तवारीख के कारखाने में मेवाड़ के ठिकानों से भी संकलित कर ख्यातों को मंगवाया गया था। उनमें से गोगुन्दा की ख्यात की चर्चा में विक्रमसिंह भाटी ने यह बताया है कि झालाओं का प्रवेश मेवाड़ में 16वीं शताब्दी में हुआ था। इस ख्यात में "ख्यात देशदर्पण" की तरह ही सांस्कृतिक पक्ष को भी उजागर किया गया है जिनमें झालाओं को दिये गये कुरब, महाराणाओं की गोगुन्दा पधरावणी, गोगुन्दा के राजराणाओं की तीर्थयात्राएँ, मन्दिरों के जीर्णोद्धार तथा कृषकों से लिये जाने वाले हासिल, बराड़ तथा अन्य करों का भी वर्णन किया गया है। यद्यपि मूलतः ख्यात का प्रतिपाद्य सांस्कृतिक विषय नहीं होता है तथापि परवर्ती संकलित ख्यातों में इस प्रकार के वर्णन का समावेश होता देखा गया है।

जोधपुर रियासत के शासकों की ख्यातों के क्रम में अन्तिम उपलब्ध "महाराजा तखतसिंहजी री ख्यात" है। इस ख्यात की लेखन शैली अन्य ख्यातों की तरह न होकर इसमें तिथिवार सूचनाओं का संकलन है। इसलिये जोधपुर राज्य की हकीकत बहियों के समान इसे भी हकीकत बही कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की इस ख्यात में उपलब्ध कुछ घटनाओं की चर्चा श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने की है। आउवा ठाकुर कुशालसिंह के विद्रोह के अलावा मेरठ के छावनी की घटना या नसीराबाद की छावनी से संबंधित कुछ संदर्भों में इस पर विचार किया गया है। पूर्व रियासत के शासकों द्वारा अँग्रेजों को दिये गये समर्थन की झलक भी इसमें मिलती है, साथ ही विद्रोही व्यक्तियों के लिये "काले आदमी" जैसे शब्दों का प्रयोग कदाचित् तत्कालीन शासकों की मानसिक दासता का परिचायक माना जा सकता है।

शासकीय आश्रय में लिखी गई ख्यातों के अलावा अन्य जातियों अथवा संप्रदायों के लोगों द्वारा भी अपने वंश या गुरु परम्परा के इतिवृत्त को ख्यातों में संजोया गया है। अमरसिंह राठौड़ के सेनापति गिरधर व्यास के वंशजों द्वारा लिखी गई "गिरधरोत व्यासों की ख्यात" इसी प्रकार की एक ख्यात है। इस ख्यात में उपलब्ध गिरधर व्यास के वंशजों की चर्चा के साथ डॉ. सोहनकृष्ण पुरोहित ने ख्यात के संदर्भों को अन्य प्रमाणों से

भी पुष्ट किया है जैसे– गिरधर व्यास को राज व्यास की पदवी प्राप्त होना, गिरधर व्यास का अमरसिंह के साथ आगरा प्रस्थान, गिरधर व्यास के द्वारा हाथी के हौदे पर अर्जुन गौड़ के डेरे पर आक्रमण करना आदि घटनाएँ महाराजा गजसिंह की ख्यात से भी पुष्ट होती हैं। इसी प्रकार इस ख्यात में अमरसिंह की हत्या से संबंधित विवरण 'बादशाहनामा' के वर्णन से पर्याप्त समानता रखता है। इस ख्यात के लेखक व्यास बच्छराज हैं तथा सन् 1894 के आसपास इसका प्रकाशन भी श्री व्यास ने करवा दिया था; अतः काल की दृष्टि से यह "तखतसिंह की ख्यात" के बाद की सिद्ध होती है।

लगभग इसी ख्यात के समकालीन वि.सं. 1954 (सन्1897) में सोजत परगना के झींथड़ा गाँव के रामानन्दी संप्रदाय के महन्त भागवतदासजी के शिष्य नरसिंहदास ने झींथड़ा की ख्यात का संकलन किया जिसे ख्यात ठिकाना झींथड़ा कहा गया है। यह ख्यात मुख्य रूप से रामानुज स्वामी की परम्परा, रामानन्दजी के बारह शिष्य, रामानन्द संप्रदाय की रीति व मर्यादा तथा सुरसुरानन्द स्वामी की शिष्य परम्परा में कूबाजी तक का वर्णन करती है। स्वामी कूबाजी से ख्यात लेखन के समय तक के उत्तराधिकारियों की चर्चा इसमें की गयी है तथा जिन–जिन ठिकानों से इस संप्रदाय को भूमिदान मिला, उसका उल्लेख किया गया है। इस ख्यात की चर्चा करते हुये डॉ. भगवतीलाल शर्मा ने विशेषतः कूबाजी के प्रदेय को सर्वथा अज्ञात माना है।

अपने वंश या जाति की उपलब्धियों को इतिहास में अमर करने का आकर्षण उन युद्धप्रिय जातियों में भी रहा जो लोभ अथवा भय के कारण धर्मान्तरित होकर इस्लाम ग्रहण करते रहे। मोहिल भी ऐसी ही एक जाति है। 16वीं–17वीं शताब्दी तक इनकी गणना संभवतः "राजकुली" में नहीं की जाती थी। इसलिये नैणजी इन्हें 36 राजकुली में मानते हैं। हो न हो, राजस्थान के भूभाग पर हुए युद्धों में जोहियों व कायमखानियों की तरह मोहिलों की भी भूमिका रही है। डॉ. रतनलाल मिश्र ने मोहिलों की ख्यात के आधार पर इस भूमिका का विशद् विवेचन किया है।

रियासत में लिखी गई ख्यातों की तरह मारवाड़ व मेवाड़ के ठिकानेदारों ने अपनी पूर्वतः उपलब्ध वंशावलियों के आधार पर इतिहास

लेखकों को निमन्त्रित करते हुये अपने इतिहास को तवारीखों या ख्यातों के रूप में संकलित किया है। 1880 ई. के पश्चात् रियासतों के इतिहास लिखाने के लिए तवारीख के कारखाने स्थापित किये गये थे। इस विभाग के अधिकारियों की माँग पर जिन इतिहास ग्रन्थों का संकलन हुआ, उनमें बेदला (मेवाड़) के राव कर्णसिंह द्वारा लिखाया गया "चौहान वंशप्रकाश" उल्लेखनीय है। "चौहान वंशप्रकाश" में मेवाड़ के इतिहास के साथ बेदला, कोठारिया व पारसोली की तवारीखों का संकलन करवाया गया है। डॉ. के.एस. गुप्ता व डा. गिरीशनाथ माथुर द्वारा प्रस्तुत किये गये निबन्धों से यह प्रकट होता है कि बेदला व कोठारिया की तवारीख में राजनीतिक इतिवृत्त के साथ–साथ इन ठिकानों के सांस्कृतिक इतिहास को भी तवारीखों में संकलित किया गया है। ठिकानों के सीमित साधनों के आधार पर लिखी गई इन तवारीखों में दी गई घटनाओं की पुष्टि इसलिये भी अन्य प्रमाणों से करवाने की आवश्यकता है क्योंकि इनका लेखन विगत शताब्दी के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होकर वर्तमान शती के प्रथम चरण तक किया गया है। अर्थात् इनका संकलन समसामयिक न होकर अपेक्षाकृत परवर्तीकालीन है।

पूर्व रियासतों की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत जारी किये जाने वाले आदेशों, लिखे जाने वाले पत्रों की मूल प्रतियों को बहियों में लिखकर सुरक्षित रखने की प्रथा रही है। राजपरिवार के समारोह, दरबारी शिष्टाचारों अथवा राजकीय समारोहों को भी बहियों में लिपिबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त शासक की दिनचर्या में हुई समस्त घटनाओं को "हकीकत री बहियों" में आँखों देखे हाल की तरह निबद्ध किया गया है। इन बहियों के अलावा परगनों की तथा परगने के मुख्य प्रशासनिक स्थानों की कोतवाली चौंतरे की भी बहियाँ मिलती हैं। आय और व्यय की तो दैनिक, मासिक व वार्षिक बहियाँ मिलती हैं । राजस्थान की अधिकतर रियासतों के बहियों के रूप में मिलने वाले अभिलेखों का प्रारम्भ 18वीं शती के प्रथम चरण से ही होता दिखाई देता है। इन अभिलेखों का गद्य इतिहास के प्रथम स्रोत के रूप में ही माना जा सकता है।

वि.संवत् 1754 की बीकानेर रियासत की सम्भाला बही प्रशासनिक कार्यों के सम्पन्न होने पर उनके लेखे–जोखे को प्रस्तुत करती है। इन बहियों को सम्भाला बही यह नाम इसीलिये दिया गया है। कृष्णचन्द्र शर्मा

ने चित्र–कर्म के संदर्भ में इन बहियों का अध्ययन करते हुए चित्रकारों के विषय में बताया है कि संभाला बहियों में मिलने वाले चित्रकार मुस्लिम हैं तथा इनके नाम के साथ उस्ता विशेषण लगा हुआ है। चित्रकारों के साथ ही चित्रों का विवरण भी इन बहियों में मिलता है। व्यक्तिगत चित्रों के अलावा राजकीय बैठकों के भी मिलने वाले चित्र निश्चित रूप से सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन हेतु उपयोगी हैं। इसी प्रकार सन् 1754 से 1900 तक उपलब्ध होने वाली "कागद बही अभिलेख शृंखला" में कृषि, क़र, सम्पदा, पर्यावरण के साथ–साथ ही सामाजिक दशा के होने वाले चित्रण की चर्चा पी.सी. जोईया ने की है। ये बहियाँ न्याय प्रणाली, अर्थव्यवस्था तथा वाणिज्य के अध्ययन हेतु उपयोगी हैं। जोधपुर के अभिलेखों का प्रारम्भ वि.सं. 1776 से होता है। महाराजा अजितसिंह की कन्या सूरजकंवर बाई के विवाह से प्रारम्भ होने वाली ब्याव की एक बही में पश्चाद्वर्ती अनेक विवाहों में की गई लेन–देन का तथा रीति–रिवाजों का पूरा ब्यौरा उपलब्ध होता है। विवाह के समय में वर पक्ष की ओर से कन्या को कन्यादान के लिए की जाने वाली प्रार्थना की परम्परा की पुष्टि इसी बही से होती है। प्रस्तुत बही की चर्चा करते हुए डॉ. ब्रजमोहन जावलिया ने तत्कालीन व्यापार में कपड़े, हीरे–जवाहरात तथा सुवर्ण व चांदी के विभिन्न मूल्यों की भी चर्चा की है। इस विवाह में किले के अन्दर बारात के किये गये भव्य स्वागत का विस्तृत रोचक वर्णन "अजीतविलास" नामक ग्रन्थ में भी उपलब्ध होता है जिसमें जनानी ड्योढ़ी से लोहापोल तक खड़ी महिलाओं में से रानियाँ कौन, पर्दायतें कौन, गायणें कौन तथा भगतण पातरें कौनसी – इसकी पहिचान उनके आभूषण व वेशभूषा मात्र से ही होने के प्रमाण मिलते हैं।

शासक की दिनचर्या से संबंधित हकीकत बहियों में जोधपुर की हकीकत की बहियाँ वि.सं. 1821 से उपलब्ध होती हैं। डा. वसुमती शर्मा ने 1821–22 की "हकीकत बही" की चर्चा करते हुये विवाह, दशहरा, दीपावली जैसे राजकीय समारोहों तथा महाराजा विजयसिंहजी की दिनचर्या पर प्रकाश डाला है। म. विजयसिंह के नित्य कार्यक्रम में वैष्णव मन्दिरों का दर्शन प्रमुख अंग था।

मेवाड़ की हकीकत बहियों में पुरोहित संग्रह की ई. 1911 की "दिल्ली दरबार की हकीकत की बही" महाराजा फतहसिंह द्वारा ब्रिटिश

परम्पराओं व शासन के किये गये विरोध का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। डा. राजेन्द्र पुरोहित ने महाराजा फतहसिंह के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए क्रान्तिकारी गोपालसिंह खरवा तथा पं. मदनमोहन मालवीय के प्रति महाराणा की श्रद्धा का भी संकेत किया है। इसी प्रकार डा. द्वारकालाल माथुर ने महाराणा शम्भुसिंह से संबंधित वि.सं. 1923 की हकीकत बही के संदर्भ में शम्भुसिंह द्वारा व्यापार की उन्नति के लिए किये गये प्रयासों, शम्भुसिंह की नाबालगी में रिजेन्सी कौन्सिल के कार्य तथा दशहरा जैसे राजकीय समारोहों के अवसर पर भेजे गये परवानों के संदर्भों को रेखांकित किया है। महाराजा फतहसिंहकालीन हकीकत बही को डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने संपादित कर महाराणा मेवाड़ अनुसन्धान केन्द्र से प्रकाशित करवाया था। श्रीमती अनुराधा पुरोहित ने इस बहिड़े के आधार पर महाराजा फतहसिंह की दिनचर्या, महाराजा से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्ति तथा मेवाड़ में हुई शिक्षा की उन्नति को संकेतित किया है।

ऐसी हकीकत बहियों के समकक्ष जोधपुर रियासत में लिखी जाने वाली दस्तरी बहियों में से ई. 1946–47 की दस्तरी बही की चर्चा करते हुये महेन्द्रसिंह नगर ने रियासत की उन सभी परम्पराओं की चर्चा की है जिनका निर्वाह स्वतन्त्रता के पूर्व तक होता रहा है। यह बही, अस्त होती रियासतों तथा उदय होतीं स्वतन्त्रता के सन्धिकाल का एक ऐसा महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो शासकों की लोकतान्त्रिक परम्पराओं में आस्था को प्रकट करता है। जोधपुर की सरदार स्कूल के 50 वर्ष पूर्ण होने पर हुए समारोह में महाराजा की उपस्थिति अथवा किसी व्यापारिक फर्म के उद्‌घाटन पर राजकुमार की उपस्थिति को लोकतान्त्रिक आस्था के उदाहरण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

इन बहियों के अलावा पत्रावली के रूप में उपलब्ध होने वाले अभिलेखीय गद्य से भी राज्यों अथवा अधिकारियों के परस्पर संबंधों पर व राजनैतिक दावपेचों पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे पत्रों में खरीते, रुक्के, परवाने, अधिकार पत्र (सनद) या दानपत्रों का समावेश किया जा सकता है। जयपुर व इन्दौर के शासकों के बीच प्रेषित किये गये खरीतों की एक शृंखला बीकानेर अभिलेखागार में उपलब्ध हैं जो 1806 से 2002 वि. तक के 365 खरीतों का संग्रह है। इनकी चर्चा करते हुये श्री जीवणराम मीणा ने देशी रियासतों में परस्पर सद्‌भावना तथा हिन्दुई एकता के लिए दिये

गये प्रयासों को संकेतित किया है। इन पत्रों में हिन्दवी में पत्राचार के लिए किये गये आग्रह को राजकाज में हिन्दी की मान्यता के लिए प्रारम्भिक कदम के रूप में देखा जा सकता है। इन पत्रों के अन्यान्य विषयों में शादी–विवाह, माल–असबाब की सुरक्षा, सिपाहियों के आन्दोलन, शासको की धार्मिक यात्राएं आदि विविध विषय संकलित किये गये हैं।

पूर्व रियासतों में महाराजा की ओर से जारी होने वाले आदेश उनके प्रशासनिक अधिकारियों के हस्ताक्षर से प्रसारित होते थे, जिन्हें परवाना कहा जाता था। परन्तु राजपरिवार के विवाह या युद्ध प्रसंगों के दौरान शासक स्वयं अपने हस्ताक्षर से अपने अधीनस्थ उमरावों व अधिकारियों को आदेश जारी करते थे। इसे रुक्का कहा जाता है। शासक की निजी मोहर से जारी होने वाला पत्र खास रुक्का कहा जाता है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह द्वारा लिखे गये कुछ रुक्कों तथा उनके शासन में जारी किये गये परवानों को प्रस्तुत करते हुए डॉ. सद्दीक मोहम्मद ने राजनीतिक घटनाक्रम को मोड़ देने वाली कुछ परिस्थितियों की चर्चा की है। इन्दरराज सिंघवी को लिखे एक खास रुक्के में उनकी सेवा की मानसिंह ने यों प्रंशसा की है – "आज सूं थारे दियोड़ो राज है, मारै राठौड़ां रे वंस मे रैइसी ने ओ राज कररसी वो थारे घर सूं एहसानबंद रैइसी "– सदाशयता का इससे बढ़कर कोई नमूना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इसी प्रकार ठिकाना गोगुन्दा के पट्टे परवानों की डॉ. सरोज गुप्ता द्वारा की गई चर्चा भी ठिकाने की कृषि व राजस्व की व्यवस्था की जानकारी के लिए महत्वपूर्ण है।

जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम के आश्रित कवि वरसा को जसवन्तसिंह ने शाहजहाँ से प्रार्थना कर गुजरात में रामोदड़ी गाँव दिलवाया था। इस दानपत्र की रतुदान रोहड़िया द्वारा की गई चर्चा चारण कवियों के राजस्थान से गुजरात स्थानान्तरण को समझने में सहायक सिद्ध हो सकती है। अँग्रेजों के शासनकाल के पत्र व्यवहार कभी–2 शासकों की अकुलाहट व भय को भी प्रकट करते हैं। भरतपुर के राजा किशनसिंह ने अपने खास सरदार गिरधरसिंहजी धाऊ को एक गोपनीय जाँच के संदर्भ मे लिखे हुए 1923 ई. के पत्र का अध्ययन श्री छत्रभानसिंह ने प्रस्तुत किया है। अँग्रेजों के ही शासनकाल में डूंगरपुर राज्य में पनपी सागड़ी प्रथा की चर्चा करते हुए डॉ. करुणा जोशी ने डूंगरपुर की

उपजाऊ व अनउपजाऊ सभी प्रकार की जमीनों व फसलों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। विशेषकर निर्धन कृषक मजदूरों को केवल रोटी के बदले बन्धक बनाये रखने वाली सागड़ी प्रथा में बन्धक कृषि मजदूर से किये जाने वाले संविदा पर भी इस शोधपत्र में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

भरतपुर रियासत के अभिलेखों, उपलब्ध शिलालेखों तथा ग्रन्थों के आधार पर डॉ. ओंकारनारायणसिंह ने भरतपुर के शासकों की धार्मिक अभिरुचि तथा साहित्य की उन्नति के लिए किये गये प्रयासों की चर्चा की है। आचार्य सोमनाथ तथा श्रीकृष्णभट्ट कलानिधि ने विपुल ब्रज साहित्य की रचना भरतपुर में ही की थी। भरतपुर के मन्दिरों तथा अन्य संप्रदायों के मठों को शासकों द्वारा मुक्तहस्त से दिये गये दान के साथ महाराजा बलवन्तसिंह के द्वारा गंगा मन्दिर व जामा मस्जिद का शिलान्यास, धार्मिक अभिरुचि के साथ उनकी सर्वधर्मसहिष्णुता का भी परिचायक है।

मारवाड़ की द्वितीय राजधानी नागौर के किले की बनावट का बखूबी वर्णन करने वाली 1904 वि.सं. की एक बही के आधार पर श्री रामनिवास शर्मा ने नागौर किले की विगत प्रस्तुत की है। राजस्थान व भारत के किलों पर लिखी गयी पुस्तकों में इस प्रकार से लिखी गईं विगत का संकेत भी कहीं पर नहीं मिलता है।

डिंगल काव्यों में भी कहीं–कहीं पर प्रयुक्त वचनिकाओं व दवावैतों पर अब तक विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है। दवावैत तुकान्त गद्य का एक प्रकार है। महाराजा अभयसिंह जोधपुर की अहमदाबाद के सर बुलन्दखां के साथ हुई लड़ाई का आँखों देखा हाल कवि करणीदान ने "सूरजप्रकाश" में प्रस्तुत किया है। "सूरजप्रकाश" में लिखी गई दवावैतों की चर्चा डॉ. राजकृष्ण दुग्गड़ ने करते हुए अचर्चित दवावैतों को उजागर किया है।

अलवर के शासकों के परिवारजनों तथा वंशावली का विवरण प्रस्तुत करने वाले "नृपवंशवर्णन" की वीरविनोद से तुलना करते हुए दुलहराय तथा उसके पुत्र काकिल तथा सोढ़देव के राज्याभिषेक की तिथियों के संबंध में विभिन्न मतों की स्थापना डॉ. सर्वेशकुमार शर्मा ने की है। इस वंश की आराध्य देवी जमुवाय माता अथवा बुढवाय माता है इस प्रश्न का निराकरण भी इसी ग्रन्थ से किया जा सकता है। अलवर के ही अभिलेखों के आधार पर श्री अनिल जोशी ने महाराजा जयसिंह के

शासनकाल में रियासत के राजपूतों तथा मुसलमानों द्वारा किये गये विद्रोहों का विवरण प्रस्तुत किया है।

इतिहासपरक गद्य साहित्य के अन्तर्गत अब तक जिस प्रकार के साहित्य की चर्चा की गयी है उनमें से अधिकांश रियासतों के आश्रय में लिखी गई ख्यातें या अभिलेख हैं जो शासकों के इतिहास के तथ्यों को उद्‌घाटित करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं परन्तु शासित का इतिहास इनसे उजागर नहीं होता है। किसी भी राष्ट्र अथवा प्रदेश का इतिहास वहाँ के जन--जन की सामाजिक स्थितियों और आर्थिक उतार–चढ़ावों का इतिहास होता है। पूर्व चर्चित वाचिक परम्परा में सुरक्षित बात साहित्य ही एक ऐसा स्रोत है जो राजनीतिक घटनाचक्र के साथ समाज का भी चित्रण उपस्थित करता है। डॉ. जीवनसिंह ने इसे लोक इतिहास की संज्ञा दी है। यह लोक इतिहास लोक हृदय पर अंकित होता है और जातीय स्मृति के रूप में कुछ परिवर्तनों के साथ आगे बढ़ता रहता है। उनके द्वारा प्रस्तुत मेवखाँ और घुरचढ़ी इन दोनों भाइयों के विद्रोह का बखान करने वाली बात उनके पराक्रम के साथ ही मेव समाज की हिन्दू देवताओं के प्रति आस्था को प्रकट करती है।

ऐतिहासिक गद्य साहित्य का प्रस्तुत सेमिनार में "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" यह अर्थ न लेकर केवल "शब्दार्थौ सहितौ" यह अर्थ ही लिया गया है। लिखित परम्परा के अलावा वाचिक परम्परा के गद्य की इतिहासपरकता की इसमें चर्चा की गई है और इतिहास के साधनों के रूप में प्रथम स्रोत के माने गये अभिलेखो के अतिरिक्त जिन इतिहासपरक ग्रन्थों की चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ है उनसे पुनः यह बात प्रकट होती है कि बहुत कुछ सीमा तक यह साहित्य भी इतिहास और समाज का दर्पण है। राजनीतिक इतिहास के संबंध इस प्रकार के साहित्य की उपादेयता और निर्भरता कदाचिद् प्रश्नांकित हो सकती है परन्तु जहाँ तक समाज के अपने इतिहास का प्रश्न है, यह साहित्य ही तो उसके दर्शन करायेगा, कालजयी कवियों की रचनाएँ जैसे प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था को चित्रित करती हैं वैसे ही मध्यकालीन इतिहास से संबद्ध तत्–तत् स्थानों की भाषाओं में लिखी गई लेखकों और कवियों की गद्यकृतियों में हम उन विषम परिस्थितियों का दर्शन कर सकते हैं जिनको सहते–सहते मनुष्य जाति को पूर्वजों से यहाँ तक की यात्रा तय करनी

पड़ी है। विशेषकर मौखिक परम्पराओं के काव्य व. गद्य दोनों ही हमें तत्कालीन मनुष्य मात्र से भावात्मक रूप से जुड़ने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह संबंध या जुड़ाव ही मानव मात्र की हुई उन्नति या ह्रास के सोपानों का नव–नव आगुन्तकों को दर्शन करा सकेगा। इस प्रकार के साहित्य से निर्माण होने वाले इतिहास के नये पृष्ठ ही वर्तमान में बदलती सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत स्तम्भ सिद्ध होंगे। इस साहित्य के लिये भी महाभारत की यह उक्ति चरितार्थ होती है –

यदिहास्ति न तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न कुत्रचित्।

डा. डी.बी. क्षीरसागर
ओमप्रकाश शर्मा

श्री नटनागर शोध-संस्थान, सीतामऊ में संगृहीत अप्रकाशित ख्यातों का सर्वेक्षण और ऐतिहासिक महत्व

डॉ. मनोहरसिंह राणावत

विगत कुछ वर्षों से संशोधकों ने राजस्थान इतिहास लेखन के लिए गैर फारसी स्रोतों की ओर ध्यान दिया, फलस्वरूप अनेक ख्यातों की जानकारी प्राप्त हुई। श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ की स्थापना के पूर्व ही महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंह ने राजस्थान इतिहास लेखन के लिए राजस्थानी गद्य साहित्य की उपयोगिता और महत्व को समझते हुए अनेक ख्यातों को मूल अथवा प्रतिलिपि के रूप में संगृहीत किया उनमें प्रमुख हैं- जोधपुर राज्य की ख्यात, शाहपुरा राज्य की ख्यात, भाग 1-4, कविराजा की ख्यात, गुरां नारायणदास की ख्यात, दयालदास की ख्यात, भाग 1-2, डूंगरपुर राज्य की ख्यात, करौली राज्य की ख्यात, तिलोकचन्द की बही, सीतामऊ राज्य की ख्यातें आदि।

श्री नटनागर शोध संस्थान की स्थापना के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही कविराजा संग्रह की प्राप्ति। जोधपुर राज्य री ख्यात भाग, 1-3 (अजीतसिंह से बखतसिंह तक), विजयसिंह से भीमसिंह और महाराजा मानसिंह ग्रंथ क्र. 1,2,3, (28 बहीनुमा विजयसिंह मानसिंह तक,) चित्तौड़, उदयपुर, पाटनामा, चन्द्रावतों का पाटनामा।

सिंघवी कानमल री ख्यात (ग्रंथ सं. 45 अ), राठौड़ां री ख्यात (ग्रंथ सं. 72, 74, 111, 216), उदेभांण चांपावत री ख्यात (ग्रंथ सं. 75,76,100, 216) पंचोली शिवकरण लालचंद री बही (ग्रंथ सं. 6), मुंहणोत नैणसी री ख्यात (ग्रंथ सं. 140) तथा सीताराम लालस से प्राप्त बणसूर महादान की ख्यात।

कविराजा संग्रह के रूप में प्राप्त ख्यातों और अन्य हस्तलिखित ग्रंथों का विवरणात्मक सूची-पत्र प्रकाशित हो चुका है। अतः यहाँ उनकी विस्तृत जानकारी देने की आवश्यकता नहीं है। जोधपुर राज्य की ख्यात भाग 1 (प्रारंभ से अजीतसिंह तक) तथा महाराजा मानसिंह री ख्यात (जोधपुर राज्य की ख्यात भाग 4 भी प्रकाशित हो चुकी हैं। अतः यहाँ शाहपुरा राज्य की ख्यात, गुरां नारायणदास री ख्यात, डूंगरपुर राज्य की ख्यात, मूंदियाड़ री ख्यात और चित्तौड़, उदयपुर, पाटनामा (राज्य की ख्यात) विस्तृत जानकारी देते हुए उनके महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

गुरां नारायणदास री ख्यात

प्रस्तुत ग्रन्थ में राठोड़ों की कुछ शाखाओं की पीढ़ियां लिखी गई हैं। ये पीढ़ियां राठौड़ों के गुरु नारायणदास के परिवार में संकलित की जाती रही है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में राव रणमल के 24 पुत्रों व उनसे चलने वाली शाखाओं का उल्लेख है। इसके बाद रणमल के पुत्र अखैराज और उसके वंशजों का कुछ विवरण लिखा गया है।

अखैराज वडो ठाकुर हुवौ। घणी आखड़ी वहेती, राव जोधा रै विखै धरती माहे घणौ पराक्रम कीयौ। पछै धरती वाली, राव जौधो पाट बैठौ, तरै सारा भायां नू धरती वांटि देण लागा- इस विवरण के बाद राठौड़ अखैराज के गीत व दोहे भी लिखे हुए हैं। अखैराज के बाद पंचायण और राठौड़ अचला का विवरण है। बाद में पंचायण जी रै द्वितीय पुत्र जैतो जी तस्य साखा लिख्यते शीर्षक के अन्तर्गत जेतावत राठौड़ों का विवरण लिखा गया है। इस विवरण में राठौड़ जेता का विवरण लिखा गया है कि "जैताजी का पराक्रम री वात मालदेवी रा वाकां माहे घणी लिखी छै उठा सौं वांचज्यों" इनके विवरण में राठौड़ जेताजी व पृथ्वीराज जेतावत की प्रशंसा के गीत व दोहे भी लिखे गये हैं।

तदनन्तर राव जोधा के पुत्र जोगा का विवरण है तथा बाद में करमसी जोधावत के पुत्रों का वर्णन-

"कर्मसीयोत राव जोधा पु. करमसीजी तस्य साखा लिख्यते" इस शीर्षक के अन्तर्गत करमसोत राठौड़ों की पीढ़ियां विस्तार से लिखी गई हैं। इस विवरण में "पीपाड़ पटै-। प्रतापसिंह भा. भटियाणी पु. कल्याणसिंघ 1, अजबसिंघ 2, कछवाही पु. किसोरसिंघ 3, देवड़ी पु. हठीसिंघ 4, अजबसिंघजी घोड़ौ। नीलो गुरां नारायणदासजी ने दीधौ नावां लिखाया"

इससे ग्रन्थ की प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है कि राठौड़ों के गुरु ने उनकी वंशावली इस बही में लिखी है। इस ग्रन्थ में करमसियोत राठौड़ों के अतिरिक्त जोधा के पुत्र रायपाल (रायपालोत), जोधा के पुत्र सिवराज (सिवराजोत) राठौड़ों की पीढ़ियां भी लिखी गई हैं। "राव श्री जोधा रै महल राणी सांखुली नवरंगदे तिण रै राव वीकौजी।, वीदौजी, तिणां रो परिवार लिख्यते" शीर्षक के अन्तर्गत बीकानेर के शासकों की, राव बीका से महाराजा अनूपसिंहजी तक की पीढ़ियों के साथ ही अन्य बीका व वीदावत राठौड़ों की पीढ़ियां लिखी गई हैं। इन बीकावत व वीदावत राठौड़ों की पीढ़ियां विस्तार से लिखी गई हैं।

मूल ग्रन्थ के लेखन काल के उल्लेख- "ठाकुर संग्रामसिंघजी गांव सांपडूदै गढ़ महल दरवाजो पाइगा सगली पाकी करवाई संवत् 1788 रा वरस गुर सिवचंद ने नावा मंडाया जदि 4 दीया भोपतसिंघजी"[1]। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रंथ सं. 1788 वि. (1730-31 ई.) में पूरा हुआ था। संस्थान में उसी मूल ग्रन्थ से की गई प्रतिलिपि सन् 1978 ई. में क्रय की गई थी।

यों मूल ग्रन्थ ईसा की 19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में लिखी गई होने के कारण उस समय तक के राठौड़ों, सामन्तों के परिचय और उनकी जागीर व्यवस्था के लिये प्राथमिक आधार सामग्री के रूप में उपयोगी है।

जोशी तिलोकचंद री ख्यात

इस ग्रन्थ की प्रारम्भिक पंक्तियों में स्पष्ट लिखा है कि "श्री रामजी पुराणी ख्यात प्रारभ्यते आ हकीकत जोसी तीलोकचंद रे थी सो जोसी तीलोकचंद कना सु सिंघवी ग्यानमल जी लिखाई सं. 1871 रा वैसाख सुद 10 शुक्र अथ गढ़ रा कमठां री विध— "उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि मूल ग्रन्थ तो जोसी तिलोकचंद का ही था, उसकी प्रतिलिपि सिंघी ज्ञानमल ने सं. 1871 में करवाई थी जो शुक्रवार वैशाख शुक्ला 10,1871 वि. के दिन पूरी हुई थी। उसी प्रति से ही खींवसर ठाकुर केसरीसिंह ने निजी संग्रह के लिये प्रतिलिपि करवाई और उसी प्रतिलिपि की प्रतिलिपि प्रस्तुत ग्रन्थ है। पत्र 190 हैं।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में "अथ गढ़ रा कमठां री विध" शीर्षक में जोधपुर दुर्ग के निर्माण कार्य का उल्लेख किया है"। ठेठसूं गढ़ री नींव राव जोधेजी दीनी सं. 1472 वैशाख वद 4 बुधवार मूल नक्षत्र री जनम मंडोवर सुं आय ने संवत 1515 जेठ सुद 11, 12 मई 1459 ई.) सनीसरवार चंवडा भुरज कानी नींव दीनी"। इस प्रकार प्रारम्भ के 7 पृष्ठ तक जोधपुर दुर्ग, शहर और शहर के आस-पास करवाये गये निर्माण कार्य का विवरण लिखा गया है। इसके पश्चात् पृ. 7 से "सं. 1735 पौष वद 10 गुरुवार [2] दोपेरां रा महाराज जसवंतसिंघ जी . . . जादमजी सती हुवा" इस विवरण में महाराजा जसवन्तसिंह के स्वर्गवास से महाराजा मानसिंह तक के शासकों के राज्यारोहण, और स्वर्गवास की तिथियों का उल्लेख किया गया है। इसी तरह फुटकर विवरण के रूप में पृ. 10 पर मारवाड़ के शासकों के समय में नियुक्त होने वाले अधिकारियों का विवरण और पृष्ठ 11 पर राव अमरसिंह का फुटकर विवरण लिखा गया है।

इसके पश्चात् महाराजा अभयसिंह के शासनकाल की फुटकर घटनाओं का उल्लेख

व रामसिंह के शासन काल में रामसिंह बखतसिंह का संघर्ष, बखतसिंह द्वारा जोधपुर पर अधिकार और महाराजा बखतसिह के संक्षिप्त काल की घटनाओं का कुछ विस्तार से उल्लेख किया गया है।

पृ. 51 से महाराजा विजयसिह के शासनकाल की घटनाओं का उल्लेख, मारोठ में विजयसिंह की गद्दीनशीनी और राजगढ़ की तरफ से राजवी किसोरसिंह का उपद्रव और उसके मारे जाने की घटना से प्रारम्भ होता है। वस्तुत: जोशी तिलोकचंद महाराजा विजयसिंह का समकालीन था, अत: महाराजा विजयसिंह के शासन काल की घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी था, यों उस समय का विवरण प्रामाणिक और विस्तारपूर्ण लिखा गया है। इस विवरण में महाराजा विजयसिंह के शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में हुए मराठा आक्रमण, ठाकुरों का उपद्रव, और पासवान गुलाबराय का महाराजा के अन्तिम दिनों में बढ़ा हुआ प्रभाव, उसके दुष्परिणाम, राजकुमार भीमसिंह का विरोध और झंवर युद्ध आदि घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन लिखा गया है। इसी विवरण में प्रसंग वश पृ. 159-160 पर- "पछै डीघाडी रे डेरां वरसगांठ रो दरबार हुवो श्री कंवरजी मुढै आ (गे वीरा) जीया दोपारा मारकुंड जी री पूजा हुई लांग डोडा बटीया" इस विवरण से उस समय के रीति-रिवाज आदि पर प्रकाश पड़ता है।

ग्रन्थ में अन्त में पृष्ठ 186 से सीवाणा के सांसण गांव, चैत्र पृ.9, 1614 वि. के दिन हुई जैतारण की लड़ाई में मारे जाने वालों की विगत और "सहर पोकरण वसती री ऊनमान" आदि फुटकर विवरण लिखा गया है।

ग्रन्थ मूल रूप से महाराजा विजयसिंह के शासनकाल (1753-1793 ई.) के लिए ही महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करता है। साथ ही इसमें जोधपुर शहर और गढ़ में होने वाले निर्माण कार्यों का भी विस्तार से विवरण तत्सम्बन्धी जानकारी के लिये उपयोगी है।

डूंगरपुर राज्य की ख्यात

बड़वाजी की पुस्तक से डूंगरपुर के महारावल विजयसिंह ने मांगलियास निवासी जीवनराम वर्मा से सन् 1914 ई. में प्रतिलिपि करवाई थी। जिसकी मई, 1950 ई. में प्रतिलिपि करवाकर "श्री रघुबीर लायब्रेरी" में संगृहीत किया गया है।

इस ख्यात के प्रारम्भ में डूंगरपुर के शासकों का "गोत्राचार" लिखा हुआ है। और तदनन्तर महारावल सामंतसिंह (चित्तौड़) के पुत्र सीहड़देव से डूंगरपुर के शासकों

की वंशावली व पीढ़ियों का क्रम प्रारम्भ होता है, जो महारावल विजयसिंह के शासन काल का संवत् 1965 वि. तक का (पृ. 60) विवरण है।

ख्यात में राजकुमार सीहड़दे, महारावल दूदा, महारावल गोपीनाथ, तथा महारावल उदयसिंह व राजकुमार जगमाल का विवरण कुछ विस्तार से लिखा गया है, साथ ही राव दूदा के वर्णन में डूंगरीया भील को मार कर उसके नाम पर काती सुदी 11, 1339 वि. में डूंगरपुर की स्थापना का वर्णन (पृ.10-14) मनगढन्त कहानी के आधार पर ही लिखा गया है। इसी तरह से महारावल उदयसिंह व राजकुमार जगमाल के वर्णन में महाराणा सांगा के प्रसंग में चित्तौड़ पर बाबर का आक्रमण, पील्याखाल शिकरी की लड़ाइयों आदि का विवरण (पृ. 27-31) सही नहीं है।

महारावल उदयसिंह के पुत्रों जगमाल और पृथ्वीराज के मध्य डूंगरपुर राज्य के बंटवारे का विवरण भी अतिशयोक्तिपूर्ण है। महारावल पृथ्वीसिंह के बाद के विवरण में डूंगरपुर के शासकों की गद्दीनशीनी की तिथि, उनके रणवास और पत्रों के नामों का ही वर्णन है। साथ ही कहीं-कहीं पर शासकों द्वारा करवाये गये निर्माण कार्य का भी उल्लेख किया गया है।

ख्यात में पृ. 63 से 73 तक महारावल जसंवतसिंह के पुत्र फतेहसिंह के वंशजों का वर्णन लिखा गया है। इसके पश्चात् पृ.76 से पुनः महारावल सामंतसिंह से विवरण लिखा गया हैं और अन्त में पृ. 82-84 डूंगरपुर के शासकों की पीढ़ियाँ-राजा सीहड़ दे से विजयसिंह तक लिखी गई है। इनमें शासक के गद्दीनशीनी की तिथियां भी लिखी गई हैं।

शाहपुरा राज्य की ख्यात-

शाहपुरा राज्य के संग्रह में संगृहीत मूल फारसी के फरमानों, सनदों, कागज-पत्रों व रुक्के परवानों के आधार पर शाहपुरा राज्य के इतिहास को संकलित करने का 19वीं सदी के अन्त में राज्य के संरक्षण में कार्य किया गया। इसी प्रयास के कारण "शाहपुरा राज्य की ख्यात" का संकलन संभव हो सका। इस ख्यात की मूल प्रति वर्तमान में शाहपुरा के राजाधिराज के निजी संग्रह में सुलभ है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी मूल ख्यात से सन् 1964 ई. में बनवाई गयी प्रतिलिपि है, जो फुलस्केप आकार के पत्रों पर लिपिबद्ध की जाकर अलग-अलग चार जिल्दों में श्री रघुवीर लायब्रेरी में संगृहीत की गई।

प्रथम जिल्द- पत्र संख्या 140
(प्रारम्भ से 1786 वि. तक)

इस जिल्द में शाहपुरा राज्य के मूल पुरुष महाराणा अमरसिंह प्रथम के तृतीय पुत्र सूरजमल के विवरण से ख्यात का लेखन कार्य प्रारम्भ किया गया है, किन्तु सूरजमल का विवरण अति संक्षिप्त है। पृ. 26 से सूरजमल के पुत्र सुजाणसिंह, शाहपुरा राज्य के संस्थापक, प्रथम शासक का वर्णन किया गया है। सुजाणसिंह का महाराणा से नाराज होकर मेवाड़ त्यागना, शाही सेवा में उपस्थित होना और फूलिया परगना जागीर में मिलना, अपनी जागीर में शाहपुरा नामक शहर की स्थापना आदि का विवरण है। पृ. 41 पर सुजाणसिंह के पुत्रों का वंशवृक्ष और पृ. 50 से महाराजा दौलतसिंह (1664-1685 ई) का हाल है। पृ. 61 से शाहपुरा के शासक भारतसिंह का विवरण विस्तार से लिखा गया है। विवरण में जगह-जगह पर शाहपुरा के शासक को भेजे गये पत्रों की नकलें उतारी गई हैं, जिससे विवरण की प्रामाणिकता सिद्ध होती है, लेकिन पृ. 62 पर नकल किया गया फरमान सही प्रतीत नहीं होता, इसी तरह पृ. 71 पर "संवत् 1750 में देहली पधारना हुआ. . . .जब देहली पहुंचे दो-चार रोज के बाद बादशाह आलमगीर के दरबार में गये" आदि लिखा गया विवरण गलत ही है। इसी तरह पृ. 78 पर बादशाह बहादुरशाह के समय टोडा के शासक रायसिंह का उल्लेख भी गलत है। इतना होने पर भी ख्यात में लिखे गये पत्रों, पट्टों व जागीरों सम्बन्धी पत्रों की नकलों से प्रस्तुत ख्यात का महत्व बढ़ता है। इस खण्ड के अन्त में 138-39 पर वंशवृक्ष लिखा गया है।

जिल्द दो—पत्रं 253 (लिखे हुए)
(सन् 1784 वि. से 1824 वि.)

भाग दो खण्ड में शाहपुरा के शासक महाराजा उम्मेदसिंह का पूरा विवरण संवत्वार लिखा गया है। प्रारम्भ के दो वर्षों में (1784-86 वि.) उन्होंने महाराजकुमार के रूप में राज्य किया तथा बाद में स्वयं शासक बने। इस खण्ड में भी फारसी के फरमानों की नकलें व उनका अनुवाद लिखा गया है। पृ. 26 पर नकल किया गया फरमान सही प्रमाणित नहीं होता। इसमें महाराजा सुजाणसिंह के स्थान पर नाम बदल कर महाराजा उम्मेदसिंह कर उसी फरमान की नकल कर दी गई है। इसी तरह इस खण्ड के पृ. 143 पर "आगूंचा गांव की उठांतरी" पत्र की नकल उस समय की जागीरदारी प्रथा पर प्रकाश डालती है। खण्ड के अन्त में उज्जैन युद्ध में उम्मेदसिंह का मारा जाना, उनके रणवास व पुत्रादियों के विवरण के साथ उम्मेदसिंह की पासवान "चमना खातण" का पूरा विवरण लिखा गया है।

खण्ड तीन—(पत्र 274)

(सं. 1825 से 1853 वि. तक)

ख्यात के इस खण्ड के प्रारम्भ में शाहपुरा के शासक रणसिंह (1825-31) तथा

बाद में राजाधिराज भीमसिंह (1831 वि. 1853 वि.) का विवरण संवत्‌वार लिखा गया है। इस विवरण में ऐतिहासिक विवरण के अतिरिक्त राज्य के आय के साधन, प्रशासनिक व राजस्व सम्बन्धी विवरण भी उपलब्ध होते हैं।

पृ. 43- इसी साल (सं. 1827 वि.) में इलाके काछोला में चूलेश्वरजी के डूंगर में जो खानें हैं, उन खानों में से एक खान चांदी की थी जिसे खुदवाया मगर उसमें कुछ फायदा नहीं मालूम हुवा। रुपये में दस आने वसूल होने लगे।

इसी तरह राज्य में व्यापारियों पर लगने वाले कर आदि के विषय में इस ख्यात में उल्लेख मिलता है कि-पृ. 63-भीलवाड़ा के पंचों की अरज-पोस वदि 13 (1819 वि.) लिखतू समस्त भीलवाड़ा का पंचा व्योपारीयां बीकानेरी अणां रीत राजाजी श्री रणसिंहजी ने मालवा का गैला को माल आवेजी को मुजब लागत कर दीनी ज्यों राजी खुशी थी। दियां जावस्यां वीगत-

1) गाड़ी 1 कराणा की रूपयो 1) देणों राजा साही"

इस लिखत में सभी पंचों के हस्ताक्षर आदि भी किये गये हैं।

इसी तरह से धार्मिक अनुष्ठानों का भी वर्णन है, पृ. 68 पर पुण्डरीक शिवदत्त द्वारा "अग्निहोत्र यज्ञ" उस समय के धार्मिक विचारों पर प्रकाश डालता है।

पृ. 101 से महाराजा भीमसिंह के राज्यकाल का विवरण लिखा गया है। ख्यात के पृ. 125 पर सात ही वारों में महाराजा की सवारियों का वर्णन और "श्रावण तृतीया" के दिन तीज का उत्सव आदि का वर्णन उस समय के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालता है। इसी तरह ग्रन्थ के पृ. 131 पर "ठाकुर कानावत संग्रामसिंह का लिखत" की नकल उस समय की सामन्ती व्यवस्था को समझने में सहायक है। पृ. 152 से पता चलता है कि- "इसी जमाने में रियासत शाहपुरे के बागों में गुलाब के फूल कई मण उतरते थे जिनका रियासत में ही गुलाब का अतर बहुत उमदा खिंचवाया जाता था वैसा बाजे जगह कम मिलता था।"

लेकिन इस ख्यात में पृ. 158 पर दौलतराव सिंधिया का उल्लेख गलत किया गया है। यही गलती पृ. 175-76 पर "संवत् 1844 श्रावण बुदी 8 को हमदानी वो मारवाड़ वो ढूंढाड़ की फौज से पटेल जसवन्त राय की फौज ने झगड़ा किया जिसमें

बहुत से सिपाही दोनों तरफ से काम आये।"

इन दोनों स्थानों पर महादजी सिंधिया का उल्लेख होना चाहिये था। यों इन गलतियों के बाद भी ख्यात का अन्य विवरण शाहपुरा की आन्तरिक घटनाओं आदि का विस्तृत विवरण बहुत ही उपयोगी है।

भाग -4–(पत्र संख्या -283)
(1853 से 1926 वि.)

ख्यात के इस खण्ड में शाहपुरा के चार शासकों का विवरण लिखा गया है।

(1) राजाधिराज श्री अमरसिंहजी पृ. 21-152 (1853-1884 वि.)
(2) राजाधिराज श्री माधोसिंहजी पृ.161-217 (1884-1902 वि.)
(3) राजाधिराज श्री जगत्सिंहजी पृ. 221-251 (1902 से 1910 वि.)
(4) राजाधिराज श्री लक्ष्मणसिंहजी पृ.261 से 283 (1910 से 1926 वि.)

इस ऐतिहासिक वर्णन के साथ ही पृ. 83 पर "कागज संघी रायचंदजी का जो के आप बेगा पधारसी आपरे फौज खर्च वा हाथ खर्च सरकार सू हनोज पूगतो रहेगा" लिखे गये वर्णन से शाहपुरा के शासकों की सहायता नीति पर प्रकाश पड़ता है।

यों यह ख्यात-शाहपुरा राज्य के राजनैतिक इतिहास के अतिरिक्त उस समय की शासन व्यवस्था, सामन्ती प्रथा, वाणिज्य-व्यवसाय की जानकारी के लिये उपयोगी है।

मूंदियाड़ री ख्यात

डॉ. रघुवीरसिंहजी राजस्थान में संगृहीत विभिन्न ख्यातों को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे। सन् 1949 ई. में मूंदियाड़ ठाकुर केसरीसिंह से पत्र द्वारा सम्पर्क कर **मूंदियाड़ री ख्यात** की प्रतिलिपि प्राप्त करने का प्रयास किया जिसके जवाब में श्री केसरीसिंह ने लिखा है—"9 जुलाई 1949 का कृपा पत्र परसों मिला। **मूंदियाड़ की ख्यात** केवल एक किताब बच रही है शेष न जाने कहाँ-कहाँ खतम हो चुकी हैं। ये कीड़-मकोड़े की उदर-पूर्त्ति करती हुई विनाश को प्राप्त हो रही थीं। आपने इसकी चाह प्रकट कर मानों इसे उबार लिया। इसकी नकल न भेजकर मूल ही को सेवा में भेज रहा हूँ। इसको आपकी सेवा में भेजते हुए मुझे असीम संतोष हो रहा है। आपके पास यह सुरक्षित रहेगी। मेरी यह तुच्छ भेंट अवश्य ही स्वीकार करें।

यों **मूंदियाड़ री ख्यात** की यह मूल प्रति दिनांक 1-8-49 ई. को डॉ. रघुवीरसिंहजी को प्राप्त हुई। इस ख्यात के प्रारंभ में लिखा है कि, "और जोधुपर के राजावां रै वडैरां री ख्यात कन्नौज सुं आय मारवाड़ में परवेस कीयो समत 1233 लगायत तिण री विगत वार ख्यात दूजी पोथी इणींज तरै री पाना 171 में दोनुं तरफ मंडी है, अर उण पोथी में समत 1847 रा वरस तांई म्हाराज श्री विजैसिंघ रा राज तांई विगत मंडी छै। पछै उण बही में पाना माया नहीं तरै आ पोथी उणीज तरै री"।

इससे स्पष्ट होता है कि इसके पूर्व का विवरण की प्रति का अन्यत्र खोज की जाये। इसका प्रथम भाग प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में उपलब्ध है। उसकी प्रतिलिपि डॉ. रघुवीरसिंह को अक्टूबर 1974 ई. में प्राप्त हुई। इस सम्पूर्ण ख्यात का लेखन मूंदियाड़ के रोहड़िया बारहट श्री चैनदान ने 1862 ई. के पूर्व कर लिया था। यों इस ख्यात के दो भाग हैं। इसमें मारवाड़ के राठौड़ शासकों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

प्रस्तुत ख्यात में राजा पूंजा से सेतराम तक की पीढ़ियों के बाद राव सीहा से मारवाड़ के राठौड़ शासकों का वर्णन प्रारम्भ होता है तथा क्रमानुसार यह विवरण महाराजा विजयसिंह के शासन काल में सं. 1816 वि. तक की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इस विवरण में मारवाड़ के प्रारम्भिक शासकों का विवरण अपेक्षाकृत कम विस्तार से लिखा गया है लेकिन राव मालदेव से यह विवरण अधिक विस्तार और प्रामाणिकता से लिखा गया है। इस विवरण में शासकों के राजलोक, राजकीय पद (ओहदे) और उस समय की घटनाओं को कालक्रमानुसार लिखा गया है। इस विवरण के साथ ही यत्र-तत्र कुछ अतिरिक्त विवरण भी लिखा गया है, जिससे उस समय के प्रशासन पर भी प्रकाश पड़ता है। राजा सूरसिंह के समय में गोविन्ददास भाटी के सम्बन्ध में यों लिखा मिलता है कि, "और महाराजा श्री सूरसिंघजी बड़ो प्रतापीक राजा हुवो जीणों रे आगे प्रधान भाटी गोइनदास हुवो सु बड़ो अकलबादर था सुं राज जोधपुर रा कटकणा: राजरीत सारी गोईनदास बांधी: धांधल खीची गेहलोत वगैरे खास पासवांन श्री हजूर में भाटी गोइनदास रा रखायोड़ा है ढाल तरवार छवरी वगैरे न्यारा-न्यारा ओधा सु पाया और हाकमीयां कोटवालीयां कारकुनीयां मुसरफियां पोतेदारी वाकानवेस व्हाकानवेस कचेड़ी चांतरां में राखिया वगैरे छतीस ही कारखाने रा कटकणां बांधीया और सारा उमराव मुतसदीयां री लुगायां सादी गमी वगैरे नुखता में श्री जनाना में जावती सूं मोकूब रखाई। राज रा फेर ही रकाना रसम गोयनदास भाटी रा बांदीयोड़ा है। भाटी सारा सिरदार मुतसदी रे वगेरे रजाबंद था लारला. . . हजूर रे खवासी में चांपा, कूंपा वगैरे सिरदारां रे . . . हता ने हमे धांधल खीची वां गेलोतां नु रखाया. . . सरदारा ने कुरब तथा मिसला

ईनायत कीवी: नै गावा में सरणो ने लवाजमा दिराया ने फेर ही राजरीत भाटी गोइंददास चोखी चलाई सो हाल तक दिन वर दिन सवाय में रीत रसम जारी है कारण कै ज्युं रिजक बदै जिण मुजब रीतां निभे ने रिजक घटीयां सुं रीतां तुटती जावै सो दिन वर दिन पातसाही रकांना रे तोर जोधपुर री रजवाड़ में वरतीजै छे आगे रजवाड़ा जुं नहीं थी भोमी चारे ज्युं रीत रसमां थी।" (पृ. 73-74)

महाराजा जसवंतसिंह के विवरण में पृ. 163 पर लिखा गया है कि "गुजरात सुं परबारा काबुल जावण रो हुकम आयो जिण सुं हुकम मुजब आया सो परबारा डेरा गांव वीसलपुर हुवा कारण के पातसाह रो हुकम जोधपुर जावण रो नहीं थो समत 1715 सु लगाय 1735 देवलोक हुवा सु बीस वरस तांई पातसाहा रीज बंदगी में रह्या कारण के औरंगजेब नु फकत राजी राखण वास्तै घरै आवण री सीख मांगी नहीं।" यों महाराजा जसवंतसिंह और बादशाह औरंगजेब के सम्बन्धों पर प्रामाणिक प्रकाश डाला गया है.।

महाराजा जसवंतसिंह के विवरण के बाद ख्यात में राव अमरसिंह राठौड़ का विस्तृत विवरण है, जिसमें अमरसिंह को मनसब प्राप्ति से आरा में उसका मारा जाना, उसके पीछे रानियों का सती होना तथा उसके सामन्तों द्वारा साका करना आदि विवरण के साथ में उसके पुत्रों का विवरण भी लिखा गया है।

उपर्युक्त विवरण के बाद ख्यात में पुन: महाराजा जसवंतसिंह के मरणोपरान्त की घटनाओं का क्रमिक विवरण लिखा गया है। औरंगजेब की मृत्यु के बाद अजीतसिंह द्वारा जोधपुर पर अधिकार करने की घटना के बाद (पृ. 211 से 227) "वीखा रा दूहा"[6] शीर्षक के अन्तर्गत कठिनाई के समय साथ देने वालों की प्रशंसा में महाराजा अजीतसिंह द्वारा कहे गये 236 दोहे और भाट सतीदास कृत 16 दोहे भी उतारे गये हैं। मूलत: ये दोहे अजीतविलास से ही लिये गये हैं। तदनन्तर अजीतसिंह की जन्म कुण्डली दी गयी है।

सं. 1765 कार्त्तिक वदी 13 को सैय्यद हसन खां को पराजित करने के बाद अजीतसिंह ने प्रशासनिक व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। ख्यातकार ने लिखा है कि "राज रो काम ओहदा सूंपीया तिण री विगत[7] यों" इस शीर्षक के अन्तर्गत महाराजा अजीतसिंह द्वारा अपने विभिनन अधिकारियों की गई नियुक्ति का विवरण दिया है।

इसी तरह पृ. 254 पर सवाई जयसिंह के विवाह का विवरण और उस समय मनाये गये उत्सव आदि का विवरण तत्कालीन सामाजिक रीति रिवाजों पर प्रकाश

डालता है।

महाराजा अजीतसिंह के बाद महाराजा अभयसिंह, के राज्यकाल की घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, इसी प्रकार महाराजा रामसिंह के समय में मारवाड़ के सामन्तों की नाराजगी, राजाधिराज बख्तसिंह से संघर्ष आदि का रोचक वर्णन है। तदनन्तर बख्तगिन्ह द्वारा जोधपुर पर अधिकार करने और बाद में बख्तसिंह के राज्यकाल का संक्षिप्त विवरण है। परन्तु बख्तसिंह द्वारा की गई प्रशासनिक व्यवस्था सम्बन्धी विवरण प्रशासन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

बख्तसिंह के इस विवरण के बाद महाराजा विजयसिंह का राज्यारोहण, रामसिंह की सहायता के लिये जयाप्पा सिंधिया का मारवाड़ में आगमन, मेड़ता युद्ध, नागौर घेरा, जयप्पा की हत्या, तथा बाद में मराठों से सन्धि आदि का विवरण लिखा गया है। इसके बाद में फुटकर विवरण के रूप में महाराजा विजयसिंह द्वारा सं. 1813 वि. में वसूल की गई पेशकश आदि का उल्लेख पृ. 350 पर इस प्रकार किया है।

"बगसी रो काम सांवत राम करीयो, सुरतराम पेसकसी रा रुपिया 70,000 भरीया"

"पेंचोली लालजी कैद में था तिणा नु छोड़िया रुपिया 50,000 भरीया"

इसी तरह इसी विवरण है कि—"श्री वडा महाराज बख्तसिंघ जी रे ख्वास री बेटी मोती बाई गांव खेतासर रा भाटी भवानीसींघ फतेसीघोत नु परणाई पटो 10,000 रो इनायत कीयो" "समत 1813 रा वैशाख सुद 12 भंडारी दौलतराम रामसरण हुवो लारे सांणी सत किया"

यों यह विवरण फाल्गुन सुद 1, 1816 वि. के दिन साधु आत्माराम की मृत्यु और फिर देवीसिंह चांपावत आदि उपद्रवी सामन्तों की गिरफ्तारी तथा मारवाड़ में सामन्तों का उपद्रव और रामसिंह का जयपुर जाने तक का विवरण लिख गया है। ख्यात के दूसरे भाग में महाराजा विजयसिंह के शासन के "समत 1848 रै वरस री हकीकत" (पृ. 3) से विवरण लिखा गया है, जो महाराजा मानसिंह के समय में संमत 1873 वि. तक की घटनाओं का उल्लेख तक लिखा गया है।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में महाराजा विजयसिंह द्वारा पासवान को जालोर दिया जाना, राजकुमार शेरसिंह को युवराज पदवी, सामन्तों का नाराज होकर जाना व महाराजा द्वारा

उन्हें मनाने का प्रयास, राजकुमार भीवसिंह का विद्रोह, झंवर का युद्ध और महाराजा की मृत्यु आदि घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इस विवरण के साथ ही पृ. 15 पर "काम आया तिणां रे बेटां ने नांवे पटा कुचामण चंडावल वगेरा नु विना हुकम नावे पटा लिख दिया" फुटकर विवरण उस समय की राजकीय कर व्यवस्था पर प्रकाश डालता है।

महाराजा विजयसिंह के बाद महाराजा भींवसिंह का विवरण प्रारम्भ होता है। इसमें भीवसिंह का जोधपुर आगमन और राजगद्दी पर बैठना, प्रशासनिक व्यवस्था, तथा मारवाड़ के सामन्तों का नाराज होकर मराठा सरदार लखबा दादा को मारवाड़ पर चढ़ा लाना, महाराजा भीवसिंह का शादी के लिये पुष्कर जाना, राजकुमार मानसिह की लूटमार तथा जालोर पर घेरा आदि सभी घटनाओं का विस्तार से उल्लेख किया गया है। साथ ही भींवसिंह के राजलोक आदि का विवरण, उसकी न्यायप्रियता सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख (पृ. 41) भी किया गया है।

भीमसिंह के बाद महाराजा मानसिंह के शासन काल के प्रारम्भिक 13-14 वर्षों का विवरण ही इस ख्यात में उपलब्ध है। यों इस विवरण के प्रारम्भ में पृ. 42 "श्री मानसिंघजी जालोर सु पधार जोधपुर रो राज वरस 40 चालीस कीनो तिण में जो जो वाता किसा हुवा है तिण री विगत तो घणी है, पिण संसेप में खुलासो अठे लिखियो है" इस विवरण से ख्यात में लिखे गये विवरण का रूप स्पष्ट हो जाता है। इस विवरण में मानसिंह का राज्यारोहण, चांपावत सवाईसिंह का षड्यन्त्र, तथा विरोध, महाराजा मानसिंह द्वारा जालोर घेरे में उपस्थित स्वामीभक्त सेवकों व कर्मचारियों को पुरस्कृत करना, जोधपुर की प्रशासनिक व्यवस्थाव, राजलोक व कंवरों का विवरण आदि के बाद धोकलसिंह का उपद्रव, कृष्णाकुमारी की घटना व जयपुर से मनमुटाव, चांपावत सवाईसिंह के इशारे पर सवाई जगत्सिंह द्वारा जोधपुर पर आक्रमण आदि का विवरण विस्तारपूर्वक लिखा गया है। यों यह विवरण पृ. 275 पर "समत 1873 रा जेठ में इतरी खिजमतां हुई" शीर्षक के अन्तर्गत महाराजा मानसिंह द्वारा राजकीय अधिकारियों की नियुक्ति के उल्लेख के साथ ही समाप्त हो जाता है।

इस ख्यात में इस विवरण के साथ ही अनेक स्थलों पर उल्लेखित अंशों से तत्कालीन समाज, और राजकीय प्रशासन व कर व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। महाराजा भींवसिंह के विवरण के साथ पृ. 23 पर "लखवा दादा नु लाया फौज सांवठी साथै, मुलक में वेराबाब उगाई षट दरसण ब्राह्मण जोगी चारण वगैरे किणी नु छोड़ीया नहीं"

इसी तरह से पृ. 40 पर भीवसिंह के समय के प्रशासनिक अधिकारियों का विवरण और पृ. 41 पर महाराजा भीवसिंह के कठोर न्याय को उजागर करने वाली घटनाओं का उल्लेख है। इसी तरह से महाराजा मानसिंह के विवरण में पृ. 54 पर सवाईसिंह चांपावत को प्रधानगी तथा भंडारी गंगाराम को दीवान के पद पर नियुक्त करना और पृ. 275 पर महाराजा द्वारा विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति का विवरण उस समय के प्रशासन पर प्रकाश डालता है। नाथों के प्रति महाराजा का लगाव पृ. 79 पर लिखे गये विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि—

"निज मिंदर तो समत 1860 अठारै सो साठै में हीज त्यार हुय गयो सो सुरतनाथजी नु दीनों अर माहामंदर रो कमठो हुवौ सो मारे मारघणी ताकीद सुं हुवै"

इसी तरह से पृ. 202 पर "समत 1864 रा सावण में हलोतियो हुवो पछै व्रिखा री खंच रही पछै भादवा में म्हे चोखो हुवो जिण सु जमानो चोखो हुवो सो रुपीयो रो धान पाव मण वीकतो थो सो अधमण वीकण लागौ"

इस उल्लेख से उस समय की साधारण प्रजा की स्थिति का पता चलता है।

यह ख्यात जोधपुर राज्य की ख्यात के लिये पूरक का कार्य करती है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि जहां अनेक ख्यातों में असुविधाजनक तथ्यों को विलोपित कर दिया गया है वह इसमें नहीं है। इस ख्यात में प्राप्त विवरण फारसी आधार ग्रंथों से भी सत्यापित होता है। इस ख्यात से यह भी सिद्ध होता है कि मुस्लिम विवाह संबंध अकबर से भी पहिले प्रचलित थे।

यहां निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अधिकांश राजस्थानी ख्यातें उद्देश्यपूर्ण और बिना पक्षपात के पूर्ण विस्तृत विवरण के साथ लिखी गयी हैं जिसके आधार पर आने वाले इतिहासकारों की पीढ़ियां अपने स्वयं निर्णय ले सकती हैं।

उपनिदेशक,
श्री नटनागर शोध-संस्थान,
सीतामऊ (म.प्र.) 458990

सन्दर्भ संख्या—

1. राजस्थानी ऐतिहासिक ग्रंथों का विवरणात्मक सूची पत्र (कविराजा संग्रह भाग 1) प्रकाशक श्री नटनागर शोध-संस्थान, सीतामऊ 1991 ई.
2. वहीं, पृ. 39
3. जोधपुर हुकूमत री बही, पृ. 75, 77
4. पृ. 1; राठौड़ा री ख्यात (वणशूर महादान से प्राप्त) प. 7 क
5. "पघें चेनदान सं. 1919 में मर गयो जिण रो बेटो जादुदान पिण ठीक है गांव आजीवगा सोना री छड़ी वगेरे साबत है" पृ. 66
6. पृ. 211-227
7. पृ. 229-230

सोरों में उपलब्ध राजस्थानी ऐतिहासिक गद्य के दस्तावेज

डा.नरेशचन्द्र बंसल

उत्तर प्रदेश में एटा जनपद के नगर कासगंज से 12 किलोमीटर दक्षिण में सोरों (शूकर क्षेत्र) स्थित है। पुराणों, संहिताओं, शिलालेखों, अभिलेखों, पांडुलिपियों में इसे सूकरक्षेत्र[1], सौकर[2], सौकरव[3] कहा गया हैं और इसे भागीरथी गंगा के तटवर्ती बताया गया है। हम संलग्नकों में देखेंगे कि राजस्थानी गद्य के ऐतिहासिक दस्तावेजों में इसे सोरम[4], सोरू[5], सोरों[6] कहा गया है। महात्मा तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में इसे 'सूकरषेत'[7] (सूकरखेत) कहा गया है। अपने गुरु नृसिंह जी से यहीं अपनी बाल्यावस्था में बार-बार राम कथा सुनी थी।[8] राजस्थान की 'रामचरितमानस' की हस्तलिखित प्रतियों में 'सूकरषेत' अभिधान ही प्रयुक्त हुआ है।

मैं पुनि निज गुरु समन सुनी कथा सूकुरषेत।
समुझि नहीं तसि बालपन तब अति रहेउ अचेत॥[9]

बीकानेर नरेश महाराज कल्याणमल की सनद संवत् 1575,[10] उदयपुराधीश मेवाड़ाधिपति महाराणा प्रताप संवत् 1632 के परवाने[11], बीकानेर नरेश महाराज रायसिंह की सनद[12] संवत् 1635 आदि के देखने से परिज्ञात होता है कि सोरों को 'श्री सोरमघाट' कहा गया है। 'मुंहता नैणसी री ख्यात' में सोरम घाट आख्या मिलती है।[13] बीकानेर के तीर्थ यात्री की याददाश्त बही में लिखा है-

श्री गंगाजी सोरमघाट मेहमा अथक[14]

सीकर के शेखावत और अलवर के राजाओं की सनदों और बही लेखों में सोरों (सं. 1631) 'सोरूँ घाट', 'सोरौ (सं. 1781), सोरों जी (सं. 1868) तथा 'श्री गंगाजी' (सं. 1422 और 1426) अभिधान पाए जाते हैं। निष्कर्षत: सोरों (सूकरक्षेत्र) के अनेक अभिधान राजस्थान के जनमानस में व्याप्त थे और आज भी विद्यमान हैं। मुख्यत: सोरम, सोरूँ नाम मुगलकाल से मिल जाते हैं।

आइने अकबरी[15], महाराज सामंतसिंह उपनाम नागरीदास प्रणीत 'तीर्थानंद[16] (र.का.1810) में 'सोरूँ' अभिधान प्रयुक्त हुआ है और 'चैतन्य चरितामृत' (वि.सं. 1672) नामक बंगला ग्रन्थ में 'सोरों क्षेत्र'[17] आख्या प्रयुक्त हुई है। पृथ्वीराज रासो के कनवज

खंड[18] की पांडुलिपि (सं. 1819) में पुर (सौरों छं. सं. 2759, 2785, 2798) पुर सौरुँ (छं. सं. 2794), सोरौं (छं.सं. 2912) सौरों (छं.सं. 2748) अभिधान अंकित है। बोली भेद-उच्चारण भेद से ऐसा हुआ है। इसके भाषा वैज्ञानिक कारणों की चर्चा कभी आगे देखेंगे।[19] सोरों में मौर्य, शुंग काल की ईंटें, कुषाणकाल की मृण्मूर्तियां तथा मृद्भाण्ड, गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर काल की अनेक पुरातात्विक महत्व की कलावस्तुएं मिल जाती हैं। राजा सोमदत्त का दुर्ग अभी ध्वस्त ठेर के रूप में विद्यमान है जिसमें सोरों की पुरासम्पदा भरी पड़ी है। अनेक सुन्दर मूर्तियाँ वहाँ से मिली हैं। वि.सं. 1713 में बीकानेर के उल्लिखित तीर्थयात्री ने 1.चक्रघाट 2. सूरजघाट, 3.ऋणमोचन, 4. रूपघट, 5. ब्रह्म घाट, 6. भैरव घाट, 7. गऊ घाट, 8. कुंडल घाट का उल्लेख किया है।[20] सोरों तीर्थ के सांस्कृतिक इतिहास के लिए बीकानेर यात्री की याददाश्त बहुत महत्व की है। इनमें से वराहपुराण में उल्लिखित वैवस्वत तीर्थ, पापमोचन तीर्थ, रूपीतीर्थ की 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमानता सूचित की है। चक्रतीर्थ, रूपतीर्थ, वराहतीर्थ, योग तीर्थ, शाकोट तीर्थ, गृद्धवट तीर्थों की पांडुलिपियों और वही लेखों से पुष्टि होती है।[21]

पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान् वराह के पृथ्वी उद्धार हेतु अवतार का यह आदि क्षेत्र है। इसीलिए इसे '**आदि वराह क्षेत्र अथवा सूकर/शूकर क्षेत्र या शूकराख्य महाक्षेत्र भी कहा** गया है। मार्गशीर्ष एकादशी और द्वादशी भगवान् वराह के क्रमशः आविर्भूत और तिरोभूत (देह विसर्जन) होने के महान् पुण्यप्रद दिवस हैं। युग-युगों से यहाँ पूरे देश से नरनारी स्नान, जपतप, दान-पुण्य हेतु पधारते हैं। यों राजस्थानी गद्य के दस्तावेजों से अवगत होता है कि जागीरदार, ठिकानेदार, पासवान, खवास, वडारिनें, नौकर-चाकर, रैय्यत विगत अनेक शताब्दियों से पधारते हैं। दस्तावेजों से अवगत होता है कि यहाँ पधारकर अपने-अपने राज्यों से यहाँ के अपने-अपने तीर्थगुरुओं को खास मोहर सही निशान आदि युक्त सनदें प्रदान करते थे, बहुमूल्य आभूषण देते थे और स्वर्ग तुलादान भी करते ते। षोडश महादान का भी एक उल्लेख मिला है।

राजस्थान के बाहरी तथा आन्तरिक युद्धों में प्रायः रत रहने के कारण यहाँ के दस्तावेजों का गारत हो जाना स्वाभाविक है। इससे सोरों के राजस्थानी गद्य के दस्तावेजों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। यद्यपि सोरों के तीर्थ पुरोहितों को भी दुर्दान्त मुस्लिम धर्मान्धों के दुर्धर्ष आक्रमण झेलने पड़े हैं किन्तु आज भी उनके यहाँ काफी बही लेख तथा ताम्रपत्र, अभिलेख आदि सुरक्षित है। बहियों की संख्या लगभग 30,000 होगी।

विगत 700-800 वर्षों से संचित अनेक राजस्थानी बहियों, दस्तावेजों, सनदों, वंशावली,

चिट्ठियों को किसी अन्य सोरों वासी गंगागुरु के हाथ पड़ने और आर्थिक हानि के अंदेशे से उन्हें गंगाजी में चढ़ा दिया जाता रहा है किन्तु बही लेख सर्वाधिक सुरक्षित रहे हैं। अत: शोधार्थी को सभी प्रकार के अभिलेखों को अपने अध्ययन क्षेत्र में लाना आवश्यक है। कभी-कभी कोई अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण छोटा कागज भी नवीन रहस्य उद्‌घाटित कर देता है।

मेवाड़ के ठिकानों में सादड़ी, गोगूंदा, देलवाड़ा (झाला); कोठारिया, बेदला, पारसोली (चौहान); सलूंबर, देवगढ़, आमेट, (चूंड़ावत); भीडर, बासनी (शक्तावत); घाणेराव, बदनोर (राठोड़); कानोड़ (सारंगदेवोत); बीजोलिया (पंवार) आदि उमरावों के ठिकानों से राजा-रैय्यत सब पधारते थे।

जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, रूपनगढ़ आदि के राठौर राजा महाराजा और उनके अधीन राज्यों; जैसलमेर, आमेर सीकर, जयपुर, अलवर, कामा, कोटा-बूँदी, करौली, भरतपुर आदि के शहर और ग्रामों से पधारने वालों की धर्मभावना की मीमांसा करने हेतु सोरों रिकर्ड आकर सामग्री सावित होगी और न जाने कितनी बातों की मीमांसा के लिए अपरिमित बीज संदर्भ मिल जाएँगे।

राजस्थानी अथवा देश-विदेश के इतिहासकारों ने सोरों-सामग्री का उपयोग नहीं किया है। वस्तुत: ये अभिलेख अध्ययन हेतु प्राप्त करना एक अति कष्ट-साध्य, असीमित धैर्य और लगन का विषय है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वैज्ञानिक और तथ्यपरक अन्वेषण के लिए ये दस्तावेज प्रामाणिक स्रोत-सामग्री हैं। यह कार्य एक व्यक्ति का नहीं, पूरी संस्था का है। हमारे देखने में आया है कि अधिकांश दस्तावेज नष्टप्राय, नष्टोन्मुख और काल-कवलित हो गए हैं। राजा-महाराजाओं के साथ जो पठान, मुसलमान जाति के अनुगत नौकर चाकर आते थे वे भी गंगास्नान का पुण्य लाभ लेते थे। यह परम्परा अक्षुण्ण है। प्राय: धर्म परिवर्तित मुसलमानों (पठानों) में पीढ़ियाँ बदल जाने पर भी गंगा-भक्ति बरकरार रही। इससे ज्ञात होता है धर्म की जड़ें जातीय जीवन में गहरी जमती हैं। राजस्थानी इतिहास-पुरुषों के नाम, गोत्र, जाति, वंशज, ग्राम (रहवासी-सुखवासी के साथ खवासों, बड़ारिनों, पासवानों तक की वंशगाथा के लिए यह स्रोत-सामग्री मानी जानी चाहिए। अमरीका में वंशागाथा के लिए संस्थान स्थापित हुए हैं। सोरों जैसे तीर्थों के पुरोहितों के पास इतनी प्रचुर अभिलेखीय महत्वपूर्ण सामग्री पूर्वजों से पारम्परिक रूप से संचित है कि उसका माइक्रोफिल्म विधि से राजस्थान की प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जैसी महान् संस्था द्वारा पहल कर संरक्षण कर लेना चाहिए। आपको जानकर दु:खद आश्चर्य होगा कि राजस्थान ने अपने सोरों/सोरमघाट/सौरुँ को विगत

50 वर्षों से भुलाना शुरु कर दिया है। इससे राजस्थानी संस्कृति और भाषा का जो सहज संगम होता था- विस्तार होता था, वह अब नष्ट होने को है। इससे इस आदि वराह क्षेत्र/सूकर क्षेत्र की श्री निष्प्रभ होती जाती है। सोरों के मंदिर, घाट, पौरणिक तीर्थस्थल जैसे राजस्थान की गौरवगाथा कहते-कहते थक चुके हैं। अत: गंगागुरुओं के सामने संचित अभिलेख अर्थ शून्य हो रहे हैं।

हमारे द्वारा खोजे गए दस्तावेजों में सीसोदियावंश के खीमावत सूरजमलोत और मेवाड़ के महाराणाओं में महाराणा प्रताप, महाराणा अमरसिंह, महाराज कुंवर कर्णसिंह, महाराणा जगतसिंह(प्र.), महाराणा राजसिंह, महाराणा जयसिंह, महाराणा अमरसिंह (द्वि.), महाराणा अरिसिंह(द्वि.), महाराणा भीमसिंह, महाराणा शम्भूसिंह, महाराणा सज्जनसिंह, महाराणा फतेहसिंह और महाराणा भूपालसिंह तक की सनदें राजस्थानी गद्य में महत्व रखती हैं। यों, राजस्थान के सभी बड़े राजपूत राज्यों में अभिलेख सुसम्पादित कर प्रकाशित कराने के प्रयत्न में हैं।

महाराणा जवानसिंह के आदेश से प्रदत्त परवाने (सं. 1888) में विगत अनेक परवानों का उल्लेख हुआ है। प्रथम महाराणा प्रतापसिंह ने संवत् 1632 में सोरमघाट के गंगागुरु से गंगाजल मँगवाया था। राणा-रासो (पद 455-458) से ज्ञात होता है कि अपने पुत्र अमरसिंह और प्रपौत्र कर्णसिंह को बलवान् समझकर महाराणा प्रताप ने निश्चय किया कि अब उन्हें बैकुंठवास करना चाहिए। पश्चात् पवित्र गंगाजल से स्नान किया और पद्मासन लगाकर श्यामसुंदर भगवान् का ध्यान किया और प्राणवायु खींचकर देह त्याग किया। अनुश्रुति है कि गंगाजल से ही महाराजा मिर्जा मानसिंह के भोजन थाली स्थल को धोकर पवित्र किया गया था। असल में गंगोदक राज्याभिषेक तथा अन्य अनुष्ठानों में भी काम आता था। गंगाजली उठाकर प्रतिज्ञा का चलन भी पाया जाता था।

कुँवर कर्णसिंह ने वि.सं. 1675 में सोरम घाट की तीर्थयात्रा की थी और वहाँ तुला (स्वर्णतुला) की थी। बीकानेर के महाराजा राव कल्याणमल सं. 1595 में सोरमघाट के गंगागुरु को परवाना प्रदान करते हैं। वि.सं. 1635 में महाराजा राव राइसिंह सोरमघाट गंगास्नान करने पधारते हैं और सनद जारी करते हैं। तीर्थगुरु के बही लेख से अवगत होता है कि जैसलमेर के महाराजा जोधा जी वि.सं. 1522 में सोरों गंगाजी का स्नान करने पधारे थे। ज्यों-ज्यों खोज करते हैं राजस्थान के राजपूत सभी वंशों की अभिलेखीय सामग्री मिलती जाती है। अकबर-काल में पधारे कुछ राजाओं की एक संक्षिप्त सूची संलग्न कर रहे हैं। इससे अकबर की हिन्दुओं के प्रति नीति का भी ज्ञान होता है।

विस्तारभय से यहाँ उनकी चर्चा में संकोच करते हैं किन्तु परिशिष्ट में संलग्न सूची से एक सहज झाँकी तो ली ही जा सकती है। धर्मान्ध औरंगजेब के शासनकाल और उसके बाद भी यहाँ राजा-रानी और रैय्यत धर्मानुष्ठान हेतु निरन्तर आती रही। इन दस्तावेजों के ठोस प्रमाण से हमारी यह धारणा बनती है कि आदि वराह क्षेत्र सोरमजी और भागीरथी सुरसरि गंगोदक के प्रति सम्पूर्ण राजस्थान की अपरिचित प्रगाढ़ निष्ठा पूर्वजों से विरासत में मिली थी। सूकर क्षेत्र में प्राण विसर्जन, गंगाजी में अस्थि विसर्जन, गंगोदक पान, गंगास्नान, तप, जप करने से व्यक्तिगत जीवन का ही नहीं सामूहिक जीवन का भी परम कल्याण होता है। पौराणिक मान्यता से समग्र राजस्थान को आप्यायित कर दिया था। गंगा मात्र नदी नहीं, भारतीय-संस्कृति की प्राणधारा है। यह भागीरथी है और है हरिपदी। यह अधम/पातक उद्धारिणी, स्वास्थ्यप्रदा तथा मोक्षदा है। ब्रह्मद्रव विष्णुचरणोदक जन-कल्याणकारी है। गंगा-यमुना के पवित्र तट और तटस्थ आश्रमों/कुटियों/कुंजो-निकुंजों में ऋषि/मुनि/संत/महात्मा/मनीषियों ने ज्ञान और विद्याओं को जनकल्याण हेतु लिपिबद्ध भी किया है। इनके ही तटों पर महान् पुर/नगर/ग्राम बसे हैं जिनसे संस्कृति और सभ्यता का प्रसार हुआ है।

अब तक प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों में मंडकिला ताल(कोटा) शिलालेख का यह उल्लेख कि नंदन नामक महानुभाव ने अनेक मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा महामंदिर में कराने के बाद वि.सं. 1043 में भागीरथी के तट स्थित सूकरक्षेत्र में मुक्तिलाभ की उत्कंठा से देह विसर्जित किया था। सोरों अभिलेखों से अवगत होता है कि वि.सं. 1305 में एक मातृभक्त अपनी माता के फूल लेकर कुल देवी अजराय माता का उपासक गंगाजी श्राद्ध करने हेतु उज्जैन(उज्जयिनी) के पास से अश्व पर चढ़कर सोरमजी पधारता है और गंगागुरु को दक्षिणा 100) अर्पित करता है।

राजपूत राजाओं में धार्मिक-निष्ठा का तो परिज्ञान होता ही है, उनकी इस धर्म-क्षेत्रगत सार्वजनिक गतिविधियों और विशिष्ट रुचियों से, मुगल सम्राटों से उनके पारस्परिक संबंधों को समझने में मदद भी मिलती है।

मुगल सम्राट् अकबर सोरूँ जी से प्राय: चार दशकों से भी अधिक समय तक नियमित गंगाजल मँगा कर अपने उपयोग में लाता रहा। आगरा तथा फतेहपुर सीकरी में वह जब तक रहा, वहीं से विश्वासपात्र पठानों द्वारा सीलबंद विशाल कलशों में गंगाजल भेजा जाता था। अकबर गंगाजल को **'आबे हयात'** कहता था। इतिहासविद् विन्सेंट स्मिथ की धारणा है कि अकबर के मन को पढ़ना असंभव था। उसकी भावात्मक क्रियाओं की प्रेरक उसकी आन्तरिक सुचिन्तित नीति (बुद्धि व्यापार) मुख्य प्रेरक थी।[23]

क्या ऐसा अनुमान करना असंगत होगा कि अकबर सोरों से गंगाजल मंगाकर राजपूत धर्मनिष्ठ रणवाँकुरों और अन्तःपुरस्थ परिणीत राजपूत कन्याओं तथा हिन्दू प्रजा की धार्मिक सहानुभूति बटोर रहा था। उसकी गंगाजल-भक्ति मात्र स्वास्थ्य कारणों से अंगीकृत नहीं थी। इसके सुविचारित निगूढ़ कारण थे।

सोरों तीर्थगुरु के बही लेख (नामावली) से महाराणा जवानसिंह द्वारा उल्लिखित महाराजकुमार कर्णसिंह के वि.सं. 1675 में पधारने से संबंधित कुछ बातें और खुलकर सामने आती हैं। यथा-इनके साथ भाई सूरजमल, भाई सुजानसिंह, लाड़खान, कामदार पंचोली केसोदास गोरावत, 25 सवार (अश्वारोही), 2 हाथी और 100 मनुष्य साथ आए थे।[24] कर्णसिंह का राज्याभिषेक वि.सं. 1676 है। सं. 1671 में कुंवर कर्णसिंह पर बादशाह जहाँगीर और नूरजहाँ बेगम की काफी मेहरबानियाँ हुई थीं। 5 करोड़, 30 लाख, 6 हजार 832 दाम की जागीर प्रदान की गई थी।[25] महाराणा अमरसिंह और बादशाह जहाँगीर में वि.सं. 1672 (5 फरवरी 1615ई.) को संधि होने से मेवाड़ और मुगल सत्ता के पहली बार संबंध हुए थे। यह मेवाड़ के समस्त सरदारों के मशविरे से सम्पन्न हुई संधि थी। फिर भी महाराणा अमरसिंह के उदास रहने से सारा राजकाज एक प्रकार से कुं. कर्णसिंह के द्वारा होता था। राज्याभिषेक से ठीक 1 वर्ष पूर्व सोरमघाट की यह यात्रा राजनीतिक बदलाव पर भी प्रकाश डालती है। कुं. कर्णसिंह ने सं. 1605 की माह सुद 2 गुरुवार को पवित्र गंगा स्नान और श्री गंगाजी की आज्ञा (अन्तःप्रेरणा) से तुलादान (स्वर्ण) किया था। बड़ी रूपाहेली मेवाड़ के ठाकुर चतुरसिंह वर्मा ने आज से 74 वर्ष पूर्व लिखा है कि एक गंगागुरु (सोरमघाट) के प्रामाणिक दानपत्र से ऐसा विदित होता है कि ठाकुर माधोमनदास जी संवत् 1633 में राजगद्दी पर विजयपुर में विराजे। ठाकुर मुकुन्ददास के पुत्र अपने कई पुत्रों सहित महाराणा के भंवर (पौत्र) जगत्सिंह जी के साथ जहाँगीर की सेवा में जाते हुए संवत् 1675 माघ कृष्णा 11 को सोरों गंगास्नान करके आगरा गए थे और 1 माह वहाँ ठहरने के बाद ही वे पीछे आए।

बाईजीराज (राजामाता) जामोतीबाई जी ने वि.सं. 1709 में सोरमघाट की यात्रा की थी और उनके साथ कुं. राजसिंह (प्रायः11 वर्ष की उम्र में) ने स्वर्णतुलादान किया था।[26]

सं. 1678 में राजामाता जाम्बूवती (महेचा राठौड़ जसवंत सिंह जी की बेटी से जगत्सिंह सं. 1684 में पैदा हुए थे) ने द्वारकानाथपुरी में स्वर्णतुला की थी। कविराजा श्यामलदास ने लिखा है कि उदयपुर आने पर महाराणा जगत्सिंह ने राजमाता को मय कुं. राजसिंह के साथ सोरमघाट रवाना किया। वहाँ दोनों ने स्वर्ण की तुला की और

इसके सिवाय और भी लाखों रुपए का धन वहाँ खैरात किया। यह स्वर्णतुला वि.सं. 1705 वैशाख शुक्लपक्ष पूर्णमासी को की गई थी। इसकी पुष्टि उदयपुरस्थ जगदीश मंदिर (जगन्नाथराय) के शिलालेख से भी होती है।[27]

तीर्थयात्रा में बादशाही मुल्क रास्ते में पड़ते थे। इससे कहीं-कहीं बेजा रोक-टोक के सबब मुसलमानों से छोटे-छोटे बखेड़े भी हुए। बादशाह के कान बढ़ा-चढ़ाकर भरे गए। कुं. राजसिंह के बाल मन पर मुसलमानों के विरुद्ध संस्कार पड़ गया। उसकी सोरों और गंगाजल में निष्ठा और बढ़ी तथा अपने राज्यकाल में बादशाह औरंगजेब से काफी घृणा बढ़ी।

सम्भवत: बाईजीराज जाम्बोवती ने सोरमजी की 2 बार यात्री की थी-एक 1705 संवत् में और दूसरी वि.सं. 1709 में।

वि.सं. 1707 में सूरजमलोत (देवलिया प्रतापगढ़) रावत हरीसिंह की माता चौहानी ने 1 तालाब, 1 बावड़ी, 22 गाँव धर्मादा ताम्रपत्र कर दिए और सतेश्वरी तथा श्रीनाथजी के मंदिरों का निर्माण कराने के बाद उन्होंने सोरमघाट की यात्रा की थी और वहां षोडश महादान भी किया था- हाथी 1, घोड़ा 1, गोदान 5, रथदान, स्वर्णतुलादान आदि समस्त विधि-विधान से किया।[28] गंगागुरु और गुरुआनी को रावत हरीसिंह ने सिरोपाव दिए तथा आभूषण पहिनाए, धरती दी। हमारे संग्रह में सोरमघाट से प्राप्त किए महाराणा राजसिंह की सही के 3 परवाने मौजूद हैं जो क्रमश: सं. 1716, सं. 1718 और 1724 के हैं। एक में उदयपुर से गंगाजल मँगाने हेतु क्रमश: पाणेरी पीताम्बर गागाजी को भेजते है, दूसरे में पाणेरी महीदास को और तीसरे में अपने सोरमघाट के गंगागुरुओं को 80 रुपए का वर्षासन सं. 1724 (भादों सुदी 15) को प्रदान करते हैं । इसी प्रकार वि. सं. 1767 में उदयपुर से श्री गंगाजी का स्नान करने बाईजीराज श्रीदेवकुमरजी चौहान (सबलसिंह जी की बेटी महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंह जी की माता) महाराणा अमरसिंह (द्वि.) के राजलोक के बाद पधारीं। इन्होंने स्वर्णतुला की 2 हाथी (गजदान) और 5 घोड़े (अश्वदान) भी किया।

सोरों से एक ऐसी वंशावली महाराणा खीमावत सूरजमलोत (बड़ी सादड़ी) जिसमें सं. 1902 के बाद की विगत नहीं है किन्तु देवलिया प्रतापगढ़ वाले राजवंश (सीसोदिया) की खासखास विगतों का विवरण अत्यधिक ऐतिहासिक महत्व का है। यह 561 पंक्तियों की वंशावली है।[29] इस वंश के राजाओं की सनदें उनके गंगास्नान या फूलविसर्जन हेतु सोरों पधारने का उल्लेख करने वाली नामावली बहियाँ इसके क्षेत्रीय इतिहास की

संरचना में बड़े पूरक हो सकते हैं। इस वंश में अनेक शौर्य सम्पन्न रणबाँकुरे योद्धा और राजनीति चतुर राजा भी हुए है। संवत् 1526 में रावत सूरजमल चित्रकोट से गंगा स्नान करने सोरों पधारे थे। यह राणा मोकल के नाती थे। सोरों रिकर्ड से अवगत होता है कि उन्हें रावत पदवी मांडोगढ़ के गोरिल पातिशाह महाराजाधिराज 'ईषत शाह' ने प्रदान की थी। नामावली बही में इनके आठ पुत्रों के नामों का उल्लेख है किन्तु राजस्थानी इतिहास ग्रन्थों में संभवत: 5/6 पुत्रों के नाम ही मिलते हैं। इनके नाम हैं - 1. कुं रणधीर, 2. वाघजी, 3. रणमल जी, 4. जगोजी, 5. सेहेसोजी, 6. कलोजी 7 .राजधरजी 8. बनवीरजी। पहले 6 मावली ग्राम के झगड़े में काम आए।[30]

महाराजा रावत सूरजमल के वंश में श्रीरावत वाघजी की स्त्री सोनिगरी ईसरदे जी माघ सुदि संवत् 1621 में मेवाड़ के सादड़ी ग्राम से गंगा स्नान करने पधारीं थीं। इसी प्रकार की एक और वंशावली से परिज्ञात होता है कि सीसोदिया सूरजलोत विजयपान गोत्र ग्राम बम्होरी परगना ग्यासपुर से संवत् 1633 मिती पूस सुदी में महाराजा वीकाजी गंगास्नान करने सोरों आए थे। इसमें लिखा है कि रावत वाघजी चित्तौड़गढ़ में काम आए। बादशाह (अकबर) से लड़ाई हुई और उनकी छतरी आज तक दरवाजे पर है। पहली वंशावली में लिखा है कि मेवाड़ छोड़कर मांडौगढ़ के पातशाह के यहाँ इन्होंने चाकरी की थी। मांडो से नीवाड़देश में अमल किया और गाँव वाडवाड बसाया। वागेश्वरी (सरस्वती) माता की प्रतिष्ठा की। अकबर मेवाड़ में फौज लेकर चित्तौड़गढ़ पर चढ़ आया। राणा उदयसिंह जी से लड़ने को चित्तौड़ घेरा, तब रावत श्री वाघजी मांडू के पातशाह से सीख माँगकर अपनी जमीयत(सेना) लेकर चित्तौड़गढ़ आए। राणा उदयसिंह से मिल गए। अकबर का घेरा 12 वर्ष रहा, तब ये राणाजी के विश्वासपात्र सैनिक होकर युद्धरत रहे। जब राणाजी ने उमरावों से कहा- 'किले को तुम जावीता(सुरक्षित) रखो और हमको किले से उतारो।' इस हेतु दरीखाना में बीड़ा फेरा। किसी भी उमराव ने नहीं झेला, तब रावत वाघजी ने बीड़ा उठाया और राणा उदयसिंह से कहा- 'दुर्ग से आप प्रसन्नतापूर्वक उतरें, किले का बंदोबस्त मैं रखूँगा।' तिस पर राणा उदयसिंह जी ने प्रसन्न होकर उनके तिलक अपने हाथ से किया। सिंहासन पर बैठाया और अपनी दीवान पदवी तथा छत्र दिए। चँवर, ज़ागीर, मोरछल, तख्त की असवारी, हाथ का निसान, हाथ की नौबत, सज्जित चोगा तथा हाथी की चौगान की लड़ाई, सर्वत्र मर्याद बख्शी लाखोट्यावारी। उदयसिंह कुंभलमेर दुर्ग पधारे। पश्चात् कितने ही दिनों तक रावत वाघसिंह ने चित्तौड़ पर राज्य किया। मेवाड़ देश के 360 ग्राम ब्राह्मण, चारण-भाट तथा अतीतों को ताम्रपत्र करके भेंट किये। पश्चात् इन्होंने अकबर से चित्तौड़ दुर्ग का दरवाजा खोलकर पाढ़िल पौरि (पाडन पोल) के दरवाजे के आगे भीषण युद्ध किया। हजार-पाँच सौ आदमी वीरगति को प्राप्त हुए। स्वयं वाघजी चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा में शहीद हुए।

क्षेत्रीय इतिहास के बहु आयमी स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए राजस्थानी गद्य के सोरों स्थित दस्तावेजों के साथ अन्य सहकारी सोरों रिकर्ड देखने अपरिहार्य रूप से आवश्यक हैं। हमारे परिनिरीक्षण में आया है कि अनेक कारणों से जैसे स्थानाभाव, झंझट, नाट होने पर, कीट भक्षित अथवा अनुपयोगी समझकर अभिलेखों को कूटकर ढलियाँ बना ली जाती रही हैं।

मेवाड़ाधिपति महाराणा राजसिंह के परमप्रतापी बड़े राजकुमार राणा भीमसिंह ने बनेड़ा राज्य की नींव रखी। मेवाड़ के मन्दिरों को नष्ट करने की प्रतिक्रिया में उस बहादुर ने 460 मस्जिदें गुजरात में उखाड़ फिंकवाईं। गो, ब्राह्मण, दीन-दुःखी और हिन्दूधर्म का यह महान् रक्षक था। सं. 1730 में मरुधराधीश महाराज अजीतसिंह की सहायता हेतु रणांगण में जाकर दिल्लीपति औरंगजेब की सेना को इन्होंने परास्त किया था। इन्होंने ही मेवाड़ाधिपति अपने पिता के निर्देश पर मेवाड़ की सीमा में जगह-जगह अपने स्थानों में बादशाही फौज को बुरी तरह परास्त किया था। महाराणा राजसिंह के देवलोक होने पर राणा भीमसिंह ने ही पारलौकिक क्रिया सम्पन्न की थी। सं. 1738 आषाढ़ शुक्ल 5 महाराणा राजसिंह और औरंगजेब में संधि हुई। इसी वर्ष ये बादशाह औरंगजेब के पास पहुँचे जहाँ औरंगजेब ने इन्हें अलग-अलग मंडलों से युक्त अत्यन्त विस्तृत वनखंडी बनेड़ा का राज्य देकर राजचिह्नों से समलंकृत किया और इन्हें 4 हजारी का मनसब प्रदान किया।

सोरों रिकार्ड से परिज्ञात होता है कि राणावत राणा भीमसिंह सोरम तीर्थ यात्रा हेतु वि.सं. 1733 में दल-बल के साथ पधारे[31]। इनके साथ 1000 आदमी मुकरा, 200 घोड़े, 2 हाथी और 20 ऊँट आए थे।

[illegible] राजत भीमसीघ तात [illegible]
[illegible]
[illegible] राज माहाराज श्री राजा जी श्री भीमसीघजी माहारा
ना श्री राजसीघजी के बेटा माहाराना श्री जगतसीघजी
के पोता माहाराज श्री राना राजसीघजी के बेटा माहाराज
[illegible] माहाराज श्री भीमसीघजी के बेटा बडे माहाराज कु
[illegible] सुरजमलजी कुंवार प्रथीसीघजी कुंवार [illegible]
सीघजी जोरावरसीघजी कुंवार बडे बीजेसीघजी कु
[illegible] बडे सुमानसीघजी साथे पंचोली गंगाराम [illegible]
के बेरा मुकरा [illegible] घोडा [illegible] हाथी [illegible]

नामावली बही संवत् १७३३

नामावली बही संवत् 1733

इतनी फौज और लवाजमा के साथ राणा भीमसिंह जैसे औरंगजेब के प्रबल शत्रु महाराणा राजसिंह के सुपुत्र का सोरों तीर्थ यात्रा पर पधारना एक असाधारण ऐतिहासिक घटना है। कारण, यह औरंगजेब से हुई संधि से 5 वर्ष पूर्व का समय है। औरंगजेव हिन्दू धर्म-विरोधी भीषण रुख अख्त्यार किए हुए था। वि.सं. 1723 में शिवाजी महाराज के आगरा से उसके चंगुल से निकल जाने के बाद औरंगजेब ने मथुरा-वृन्दावन के अनेक महान् मंदिरों को ध्वस्त किया था। सोरों का सीताराम मंदिर वह पहले ही जमीन से नष्ट कर चुका था। राजस्थान के कितने ही कला के उत्तम उदाहरण स्वरूप मंदिरों को उसने भ्रष्ट और नष्ट कर दिया था[32]।

जहाँगीरकाल में ओरछा नरेश बुंदेला राणा वीरसिंह देव द्वारा 33 लाख रुपए से पुनः निर्मित कराए गए गगनोन्नत केशवदेव मंदिर को सं. 1728 में जमींदोज़ करवा दिया गया और उसकी जगह एक बड़ी मस्जिद बहुत सारा धन लगाकर बनवा दी गई। औरंगजेबनामा (1909 ई.) में उल्लेख है-

'खुदा का शुक्र है उस बगावत के बढ़ाने वाले जमाने में यह नहीं होने वाला अजब काम हुआ। जिससे दीन की कुव्वत बढ़कर बड़े-बड़े घमंडी राजाओं का दम खुश्क हो गया। छोटी-बड़ी जड़ाऊ मूर्त्तियाँ अकबराबाद (आगरा) में लाकर नव्वाब कुदसिया बेगम की सीढ़ियों के नीचे गाड़ दी गयीं। मथुरा का नाम इस्लामाबाद दफ्तरों में लिखने और लोगों के कहलाने के लिए रखा गया[33]।'

हिन्दुओं के श्रद्धाकेन्द्र और महान् मंदिरों का विध्वंस और जजिया कर का कठोर अनुपालन कराना ही धर्मान्ध औरंगजेब की एक मात्र नीति थी। वह पूरे देश का इस्लामीकरण कर देने का उत्कट अभिलाषी था। उसकी आज्ञा के बिना कोई भी हिन्दू न तो डोली में बैठ कर निकल पाता था और न कोई अरबी घोड़े पर सवार हो सकता था। वि.सं. 1733 में ही सतनामी सम्प्रदाय ने विरोध का झण्डा खड़ा किया। मिर्जाराजा जयसिंह और जोधपुर नरेश महाराजा जसवंतसिंह स्वर्ग सिधार चुके थे। औरंगजेब निरंकुश अत्याचार कर रहा था।

अतः हमारे विचार से बनेड़ा नरेश राणा भीमसिंह की इस सोरमयात्रा का कोई निगूढ़ उद्देश्य रहा होगा। इस समय बादशाह आलमगीर औरंगजेब हसन अब्दाल लाहौर में उलझा था[34]। राणा भीमसिंह ने अपनी यह आपदग्रस्त और कष्टप्रद यात्रा, आदितीर्थ सोरों और गंगाभक्ति के मिस हिन्दू समाज और राजपूत राजाओं को प्रेरणा देने तथा

अपना वर्चस्व कायम करने के लिए की थी। अधिक संभव है राणा भीमसिंह और महाराणा राजसिंह के शौर्य के भय से औरंगजेब के सबल अधिकारियों ने कोई बखेड़ा नहीं खड़ा किया। संभव है औरंगजेब इनसे तथा उदयपुर राज्य से किसी बड़ी संधि की योजना बना रहा था। जो हो, सोरों अभिलेख राजस्थान और देश के इतिहास के लिए एक नया आयाम प्रस्तुत करता है। धर्म के साथ की गई छेड़छाड़ कारगर साबित नहीं होती। हम सोरों की नामावली बहियों से ऐसे अनेक उदाहरण पाते हैं कि गंगास्नान का क्रम औरंगजेब के समय में भी टूटा नहीं।

ऐसा परिलक्षित होता है कि हिन्दू राजा-महाराजाओं के मुसलमान बादशाहों से अच्छे संबंध हो जाते थे तो वे अवसर पाकर सुदूर सोरों तीर्थ की यात्रा पर अवश्य पधारते थे। साथ ही अपनी राजमाताओं, बहुओं, राजकुमारियों, पासवानों, खवासों, बड़ारिनों और उनकी स्त्री-चाकरों और अपने हुजूरी, नौकर-चाकरों को सोरों गंगास्नान तथा धर्मानुष्ठान करने पठाना निरापद समझते थे। सीताराम मंदिर के स्तंभ शिलालेखों में राजस्थान के तीर्थ-यात्रियों के प्रमाण हैं जिससे अभिज्ञात होता है कि लोदी वंश के शासन काल में तीर्थयात्रा कम हो गयी थी। यों, सोरों शौर्य सामंतों, शक्तिपुंजों, सुंदर धर्मशील रानियों और राजस्थानी रैय्यत के निरन्तर आगमन से एक धर्मनगर बन गया था जिसकी पावन रज में सिद्ध महात्मा, जपी, तपी, साधु संन्यासी, कला-साधक, साहित्य-सर्जक, सतत आध्यात्मिक ऊर्जा पाते थे। सामान्यतः भारत का ऐसा कोई भू-भाग नहीं, जहाँ से तीर्थ यात्री यहाँ न पधारे हों। काश्मीर, मुलतान, सिंध, नैपाल, पंजाब, सौराष्ट्र, कच्छ-भुज, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा, अवध, अयोध्या, पुष्कर, औंकारेश्वर, मध्यप्रदेश, मुंबई आदि स्थानों से पधारने वाले तीर्थ-यात्रियों की नामावलियाँ प्राचीन समय से चली आ रही हैं। कागज की क्षरणशीलता के कारण यहाँ के तीर्थ पुरोहित उनका उपयोग समझकर ही व्यापक स्तर पर उतार करते रहे हैं और आज भी यह लेखन-परम्परा अक्षुण्ण है। कागजों के जीर्ण होने पर उन्हें 'खात' में डाल देते हैं और स्थानाभाव में अपनी प्राणदा श्री गंगाजी को समर्पित करते रहते हैं।

बनेड़ा राज्य की सनदों से कुछ उल्लेख्य बातें इंगित करना रुचिकर होगा-

1. सम्वत् 1852 वैशाष वदी बुध महाराजा हमीरसिंह जमुनाजी और गंगाजी (मथुरा-सोरों) स्नान करने आए, साथ में थीं रानी जोधपुरी जी किशनगढ़ वाली महाराजा बहादुरसिंह की बेटी महाराज सावंतसिंह की पोती, महाराज हंम्मीरसिंह की बेटी फते कुंवर।

2. संवत् 1706 मिती आसाढ़ राजपुर से महाराज संग्रामसिंह के आदेश से परगना (प्राय: 86 गाँव) से 100 रुपये वर्षासन किन्तु, 'सरदार गावर्‌या राणा से माफ' था।

3. राजा गोविंदसिह की सनद से परिलक्षित होता है कि इन्होंने मथुरा-वृन्दावन और सोरों की यात्रा सं. 1931 में की थी। वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के ऊपर श्री नृत्यगोविद बिहारीजी का मंदिर बनवाया। दीनों को चने और अतिथियों के भोजनार्थ सदाव्रत हेतु आमलखेड़ा नाम का गाँव मोल लेकर कृष्णार्पण कर दिया।

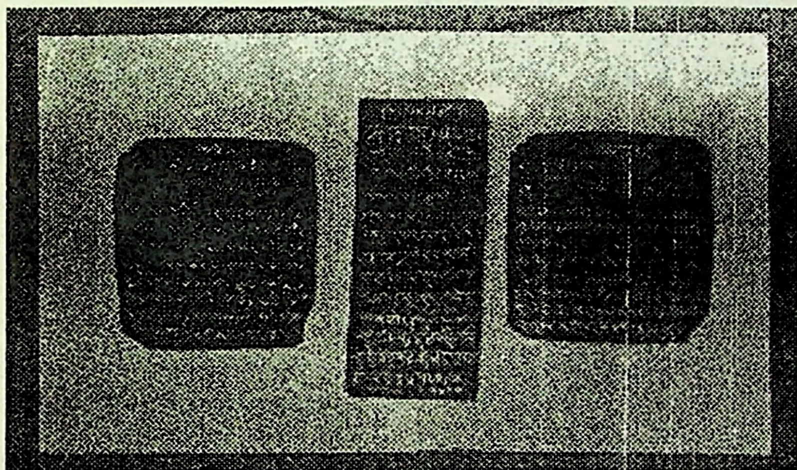
राजा गोविन्दसिंह बनेड़ाधीश गायत्री मंत्र के तीन हजार जाप करते थे। इन्होंने धर्मपूर्वक सांग वेदों और शास्त्रों का अध्ययन किया था। सं. 1914 में एक बार गोरक्षा हेतु ब्रिटिश सेना से भी लड़ने को उद्यत हो गए थे। वैदिक धर्म उद्धारक और आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती सं. 1738 में बनेड़ा इनके यहाँ पहुंचे थे। उन्होंने इनके राज पंडितों से सामवेद गान और कुछ पाठ सीखा था। इनके साथ बड़े महत्वपूर्ण व्यक्ति सोरों पधारे थे।[36] वि.सं. 1961 में देवलोक पधारे।

थान दाता के सेखावत गिरधर जी के वंश के महाराज बलवंतसिंह जी जो महाराज हरीसिंह जी के सड़पोता सोरमजी गंगास्नान करने पधारे पूरे कबीला के साथ 4 हजार व्यक्ति जिनमें राजमाता, राजकुमारियाँ, बहुएँ,प्रोहितानी, बडारिनियाँ, पासवानें, हुजूरी, दरोगा, ड्योड़ीदार, खवास, हरकारे, दरजी, फराश, सुनार आदि भी आए थे। याददाश्तियों में विशिष्ट नाम भी लिखे मिल जाते हैं। इनमें क्यामखानियों में दलेलखां, मुख्तारखां, राजदारखां, अजीमखां पठान, जंगवाज खां, छोटे खां पठान, मिर्जा, गुलाम नबी, मीरहसन अली, मीरमंसूर अली, हकीम मिर्जा खां आदि नाम उल्लेख्य हैं।

शाहपुरा महाराणा उदयपुर के नजदीकी रिश्तेदारों में से हैं। इस वंश के प्राय: सभी राजा सोरमघाट की यात्रा पर आए थे। पीछे बता आए हैं कि सूरजमल और सुजानसिंह वि.सं. 1675 में कु. कर्णसिंह की सोरों-यात्रा के समय साथ थे और दोनों ही भाई थे। 'मेवाड़ नरेशों के ऐतिहासिक वंश वृक्ष' (1995 ई.) में कर्णसिंह के भाई सूरजमल का जिक्र है, सुजानसिंह का नहीं। सूरजमल को शाहपुरा, गंगावास, बरलियास, सरवाणियां, नारेला ठिकानों का जागीरदार बताया गया है। 'राजपूताना का इतिहास' चतुर्थ खण्ड (1988 वि.सं.) राजाधिराज सूरजमल के पुत्रों में सुजानसिंह और वीरमदेव बताए गए हैं। सोरों रिकार्ड में सुजानसिंह कर्णसिंह के भाई अंकित हैं। यही सही होना चाहिए। राजा सुजानसिंह व राजा दौलतसिंह की सही के परवाने देखकर ही वि.सं. 1776 में अपने कुँवरपदे में 'सोरूँजी के घाट' स्नान के समय अपने गंगागुरु भादूजी

उत्तिमजी को सही का परवाना उम्मेदसिंह ने दिया था। उन्होंने अपने गुरु को पूजा था। शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह का ताम्रपत्र हमारे देखने में आया है। यह सोरों के गंगागुरु कंजमणि को वि.सं. 1817 मार्गशीर्ष सुदी 3 में दिया गया था। इस ताम्रपत्र और उनके परवानों का लेख एक ही लेखक के द्वारा माडा गया है। मांडिलगढ़ परगने का गाँव नील की रखेड़ी उदिक करके हमेशा-हमेशा के लिए अर्पित किया गया था।

हमारे संग्रह में राजस्थानी गद्य के ऐतिहासिक ताम्रपत्रों के भी फोटोप्लेट्स हैं जिनमें वि.सं. 1763 में प्रदत्त महाराजा श्री दीवान परसराम जी ने 50) रुपया अपने गंगागुरु को वर्षासन दिया।



ताम्रपत्र : महाराज परसरामजी द्वारा सं. १७६३ में प्रदत्त

भारतवर्षीय शिलालेखों, ताम्रपत्रों पांडुलिपियों, अभिलेखों आदि के आधार पर जब कभी ऐतिहासिक तिथि-पत्रक बनाया जाएगा, तो सोरों सामग्री इसमें बड़ी कारगर साबित होगी। इतिहास के शोधार्थी के लिए यह तिथि-पत्रक बड़े काम का साबित होगा। कर्नल कनिंघम प्रणीत 'बुक ऑफ इण्डियन ऐरा' (प्रथम पुनर्मुद्रण 1971) और जगदीशसिंह गहलोत प्रणीत 'ऐतिहासिक तिथि-पत्रक' (1980) तीन भाग, अत्यधिक उपयोगी

होते हुए भी अपूर्ण हैं। सोरों की स्रोत सामग्री निष्पक्ष और दुराग्रहमुक्त हैं। ये तिथियाँ निर्भ्रांत साबित होंगी।

इन दस्तावेजों और गंगागुरुओं के संग्रह की नामावलियों के अवलोकन से विदित होता है बड़े राजागण यहाँ स्वयं पधारे अन्यथा परिस्थिति के अनुरोध से गंगोदक मँगाने के लिए आदेश पत्र के साथ अपने विश्वस्त अधिकारी को भेजा। यह ध्यातव्य है जब कभी राजा या उनके वंशधर या सरदार पधारे उन्होंने अपने तीर्थगुरु को स्वभाषा में लिखित सनद दी।नामावलियों में यह भी उल्लेख पाया जाता है कि 'दस्तखत पुरानी बही में या दसखती बही में' किन्तु तलाश करने पर सनदें बहुत कम मिलती हैं या नहीं भी मिलतीं किन्तु उनकी जानकारी सोरों की भाषा में अवश्य सुलभ हो जाती हैं। नीचे एक तालिका में ऐतिहासिक महत्व के कुछ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत हैं-

समय : बहलोल लोदी (सं. 1507 से 1546)

संवत् 1522 फागुन वदी 2 श्री गंगाजी पधारे राजा जोधसिंह राजा जैसा जी के बेटा राजा कलीकरन के प्रपौत्र।

संवत् 1526 कार्तिक वदी चित्रकोट (चित्तौड़) से गंगा स्नान करने पधारे महाराज रावत सूरजमलजी राजा षीमा जी के बेटा राणा मोकल जी के पोता।

समय : हुमायूँ

संवत् 1595 बीकानेर महाराज कल्याणमल की 'गंगागुरु सोरम घाट रै' संबंधी सनद का संदर्भ।

संवत् 1595 माघ सुदी 13 गुरुवार गंगाजी पधारे रावल के जी केसरी परपोता राजा आनंदजी।

संवत् 1600 परगना कोटा की जाति राजपूत सोलंकी राइमलोत गंगाजी आई बहुजी चौहानी।

संवत् 1607 सनद महाराजा महारावल भीमसिंह (जैसलमेर के) गंगागुरु की मानता के विषय में श्री दरबार हुकुम से।

समय : अकबर

संवत् 1621 देवलिया प्रतापगढ़ रावत सूरजमल के बेटा रावत बाघजी की स्त्री

ईसरदे सोनिगरी बहूजी गंगा स्नान हेतु पधारीं।

संवत् 1625 वैशाख वदी में नैनोर (काठील) सूरजमलोत रावत वाघसिंह जी के पोता राजा राइसिंह जी के बेटा राजा श्री सकतसिंह जी पधारे साथ में पठान शेरखां भी आया।

संवत् 1632 मार्गसिर सुदी को ग्राम वराही के राजपूत सोनिगरा राजा वाघजी गंगा स्नान हेतु पधारे।

संवत् 1632 उदयपुर से महाराणा प्रतापसिंह (बड़ा अर्थात् प्रथम) ने गंगाजल मँगाया।

संवत् 1633 पूस सुदी ग्राम बम्होरी पं. ग्यासपुर से राजपूत सीसोदिया सूरजमलोत विजयपान गोत्र महारावत बाघजी के पोता महाराज रावत बीका जी गंगा स्नान हेतु पधारे।

संवत् 1635 माह वदी सोमवार 5 बीकानेर नरेश महाराजा रायसिंह गंगास्नान करने पधारे और राजा कर्ण की सनद देखकर गंगागुरु की सनद दी गुरु विरथरिया हरिवंश।

संवत् 1635 आसाढ़ वदी 3 मौगरा परगना पंचपहार के महाराज रावत भारथसिंह राठौड़ चांदावत बगरावत चौहान पधारे। देवी आसापुरी पूजे।

संवत् 1636 सावन वदी कुंवर आसोजी महाराज रावत रायसिंह के बेटा सूरजमल के परपोता गंगाजी पधारे।

संवत् 1640 कार्तिक सुदी गोस्वामी विट्ठल दीक्षित पधारे लिखितम् में 'श्री शूकर-क्षेत्रे गंगातीरे' भी लिखा है।

संवत् 1643 राजपूत सोनिगरा मललोपका महाराज श्रीरामसिंह जी गंगास्नान करने पधारे।

संवत् 1643 माघ सुदी 13 राजा कान्ह जी गंगा आए।

संवत् 1644 पौष सुदी 12 कूंपावत माडन की बहु राजा श्री पूरनमल जी की माता।

संवत् 1647 कार्तिक सुदी गंगा जी का स्नान करने पधारे सीसोदिया सूरजमलोत महाराज गोपालदास जी महाराज सेहसावत के पोता।

संवत् 1658 माघ सुदी महाराव राइसिंह के बेटा की बहू देवलिया शहर से पधारीं चौहानी जी गंगाबाई रावत। बीकाजी का राजलोक।

संवत् 1660 आसोज वदी मेवाड़ के बालावत महाराज श्रीकुमार जी पधारे।

संवत् 1662 माघ वदी गंगाजी पधारे राजा मेदाजी अचलावत के परपोता।

संवत् 1662 माघ वदी 2 गंगाजी पधारे महाराज राइसिंह जी राजा जैसाजी के परपोता।

संवत् 1662 चैतसुदी 2 गंगाजी पधारे राजा श्री ईश्वरदासजी।

नोट : जहाँगीरकाल से लेकर औरंगजेब के काल तक पधारने वाले राजा महाराजाओं की सूची कभी आगे प्रस्तुत करेंगे। विस्तार भय से यहाँ नहीं दे रहे हैं। वर्तमान में दिग्दर्शन भर कराना ही हमारा उद्देश्य है।

ग्राम ढावला परगना प्राहे सं. 1721 आसोज वदी महाराज पेमा जी संबंधी अभिलेख से विदित होता है कि राजपूत सोनिगरा राघरोत भानावत गंगाजी स्नान करने पधारे। ये महाराज भानजी के सड़पोता थे। 'गंगाजी में हरि की पेर्या पर भानजी ने घाटु बँधायो: भानघाट'! इसका अर्थ हुआ संभवत: अकबरकाल में वि.सं. 1640 के आसपास यह पक्का घाट निर्मित कराया था। सोरों की अनुश्रुति में इसे राजाघाट कहते हैं। गोवरधन, राधाकुंड और वृंदावन में कछवाहा राजा भगवानदास और मानसिंह द्वारा निर्मित घाटों का उल्लेख वहाँ के लेखों में है किन्तु सोरों में यह घाट, अलवर घाट, रघुनाथ घाट तथा उनके महली घाट आदि एवं तिदरियाँ राजस्थानी अवदान हैं।

बही लेख - सोरों (सूकरक्षेत्र) के गंगागुरु की नामावली

अलवर राज्य की माजी साहब बड़गूजर जी ने 'सोरूंघाट' में श्री बल्देव जी का एक मंदिर बनवाया जिसके भोगा-खर्च वास्ते सं. 1896 में पुण्यार्थ सीगे की मद से 20) महीना मिती जेठ वदी अष्टमी फसल रवी से सरकार अलवर की ओर से मुकर्रिर कर दिया। कस्बा अलवर की राहदारी की आमदनी से यह रकम प्रति माह दिए जाने का गंगा गुरु को परवाना दिया गया। देवस्थान विभाग से यह आज भी मिलता है। अलवर की एक अर्जदाश्त में बड़ी ऐतिहासिक जानकारियाँ मिलती हैं। इनमें से कुछ अति महत्वपूर्ण बातों को नीचे दिया जाता है-

1. वि.सं. 1470 में कछवाहा राजपूत राजवंशी ने प्रोहिताई लिखाई।
2. श्री महाराजा की अमलदारी माचेड़ी राजगढ़ में सं. 1677 की साल में हुई थी।
3. रावराजा कल्याणसिंह ने सं. 1704 में कामा में महल बनवाया।
4. महाराजा कल्याणसिंह से लेकर महाराज विनैसिंह तक 235 वर्ष के अभिलेख सही मौहरों सहित सोरों में विद्यमान हैं।

5. सं. 1705 मिती जेठ वदी श्री बहुजी साहब चौहानी जी पधारी। रावराजा महाराज कल्याणसिंह राजलोक पधारे।
6. सं. 1790 में गंगा पुरोहित देवन प्रह्लाद को राजा कल्याणसिंह ने सनद प्रदान की।
7. संवत् 1711 मिती आश्विन वदी में रावराजा महाराज आनंदसिंह जी की बहू जी साहब हाड़ी जी वीदावती जी के साथ गंगा जी पधारीं।
8. सं. 1781 मिती भादों सुदी 12 महाराजा जोरावरसिंह श्री गंगाजी स्नान हेतु पधारे तब राजगढ़ की 51 बीघा धरती संकल्प कर गंगा गुरु बेनीराम और इसी वर्ष आषाढ़ वदी में 34 बीघा जमीन राजगढ़ में गंगापुरोहित भभूतिराम को पट्टा कर प्रदान की।
9. संवत् 1852 में सोरों में कुंज बनाई मिती असाढ़ वदी 13 को और पटा खास हुलासीं राम बकसराम के नाम खास मोहर और सही का प्रदान किया।
10. महाराज राजा बख्तावरसिंह ने सं. 1868 मिती कार्तिक सुदी 15 गंगाजी पधार कर अपने गंगागुरुओं के पग पूजे। सिरोपाव दिया। कड़ा, डोरी, मोती और सिरीपाई पहिराकर हाथी पर बैठाए। आपने स्वयं पहुँचाए तथा डेरा तक पधारे। इसी प्रकार का सम्मान महाराव राजासिंह ने अपनी सोरों-यात्रा के समय प्रदान किया। सं. 1887 मिती आसोज वदी 11 को मांजी महाराज बड़गूजरजी सोरों जी का स्नान करने पधारीं तब 100 बीघा धरती मौंजे सौंख की दी खास महाराज की सही मोहरी सहित।

संवत् 1868 मिति कार्तिक सुदी 15 बृहस्पतिवार को श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराज श्री शिरोमणि श्री खुशालसिंह (महाराज कुंवर श्री अजीतसिंह) जी सोरों सूकर क्षेत्र में गंगा स्नान करने पधारे। वहाँ श्री गंगाजी को स्वयं द्वारा रचित अष्टक श्रीमुख से अर्पित किया। यह किसी राजस्थानी राजा का सोरों पधारकर अपनी रचना समर्पित करने की दूसरी घटना है। इससे राजा खुशालसिंह की गंगा-भक्ति तथा काव्यधारा का परिचय मिलता है जो सुदुर्ल्लभ रचना कही जा सकती है। यद्यपि बेलिकृष्ण रूक्मिणी के प्रणेता राजा पृथ्वीराज राठौर ने भी गंगाभक्ति के प्रमाणभूत हृदयोद्गार प्रकट किए थे और जयपुर के हल्दियावंश में राव दौलतराम के सुपुत्र राव चतुर्भुज की प्रेरणा पर जयपुर के सुकवि हरिहर ने संस्कृत में एक दुर्लभ (गंगाभक्ति प्रकाश) नामक वृहद् ग्रंथ प्रणीत किया था। राजा खुशालसिंह की छाप युक्त यह अष्टक प्रस्तुत किया जाता है—

सोरभ घाट अस्नान, नर जनमे कीना नहीं।
दिया ब्रथा जग दान, नर जहरा जाहर नई ।।1 ।।
तीर्थ अवर अनेक, नायेहक गंगा मनो।
हे अघ काटन ऐक, नर तारन जाहर नई ।।2 ।।

मे मुख ऐकणह आय, गुण केहा गाउं गंगा।
अघ मोचनी अथाय, नर तारन जाहर नई।।3।।

ओगुन मुझ अछेह, गुण गान न कीहे गंगा।
तो जल परसत तेह, भो भागी भागीरथी।।5।।
हर हर आन उपाय, गुण गंगारा गाइ ले।
जरा मर्न मिटि जाइ, भेंटता भागीरथी।।6।।

कमधज तुज षुसाल, कर जौड़े बिन्त करे।
निज जन करम निहाल, भगतनु की भागीरथी।।8।।

अपने समय का सर्वाधिक सशक्त कछवाहा महाराजा सवाई जयसिंह वि.सं. 1783 में जयपुर नगर बसाने से पूर्व मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, बरसाना, राधाकुंड, गोवर्द्धन, नंदगाँव, संकेत-द्वादश, बनो आदि धर्म-स्थलों की तीर्थ-यात्रा करने के बाद 'सुरसीरि सौरों घाट' गंगा स्नान करने गया। मथुरा में जयसिंहपुरा निर्मित कराया। जो ब्राह्मण मुगलों के भय से त्रस्त होकर पलायन कर गए थे, उन्हें पुनः बसाया। गंगा नहा कर 'अश्वमेध' किया। संवत् 1783 फागुन में होली वृन्दावन में मनाई और पुनः महिपाल सोरों गंगा स्नान करने पधारे। वहाँ उन्होंने सिंह भी मारे-

सो गौ महिपाल फिरि, गंग न्हान के काज।
तकि नरकुल वन में, जहाँ हने घने मृगराज।।[39]

पुनः मधुपुरी पधारे। सोरों रिकर्ड के मंथन से पता चलता है कि वहाँ बेदला के ठाकुर और मारवाड़ के राजा अजीतसिंह से कोई मंत्रणा हुई। यह भी ऐतिहासिक सच है कि वे कोई 'फैडरेशन' बनाना चाहते थे जो सफल न हुए, किन्तु अपनी मथुरा-वृन्दावन-सोरों की धर्म-यात्रा में ही राम-जन्मस्थान की जमीन को खरीद कर वहाँ जयसिंह पुरा निर्माण कर उन्होंने महान् ऐतिहासिक निर्णय लिया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि सवाई जयसिंह ने इन महान् प्राचीन धर्म-स्थानों के आचार्यों से भी सलाह-मशविरा लिया होगा। कवि आत्माराम विरचित सवाई जयसिंह प्रकाश चरित से इस तथ्य की अर्थगर्भ गवाही मिलती है-

और फिर अवधपुर कौ ता समैं, सेवक पठए भूप।
पुरा बसायौ जाइ तिन, तकि तहँ ठौर अनूप।।

—पांडुलिपि महाराज सवाई मानसिंह ॥ म्युजियम, जयपुर, खासंमोहर पोथीखाना

सुकवि आत्माराम सवाई महाराजा जयसिंह के साथ मथुरा मंडल और सोरों (सूकरक्षेत्र) गया था। उसकी विश्वसनीयता में हमें तनिक भी संदेह नहीं। 'तकि तहँ ठौर अनूप', 'पुरावसोयो', वाक्यावलि की ध्वनि क्या है। इसका सही उत्तर पं. गोपाल नारायण बहुरा द्वारा अति परिश्रम से सुसंपादित ग्रंथ 'कपड़ द्वारा रिकर्डस्' से जाना जा सकता है। प्रोफेसर रामनाथ ने 1993 में प्रकाशित अपने लेख 'राम-जन्मस्थान की भूमि किसकी' में भी विस्तार से प्रमाण दिये हैं। हमारी स्थापना बस इतनी है कि अयोध्या में जो पुरा (जयसिंह पुरा) बसाया गया था और जिसके लिए बहुत देख समझ कर अनुपम ठौर जो राम-जन्म स्थान और उसकी धरती खरीद ली थी' इस योजना को अंतिम रूप सोरों वृन्दावन मथुरा में ही दिया गया था।

रूपनगर के महाराज सावंतसिंह (नागरीदास) की सुप्रसिद्ध पासवान बनीठनी वि.सं. 1805 में सीधे रूपनगर से, जब सुरतीसिंह जी के बेटी सुभग कुँवारि के फूल (अस्थियाँ) ब्राह्मण हनोतराम सोरों लेकर आए थे, तभी पधारीं। महाराज सावंतसिंह उस समय राज-झंझट से दिल्ली में थे। वहीं उनका राज्याभिषेक हुआ था। इनका अपने भ्राता बहादुरसिंह से भारी झगड़ा चल रहा था। बनीठनी का असली नाम 'रस विलास' (?) तीर्थगुरु के लेख से परिज्ञात होता है। सनद और चिट्ठियों के देखने से इस तथ्य को और बल मिल सकता है। किशनगढ़ रिकर्ड भी देखने आवश्यक होंगे। महाराज नागरीदास वि.सं. 1808 मिती अगहन वदी श्री गंगाजी का स्नान करने सोरों पधारे, जहाँ उन्होंने गंगाजी के प्रकोप को कुछ छंद समर्पित कर शांत किया था। उन्होंने वहाँ दीपदान किया था और कपिल मुनि का आश्रम तथा भागीरथ (गुफा) भी देखी थी। वि.सं. 1810 में वृन्दावन में रचित 'तीर्थानंद' नामक सरस काव्य कृति में इनका उल्लेख किया है। वि.सं. 1821 भादों सुदी 11 को वृन्दावन से इनके फूल ब्राह्मण भोजा तथा कछवाहा चैनसिंह सोरों लाए थे।

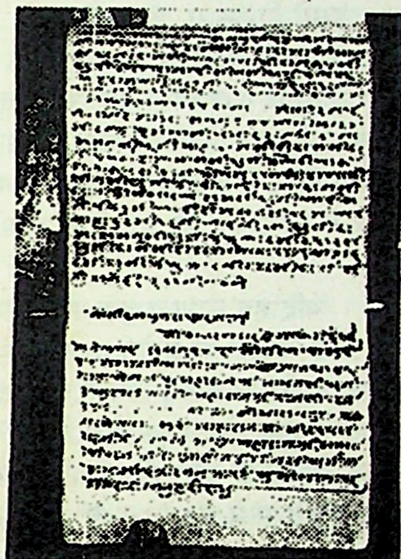
महाराजा सावंतसिंह 'नागरीदास' ही पहले ज्ञात राजा हैं जिनकी प्रगाढ़ गंगा-भक्ति में निम्नलिखित सवैया उनकी कामना स्वरूप सोरों में गंगा भागीरथी के तट पर सं. 1808 में उद्गीरित हुए-

ब्रह्म कमंडली ब्रह्म स्वरूप, कहाँ लौ कहौ गुन के गन भारे।
ल्याए भगीरथ जी तुमकौं, तब तै तुम जीवन अनेक उधारे॥
नागर की किती बात कृपाल, करूं विनती परुं पाय तिहारे।
जे रहे आड़े है कैं ब्रजवास के, गंगा ते काटिये पाप हमारे॥

—तीर्थानंद (रचनापूर्ति सं. 1810) छं.सं. 48



(क) संवत् 1805, 1846, 1857 के बही नामावली लेख रूपनगर के।



(ख) संवत 1808 और सं. 1821 के बही नामावली लेख रूपनगर के।

वि.सं. 1607 मिती कार्तिक सुदी 12 को श्री महाराजाधिराज महारावलजी श्री भीमसिंहजी ने सोरमजी के गंगागुरु चौधरी महादेव को दिल्ली में सनद प्रदान की। इस सनद की उल्लेख्य बातें हैं—

1. **शीर्ष पर 'श्री गंगाजीसहाय' और दायीं और 'श्री लक्ष्मीनाथजी' अंकित किया है जिसका अर्थ है कि श्री लक्ष्मीनाथ (विष्णु) प्रकारान्तर से कृष्ण और श्री गंगाजी में इस कुल की गहन निष्ठा थी।**
2. **सोरमजी के गंगागुरु चौधरी महादेव रावल भीमसिंह से भेंट करने पहुँचे थे। जाहिर है जैसलमेर के भाटी शासक गंगा-भक्त थे। स्वयं महारावल भीम ने यह उल्लेख किया है 'ओत्तो कदीम सैऔ गंगा गुरु छे सो पाटान पाट पीडी धर पीडी सू औ गंगा गुरु छे और म्होरे बंसरी आल औलाद रा होसी सो आणानु गुरु मानसी'।**

3. श्री दरबार के हुक्म से अक्षर माड़ने वाले थे व्यास संतोषचंद रूपसींहानी और द. थे मूहता धुरकाजी (द्वारका) के।
4. इसमें विक्रम सं. 1607 में 'ऊषर' संज्ञा में 'क्ष' के स्थान पर 'ष' व्यंजन का प्रयोग है पाद टिप्पणी सं. 1 ध्यातव्य है।

सुखद आश्चर्य है कि महाकवि तुलसीदास जी ने वि.सं. 1631 में विरचित 'रामचरित मानस' में 'सूकरषेत' अभिधान का इन क्षेत्रों की बोली और लिपि प्रवृत्ति के अनुरूप प्रयोग किया है। रामचरितमानस की प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर की वि.सं. 1771 की प्रति में 'सूकरषेत' ही पाठ दिया हुआ है।

यदि हम सामान्य दृष्टि से ही स्थापित करना चाहें तो कर सकते हैं कि 'खकार' के लिए 'षकार' का प्रयोग उत्तरभारत या पश्चिमी क्षेत्रों में भी कालान्तर में पहुँच गया किन्तु राठौड़, सोलंकी, बाघेलों, कछवाहों, यदुवंशियों आदि का निकास भी इन्हीं क्षेत्रों से हैं। चूंकि सोरों (सूकरक्षेत्र) के शिलालेखों में यह प्रवृत्ति 14वीं शती के पूर्वार्द्ध से प्राप्त हो गई है और जो रामचरितमानस (1631) तक अक्षुण्ण चली आई है। तथ्यतः यह प्रवृत्ति सोरों में और का[illegible] पूर्व से है।

श्री प्रेमनारायण गुप्त द्वारा वाचित शोधपत्र (ब्रजकला केन्द्र, मथुरा (1996) द्वारा आयोजित सोरों की संगोष्ठी) में बताया गया था कि यह लिपि-प्रवृत्ति अवध क्षेत्र में अनुपलब्ध है। तुलसीदास जी के मानस तथा अन्य काव्यों की प्राचीन पांडुलिपियों में यह प्रवृत्ति प्रचुरता से मिलती है। इस दिशा में और गहरे अन्वेषण की आवयकता है।

इस प्रकार जैसलमेर के महाराजा महारावल भीमसिंह जी की यह सनद लिपि-प्रवृत्ति की दृष्टि से रामचरितमानसकार के 'क्षेत्र' का निर्णय में एक मजबूत कुंजी साबित हो सकती है।

सीताराम मन्दिर के शिलास्तंभ लेखों में 'सूकरषेत' आख्या ही प्रायः प्रयुक्त है।

शेखावत राजपूत सीकर के वर्तमान गंगागुरु पं. राधेश्याम के संग्रह में जो सनदें हैं उनमें सौरौंजी (सं. 1799), सोरौं जी (सं.1789) सोरू जी (सं. 1885), सौरूं (सं. 1914), सोरूं (सं. 1945), अलवर राज्य के गंगागुरु पं. उमाशंकरजी की सनदों में सोरूं (सं. 1817), सौरूं (सं. 1850) अभिधान मिलते हैं। सूकरक्षेत्र/शूकरक्षेत्र की शब्द-यात्रा इस प्रकार है—

सूकर - सौकर - सौकरव - सौकरवं - सोरम/सोरंम - सोरों।

सोरम/सोरंम ही बौद्ध-साहित्य में सोरेय्य करके कथित है। यद्यपि सूकर क्षेत्र के लिए **'सूकरखता'** भी मिलता है। आज भी ग्राम्य जन सहज आनुनासिकता में सोरेय्यवासी को 'सोरय्यां' प्रचुरता से कहते हैं। प्राकृतों में सविशेष शौरसेनी प्राकृत में ओकारान्त तथा उकार बहुलता प्रारम्भ से ही थी। अनुनासिकता और ओकार/उकार के हेतु से सहज ही सूकर क्षेत्र सौरों करके बद्धमूल हो गया। संक्षेप में यही इस अभिधान की भाषा वैज्ञानिक परिणति है।

राजस्थान के रामभक्ति के रसिक-सम्प्रदाय जिन्हें रामावत भी कहा गया है स्वामी अग्रदासजी के पूर्व से वहाँ पधारते थे। चरणदासी-सम्प्रदाय के संस्थापक चरणदास अलवर से सोरों पधारे थे और उन्होंने अपनी काव्यधारा में गंगाजी की आरती और स्तुति भी रची थी। रूपनगर के महाराजा सावंतसिंह (नागरीदास) ने एक स्थान पर संतों से अनुश्रुतियाँ एकत्र करते हुए लिखा है कि **भक्तिमती मीराबाई 'गंगादिक तीरथ करके अरु श्री वृन्दावन हू आए'** राजा संग्रामसिंह प्र. (वि.सं. 1556-1584) के सुपुत्र भोजराज से मीराबाई का विवाह हुआ था। वाप्पा रावल के वंशधर प्रारंभ से ही आदि तीर्थ सोरों-आदि गंगा भागीरथी के प्रति महान् श्रद्धा रखते थे। पौराणिक दृष्टि से भी गंगा शिव और कृष्ण-संस्कृति की सेतु रही है। देशवासियों में राजस्थान के बड़े-बड़े राजा-महाराजा, रानी-महारानी, सरदार, जागीरदार, और प्रजा का अक्षुण्ण श्रद्धातीर्थ सोरों और भागीरथी गंगा बनी हुई है। मार्गशीर्ष एकादशी और द्वादशी को लाखों लोग पवित्र गंगा स्नान हेतु पधारते हैं और हजारों कांवर भरकर गंगोदक ले जाते हैं। घर-घर में सौरमजी और श्री गंगाजी सहज ही पहुँच जाते हैं। राष्ट्रीय एकीकरण में सोरों (सूकरक्षेत्र) का प्रदेय कभी भुलाया नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सोरों (सूकरक्षेत्र) के राजस्थानी ऐतिहासिक गद्य के दस्तावेजों का बहु आयामी महत्व है। इसकी संरक्षा, सुरक्षा, संग्रह और सम्पादन राजस्थान के इतिहास के लिए बड़ा उपादेय होगा।

संदर्भ संख्या—

शूकरक्षेत्र : पुराणों में

1. (क) अघो विनश्यते क्षिप्रं मथुरायामागतस्य च
   तथैवं शूकरक्षेत्रं मनुजस्य वसुन्धरे।

न तीर्थ मथुरात् पुण्यं न देवः केशवात्परः
ततोऽपि पुण्यमधिकं शूकरं जाह्नवीतटे ।

—वराहपुराण

सूकरक्षेत्रमाहात्म्यं यथा भूतं महद्धरे

—वही अध्याय 136

शूकरन्तु परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते रतिम् ॥
मूढो भ्रमति संसारे मोहितो मम मायया ॥

—वही, अ. 167/श्लो. 31-32

॥इति श्री वाराहपुराणे भगवच्छास्त्रे श्रीशूकरमाहात्म्ये चांडालराक्षससंवादो नाम तृतीयोध्यायः ॥

—पांडुलिपि, निजसंग्रह (सं. 1867 लि.का.)

(ख) यत्रोद्धृता वराहेण धारित्री सलिलान्तरात् ।
तत्र श्रीसूकरक्षेत्रे गंगातीरेऽतिपावने ॥
निशम्य ब्रह्मणो वाक्यं मरीचिर्ज्ञानिनां वरः ।
वशिष्ठादीन् समादाय क्षेत्रं शूकरकं ययौ ॥

—मात्स्यखिलांश कृष्युपाख्यानम्

षष्टि वर्ष सहस्राणि योऽन्यत्र कुरुते तपः
तत्फल लभते देवि प्रहरार्द्धेन सूकरे ॥

—वायुपुराण

शूकरक्षेत्र : संहिता में

(ग) वायव्यं शूकरक्षेत्रात् चतुर्योजनमेव तत्

—गर्गसंहिता, मथुराखंड, अध्याय 24, श्लोक सं. 50

शिला स्तंभलेख

(i) सूकर संवत् 1226 श्रावण वदि 4
(ii) सूकरस्य संवत् 1231 फाल्गुण सुदि 3 शुक्रे
(iii) सूकरस्थाने संवत् 1235 ज्येष्ठ सुदि 6 शनिवासरे

सूकरषेत्र : शिलास्तंभ लेखों में

(घ) सोरों (सूकरक्षेत्र) स्थित राजा सोमदत्त किले के ध्वंस पर विद्यमान सीताराम मंदिर के शिलास्तंभ लेखों पर उत्कीर्ण आख्याएँ

(i) सुकरषेत्रे संवत् 1331 वैशाख सुदी 14
(ii) सुकरषेतु संवत् 1332 वैशाख वदी 3
(iii) सुकारषेत्रे संवत् 1334 ज्येष्ठ वदी 2 और वैशाख वदी 6
(iv) शुक्रषेत संवत् 1360 अगहन वदी 15 रविवासरे

(v) सुक्रषेत संवत् 1434 पौष सुदी 1

(vi) सुक्रषेत संवत् 1513 वैशाख वदी

(vii) सुकरषेत्रे संवत् 1621 मार्ग सुदी 11

(ङ) **शूकरक्षेत्र : तुलसीदासप्रणीत रामचरितमानस (सं. 1631) के 9 वर्ष बाद की लिखित** गो. विट्ठलनाथ (दीक्षित) का वृत्तिपत्र सं. 1640 में-

(i) **'गंगातीरे शूकरक्षेत्रे'**

(ii) ततः प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण **सूकरक्षेत्रं** समागताः ।

—वल्लभदिग्विजयम्

सौकरः

(2) सौकरः

(ङ) तीर्थं च सौकरं नाम महापुण्यं शुभे शृणु ।
यस्मिन्नाविरभूत्पूर्व वाराहाकृतिरच्युतः ॥
(पुराणों में गंगावृहन्नारदीयपुराण, उत्तराखण्ड, अध्याय 40, श्लोक 31-6-33)
केषु लोकेषु यान्तीश **सौकरे** ये मृताः प्रभो !
किं वा पुण्यं भवेत्तत्र स्नातस्य पिबतस्तथा ॥

—वराहपुराण, सूकरक्षेत्र माहात्म्य/अ. 137/82

नोट : वराहपुराण में उक्त अध्याय में **'सौकरस्य'** (137/17)

(च) वृत्तिश्चासौ स्थापितानां विधाय **भागीरथ्यां सौकरे** तीर्थवर्ये ।
श्वेतद्वीपं मानसेनावधार्य प्राणानुज्झित्य संसारबन्धः ॥

—मंडकिला ताल (कोटा) शिलालेख वि.सं. 1043 वैशाख सुदी 3

नोट : वराहपुराण के तृतीय अध्याय की पुष्पिका द्रष्टव्य-

॥इतिश्री वराहपुराणे भगवच्छास्त्रे **सौकरे** चाण्डालब्रह्मराक्षससंवादे **सौकर**-माहात्म्ये एकोनचत्वारिंशदधिकशततमेऽध्याये वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

(छ) सौकरवः

(च) यत्र **भागीरथी गंगा** मम **सौकरवे** स्थिता ।
तत्र संस्था च मे देवि ह्युद्धृताऽसि रसातलात् ॥

—वराहपुराण अ. 137, श्लोक 7

नोट : वराहपुराणोक्त सूकरक्षेत्र माहात्म्य में 'क्षेत्रे सौकरवे 137/7', 'सौकरवम्,' 'सौकरवे तीर्थे (137/26),' 'तीर्थ सौकरवे,' 'पुण्ये सौकरवे मम्' (137/55), 'परं सौकरवम् स्थानं सर्वसंसारमोक्षणम्' अध्याय 137/ 6
दानवेन्द्रं पुर जित्वा धरामृद्धृत्यदंष्ट्रया ।
ऊषलेषु महत्पुण्यं ज्ञात्वा शौकरवं भुवि ॥.

पांडुलिपियाँ और उनकी पुष्पिकाएँ :

(i) ....महात्मे ऋणमोचननामषष्टमोध्याय.! श्रणुते पठंते फलप्राप्त सम्पूर्ण शुभमस्तु लिष्यतं स्वामी संतोषदास **शुक्लक्षेत्र वासी** ॥ XXX संवत् 1799 वर्षे कार्तिग सुदी 15 गुरवसरे शुभ ॥

—पांडुलिपि कुं. श्री सुशील उपाध्याय, सोरों

नोट : अयोध्या के तीर्थपुरोहित (गोविंद प्रसाद हरीराम) के बही लेख की वि.सं. 1838 और 39 लिखित में **'ग्राम शूकरक्षेत्र,' 'सुकलक्षेत्र सोरों', 'सुकरक्षेत्र'** और **'गाउ सोरों सुकलक्षेत्र'** अभिधान सोरों (सूकरक्षेत्र) के लिए आए हैं जो सोरोंवासी तीर्थ यात्रियों की लिखित हैं। अशोक के शिलालेखों में **'र'** और **'ल'** में अभेद पाया जाता हैं। इसकी पुष्टि पाणिनि व्याकरण से भी होती है।

सूकरषेत विराजि दुज रह्यौ समाधि लगाय।

सूकरषेत सोम दुज थाना सोमतीर्थ सोई करि परमाना ॥

—कृष्णदासरचित सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा, र. का. 1670 (पांडुलिपि वि.सं. 1809) द्रष्टव्य -गोस्वामी तुलसीदासः व्यक्तित्वः दर्शनः साहित्य (1962)

—डॉ. रामदत्त भारद्वाज

(ii) इति कृदंत प्रक्रिया समाप्ताः शुभ संवत् 1833 शक 1728 तत्र वर्षमासोत्तमे मासे चैत्रमासे कृष्णपक्षे तिथौ 8 भौमवासरे **शुकरक्षेत्र** मध्ये लिखित. श्री राम.

—पांडुलिपि निज संग्रह

(iii) इतिश्री अनुभूतिस्वरूपाचार्य्य विरचितायां सारस्वती प्रक्रिया समाप्ता ॥शुभं भूयात् ॥ संवत् 1869 शक 1734 वर्ष मार्गे कृष्ण 3 शनिवासरे ॥लि. दीक्षत लालजीत **श्री सोरम शूकरक्षेत्र मध्ये** ॥ श्री कृष्णाय नमः ॥

(iv) इति श्री शार्ङ्गधर संहिता संपूर्ण समाप्तम् शुभं भूयात् संवत् 1874 शक 1739 लिखित लालजी दीक्षत **श्रीसोरम शूकरक्षेत्र मध्ये** ॥

आदि वाराहक्षेत्रे फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे 11 एकादश्यां भौमवासरे ॥

इतिपाकावली सम्माप्तम् संवत् 1858 वर्ष चैत्र शुक्ल पंचम्यं 5 गुरुवासरे लि. जवाहर ब्रह्मण **सूकर क्षेत्रे**।.

—पांडुलिपि निज संग्रह

(v) इति श्रीमदात्रेयगोविंदभट्टविरचितायां कालिदासकविकृतनलोदयटीकायाम् चतुर्थः ॥4 ॥ नलोदय काव्य समाप्तं ॥ अथ शुभसंवत्सरेऽस्मिन् श्रीविक्रमादित्यराज्ये संवत् 1877 ॥शक श्रीशालिवाहनीये 1472 तत्र वर्षे मार्गशिरकृष्णे ॥6 ॥ शनौ ॥लिखित लालजीत दीक्षत **श्री सोरों शूकरक्षेत्रे.**

(vi) इति श्रीमद्दैवज्ञापंडितविरचितं सूर्यभट्टविरचितं श्रीरामकृष्णाख्यं काव्यं सम्पूर्ण (शु) भं भूयात ॥ XXX कार्तिक कृष्णपक्षे तु द्वितीया चन्द्रावासरे ॥1 ॥ **शूकराख्य महाक्षेत्रे रूपतीर्थे समीपणे** । लि लेख लालजीतेन **स्वर्न्नदी** दक्षिण तटे ॥2 ॥

(vii) सम्पादित सुचंद्रे द्वे श्रावणं शुक्लपक्षिके द्वादश्य चंद्रतोयक्षे रघुवंश प्रति लिख्यति ॥1 ॥ **शूकरक्षेत्र मध्ये** तु **रूपनाथ** सन्निधौ । लिखितं लालजीतेन स्वर्न्नदी दक्षिण तटे ॥

(viii) इतिश्री भविष्योत्तरपुराणो आषाढ शुक्लैकादस्यपि प्रबोधिनीपर्यन्त चातुर्मास्य व्रत माहात्म्यं संपूर्णं ॥संवत् 1884 शाके 1749 तिथौ मार्गशिर कृष्ण चतुर्दश्या: रवौ स्वपठनार्थ अथवा शिष्य गंगाभारती पठनार्थ । लिखितं हरिप्रसाद भारत्यां **कासगंज** मध्ये **शुक्रक्षेत्र समीपे** योजन सात्रिके दक्षिणे ॥

—पांडुलिपि निज संग्रह

(ix) श्रीमेवाराममिश्रेण **शूकरक्षेत्रवासिना** ।
सतां प्रीत्यै चित्रकाव्य: कृतोयं वैद्यकौस्तुभ: ॥87 ॥
इति श्रीमेवाराममिश्रेण विरचितं श्रीवैद्यकौस्तुभे चित्रकाव्ये वाजीकरणरसायणविधि नाम षोडश सर्ग समाप्तम् शुभं भूयात् **श्री सोरों सूकरक्षेत्र मध्ये** ॥ लि. लालजी दीक्षित ॥

—पांडुलिपि कु. सुशील उपाध्याय, सोरों

सोरों :

॥ इति श्रीरामायने सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल वैराज्ञ संदीपिनी षट सुजन संवादे रामवन चरित्र वर्ननो नाम तृतीयो सोपान अरण्यकांड समाप्त ॥3 ॥ श्री तुलसीदास गुरु की आग्या सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास **सोरों क्षेत्र** निवासी हेतु लिषितं लछिमनदास कासी जी मध्ये संवत् 1643 आषाढ शुद्ध सुक्रे इति ॥

—पांडुलिपि पं. वेदव्रतशास्त्री, कासगंज (एटा)

गंगातीर पथे याय, तव सुख पाइ ।
सोरों क्षेत्रे आगे यात्रा करि गंगा स्नान ।
सेय पथे प्रभु लत्रा करिये प्रयाण ॥

—चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला 18 वाँ परिच्छेद, पयार सं. 133-134

नोट : सात वर्ष के देहातीत परिश्रम के उपरान्त वह महान् काव्यकृति बंगाल निवासी कृष्णदास कविराज ने वि.सं. 1672 में राधाकुण्ड (मथुरा) में इसकी पूर्त्ति की । **द्रष्टव्य** - चैतन्य सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य (1980) लेखक (पृ. 24) । रामचरितमानस के अरण्यकांड की प्रति और इसमें सोरों के लिए **'सोरों क्षेत्र'** आख्या प्रयुक्त है । अत: **सोरों** शब्द का प्रयोग प्राय: 400 वर्ष पूर्व से पांडुलिपि लेख प्रमाण में आता है ।

4. (क) महाराणा राजसिंह का सं. 1718 का परवाना। जीराक्स कापी संलग्न
   (ख) महाराणा जवानसिंह का संवत् 1888 का परवाना जीराक्स कापी संलग्न
   (ग) महाराणा जगत्सिंह का परवाना सं. 1778
   (घ) महाराज कुमार दलपतिसिंहजी की सनद सं. 1872
   (ङ) संवत् 1709 की बाईजीराज जाम्बोती की सनद
   (च) ख्यात दर्पण, सिढ़ायच दयालदास कृत (पृ. 35) वि.सं. 1669 में सोरमतीर्थ क्री यात्रा बाईजीराज गंगादेजी जैसलमेरी।
5. (क) महाराणा सबलसिंह की सनद संवत् 1726
   (ख) महाराजा उम्मेदसिंहजी की संवत् 1825 की सनद
6. (क) पृथ्वीराज रासो का कनवज खंड, पांडुलिपि सं. 1819
   (ख) ऋणमोचन स्तोत्र पांडुलिपि की पुष्पिका सं. 1799
7. पांडुलिपि प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में महाराणा मेवाड़ का निज संग्रह, ग्रं. सं. 407, द्रष्टव्य-
   A catalogue of Manuscripts in the Library of H.H. the Maharana of Udaipur (1943) complied by M.L. Meneria

8. रामचरितमानस बालकाण्ड के महात्मा तुलसीदास जी द्वारा कथित प्रस्ताविक कथन जिसकी वि.सं. 1771 की पांडुलिपि महाराणा उदयपुर के निज संग्रह से प्रा.वि.प्र. उदयपुर में आई
9. महात्मा तुलसीदास जी के देहावसान (वि.सं. 1680) से ठीक 91 वर्ष बाद की प्रति जो पहले मेवाड़ाधिपति के निज संग्रह में रही और अब प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के संग्रह में है 'संवत 1771 व्रष आसाढ़ विद 2 गुरु।'
10. सोरों रिकर्ड जीराक्स तथा फोटोप्रति निज संग्रह, द्रष्टव्य संलग्नक
11. सोरों रिकर्ड, जीराक्स तथा फोटोप्रति निज संग्रह, द्रष्टव्य संलग्नक
12. सोरों रिकर्ड फोटो तथा जीराक्स (सनद तथा बही नामावली लेख) निज संग्रह
13. मुहता नैणसी री ख्यात (1960), (रचनाकाल सं. 1700-1722) प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, भाग 1, पृ. 213-21

नोट : काँवड़िया ब्राह्मण सोरंम जी से 7 बार गंगोदक लेकर सोमईया महादेव (15 वीं शदी में रचित, कान्हड़दे प्रबंध' में 'सोमईआ' आख्या, प्रयुक्त होने का प्रमाण है) प्रतिष्ठान का मुद्रण अशुद्ध परिज्ञात होता है पाठ 'सोरंम होना चाहिए। यह सहज अनुनासिकता (spontaneous nasalisation) के हेतु से आया है जिसकी पुष्टि राजस्थानी गद्य के सोरों दस्तावेजों से भी होती है।

14. ब्रजयात्रा में अगरचंद नाहटा का लेख पांडुलिपि अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर
15. AIN-I-AKBARI H. Blochmann (द्वितीय संस्करण 1965) पृ. 58
16. नागरीदास ग्रंथावली (भाग 1) सम्पादक- डॉ. किशोरीलाल गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
17. चैतन्य चरितामृत, कृष्णदास कविराज, मध्यलीला, 18वाँ परिच्छेद, रचनाकाल सं. 1672
18. जीराक्स कापी निज संग्रह, पांडुलिपि श्रीमाधवशरण अग्रवाल, जय जयराम वार्ड, कासगंज की यह पांडुलिपि उनकी ससुराल मथुरा से मिली
19. सोरों (सूकरक्षेत्र) का सांस्कृतिक इतिहास (प्रकाशनाधीन)- डॉ. नरेशचन्द्र बंसल
20. द्रष्टव्य-सूकर क्षेत्र माहात्म्य (वराहपुराणान्तर्गत) पांडुलिपि सं. 1868
21. पांडुलिपि अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर
22. गंगागुरु श्री राजेन्द्रजी पट्ठा, चक्रतीर्थ, सोरों की बही
23. द्रष्टव्य-अकबर महान् (अनुवाद), विंसेंट स्मिथ, हिन्दी संस्थान, लखनऊ
24. उदयपुर राज्य के गंगागुरु पं. महेश उपाध्याय, उपाध्याय की अथाई, सोरों
25. वीरविनोद (प्रथम राजसंस्करण) कविराजा स्यामलदास

26. सनद, पांडुलिपि, डॉ. राजेन्द्रनाथ पुरोहित, सज्जन नगर, उदयपुर और उनका पत्र दिनांक 22-8-95
27. वर्षवाणां वर्षिक्षिति गणनयुते माधवे शुक्लपक्षे पूर्णार्या पूर्णकाम: कनकमणिमयी सत्तुलां शूकराख्ये। क्षेत्रे गंगातटान्ते द्विजगणमहिते श्रीजगतसिंहपुत्रकौमारे संविधाय स्वजनपरजनान्नकरोति किं धनाढ्यान् ॥27

—वीरविनोद में उद्धृत शिलाश्लोक पृ. 397
28. देवलिया प्रतापगढ़ राज्य के गंगा पुरोहित श्रीरामकिशोर त्रिगुणायत, कटरा, सोरों
29. जीराक्स प्रति निज संग्रह
30. सं. 1526 की नामावली। वही लेख संलग्नक द्रष्टव्य
31. पांडुलिपि, निज संग्रह, जीराक्स प्रति आलेख के साथ
32. विस्तार के लिए द्रष्टव्य (क) औरंगजेब (तीनभाग), जदुनाथ सरकार, (ख) डिस्ट्रिक्ट गजेटियर एटा (1876) एटकिंसन और (ग) आर्कियालाजीकल सर्वे लिस्ट्स आफ नार्थ वैस्टर्न प्राविंसैज (आगरा डिवीजन) फ्यूहरर
33. औरंगजेबनामा, भाग 2, अनुवाद-मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ
34. औरंगजेबनामा, भाग 2 अनुवाद, मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ
35. निज संग्रह

36. वीरवंश वर्णन (1982, संस्कृत काव्य पं. नगराम शर्मा
37. अलवर राज्य के गंगागुरु पं. उमाशंकर वरवारिया का संग्रह, वारू मोहल्ला, सोरों। जीराक्स प्रति निज संग्रह
38. द्रष्टव्य संलग्नक
39. सवाई जयसिंह प्रकाश, आत्माराम, पृ. 75, संपादक- पं. गोपालनारायण बहुरा, सवाई मानसिंह म्यूजियम, जयपुर (राज.)
40. नागरीदास ग्रंथावली (भाग 2), पृ. 264 (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) वाराणसी

पूर्व निदेशक, वृंदावन शोध संस्थान
रीडर अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग (सेवानिवृत्त)
के.ए. (पी.जी.) कॉलेज, कासगंज-207123

वृन्दावन में राजस्थानी ऐतिहासिक गद्य के दस्तावेज

डॉ. नरेश चन्द्र बंसल

यमुना के पावन तट पर स्थित वृन्दावन मूलतः एक मन्दिर नगर है। इस तरह यह धर्म, संस्कृति, कला और अन्यान्य विधाओं का संपोषक नगर भी है।

वृन्दावन श्रीकृष्ण भगवान् का लीला क्षेत्र होने से भागवद्धर्म के मन्दिरों, मूर्त्तियों, कुंडों आदि की प्रतिष्ठा श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ द्वारा हुई थी। मथुरा के केशवदेव, दाऊजी के बलदेव, गोवर्द्धन के हरिदेव, वृन्दावन के गोविंददेव (अब जयपुर), गोपीनाथ (अब जयपुर), मदनगोपाल (पर्याय नाम मदनमोहन, अब करौली) और गोवर्द्धन के गोपालदेव (अब उदयपुर के पास नाथद्वारा) आदि विग्रह वज्रनाभ जी द्वारा प्रतिष्ठित कराए हुए हैं। ब्रजमंडल में इनकी प्राकट्यवार्ताएँ, अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं।

ये मंदिर राष्ट्रीय सांस्कृतिक और भावात्मक एकात्मक के आकर स्रोत थे। ये देश की संजीवनी बन गए थे। इनकी प्रेरकशक्ति का आकलन कर ही विदेशी-आक्रान्ताओं ने इनको समय-समय पर अनेक बार भ्रष्ट और नष्ट किया। हिन्दू आस्था ने राजा-महाराजा और जागीरदारों तथा प्रजा के सहयोग से इन्हें पुनर्प्रतिष्ठित भी किया।

मुगलकाल में वृन्दावन के गो. सनातन देव के श्री मदनमोहनजी, रूपगोस्वामी के श्री गोविंददेवजी, जीवगोस्वामी के श्री राधा दामोदरजी; श्री श्यामानंदजी के श्री श्यामसुन्दरजी; लोकनाथ गोस्वामी के श्री गोकुलानंदजी; गोपालभट्टजी के श्री राधारमणजी; श्री गदाधरभट्ट के श्री राधा मदनमोहनजी, हरिराम व्यास के श्री जुगलकिशोरजी (अब पन्ना), मधुपंडित के श्री गोपीनाथजी, जयदेव के श्री राधा माधवजी (अब आमेर नगरी कनक वृन्दावन), श्री हितहरिवंश प्रभु के श्री राधावल्लभजी, स्वामी हरिदासजी के श्री बिहारीजी, रूपकविराज के श्री नैनानंदजी, श्री मधु पंडित के गोपीनाथजी आदि प्रमुख मंदिर हैं। वि.सं. 1726 में औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति और मंदिर ध्वंस के कारण कुछ मुख्य विग्रह राजस्थान संक्रमित हुए जो आज भी वहाँ के महान् श्रद्धाकेन्द्र और प्राणस्वरूप हैं। कुछ देवविग्रह जैसे द्वारकाधीशजी, नटवर गोपालजी भी आज राजस्थान में प्रतिष्ठित हैं जिन्हें उसी समय यहाँ से युक्तिपूर्वक राजस्थान के राजाओं के सहयोग से उधर ले जाया गया। कुछ विग्रह जैसे बिहारीजी और राधारमणजी पुनः वृन्दावन ले

आए गए।

गोविन्ददेव, मदनमोहन, गोपीनाथ के नए मंदिर भी औरंगजेब की मृत्यु के बाद पुनः बनवा लिए गए किन्तु इनमें विजय मूर्त्तियाँ (प्रति भू विग्रह) स्थापित हुए जो आज भी समारोहपूर्वक पूजित हैं।

वृन्दावन के मंदिरों में उक्त सभी मन्दिरों को देश के राजा-महाराजाओं ने ही नहीं मुगल बादशाहों तक के क्रमशः अनेक आज्ञापत्र, दानपत्र, मददे-माआश के लिए फरमान जारी किए किन्तु राजस्थान के राजा-महाराजाओं के पट्टे, परवाने, सनद, हिदायत पत्र, चिट्ठियों के रूप आदि में जो दस्तावेज प्रदान किए थे उनकी संख्या सबसे अधिक है।

इन अभिलेखों से सेवायत आचार्यों, महात्माओं, गोस्वामियों, वैष्णव-सम्प्रदायों की शिल्प-परम्पराओं, राजपुरुषों एवं राजा, महाराजाओं, जमींदारों, यात्रियों, संतों, कवियों, विश्वासों, कला संस्कृतियों, जनरुचि आदि का इतिहास अन्तर्भुक्त है।

वृन्दावन के मंदिरों, घाटों, तिदरियों, छतरियों, कुण्डों, आश्रमों, समाधियों आदि के निर्माण में प्रसिद्ध कछवाहा राजाओं के अतिरिक्त सीसोदिया, राठौर और जाट आदि राजाओं का असाधारण योगदान रहा है।

अजमेर, जयपुर नरेशों की मुगल राजनीति में धर्म-रक्षण का क्या प्रयास रहा इसकी तर्कपूर्ण मीमांसा के लिए प्रचुर अभिलेख मिल जाते हैं। राजस्थान के राजपूत राजाओं और प्रजाओं की धार्मिक निष्ठाएँ कैसी थीं राधाकृष्ण की भक्ति तथा कलाओं के प्रसार में उनका क्या उल्लेखनीय योगदान था इसको राजस्थान के राजा महा-राजाओं द्वारा निर्गत परवानों आदि से अवगत किया जा सकता है।

उत्तर भारत के सर्वोत्तम हिन्दू स्थापत्य के उदाहरण वृन्दावन में महाराजा मिर्जाराजा मानसिंह द्वारा विनिर्मित यदि श्री गोविन्ददेव के महामंदिर की स्थापना, सेवा, सेवायत, गोस्वामी-परम्परा, गोविन्द-विग्रह के धर्मान्ध कट्टर बादशाह औरंगजेब के आक्रमण में संक्रमण का इतिहास जानना हो तो मन्दिर गोविन्ददेव (वृन्दावन, जयपुर) के अभिलेख आधार सामग्री साबित होंगे। इसी प्रकार गोपीनाथजी, मदनमोहनजी आदि प्रमुख मंदिरों को मुगल बादशाहों - अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के काल में उनके द्वारा कब-कब मददे-माआश स्वरूप जमीनें दी गई या दी हुई जमीनें खालसा कर लेने के बाद पुनर्नवीकृत

की गई, आदि बातें भी इन्हीं दस्तावेजों से जाने जा सकते हैं।

राजस्थान के राजा-महाराजाओं ने मुगल बादशाहों को प्रभावित कर किस प्रकार इन महान्-श्रद्धा केन्द्रों को मददेमाआश दिलाने में सफलता प्राप्त की, इसकी जानकारी भी वृन्दावन के मन्दिर अभिलेखों से प्राप्त होती है। हिन्दू-पोषण के कारण जनता के वे अधिकाधिक श्रद्धाभाजन हो जाते थे।

गोविन्द मंदिर, गोपीनाथ मंदिर, मदनगोपाल मंदिर, राधादामोदर मंदिर, श्यामसुन्दर मंदिर, राधारमण, गोकुलानंद मंदिर गौड़ीव-वैष्णव सम्प्रदाय (चैतन्य-महाप्रभु तिरोधान वि.सं. 1590) द्वारा प्रवर्तित) के महान् सार्वजनिक उपासना केन्द्र थे। वृन्दावन में चैतन्य सम्प्रदाय के विरक्त और भजन-परायण, राग-निष्ठविचारक सुकवियों का इतना अधिक प्रभाव था कि वर्तमान वृन्दावन उन्हीं की खोज और वैष्णव आन्दोलन का प्रतिफल है। जन-सामान्य में धर्म-सम्प्रदायों की उपासनागत निष्ठा से कोई अन्तर नहीं पड़ता था और वह सभी मंदिरों के दर्शन करने से लोकोत्सवों में भाग लेने, सांझी आदि लोककलाओं को देखने, नैमित्तिक और विशिष्ट अवसरों पर आयोजित समाज-गायन में भाग लेने हेतु सभी क्षेत्र और जातियों की जनता यहाँ पधारती थी।

उल्लिखित मंदिरों के देवविग्रहों के वि.सं. 1726 के आसपास राजस्थान ले जाए जाने में पूजोपकरण, ग्रंथालय, अभिलेख आदि भी राजस्थान में सुरक्षा हेतु संक्रमित हुए थे। इनमें काफी गारत भी हो गए। प्राणपण चेष्टा से जो अभिलेख बचा लिए गए या दैवयोग से काल-कवलित नहीं हो पाए उनकी संख्या भी सहस्रों में है। मुगल बादशाहों या उनके अधीनस्थ मुसलमान मनसबदारों या काजियों द्वारा दिए गए अभिलेख सब फारसी में हैं। मुगल बादशाहों या उनके अधीनस्थ मुसलमान मनसबदारों या काजियों द्वारा दिए गए अभिलेख सब फारसी में हैं जिनका पृथक् अध्ययन किया जा रहा है। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि इनमें से प्रायः 60 फरमान धर्मान्ध औरंगजेब के हैं।

इनके अध्ययन से यह उजागर हुआ कि उसने वृन्दावन के मंदिरों को 1 इंच जमीन अपनी ओर से नहीं बख्शी। वह मात्र पूर्वजों द्वारा प्रदान किए गए फरमानों को नवीनीकृत करता रहा, वह भी राजपूत राजाओं के दबाव या मनोवैज्ञानिक रूप से उन्हें अनुकूल कर राज्यहित में निरत करने हेतु। देशी-विदेशी मुगल इतिहासकार मानते हैं कि औरंगजेब के द्वारा मथुरा का नाम बदलकर 'इस्लामाबाद' कर दिया गया था। यह इन फरमानों के अध्ययन से भ्रांतिपूर्ण साबित हुआ है। औरंगजेब को इसका श्रेय अब

नहीं दिया जा सकता। हाँ, उसने यह आदेश अवश्य दिया था कि दफ्तर के अभिलेखों में मथुरा के लिए 'इस्लामाबाद' नाम लिखा जाए जो कभी सफल न हुआ। मथुरा उर्फ इस्लामाबाद शाहजहाँ, जहाँगीर तक के काल में फरमानों में प्रयुक्त हुआ। नए तथ्यों के आलोक में सकारण धारणा तो यह है कि यह कार्य स्वयं अकबर का था जिसे परवर्ती मुगलों ने भी जारी रखने की कोशिश की और तास्सुवी औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं की 'श्रीमथुराजी' के प्रति आस्था को उच्छिन्न करने हेतु असाधारण कार्रवाई की गयी। धर्म-प्रिय हिन्दू जनता में गयाप्रसाद, बनारसीदास, मथुरादास, वृन्दावनदास, द्वारकादास, पुष्कर भाई, अयोध्या प्रसाद जैसे पुराकालीन धर्म नगरियों के नाम पर अपने नाम मुगलकाल से पूर्व रखती आ रही थी। करोड़ीराय मथुरादास ने अकबर की मथुरा में मेजवानी की थी।

जयपुरस्थ गो. प्रद्युम्नकिशोर के संग्रह के अवशिष्ट परवानों से ज्ञात होता है कि श्री गोविंददेवजी सं. 1724 में वृन्दावन, वि.सं. 1728 में राधाकुण्ड, वि.सं. 1734 में कामा, वि.सं. 1764 में गोविन्दपुरा (आमेर), वि.सं. 1771 में आमेर घाटी (कनक वृंदावन) में और वि.सं. 1784 तक कनक वृंदावन में मंदिर राधामाधवजी साथ रहने के बाद वि.सं. 1784 में सवाई जयसिंह द्वारा जयपुर बसाए जाने के प्रारंभिक वर्षों में ही चन्द्रमहल के सामने जयनिवास बाग में पधारे।

इस प्रकार इन लोकपूज्य महान् श्रीविग्रहों के संक्रमण के मार्ग का भी परिज्ञान होता है। बड़ी रोचक बात है कि गोविंददेवजी ने अपनी कठिन यात्रा में जहाँ-जहाँ विश्राम किया, वहाँ-वहाँ मंदिर भी निर्मित हुए। स्थानीय राजा, सामन्त और प्रजा की असाधारण श्रद्धा और त्याग का उससे आकलन किया जा सकता है। राजसत्ता के प्राणान्तक आक्रोश और दुर्दम्य विनाश की चिन्ता किए बिना राजस्थानी-जनता में अपने संपूज्य उपास्यों को विश्राम का अवसर दिया। भारतीय जनमानस को ठीक से समझने के लिए ये दस्तावेज खासा मार्ग प्रशस्त करते हैं।

राजा-महाराजाओं की इन श्रद्धाकेन्द्रों को पुण्यार्थ जमीनें देने, भोग एवं शृंगार के प्रबंध में सहकारी बनने का कारण मात्र परम्परा-निर्वाह या प्रजाजनों में स्थान बनाना था। वे स्वयं ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं द्वारा उद्घोषित जीवन का अनुपालन पूरी आस्था से करते थे। वह दिखावे के लिए आरोपित आचरण न था। वह राजाओं द्वारा धर्म-पथ पर चलने की आन थी। उनकी अपनी निजी निष्ठाएँ भी इससे व्यक्त होती हैं। जैसे आमेर (जयपुर) कछवाहा राजाओं की निज भक्ति गोविंददेवजी में थी। अपने युग का सर्वाधिक सशक्त हिन्दू महाराजा जयपुराधीश सवाई जयसिंह स्वयं को

महाराजाधिराज गोविंददेवजी का दीवान मानता था, शेखावत, कछवाहे राजा महाराजा गोपीनाथजी को अपना इष्ट मानते थे, करौली-नरेश मदनगोपालजी (मदनमोहन) को। यहाँ यह उल्लेख्य है कि इन राजाओं द्वारा प्रदत्त परवानों, सनदों, अभिलेखों के सूक्ष्म अध्ययन से यह बात समझ में आती है कि इनके कुल-देवता राम या कृष्ण थे, अन्य देवी-देवताओं में भी इनकी श्रद्धा थी। किन्तु परमनिष्ठा अपने इष्ट में ही थी। इनकी ऐसी निष्ठाओं के कारण संस्कृत, ब्रजभाषा आदि में प्रचुर भक्ति-साहित्य का प्रतिलिपीकरण भी हुआ।

ब्रज-वृन्दावन की कला-प्रवृत्तियों को ये अपने आज्ञापत्रों से अनवरत प्रोत्साहित करते रहे। भारी व्यय करके वृन्दावन के यमुना तटवर्ती अनेक घाट इन्होंने निर्मित कराये जिनमें क़ालीदह घाट, गोपाल घाट, राणावत घाट, प्रस्कंदन घाट, सूरज घाट, जुगल घाट, धूसर घाट, शृंगारवट घाट, विहार घाट, नागरीदास घाट, भीमघाट, गंगामोहन घाट, गोविन्द घाट, भ्रमर घाट, किशोरी रानी घाट, राजघाट उल्लेख्य हैं और इनमें शिल्प-कला कूप इंजीनियरिंग के भी उल्लेख्य नमूने हैं जो राजस्थान के राजा-महाराजाओं द्वारा बनवाये गये थे। इन घाटों की रमणीयता देखते ही बनती है। कालीदह घाट के बुर्ज, भ्रमर घाट और किशोरी रानी (भरतपुर की जाटरानी) की छतरियों का शिल्प देखते ही बनता है। यमुना में नौका विहार करने पर इन घाटों, बुर्जों और गगनोन्नत मन्दिरों की श्रीशोभा आज भी देखते ही बनती है और यह यमुना के प्रचण्ड प्रवाह से टक्कर लेने हेतु न जाने कितने कुएँ गरकाये गये हैं व इन अटूट घाटों का प्रस्तर शिलाओं से निर्माण किया गया है जो काफी गहरे तक यमुना जी के प्रवाह में जाता है। आज भी ये सरकारी निर्माण को चिढ़ाते नजर आते हैं।

सम्राट् अकबर की सुलहकुल और उदारनीति का अध्ययन करने की नीति के लिए उनके शाही फरमान और महाराजाओं के राजस्थानी गद्य में प्रदान दस्तावेज अत्यन्त सुन्दर लिखावट से युक्त हैं। इनको स्रोत सामग्री समझ कर अध्ययन करने की महती आवश्यकता है। 'गोविन्दमन्दिराष्टकम्' से यह तथ्य उजागर होता है कि वृन्दावन में गोविंद मंदिर का निर्माण महाराजा मानसिंह ने स्वलक्ष्मी अर्थात् निजधन से कराया था। 'मानप्रकाश' काव्य, पांडुलिपि सं. 8259, 719 (एशियाटिक सोसाइटी) से ज्ञात होता है। मानसिंह ने इसके निर्माण की आज्ञा अपने शासक (अकबर) से प्राप्त की थी।

इस मन्दिर के निर्माण में राजा कल्याणदास से अत्यधिक सहयोग मिला था। 'गोविंदमंदिराष्टकम्' में इन्हें 'अधिदर्शक' और राजस्थानी शिलालेख में 'काम उपरि' उद्वारांकित मिलता है। गोविन्द मंदिर के अभिलेखागार से विदित होता है कि कल्याणदास

और भैया उग्रसेन कछवाहा ने श्री गोविंद मंदिर की जमीन की खरीद में भी सहायता पहुँचाई थी और यह जमीन नगला नगू की थी। नगला नगू, नगला गोपा, नगला दुसाइच (द्वादशादित्य) और राजपुर की प्राय: सभी जमीन कछवाहा राजपूतों की थी। वृन्दावन धामानुरागावली (सं. 1700 र.का.) में इस विषय में ठोस जानकारी मिलती है-

ये कछवाए ठाकुर सब वृन्दावन के अधिकारी।
तिनके बिन इक तिलहुँ भूमि नहिं मिलति किनहु किहु ठारी॥
ठाकुर मंद्र बने जहँ तहँ सब भूमि सुतिनकिहि दीनी।

X X X X

सूरज बंसहि में रघुवंसी कुस के वंस कहाए।
आंबेर को निकास विदित जग ठाकुर हैं कछवांए॥

X X X X

जंग जुरे जहाँ तहाँ जाइ, तहाँ जंग फौज सों लैंई।
जासो बैर पर्‌यो तासों, कबहु न पीठि कहु दैंई॥

X X X X

ब्रजवासिन की रक्षा के हितहरि नै तिनै बसाए।
सो द्विज संत महंतन के उपकारी परम सुहाए॥

महाराजा मानसिंह, राजा रायसल, रामदास कछवाहा के भीतरी ठोस प्रयत्नों से ही ब्रजमंडल के 35 देवालयों को प्राय: 1000 बीघा जमीन सम्राट् अकबर ने प्रदान की थी।

बीकानेर में यात्री ने 1713 को याददाश्त बही में यह विवरण दिया है—गोबरधन में हरिराय जी का देवालय कछावा राजा भगवानदास ने कराया था। इसके विवरण से कुछ ऐतिहासिक महत्व के सूत्र हाथ लगते हैं। अकबर ने जिन देवालयों को वि.सं. 1656 में जमीन दी थी उनमें स. 1 श्रीमदनमोहनजी, 2. श्री गोविंददेवजी, 3. श्री राधावल्लभजी, 4. श्री किशोरकिशोरीजी, 5. श्री राधाकृष्णजी, 6. व्यासजी के ठाकुर, 7. श्री राधारमणजी, 8. श्री चकोरचकोरीजी, 9. बांके बिहारीजी, 10. श्री गोपीनाथजी, 11. श्री युगल (जोड़ी) किशोरजी, 12. वृन्दावन चंद्रजी आदि मिल जाते हैं। इसका आशय है शाहजहाँ काल में ये मंदिर वृन्दावन में पूरे जौहर पर थे। इसमें मंदिर राधा-माधवजी और किशोर-किशोरी जी के भी उल्लेख हुए हैं। संभवत: भ्रमर घाट के निकट गगनोन्नत शिखरयुक्त राधामाधव मंदिर से ठाकुर विग्रह औरंगजेब की प्रखर मंदिर विध्वंस (सं. 1726 से) नीति से प्रभावित होकर राधामाधवजी को आमेर घाटी में ले जाया गया और वृंदावनी अभिलेखों से पुष्ट होता है कि मंदिर किशोर-किशोरी समूल नष्ट कर दिया गया था। यह बुंदेला

बाग में था। वृन्दावन के राजस्थानी अभिलेखों से अवगत होता है कि कनक वृन्दावन जयपुर के राधामाधवजी के मंदिर में गोविंददेवजी को भी बाद में पधराया गया था और सेवापूजा के लिए पृथक् विधान किया गया था। वृन्दावन में अनुश्रुति है कि राधामाधव गीत-गोविंदकार जयदेव के ठाकुर हैं।

गोविन्द मंदिर में रघुनाथभट्ट और गदाधरभट्ट श्रीमद्भागवत की कथा कहते थे। संभव है कल्याणदास गदाधरभट्ट से प्रभावित होकर उनके आनुगत्य में 'ध्रुपद' रचना करते हों। वि.सं. 1650 की अगहन सुदि 11 को जो पट्टा राजा मानसिंह ने दिया था उसमें राजा कल्याणदास का नाम है। नैणसी की ख्यात में आता है कि उग्रसेन का बेटा कल्याणदास नखाना की लड़ाई में मारा गया। फ्यूहरर के अनुसार उत्तर भारत में हिन्दू-धर्म का सर्वोत्तम प्रासाद (स्थापत्य) है।

...The most impressive religious edifice that Hindu art ever produced, at least in upper India.

वृन्दावन के अधिकतर मंदिर, घाट, छतरी, समाधियाँ, कुंजों में आदि अभिलेखीय और शिलालेखीय सामग्री संचित की जाए तो यह बात प्रमाणित हो जाएगी कि इनमें राजस्थान का योग सर्वाधिक है।

कुछ नई मालूमात नीचे दी जाती हैं—

1. नागरकुंज रूपनगर के राजा महाराजा राजसिंहजी ने बनवायी थी जिसमें ठाकुर ब्रजलोचन जी इनके पुरुखाओं ने स्थापित कराए थे।
2. एक घेरा राजा नागरीदासजी ने बनवाया था जिसमें 1 मंदिर ठाकुर वृन्दावनजी का भेंट बाबाजी सुखरामदास को किया उनकी जीविका हेतु मो. सकराया परगना सहार से धरती बीघा 150 दी।
3. गलता के रामानंदी सम्प्रदाय के वैष्णवों ने एक मंदिर बनाया अठखंभा (वृंदावन) में।
4. प्राचीन मंदिर अटलबिहारी (बिहार घाट) महंत हरीदासजी हरवंशी नागावत मालिक हैं और सेवार्थ भरतपुर से 25 बीघा जमीन राजपुर (कस्बा वृंदावन) से मिली हुई है और जमीन बीघा 50 राजा नवलसिंह से संप्राप्त हुई है।
5. एक मंदिर ठकुरानी जसी कस्बा दलवाड़ा (उदयपुर) ने बनवाया ठाकुर जसोदानंदनजी।

6. एक मंदिर खुड़ाना के ठाकुर अजबसिंह ने बनवाया जिसमें ठाकुरजी वृंदावन बिहारीजी पधाराए 1 कोठी तथा 40 बीघा जमीन खुड़ाना जिला अलवर से दी। (नोटः- ये विवरण वृंदावन की 'श्रीजी कुंज' के महन्त व्रज वल्लभशरणजी के संग्रह के अभिलेखों से संप्राप्त हैं।)

भक्तिमती मीराबाई के पद में गोविंददेवजी के दरसन का उल्लेख है। गोविन्ददेवजी का प्राकट्य रूप गोस्वामी के समय सं. 1590 माना जाता है। किन्तु तब गो. काशीश्वर प्राकृतिक कुंज में गोविंददेवजी की सेवा-पूजा करते थे। महाराजा मानसिंह की काशीश्वर गोस्वामी से भेंट हुई थी। तभी रूप गोस्वामी की प्रेरणा पर इसका महान् स्थापत्य निर्मित हुआ। एक फारसी फरमान से यह जयसिंह की है जो महाराजा मिर्जा मानसिंह के समय से ही वंशानुक्रांत हुई। मिर्जाराजा जयसिंह से पूर्व और मानसिंह तक आमेर के किसी कछवाहा राजा या राजकुमार के दस्तावेज नहीं पाए जाते। इसका आशय है कि इस मंदिर में सर्वाधिक रुचि इन राजाओं की थी। तत्पश्चात् सवाई जयसिंह की भी रही। यों कामा के राजा जैतसिंह के भी अनेक राजस्थानी दस्तावेज पाए जाते हैं।

गोविन्द मंदिर की महिमा का परिज्ञान राधाकृष्ण चक्रवर्तीरचित 'साधनदीपिका' नामक संस्कृत ग्रंथ से मिलता है। इसमें अकबर से लेकर औरंगजेब तक के फर्मान विशेष सहायता करते हैं।

बादशाह जहाँगीर के शासन के प्रारम्भिक वर्ष अर्थात् सं. 1685 का एक अभिलेख जो दीवान सत्रसिंह (छत्रसिंह) मिर्जा मानसिंह के लघु भ्राता राजा माधवसिंह के सुपुत्र का है, से अवगत होता है कि श्री गोविन्द मन्दिर को रु. 380/- श्री मदनमोहनजी, श्री केशवरायजी (मथुरा), श्री जुगलकिशोरजी, श्री किशोरकिशोरीजी (पूर्णतः अब ध्वस्त), श्री गोपीनाथजी, श्री राधावल्लभजी, श्री राधारमणजी को प्रति मन्दिर रु. 180/- भोग (प्रसाद) हेतु वार्षिक दिये गये थे। मन्दिर बिहारीजी, राधावल्लभजी, जुगलकिशोरजी, किशोरकिशोरीजी जैसे अकबरकालीन मन्दिरों के सम्बन्ध में यह प्रथम अभिलेखीय प्रमाण है। इससे इनके निर्माण का ऐतिह्य ही नहीं प्रकट होता उनकी स्थिति का अभिज्ञान भी होता है।

श्री मनदमोहनजी की सेवा पूजा करने के लिए महाराजा करौली ने वि.सं. 1784 में सेवायत गो. सुवलदासजी से अपनी आन्तरिक इच्छा प्रकट की। वि.सं. 1785 में श्री मदनमोहनजी सवाई जयसिंह के राज्यकाल में जयपुर से ही करौली पधारे। साहित्यिक साक्ष्य है कि करौली नरेश महाराजा गोपालसिंह को सवाई जयसिंह ने अपनी सुता ब्याह दी। मदनमोहन जी उसके इष्ट थे जो आन्तरिक इच्छा से उन्हें जयपुर से करौली

ले गई। वि.सं. 1786 में करौली नरेश महाराजा गोपालसिंह देव ने मदनमोहनजी का पट्टा किया।

ऐसा उल्लेख है कि श्री मदनमोहन विग्रह कुम्हेर में बदनसिंह के अधिकार में था। सोमवार कार्त्तिक पूर्णिमा संवत् 1799 को सूर्यास्त से चार पहर पहले जयपुर लाया गया। महाराजा साहब ने ठाकुरजी (सीतारामजी) के बाहर के आँगन में जाकर मदनमोहन जी के दर्शन किये। फिर इस विग्रह को सीतारामजी के मन्दिर के मध्य होकर बादल महल ले जाया गया और वहीं स्थापित किया गया। फाल्गुन कृष्ण 8 संवत् 1799 मंगलवार को जाटों के देश से जो श्रीविग्रह आया, वह करौली भेज दिया गया। महाराजा ने सीतारामजी के मन्दिर के बाहर के आँगन में आकर ठाकुर मदनमोहनजी की पालकी की परिक्रमा की और प्रणाम करके महल में चले गये। राजा गोपालसिंह दरबार में बैठे थे। महाराजा ने उनको महल में बुलाया और विग्रह उनके सुपुर्द किया गया फिर वे विग्रह सहित करौली के लिए रवाना हुए। वृन्दावनधामानुरागावली (वि.सं. 1900 में रचित) में उल्लेख आता है-

एक समय श्री वृन्दावन में भाजरि परि अगारी।
अपने अपने ठाकुर लैकै भाजे सकल पुजारी॥
मदनमुहन कौ लैं कुम्हेरि में सुवलानन्द भगि आए।
सूरजमल नृप मंदिर करकै तिनकौं तहाँ पधराए॥
नृप जयसिंह कांन ते सुनतहि तहँ असवार पठाए।
गंग न्हांनहि कौ छल करिकै रहे विसातह छाए॥
मिलि सेवगरू पुजारिन सों ठाकुर बोरे मधि राख्यो।
कही जात गाड़ा चामर के पूछ्यों तिन सौ भाख्यौ॥
छोड़ पुजारी एक तहाँ इक इक सब तहाँ ते धाए।
रात्यौं राति मदनमौहन कौं लै जैपुर में आए॥

इससे यह निश्चय होता है कि मदनमोहनजी भरतपुर राज्य से ही जयपुर पहुँचे। चूँकि महाराजा सवाई जयसिंह का वि.सं. 1800 में निधन प्रमाणित है; अत: ये श्रीविग्रह भरतपुर (कुम्हेर) से ही वहाँ पहुँचा और वहाँ से करौली।

करौली के राजा महाराजा, रानी महारानियाँ भी मदनमोहनजी के सेवायतों का अत्यधिक सम्मान करते थे। ऐसा राजस्थानी भाषा में लिखित ऐतिहासिक दस्तावेजों से प्रकट होता है।

करौली नरेश महाराजा गोपालसिंह ने एक बार राजकोष खाली होने पर ठाकुर श्री मदनमोहनजी से 31001 रु. उधार लिया था पता नहीं यह उधार कितना ब्याज देकर कब लौटाया गया।

स्याही, कागज, लेखन कला, सही, मोहर, निशान, भाषा, लिपि, अंकविन्यास, ठाकुर स्मरण आदि की दृष्टि से भी इन अभिलेखों का अध्ययन और उपादेय है।

इतिहास लेखन में बड़ी बातों की सूक्ष्म छान-बीन की जाती है, किन्तु सामान्यतः छोटी बातों को उपेक्षित कर दिया जाता है किन्तु शासन प्रक्रिया, आर्थिक विनियोजन, समाज संरचना, युगीन परिस्थिति, संस्कृति, कलात्मक और धार्मिक विविध अभिचेतनाओं के आयामों का अध्ययन इन राजस्थानी राजाओं द्वारा प्रदत्त अभिलेखों से हो सकता है, होना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि क्षेत्रीय इतिहास की संरचना और वैष्णव धर्म-सम्प्रदाय के विकास-क्रम के अध्ययन के लिए यह आकर सामग्री है। एकनिष्ठ क्षेत्रीय अध्ययन को किसी विराट् समग्रता का पूरक अध्ययन वैज्ञानिक युग में आवश्यक हो गया है। वस्तुतः गौण से ही विराट् का उद्‌भव होता है। वृन्दावन की मधुर और ललित संस्कृति पूरे भारत की सांस्कृतिक चेतना की धुरी है। भारतीय संस्कृति में राम-कृष्ण शिव-शक्ति संचेतना असाधारण महत्व रखती है। राम और कृष्ण में भी कृष्ण ने कलाओं-स्थापत्य, शिल्प, नृत्य, चित्र, संगीत को जो विस्तार दिया और भावात्मक एकात्म निष्पन्न किया उसकी कोई सानी नहीं है। मुगलकाल में **'राम कृष्ण कहिये उठि भोर'** (स्वामी अग्रदास रैवासा गादी और अष्टछापी नन्ददास) और **'रघुनंदन जदुनंदन गावौ'** (स्वामी तुलसीदास) के एकीकरण से हिन्दू जनमानस को एकता के सूत्र में बाँधे रहते थे। यदि समाज की संरचना, संरक्षा, प्रचार-प्रसार में राजस्थान की क्या भूमिका थी, इसका परिज्ञान करना हो तो इन दस्तावेजों से ही अवगत होता है।

गोविन्द मन्दिर के राजस्थानी प्रस्तर अभिलेखों से परिज्ञात होता है कि इसका निर्माण महाराजा मानसिंह ने वि.सं. 1647 में कराया और इसके शिल्पी थे — दिल्ली के गोविन्ददासजी तथा कारीगर गोरखदासजी।

बंगाली वैष्णवों का वृन्दावन में महाप्रभु चैतन्य और उनके परमविरक्त, प्रकांड पंडित, सुकवि भक्त-वैष्णव आचार्य रूप, सनातन, रघुनाथदास, जीवगोस्वामी, रघुनाथ भट्ट, गोपालभट्ट, काशीश्वर, नारायणभट्ट, कृष्णदास ब्रह्मचारी आदि के प्रभाव से कृष्ण-भक्ति

आन्दोलन को भारी बल मिला। वि.सं. 1626 के अकबरी फरमान से प्रकट होता है कि गोविंददेवजी का मंदिर रूप गोस्वामी का मंदिर कहलाता था।कछावा की वंशावली निम्नलिखित अंश में मन्दिर गोविंददेव के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है-

खांनखाणा दख्यण में बरार लड़ै छो सो पांच बरस झगड़ो कीयो अर खाली हुतो नहिं जदि आसफ खां वजीर पर पातस्याह सलाह करि ज्यो महराज बीना बरार खाली होय नहीं सो हीजूर पातस्याह सुं मील्या सो पातस्याह बहोत क्रपा करि बरार पर भेज्या अर माही मरातिब बकस्यो।पछै सीख कर वृंदावन गया उठै येक कासीसर जी गुंसाई के मान श्री गोविंदजी बीराजै छा सो म्हाराज मानस्यंघ जी के सपने आय आग्या करी तुम्हारी सेवा करि सो गुंसाईजी के आग्रह कर दीनां अर मीद्रं बणायो अर गुंसाई के हाथी पालकी वगैरह सब सरंजाम हो गयो। पछै आप कूंच करि मीद्रं बणाय म्हलां में माता सिलाह माहिनै विराजमान करि आप दीख्यण पधारया।

— सं. 1905 में प्रतिलिपित, संपा. श्यामसिंह रानावत (1981)

राष्ट्रीय अभिलेखागार को प्रदत्त बादशाह अकबर के एक दुर्लभ फरमान से जो वि.सं. 1655 में जारी हुआ 35 देवालयों जिनमें केशवराय (केशवदेव), भूतेश्वर; रघुनाथ; गोकरननाथ; गोवर्धन नाथ और धौरो (संभवत: ध्रुव या धवलेश्वर) को कस्बा मथुरा से 113 बीघा जमीन प्रदान की गई थी; गोविन्द राय (गोविन्ददेव); गोपीनाथ; राधारमन; जुगलकिशोर; बिहारीजी; व्यास के ठाकुर (हरिराम व्यास के सेव्य) जुगलकिशोरजी; वृन्दावनचन्द्र; जसोदानन्दन; राधारमन; राधाकृष्ण; कल्यानराय; राधाजीवन, राधारवन जगन्नाथ; कृष्ण राय चकोरी और नन्दनन्दन को नगला दुसाइच (द्वादशादित्य), जो अब वृन्दावन का अभिन्न भाग है और जहाँ मौर्यकाल से गुप्तकाल तक की पुरासम्पदा प्रकाश में आयी है।) से 529 वीघा;

— अक्रूर, धौलेरा (मथुरा वृन्दावन के मध्य) से 40 बीघा;

— मंदिर द्वादशादित्य, नंदनन्दन को मौजा सुनरख (वृन्दावन के निकटवर्ती गाँव) को 75 बीघा;

— मंदिर हरिराय गोवर्धनधारी गोपालराय, चतुर्भुज; द्वारकाधीश को मौजा गोवर्धन से 80 बीघा;

— मंदिर संकर्षण मौजा वासोली परगना होडल से 20 बीघा जमीन;

— मंदिर संकेतवट को मौजा सहार से 10 बीघा;

— राधकुण्ड को मौजा आरीठ परगना सहार से 10 बीघा;

– मंदिर साँवरी भंवर वल्लभ मौंजा चकसौली परगना सहार से 10 बीघा;
– मंदिर वृषभानुपुर (श्रीजी मंदिर) मौंजा वरसाना परगना सहार से 10 बीघा; और
– मंदिर नंदराय को मौजा नंगग्राम परगना सहार से 30 बीघा जमीन प्रदान की गई थी।

ब्रज मंडल के 35 देवालयों को केन्द्रीय सत्ता के महान् मुगल सम्राट् अकबर द्वारा शिव और वैष्णव मन्दिरों को इतनी भारी अहमियत दिया जाना किसी महत्वपूर्ण नीति का सुपरिणाम था। यद्यपि अकबर ने सरकार अवध में सय्यद मुबारिज़ और उनके भाइयों को 400 बीघा जमीन मददेमाआश स्वरूप प्रदान की थी। किन्तु हिन्दुओं के जन-श्रद्धाकेन्द्रों को प्रायः 1000 बीघा धरती दिया जाना हिन्दुओं के प्रति अकबर की विशेष उदारता ही मानी जायेगी। इसमें राजस्थानी हिन्दू मनसवदारों का भी प्रदेय अवश्य रहना प्रमाणित होता है। मन्दिर गोविन्ददेव को सरकारी खजाने से मदद दी जानी प्रमाणित है। हम सोरों (सूकरक्षेत्र) के प्रसंग में देखते हैं कि अकबर सौरूं घाट से प्रायः 40 वर्ष तक गंगा जल मँगाता रहा। गोविन्द मन्दिर के सेवायत जीवगोस्वामी द्वारा विरचित काव्यात्मक शिलालेख 'गोविन्दमन्दिराष्टकम्' (श्लोक 2) में भी यह संकेत इस प्रकार मिलता है—

श्रीमानर्कवरो यदा भुवमपात सर्वा निसर्गदसा
सर्वः सौख्यमवाप सज्जनगणः स्वधर्ममुवैर्भजन।
श्री गोविन्दपदं तदैतदपि तत्वासाय सद्वैष्णवा
लम्भे लम्भमहो सुखेन ददते तस्मै सदैवाशिषः॥

श्रीमान् अकबर शासनारूढ़ हुए तब अपने धर्म का भजन-संकीर्तन करते हुए सज्जनवृंद सर्व विधि सुखी हुआ इससे (अकबर) श्री गोविन्ददेवजी के निवास हेतु भूमि पाकर सद्वैष्णव-जन सदा प्रसन्नतापूर्वक श्रीमान् अकबर को आशीर्वाद देते हैं। सम्राट् को उनके समकालिक महान् हिन्दू आचार्य द्वारा दिया यह प्रमाण पत्र विशेष महत्व रखता है।

विंसेण्ट स्मिथ लिखता है कि वि.सं. 1635 के बाद अकबर में असाधारण परिवर्तन आया और उसी ने वंगाल में सूबेदार (गवर्नर) रहते हुए गोविन्द मन्दिर वनाने का संकल्प लिया था। जैसोर के राजा केदाररायने अपनी कन्या का विवाह मानसिंह से किया था। सम्भवतः मानसिंह के ऊपर चैतन्य सम्प्रदाय के प्रति रुझान इसी से हुआ हो। यों महाराजा पृथ्वीराज कछवाहा से ही वैष्णव भक्ति चली आ रही थी। राजस्थानी

दस्तावेजों के अतिरिक्त साहित्यिक साक्ष्यों में वृन्दावनधामानुरागावली (गोपाल कविराय कृत) से यह प्रमाणित होता है कि वृन्दावन में राजा भारमल का क्षेत्र चलता था और महाराजा आसकरण के ठाकुर चतुर्भुज की प्रतिमा नरवरगढ़ से वृन्दावन आ गई थी।

वि.सं. 1647 में यह मन्दिर जब बन कर पूर्ण हुआ तो उसके भोगराग के प्रबन्ध हेतु महाराजा मानसिंह एक स्वर्णमुद्रा प्रतिदिन प्रदान करते थे जिसे आगे और बढ़ा दिया गया। राजा टोडरमल और राजा मानसिंह ने वृन्दावन में गोविन्ददेव, गोपीनाथ और मदनमोहन को सर्वाधिक आर्थिक मदद दिलवाई। वृन्दावन के राजस्थानी अभिलेख जो अब अधिकांशतः विक्रम संवत् 1726 में औरंगजेब द्वारा किये गये मंदिर ध्वंस के समय राजस्थान में संक्रमण कर गये।यद्यपि काफी अभिलेख नष्ट हो गये हैं और काफी बहुत बुरी हालत में हैं तथापि जो अवशेष हैं उनके लिए इन मन्दिरों के गोस्वामियों/सेवायतों को उनके लिए श्रेय देना चाहिए। इन अभिलेखों को राजस्थान पत्रिका में भलीप्रकार अवगत कराया गया है किन्तु इन अभिलेखों की शोधपरक वैज्ञानिक मीमांसा अभी भी अपेक्षित है। इसके अध्ययन के लिए व्यापक अध्ययन और धैर्य की आवश्यकता है।

शाहजहाँकालीन अभिलेख जो जमादि उल अव्वल सन् 1053 हिजरी अर्थात् वि.सं. 1700 को जारी हुआ। इसमें स्पष्ट उल्लेख है 'दवाला गोविन्ददेव जी मिलकियत राजा मानसिंह वृन्दावन में वाके है। जिसमें मओज़िज़ व मुख़तार साहब इकबाल व जलालत पनाह (राजा) जयसिंह ने दवाला मजकूर की परस्तिश के अहद पर राधाकृष्ण चक्रवर्ती को मुकर्रिर किया है।' (अनुवाद)-जो 1946 ई. में मथुरा के अतिरिक्त सिविल जज को कोर्ट में 184 संख्यक एक्ज़ीबिट के रूप में पेश हुआ।यह बात पूरी गम्भीरता से विचार करने को प्रेरित करती है कि औरंगजेब तक इस मन्दिर को सहायता देते रहे किन्तु औरंगजेब ने कदाचित् ही कोई जमीन अपनी ओर से इन मन्दिरों को प्रदान की हो। यह तो निश्चित है कि एक साथ इतने मन्दिरों को ब्रजमण्डल में राजा-महाराजाओं के सम्पोषण के साथ मुगल सत्ता ने सहयोग देकर न केवल ब्रज-मण्डल को प्रभावित किया अपितु पूरे देश पर इसका असर हुआ। यहाँ यह अवगत कराना असंगत न होगा कि इन मन्दिरों में सेवापूजा, भोगराग, सिंगार के साथ ललित कलाओं का भी सम्पोषण होता था। ध्रुपद गायकी और सांझी कला को यहीं पर अत्यधिक विस्तार मिला।

जैन मुनियों को दिये फरमानों व गोस्वामी विट्ठलनाथ को दिये फरमानों आदि से भी अकबर की उदारनीति से स्पष्ट संकेत मिलता है। ध्यातव्य है कि गौड़ीय वैष्णव आन्दोलन का जीवगोस्वामी जैसे महान् आचार्य, दार्शनिक, सुकवि, सन्त के कुशल निर्देशन में बंगाल का वैष्णव आन्दोलन वृन्दावन से ही संचलित होता था और जीवगोस्वामी को उनकी देहानगी अर्थात् वि.सं. 1665 तक चैतन्य सम्प्रदाय के मुख्य देवालयों का

अधिपति माना गया। गोस्वामी विट्ठलनाथ के नेतृत्व में गुजरात और डेरागाजी खाँ में वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार हो रहा था। राजा भारमल, राजा भगवानदास, महाराजा मानसिंह, राजा रायसल दरबारी, रामदास कछवाहा, राजा कल्याणदास, मथुरादास सहगल (करोड़ी), और राजा टोडरमल वृन्दावन के इन मूर्द्धन्य आचार्यों से परामर्श लेकर वृन्दावन और ब्रज के हिन्दू मन्दिरों को सहायता पहुँचा रहे ये जीवगोस्वामी, नारायण भट्ट, परमानन्द भट्टाचार्य, कृष्णदास ब्रह्मचारी, मधुपंडित, भवानंद, श्रीचंद आदि से समय-समय पर परामर्श पाते रहे होंगे। एक फारसी जहाँगीरकालीन अभिलेख से प्रकट होता है कि गोस्वामी श्रीचन्द जहाँगीर के दरबार में पहुँचे थे। इसी प्रकार गोपालदास पुजारी का भी मुगल दरबार पर प्रभाव था। इनकी सात्विकता, सरलता, दैन्य और वैष्णवोचित सदाचार से अकबर अवश्य ही प्रभावित हुआ था। ब्रजमण्डल में यह जनश्रुति चली आ रही है कि जीवगोस्वामी को अकबर ने फतहपुर सीकरी निमन्त्रित किया था। साहित्यिक साक्ष्य से अवगत होता है कि सम्राट् अकबर जीवगोस्वामी को आगरा से लेखन कार्य के लिए कागज भिजवाता था। वस्तुतः जीवगोस्वामी का ग्रन्थागार सर्वाधिक समृद्ध था। यद्यपि अनगिनत महान् ग्रन्थ और अभिलेख जमुना मैया के भेंट चढ़ गए, किन्तु काफी बचा लिये जो अब वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन में सुरक्षित हैं।इनमें फारसी और राजस्थानी गद्य के दुर्लभ ऐतिहासिक दस्तावेज सुरक्षित हैं।

वृन्दावन के मंदिरों के विशाल जगमोहन और परिसर में हिन्दू शास्त्रों की चर्चा होती थी। श्रीमद्भागवत, गीता आदि शास्त्रों के प्रसंगों से जनमानस को रसान्वित करने के साथ निराशा के घटाटोप उच्छिन्न कर चारित्रिक दृढ़ता का संस्कार भी दिया जाता था। आपत्काल में धैर्य रखने का उपदेश भी कथाओं द्वारा संक्रमित कर दिया जाता था।

सकल भेद विवर्जित भक्त समाज की संरचना हो रही थी। देश-देशान्तर से पधारे दर्शनार्थी नई ऊर्जा लेकर वृन्दावन के मन्दिरों से प्रस्थान करते थे। इस प्रकार कृष्ण भगवान् की लीला-स्थली में पूरे भारत का जबरदस्त 'Social Interaction' होता था।

वृन्दावन के गोस्वामियों में और वैरागियों में परस्पर झगड़ों, दुराचरणों पर राजस्थान के कछवाहा राजा सवाई जयसिंह कड़ी निगाह रखे हुए थे और उनके हिदायत पत्र का अनुपालन करने पर ही झगड़े शान्त हुए। उनके निदेश पर ही उनके कार्यकाल में शिथिल चरित्र गोस्वामी गृहस्थ बने। इस प्रकार ये अनेक राजस्थानी दस्तावेज गोस्वामी प्रद्युम्नकिशोर के पास जयपुर में सुरक्षित है।

एक अभिलेख से निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्य सामने आते हैं—

1. मुसलमान मुत्सद्दी ठाकुरद्वारों की जायदाद हड़प लेते थे;

2. मन्दिर प्रबन्ध के मामलों में दख़लंदाजी करते थे;

3. मन्दिर की जायदाद हड़प कर हिन्दू प्रजा को सताते थे;

4. राजपूत राजा- सविशेष कछवाह राजा-महाराजा इन देवालयों की जायदाद को उनके अधिकारियों को सौंपने और हिन्दू प्रजा को सन्तुष्ट करने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। वृन्दावन के मन्दिरों को राजस्थान तक से जमीनें प्रदान की गईं थीं। खण्डेला के रायसल दरबारी ने सेवली (सीकर) की 1300 बीघा जमीन मन्दिर गोपीनाथ को पुण्यार्थ प्रदान की थी।

हम यह दृढ़तापूर्वक कहना चाहते हैं कि उस युग में हिन्दू समाज के सम्पर्क और विनिमय-स्थल ये देवालय ही थे। देश के वृहत्तर वर्ग/समाज को अपने कार्य—कलापों और धार्मिक उत्सवात्मक अनुष्ठानों से सहज ही, पराजित हिन्दू मानस में जीने और आनन्दपूर्ण जीवन यापन करने की लालसा जगाते रहते थे। इन मंदिरों को राजस्थानी राजाओं, सामन्तों, सरदारों आदि द्वारा दी जाने वाली इम्दाद कोई निर्जीव क्रिया न थी, प्रत्युत् यह धर्म के प्रश्रय से सजीव सार्थक सोद्देश्य दूरंगम परिणामकारी एक महत्वशाली प्रक्रिया थी। इस प्रकार हम इस निर्णायक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वृन्दावन के राजस्थानी ऐतिहासिक गद्य के दस्तावेज न केवल वृन्दावन के क्षेत्रीय इतिहास के लिए महत्वशाली हैं, अपितु इनका राष्ट्रीय महत्व भी है।

पूर्व निदेशक, वृन्दावन शोध संस्थान
रीडर अध्यक्ष, हिन्दी विभाग (सेवा निवृत्त)
के. ए. (पी.जी.) कॉलेज, कासगंज-207123

ऐतिहासिक वार्ताँ — एक अध्ययन

डॉ. प्रतापसिंह राठौड़

राजस्थानी भाषा काव्यों की तरह यहाँ के ऐतिहासिक गद्य साहित्य का भी विशिष्ट महत्व है। बातों, ख्यातों, वचनिका, पीढ़ी, वंशावली, पट्टे-परवाने, हाल-हकीगत, बहियों आदि में राजस्थान का इतिहास सुरक्षित है। इनमें भी बातों व ख्यातों का विशेष महत्व है। बात व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध होती है, ख्यात में वंश या अनेक वंशों का विवरण होता है। ऐतिहासिक एवं अर्द्ध ऐतिहासिक बातों में ऐतिहासिक पुरुषों के शौर्य, स्वाभिमान, त्याग-बलिदान, देशप्रेम का सजीव चित्रण है। साहित्यिक-रचना होने से इनमें कल्पना का पुट होता है। इनमें राजस्थान के भव्य सांस्कृतिक आदर्शों व प्रेरक जीवन मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। इतिहास प्रसिद्ध वीरों की वीरता, दान्यता के साथ इनमें समाज का भी चित्रण है। राजस्थान के राजाओं के दिल्ली साम्राज्य से सम्बन्धों का भी ये सूचक हैं। अधिकतर बातें राजपूत राजाओं तथा वीरों से सम्बद्ध हैं जिनमें उनके शौर्य, देश-भक्ति व त्याग-बलिदान का चित्रण है। स्व. सूर्यकरणजी पारीक ने सर्वप्रथम "राजस्थानी वार्ता" संग्रह प्रकाशित किया जिसमें जगदेव पँवार, जगमाल मालावत, वीरमदे सोनगरा तथा पाबूजी री बात आदि है।

"ऐतिहासिक बातां" का सम्पादन राजस्थानी साहित्य के विद्वान्, परम्परा के सम्पादक डा. नारायणसिंहजी भाटी ने परम्परा भाग-II (1961 ई.) में किया है।[1] राव रिणमल री बात, राव जोधाजी रै बेटा री बात, राव मालदेरी बात, राव चन्द्रसेन री बात, राजा उदैसिंघ री बात, महाराज सूरजसिंघजी रै राज री बात, सोजत रै मंडल री बात एवं राव लाखै री बात इस संग्रह में हैं। ये बातें 1703 वि. की लिपिबद्ध है। अंतिम बात की अंतिम पंक्ति द्रष्टव्य है—"आ बात मु.सुन्दरदास लीखाई-संवत 1703 सांवण वद 11 गाँव पादरु।" मुँहणोत नैणसी री ख्यात का रचनाकाल 1707-25 वि. है। ये बातें भी नैणसी के भाई सुन्दरदास ने लिखवाई हैं। अत: बातों की प्राचीनता असंदिग्ध है। मारवाड़ के इतिहास की इनमें महत्वपूर्ण जानकारी है।

1. राव रिणमल री बात — मुख्य घटनाएं—

1. राव रिणमल पर सोनगरों की घात व सोनगरी राणी द्वारा उनकी रक्षा।

2. बादशाह से चूंडा का युद्ध व चूंडा द्वारा टीकायत रिणमल से मोहिलणी के पुत्र काह्ना को टीका देने का वचन लेना।

3. रिणमल की बहिन राजकुँअर का नारियल चूंडा को भेजना, राणा का निश्वास छोड़ना, टीका खेता को देना

4. खेता के पुत्र मोकल की चाचा-मेरा द्वारा हत्या, रिणमल का बैर लेना।

5. कुंभा द्वारा रिणमल पर चूक और जोधा का बच निकलना।

थोड़े-बहुत अन्तर से सभी बातों की इतिहास से पुष्टि होती है। धणला में राजपूत समूह के साथ रिणमल शिकार खेलते हैं, चार-पाँच जगह भुंजाई होती है। लड़की की शादी करके विश्वास में ले सोनगरे रिणमल को मारने का प्रयास करते हैं। पर सोनगरी राणी प्रदत्त वरदान के तहत अपना बागा पहनाकर महलों से प्रात: निकाल देती है। सोनगरों का धोखा सफल नहीं होता। रिणमल क्रोध में धणला आ, सेना सजा सभी सोनगरों को मार डालते हैं। मात्र एक लाला, जो ननिहाल में जैसलमेर था, बचता है, जिससे जोधा की बेटी सुन्दर का विवाह करा देते हैं। रणधीर, अखैराज उसी के वंशज थे।

इतिहास की कसौटी पर बात—राव चूंडाजी ने रिणमल को धणला (सोजत) दिया था। काह्ना को टीका का वचन लेकर आराम से प्राण त्यागे थे। रेउजी ने भी इस घटना का उल्लेख किया है।[2] बात में पुरोहित-व्यास द्वारा रिणमल की बहिन राजकुँअर का नारियल राणा खेता को भेजने का उल्लेख है। चूंडा के लिए भेजा गया था पर राणा ने निश्वास छोड़ा तो चूंडा की स्वीकृति इस शर्त पर कि यदि पुत्र हो गया तो वही उत्तराधिकारी होगा, पुरोहित ने हाँ कर दी। "आज चित्तौड़गढ रांणो श्री खेतो राज करै।...... आगे श्री दीवाणं रै खवास रा बेटा चाचो-मेरौ आगै छै। बाई बख्तावर रै बेटो हुवौ। तिणरो नांम मोकल दीधौ।[3]" पर इतिहास ग्रंथों में राणा लाखा से रिणमल जी की बहिन हँसाबाई के विवाह का उल्लेख है। चूंडाजी के आग्रह से हंसाबाई का विवाह लाखाजी से किया गया जिसके गर्भ से मोकलजी का जन्म हुआ।[4] महाराणा यशप्रकाश में लाखा के पुत्र चूंडा ने यह विवाह कराया था पर रिणमल की बहिन की जगह पुत्री का उल्लेख है।[5] मोकल को 1490 वि. में खेता के पास वानिया पुत्र चाचा-मेरा ने धोखे से मदारिया के पास मारा था। रिणमल ने चाचा-मेरा को मारकर बैर लिया था। महपा पँवार भाग गया था। बात के अनुसार "राणा खेताजी री बेटी रावजी

बरछीयां री चँवरी बाँध परणी। बीजां उमरावाँ री बेटी उमरावाँ ने परणाई।"[6] पर उन्हें सरदारों के कहने से चूंडा की राय से कुंभा ने 2 नवम्बर 1438 ई. (कार्तिक बदि 30, 1495 वि.) को महलों में सोते समय मरवा दिया। कुंभा ने विपत्ति के सहायक का विचार नहीं किया। कुंभाजी आदमी 23 धावड़िया जवानां ने हुकम कीयो......सोलै धावड़ियां नुं मार नै आप रांम सरण हुआ। दोय धरम दुवार सूं छोड़िया तरै बरधुदार गढ़ ऊपरा करनाल बजाई जिणमें कह्यौ—"थांरौ रिणमल मारियौ, जोधा भाजि सकै तौ भाजि।" नैणसी री ख्यात की बात में डूंम का उल्लेख है। डूंम ने रिणमल जी को इस "चूक" की पूर्व सूचना भी दे दी थी। महल से बाहर-भीतर आते देख राणी ने भी कुंभा को सचेत किया था कि हरामखोरों के कहने से रिणमल से चूक मत कर बैठना जिसने आपके पिता का बैर लिया, आपको टीका दिया, आपकी धरती बसाई। कुंभा ने छोकरी भेजी पर महपा आदि ने सोचा रिणमल बच गया तो हम मरे। अत: रिणमल पर प्रहार किया और छोकरी को कीमती माला दी और कहा—दीवान को कह देना, आपने फरमाया वह काम कर दिया। भारमली दौसी द्वारा रिणमलजी को चारपाई से बॉधने व खाट समेत खड़े हो 17 को मारने के उल्लेख मिलते हैं। उस समय डूंम ने दोहा सुनाया था—

चूंडा अजमल आविया, मांडू हूँ धक आग।

जोधा रणमल मारिया, भाग सकै तो भाग॥

चूंडा के पीछा करने पर चीतरोड़ी व कपासण के बीच में भीषण युद्ध हुआ। जोधा थोड़े से सैनिकों के साथ काहुनी पहुँचे। फिर सेतरावा के रावत लूणा (मौसा) से कुछ अश्व लिए। सिद्ध हरबू सांखला का आशीर्वाद पा मंडोर छीन लिया था।

2. "राव जोधाजी रै बेटां री बात" में जोधाजी की गया-यात्रा, आगरा में राजा कर्ण राठौड़ व बादशाह से मिलने, जोधपुर-दुर्ग-निर्माण व रणमल के बैर लेने, पीछोला में घोड़ों को पानी पिलाने, नींबा, सातल, बाघा, सूजा आदि का संक्षिप्त वर्णन है। संवत् 1518 वि. में जोधा ने गया-यात्रा की थी। कन्नौज घराने के राठौड़ कर्ण ने उनको आगरा में बादशाह बहलोल लोदी से मिलाया था। तभी यात्री-कर माफ कराया था। लौटते वक्त जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से भी यात्री-कर छुड़ाया था।[7] बात के अनुसार "राव जोधौ संवत् 1515, जेठ सुद 11, चिड़ियाटूंक रै भाखर माथै जोधपुर रौ गढ़ मांडियौ।" (पृ. 35) सूरजप्रकाश (करणीदान) में भी यही तिथि दी गई है।

पनरैसे समत पनरोतड़ै, सुदी जेठ ग्यारस सनढ़।

अवगाढ़ जोध रचियौ, इसौ गाढ़पूर जोधांण गढ़॥120॥

ख्यातों में भी यही तिथि है किन्तु रेउजी ने संवत् 1516 जेठ सुदी 11 शनिवार (12 मई 1459 ई.) लिखा है।[8] मारवाड़ रा परगनां री विगत भाग। (पृ. 38) में भी वृष लग्न, स्वाति नक्षत्र ज्येष्ठ सुदि 11 शनिवार संवत् 1515 में दुर्ग निर्माण कार्य आरंभ होना वर्णित है। संवत् 1472 वैशाख वद 14 जन्म, राव संवत् 1551 काल कियौ। पर रेउजी ने बदी 4 दी है तथा निधन तिथि 1545 वि. वैशाख सुदी 5 मानी है। रिणमल के बैर में कुंभा की दुर्दशा करने व पीछोला तट पर अश्वों को जल पिलाने का वर्णन है। बात में कंवर नींबा, सातल, बाघा के शौर्य का संक्षिप्त विवेचन है।

3. तीसरी बात "राव मालदे री बात" है। संग्रह की यह सबसे लम्बी बात है। इसमें जैता-कूंपा की शेरशाह से वेढ़, भागेसर थाना पर जैसौ भैरवदासोत की मुंगलों से लड़ाई व विजय, मालदेवजी के भाद्राजून, जालौर व नागौर लेने का उल्लेख है। कूंपा के बीकानेर लेने व राव जैतसी के काम आने का वर्णन है। घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं। बात में मालदेव की मेड़ता पर चढाई का भी वर्णन है। राव मालदेव के प्रवाड़ों का वर्णन है। 1588 वि. में सिंधल वीरम को मार भाद्राजून लिया, 1595 वि. में जालोर तथा 1592 वि. में नागौर विजय की। "संवत् 1953 राव मालदे उमोद भटियांणी ने जैसलमेर परणीया। संवत 1595 रुसणो हुवौ।" 1593 वि. की जगह 1553 गलत छप गया है। 1593 वि. (1536 ई.) में रावल लूणकरण की उमादे (रुठी राणी) से विवाह हुआ था। दासी भारमली के कारण उसी समय रुठना हुआ न कि 1595 वि. में। यद्यपि बाँकीदास री ख्यात (पू. 18) में भी 1593 वि. वैशाख वद 4 को विवाह होने व 1595 वि. में अजमेर में "रूसणों" होना लिखा है। उमादे जीवन भर रुठी रही तथा 1619 वि. (1526 ई.) में मालदेवजी के देहांत पर केलवा में सती हुई थी। वह दत्तक पुत्र राम (लाछलदे कछवाड़ी का पुत्र) के पास केलवा में रहती थी जो श्वसुर महाराणा उदयसिंह ने राम को जागीर के रूप में प्रदान किया था। अतः घटनाएं इतिहास सम्मत हैं।

राव मालदेव पर शेरशाह सूरी और वीरमदेव दूदावत आए तब सुमेल पर बादशाह का डेरा था, गिर्री के पास रावजी का। वीरमदेव के एक चारण ने कहा रावजी के उमराव बादशाह से मिल गए हैं। ढालों में शाही फरमान सिल दिए और मालदेव को शंका हो गई कि मुझे पकड़वाने सरदार अशर्फियाँ ले चुके। वीरम इस षड़यंत्र के सूत्रधार थे। मालदेव डेरा छोड़ रवाना हो गए पर जैता-कूंपा ने भीषण युद्ध किया।

गिर्री-सुमेल युद्ध में (जनवरी 5, 1544 ई.) शेरशाह को कहना पड़ा—"वरा ए एक मुश्त ई बाजरा बादशाही हिन्दुस्तान रा बरबाद ददाह में बुदेम" अर्थात् खुदा का शुक्र है कि फतह हासिल हो गई वरना एक मुट्ठी बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता। जैता पंचाइणोत व कूंपा मेहराजोत ने अद्‌भुत शौर्य दिखाया था, आख्यान प्रसिद्ध है—

गिर्री थारै गोर मैं, लाम्बा बध्या खिजूर।

जैतै कूंपै आखिया, स्त्रग नेड़ो घर दूर॥

शेरशाह ने माना "जे कदाची राव मालदे रह्यौ हूंवे तौ म्हे वेढ़ हारी थी।" मालदेव के अनेक योद्धाओं के नाम बात में हैं जो काम आए। "राठौड़ जैतोजी वरसे साठ कांम आयौ। कूंपोजी वरसे पैंतीस काम आया।" इन वीरों के बाद राठौड़ जैसो भैरवदासोत ने मुगलों पर विजय पाने में मालदेव की खूब मदद की.।

मेड़ता पर आक्रमण—सं. 1610 में मेड़ता पर रावजी ने वैशाख बदी 2 को हमला किया। पृथ्वीराज जैतावत व कूंपावत, चांदा वीरमदेवोत, रतनसी खींवावत, नगौ भारमलोत मालदेव के साथ थे। "जैमल श्री चत्रभुजजी री घणी सेवा करता। सु.ठाकुर प्रसन्न हुवा। आग्या हुई-तूं वेढ़ कर थारी जय हुसी। जैमलरी सहाय श्री चतुरभुजजी हुआ।" नगौ भारमलोत, पृथ्वीराज जैतावत काम आए। जयमल जी की विजय हुई। भक्तमाल में भी इसका इसी प्रकार उल्लेख है—

जैमलजी जपियो जपमाला, भागा राव मंडोवर वाला।

संवत् 1613 में फिर मालदेव ने हमला किया व मेड़ता लिया। जयमल निकल गए। तब मालकोट बनवाया और देवीदास जैतावत को मेड़ता थाना संभलाया।

हरमाड़ा युद्ध (24 जनवरी, 1557 ई.) का भी वर्णन है। महाराणा उदयसिंह व जयमल से हाजीखाँ व मालदेव की सेना का युद्ध हुआ। देवीदास जैतावत की अध्यक्षता में मालदेव ने 1500 योद्धा भेजे। हाजीखाँ की विजय हुई। महाराणा के सूजा बालीसा, तेजसी डूंगरसियोत जैसे उद्‌भट्ट योद्धा काम आए। मालकोट बनने पर जयमल भी मेवाड़ चले गये जिसे महाराणा ने बदनोर की जागीर प्रदान कर दी।

राठौड़ तेजसी डूंगरसियोत मालदेव जैसा वीर था। चाटसू के पँवार जगमाल आदि से नाराज था। पुराने वैर को भाँगने पँवारों के यहाँ 80 वर्षीय पिता का विवाह किया। "डूंगरसीजी 80 वरस रा हुआ, सुथण रौ नाड़ौ ही चाकर बाँधे छै।" इसी तेजसी ने वीदा सिंधल को मारा था। राणा उदयसिंह के पास भी रहा फिर हाजीखाँ से लड़कर काम आया। मालदेव के वीर कूंपा मेहराजोत द्वारा 1598 वि. चैत वद 1 को राव जैतसी बीकानेर को मारने का उल्लेख है।[9] डॉ. रघुबीरसिंहजी सीतामऊ ने भी 1598 वि. के प्रारंभ में मालदेव की चढ़ाई के समय राव जैतसी की मृत्यु मानी है।[10] यों मालदेव बड़े प्रतापी राजा थे। उन्होंने 52 युद्ध किए थे, कभी 58 परगनों पर उनका अधिकार था। बात में 33 परगनां रा कवित्त है।

4. "राव चन्द्रसेन री बात" में सं. 1598 वि. सावण सुद 8 को उनके जन्म 1619 पौह सुद 6 को टीका, 1616 वैसाख वद 13 को राणा उदयसिंह की बेटी चाँदा सीसोदणी से विवाह का उल्लेख है। सं. 1637 माह सुद 7 को निधन हुआ। रेउजी ने भी यही तिथि (मारवाड़ का इतिहास, पृ. 158) दी है। संवत् 1626 पोस सुद 1 राव चन्द्रसेन राणां उदयसिंह नुं बेटी परणाई-करमेवी। 1627 वि. में मिंगसर बद 8 का चन्द्रसेन बादशाह अकबर से मिलने भाद्राजून से चले पोह बदी 1 को नागौर में मिले। बात में घटनाएं इतिहास सम्मत हैं किन्तु तिथियों में थोड़ा अन्तर है। रेउजी ने इनका जन्म सावण सुदी 4 की जगह सावण बदी 8, टीका पौह सुदी 6 की जगह मंगसिर बदी 1 को लिखा है, वर्ष वही है।[11] ओझा (जो.रा.इ. भाग-I, पृ. 332) डॉ. माँगीलाल व्यास (जो.रा.इ. पृ. 158) ने भी सावण शुक्ला अष्टमी को ही चन्द्रसेन का जन्म माना है जो बात में है। झाला जैता की पुत्री झालीरानी स्वरूपदे से उदयसिंह व चन्द्रसेन पुत्र थे। सेवक पंडव जो जैतमाल जैसावत की शरण में चला गया था मारने पर जैतमाल, पृथ्वीराज कूंपावत चन्द्रसेन से नाराज हो गए। उन्होंने राम, उदयसिंह को भड़का गृहकलह करा दिया। इसी से फायदा उठा मुगलों ने आक्रमण कर दिया। सिवाना, सोजत, जालौर आदि हथिया लिए थे। राव चन्द्रसेन स्वतंत्र प्रकृति के वीर थे। अकबर से एक बार मिलते ही सारी स्थिति समझ गए व दुबारा नहीं मिले, न अधीनता स्वीकारी। मारवाड़ त्याग उन्हें मेवाड़ में रानी चाँदा के पट्टे के गाँव मुडाड़े में रहना पड़ा। सिरोही, डूंगरपुर (रावल आसकरण बहनोई थे) रहे। मारवाड़ में सोजत पर अधिकार किया, मादलिया जैसे उपद्रवी भील को मारा। लूटपाट कर मुगलों को परेशान किया। अंत में अकबर ने विशाल सेना भेजी तो वे सारण के पहाड़ों में चले गए। सारण के महाकाल के बड़ के पास 1637 वि. माघ सुदी 7 को उनका देहांत हुआ।[12]

5. "राव उदैसिंघ री बात" में सं., 1641 में सिरोही के राव सुरताण की धरती

लूटने सं. 1639 भादवा बदी 12 को अकबर बादशाह द्वारा जोधपुर लेने, 1651 वि. सांवण बदी 1 को मोटाराजा के लाहौर में निधन का संकेत है। भाटी केल्हण से फलौदी लेने व 1631 वि. में फलौदी छूटने का उल्लेख है। भाई का बैर लेने भाटी डूँगरसी चढ़ा, वेढ़ में 50 भाटी वीर काम आए, विजय उन्हीं की हुई। यह छोटी सी तीन पृष्ठों की ही बात है।

6. "महाराजा सूरजसिंहजी री बात" में उनके जन्म 1626 वि. वैशाख बद अमावस, टीका आसाढ बद 12 सं. 1642, सं. 1651 जोधपुर पाट बैठने का वर्णन है। 1656 वि. में सोजत सगतसिंह को मिली, वेढ हुई। सं. 1676 भादवा सुदी 9 को दक्षिण में मेहकर में इनका स्वर्गवास हुआ पर रेउजी ने भादवा सुदी 8 तिथि दी है।[13] सभी घटनांए इतिहास सम्मत हैं। बात में छोटी-छोटी घटनाएं वर्णित हैं।

7. "सोजत रै मंडल री बात" में चंबावती नगरी के चंबसेन राजा की पुत्री सोजल के नाम पर सोजत नाम पड़ने, सोजल के चौसठ योगिनियों के साथ मरने का वर्णन है। प्रधान बाँधरौ हुल (गहलोत) का रहस्य जानना, बनते ही राजा की मृत्यु होना, हुल का राजा बनना। हूलों से सोनगरों के सोजत लेने, उनसे सिंधलों के तथा उनसे राव रिणमल के छीनने का वर्णन है। यह सामान्य-सी बात है।

8. "राव लाखै री बात"—राव लाखा सिरोही की धरती में राजधर व पुत्र लखौ लोहियाणा का बिगाड़ करना, राव का शादी कर प्रेम जताना फिर राजधर को मारना, लखौ का बच निकलना फिर लखौ का घात लगाना, पेट दर्द से राव लाखा की मृत्यु आदि का चित्रण है। राव लाखा का छल-कपट ही बात में चित्रित है। डॉ. नारायणसिंह भाटी ने राव सीहाजी का युद्ध इसी राव लाखा से होना माना है न कि लाखा फूलाणी से।[14]

इस प्रकार इन बातों में—चूंडाजी, रिणमलजी, जोधाजी, मालदेवजी, चन्द्रसेनजी, उदैसिंहजी, सूरसिंहजी आदि मंडोर-जोधपुर के राजाओं के जन्म, टीका, विवाह, युद्धों, साम्राज्य विस्तार, मुगल बादशाहों से सम्पर्क, राजाओं के निधन आदि की प्रामाणिक जानकारी है। जहाँ अनेक वीरों के अद्‌भुत शौर्य, साहस, स्वाभिमान, स्वामिभक्ति का वर्णन है, वहीं राजाओं की हठधर्मिता तथा भाइयों से ईर्ष्या-द्वेष भी चित्रित है। दूरदर्शिता के अभाव से फूट व बहकावे के कारण उनका विनाश हुआ। कुंभा रणमल्ल को न मरवाते तो जोधा चितौड़ का विनाश न करते, 700 सीसोदिया लड़कियों से उमरावों का विवाह न होता। यह बैर भांजने का भी भद्दा रिवांज था। वृद्ध विवाह भी होते।

राणा लाखा ने बुढ़ापे में शादी की। तेजसी ने पिता डूंगरसी को 80 वर्ष की अवस्था में पँवारों के बैरशोधन में परणाया। यदि मालदेव वीरमदेव से बैर न पालते तो शेरशाह से हारना नहीं पड़ता। भारत का फिर इतिहास ही कुछ और होता। राव चन्द्रसेन सेवक पंडव को न मारता तो पृथ्वीराज कूंपावत को जैतमाल जेसावत को यह न क़हना पड़ता—"हूं कूंपा रै पेट रौ, जो युं चन्द्रसेन नुँ रोवाडूं।" फिर राम, उदयसिंह आदि को भिड़ा गृह कलह करा दिया। अथाह शक्ति होते हुए भी इन्हीं कमजोरियों से वे आपस में कट मरे। जोधपुर-मेड़ता संघर्ष निरंतर बना रहा। निश्चय ही इन बातों में राजस्थान का इतिहास सुरक्षित है।

हिन्दी विभाग,
शारदा सदन कॉलेज,
मुकुन्दगढ़ (राज.)

संदर्भ संख्या—

1. डॉ. भाटी-परम्परा भाग-II, पृ. 17-109
2. रेउ - मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 68
3. डा. भाटी - ऐतिहासिक बातां, परम्परा - II, पृ. 23
4. रेउ - मा.इ. 1, पृ. 71
5. ठा. भूरसिंह शेखावत - महाराणा यशप्रकाश, पृ. 29
6. ऐतिहासिक बातां, पृ. 30
7. रेउ - मा.इ. 1, पृ. 148
8. क. रेउ - मा.इ. 1, पृ. 92
   ख. स्वामी - बाँकीदास री ख्यात, पृ. 8
9. ऐतिहासिक बातां, पृ. 74
10. डा. रघुबीरसिंह - पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. 28
11. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग, पृ. 148
12. डा. माँगीलाल व्यास - जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 208
13. रेउ - मा.इ. 1, पृ. 197
14. ऐतिहासिक बातां (परम्परा भाग - II), पृ. 166

जोधपुर राज्य की ख्यात में वर्णित सिन्धल राठौड़

डॉ. उषा कँवर राठौड़

मध्यकाल में राजस्थान विभिन्न रियासतों में विभाजित था, जहां क्षत्रियों के विभिन्न वंशों ने अपने राज्य स्थापित किये और वे इतिहास में प्रसिद्ध हुए। कुछ ऐसे क्षत्रिय वंश भी थे जिनका गौरवपूर्ण इतिहास या तो अधूरा है अथवा अज्ञात है। मध्यकालीन राजस्थान में जिन क्षत्रिय वीरों की शाखाओं का उल्लेख मिलता है उनमें सिन्धल राठौड़ों का एक विशेष एवं गौरवपूर्ण इतिहास भी हमारे समक्ष आता है जो अब तक उपेक्षित रहा है। राठौड़ों का इतिहास अधिकांश ख्यातकारों ने राव सीहा से प्रारम्भ किया है, लेकिन इससे पहले का इतिहास बहुत कम लिखा गया है। इतिहास का दूसरा दौर राव सीहा से प्रारम्भ होता है, लेकिन राव सीहा के पौत्र जोपसा के वंशज सिन्धल राठौड़ जिन्होंने जैतारण नगर पर 150 साल तक शासन किया है, इतिहास में गौण है, ऐसा क्यां? मैंने इस आलेख में ऐसे ही उपेक्षित सिन्धल राठौडों के इतिहास पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालने की चेष्टा की है। शोधपत्र को विस्तार से बचाने हेतु रघुवीरसिंह तथा मनोहरसिंह राणावत द्वारा संपादित जोधपुर राज्य की ख्यात को आधार बनाया है, जो विशेष सीमा में आबद्ध है।

सिन्धल राठौडें का वंश परिचय—सिन्धल राठौड़ों का वंशक्रम मारवाड़ रियासत के तत्कालीन शासक राव सीहाजी के प्रपौत्र जोपसा से विकसित हुआ माना जाता है। जोपसा राव आस्थानजी के आठ पुत्रों में से एक थे।[1] इस प्रकार सिन्धल राठौड़ों का सीधा सम्बन्ध मारवाड़ रियासत के शासक परिवार से था। प्रसिद्ध ख्यातकार बांकीदास आशिया ने अपनी ख्यात में सिन्धल को जोपसा का ज्येष्ठ पुत्र सिद्ध करते हुए उनके वंशजों को सिन्धल राठौड़ होना लिखा है।[2] इसी प्रकार का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासकार रामकर्ण आसोपा ने भी किया है।[3] जोधपुर राज्य की ख्यात में इस सम्बन्ध में यह लिखा हुआ है- "जोपसाव जिणा रै बेटा सात 1. सिंधल रा सींधल कहीजै 2. जोलू रा जोलू राठौड़ कहीजे 3. जोरा रा जोरा राठौड़ कहीजे 4. ऊहड़ रा ऊहड़ राठौड़ कहीजे 5. राजिग 6. मूलू रा मूलूं राठौड़ कहाणा 7.........[4]

इस तरह सिन्धल राठौड़ों की प्रसिद्ध शाखा है जो राठौड़ों की अन्य शाखाओं—जोधा, कूपावत, जैतावत, कांधलोत, बीका, चांपावत, उदावत, पातावत, मेड़तिया, रूपावत आदि से ज्येष्ठ एवं प्राचीन है। रापावत, भाणावत एवं लांकावत आदि इनकी प्रशाखाओं

का उल्लेख भी मिलता है।[5] इस क्षत्रिय शाखा के सूर्यवंशी सिन्धल राठौड़ इतिहास में एक वीर योद्धा के रूप में प्रसिद्ध हैं जिन्होंने अपनी वीरता द्वारा अपने भौगोलिक क्षेत्र का विस्तार किया। राव सिन्धलजी के वंशजों का शासन बालवाड़ा, डोडियाली, पावा, कोसेलाव, जाखोड़ा, भागली, भाद्राजून, चांणोद, तिलवाड़ा, बीसलपुर, जैतारण, सोजत, मेरता, रास, रायपुर, निमाज, पाली, खोड़, खींमेल. खेरवा, बगड़ी, घाणेराव, सांडेराव, जोजावर, देवगढ़, मदारिया, बदनौर आदि पर था।[6] उस समय खेड केवल एक मामूली गांव था, जहां पर राव मल्लिनाथ के वशंज जागीरदार के रूप में रहते थे। तत्कालीन मारवाड़ में तीन राज्य बड़े माने जाते थे—जैतारण, जालोर व सांचोर। इन पर सिन्धलों, चौहानों और परमारों का शासन था। उस समय सिन्धल राठौड़ों की धाक थी। मेवाड़ राजवंश से सिन्धल राठौड़ों के मधुर सम्बन्ध थे और इसी कारण उनके वंशजों ने अनेक पीढ़ियों तक मेवाड़ के महाराणा की तन-मन-धन से सेवा की। मंडोर के राव रिड़मल ने अपनी बहन हंसाबाई को चित्तौड़ के महाराणा लाखा को ब्याह कर वहां की राजनीति में हस्तक्षेप किया और 360 गांवों को जब मंडोर राज्य में मिला दिया तब सिन्धल राठौड़ों के मारवाड़ के राठौड़ नरेशों के साथ आपसी सम्बन्ध खराब हो गये। दूसरी तरफ जब राव रिड़मल की मेवाड़ में हत्या कर दी गई, तब मारवाड़ के अन्य राठौड़ मेवाड़ के प्रति भी शत्रुता का भाव रखने लगे तथा उस हत्या का बदला लेना चाहते थे। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस स्थिति का निम्नानुसार उल्लेख हुआ है, जिससे इस कथन की पुष्टि होती है - "राव जोधो पाली आय रांणा रा मलहाण था, तठै आय उतरिया . . . . सिंधल जैसो रायपुर रो ज्या दिना बिगाड़ करतो थो तिणने सजा दैण वासतै रायपुर मारियो अर सिंधला रा सगला गांव लूटिया, ने राव रिड़मल रौ वैर लैण सारु मेवाड़ उपर फौज कर ने गया। मुलक सारो कुंभा राणा रो लूटियो।[7]

तत्कालीन मेवाड़ रियासत के महाराणा मोकल तथा महाराणा कुम्भा के शासनकाल में इन सिन्धल क्षत्रियों ने मेवाड़ राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर रहकर राजवंश के लिए जो त्याग एवं सेवा की उसी से इनका प्रभुत्व स्थापित हुआ। किन्तु परवर्ती इतिहासकारों ने इन वीर सिन्धल राठौड़ों का प्रधानता से उल्लेख नहीं किया जिसके कारण सिन्धल राठौड़ों का इतिहास आज भी अपूर्ण है। सिन्धल राठौड़ों के मेवाड़ राजवंश से घनिष्ठ सम्बन्ध थे ऐसे उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में अवश्य यत्र-तत्र हुए हैं। सिन्धल वीरों ने अनेक युद्धों में मेवाड़ की सहायता ही नहीं की अपितु अपने प्राणों की आहुति देकर उनके राज्य विस्तार में सहयोग भी किया। निम्न अंश से यह बात भलीभांति समझी जा सकती है— "पाछा फिरता नूं गांव मूलेवो, मालगढ़, भाद्राजण, कने आड़ वाहर भाटी गोयन्दास जी आ पड़िया। च्यार सौ अस्वार, तीन हजार पाला, भाटी गोयन्ददास जी कने था, त्या कने दोय हजार राणा रा भागा। श्री महाराज री फते हुई। राणा रा

इतरा सरदार था . . . . सींधल वीदों, सींधल सांवलदास वीदावत . . . . . सींधल अमरो भांडावत, सींधल तोगों भांडावत . . . . . .[8]

उपर्युक्त उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि सिन्धल राठौड़ों ने मेवाड़ राजवंश के साथ अनेक वर्षों तक राजनैतिक, सैनिक एवं सामाजिक स्तर पर अपने सम्बन्धों का निर्वाह किया और मेवाड़ की रक्षा तथा सहायता के लिए उपस्थित रहे ।

मारवाड़ राजवंश से सिन्धल राठौड़ों के सम्बन्ध—मारवाड़ रियासत के ऐतिहासिक ग्रन्थों से यह सिद्ध होता है कि सिन्धल मारवाड़ रियासत के राजवंश से सम्बन्धित थे और उन्होंने अन्य राठौड़ शाखाओं से पूर्व ही अपनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी । उन्होंने अपने बाहुबल से मारवाड़ के भौगोलिक क्षेत्र में अपने राज्य का विस्तार किया तथा अनेक ठिकाने स्थापित किये । लेकिन राव रिड़मल ने सिन्धलों के गांवों को मंडोर राज्य में मिला दिया । तब सिन्धलों के अन्य राठौड़ नरेशों के साथ अनेक युद्ध हुए । इन्होंने मातृभूमि की रक्षार्थ महान् त्याग एवं बलिदान किया जिसका इतिहास साक्षी है ।

मारवाड़ के राठौड़ों तथा सिन्धलों के बीच हुए अनेक युद्धों का वर्णन जोधपुर राज्य की ख्यात में प्रामाणिकता के साथ हुआ है । इसी ख्यात के आधार पर राव रिड़मल से लेकर महाराजा अजीतसिंह के समय तक मारवाड़ के शासक वर्ग एवं सिन्धल राठौड़ों के बीच हुए युद्ध का संक्षिप्त रूप से वृतान्त प्रस्तुत है ।

राव रिड़मल (रणमल्ल) और सिन्धळ—राव रिड़मल के समय अनेक युद्ध हुए परन्तु तीन युद्ध प्रमुख हैं—

(1) जैतारण युद्ध—यह युद्ध वि.सं. 1483 (ई. 1426) में जैतारण में मारवाड़ के राठौड़ शासक रिड़मल के ज्येष्ठ पुत्र अखैराज तथा जैतारण के स्वामी तोगा सिन्धल के बीच हुआ । यद्यपि इस युद्ध में अखैराज विजयी हुआ । किन्तु वीरवर तोगा सिन्धल ने अपने अद्भुत रणकौशल का परिचय दिया और अन्त में अपनी जन्मभूमि के लिए प्राणों की आहुति देकर इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त की ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तोगा सिन्धल के गौरव का गान हुआ है ।[9] किन्तु विश्वेश्वर नाथ रेउ ने मारवाड़ के इतिहास में वीरवर तोगा सिन्धल का कहीं नामोल्लेख नहीं किया ।[10]

(2) बगड़ी युद्ध—जैतारण युद्ध की भांति बगड़ी का युद्ध भी प्रसिद्ध माना जाता है। मारवाड़ के ज्येष्ठ राजकुमार अखैराज ने जैतारण के पश्चात् सिन्धलों के प्रमुख स्थान बगड़ी पर आक्रमण किया। इस युद्ध में भी सिन्धल राठौड़ों ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया और प्रसिद्ध सिन्धल चरड़ा के नेतृत्व में मारवाड़ रियासत की सेना के साथ युद्ध कर श्रेष्ठता सिद्ध की। चरड़ा सिन्धल अपने युग का प्रसिद्ध योद्धा था और मारवाड़ रियासत के लिए वह एक चुनौती था। इसीलिए बगड़ी के युद्ध में चरड़ा सिन्धल के वीरगति प्राप्त करने का उल्लेख मारवाड़[11] की ख्यातों और मारवाड़ रा परगना री विगत में प्रमुखता से हुआ है।[12] यह युद्ध बारह दिन तक हुआ जिसमें अखैराजजी घायल हुए तथा चरड़ा सिन्धल जुंझार हुए। बगड़ी में आज भी सिन्धलों के बनाये हुए महल हैं, जहां पर दीपक की परम्परा से चरड़ा सिन्धल की पूजा की जाती है। उस जूंझार को आज भी बगड़ी गांव की जनता सदा श्रद्धा और भक्ति से नमन करती है।

(3) मणियारी युद्ध—उपर्युक्त दोनों युद्धों का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में मिलता है किन्तु मारवाड़ के राठौड़ों तथा सिन्धल राठौड़ों के बीच वि.सं. 1536 (ई. सन् 1479) को हुए इस ऐतिहासिक युद्ध का वृत्तान्त नहीं मिलता। मणियारी युद्ध मारवाड़ के तत्कालीन शासक राव रिड़मल के पुत्र चांपाजी तथा सिन्धलों के बीच महाराणा रायसिंह चित्तौड़ की सहायता से लड़ा गया था। इस युद्ध में सिन्धलों को विजयश्री प्राप्त हुई तथा राजकुमार चांपाजी वीरगति को प्राप्त हुए।[13]

राव जोधाजी और सिन्धल—राव रिड़मल के पश्चात् राव जोधा मारवाड़ के स्वामी बने और सिन्धलों के साथ उनके अनेक युद्ध हुए जिनमें सिवाणा, भाद्राजूण एवं बरोवड़ा युद्ध प्रसिद्ध हैं।

(1) सिवाणा युद्ध—राव जोधा के समय में सिन्धलों के साथ जो प्रसिद्ध युद्ध हुआ वह सिवाणा का युद्ध कहलाता है। भाद्राजूण के स्वामी आपमल सिन्धल ने राव जोधा के पुत्र शिवराज को सिवाणा दिलवाने का बहाना कर वहां के अधिपति विजा को मार डाला और सिवाणा पर स्वयं ने अधिकार कर लिया। विजा के पुत्र देवीदास ने सिवाणे पर आक्रमण कर उसे सिन्धलों से पुनः प्राप्त कर लिया था। इस घटना का उल्लेख विश्वेश्वरनाथ रेउ[14] ने मारवाड़ के इतिहास में तथा मुंहता नैणसी ने मारवाड़ रा परगना री विगत[15] में किया है किन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख इस सम्बन्ध में नहीं मिलता।

(2) भाद्राजूण युद्ध—भाद्राजूण के स्वामी वीरवर आपमल सिन्धल द्वारा राव जोधा के पुत्र शिवराज को सिवाणा न देकर स्वयं द्वारा अधिकार कर लेने पर राव जोधा क्रोधित हो गये, और देवीदास ने भाद्राजूण पर आक्रमण कर वीरवर आपमल सिन्धल को मार दिया। इस युद्ध में भाद्राजूण का स्वामी आपमल सिन्धल और उसकी सेना ने बहादुरी से मारवाड़ की सेना का सामना किया और अपनी देशभक्ति तथा शौर्य को अमरता प्रदान की।

(3) बटोवड़ा युद्ध—सोजत के पास स्थित डोचूरा बड़ के समीप भूमि क्षेत्र में यह प्रसिद्ध युद्ध वि.सं. 1521 (ई. सन् 1464) में मारवाड़ के तत्कालीन शासक राव जोधा के पुत्र राव नींबा तथा सिन्धल जैसा के बीच हुआ था। बीसलपुर का स्वामी जैसा सिन्धल जब पाली के मवेशी पकड़कर ले गया तो इसकी सूचना मिलने पर राव जोधा के पुत्र नींबा ने सोजत से जैसा पर चढ़ाई की। मारवाड़ की सेना से युद्ध करते हुए सिन्धल जैसा स्वर्गवासी हुआ किन्तु राजकुमार नींबा भी इतने घायल हुए कि पांच माह पश्चात् ही उनकी मृत्यु हो गई। पं. रामकर्ण आसोपा[16] तथा पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ[17] के ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी इस घटना का उल्लेख मिलता है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है। 'सिंधल जैसो रायपुर रो ज्या दिना बिगाड़ करतो थो तिणनै सजा दैण वासते रायपुर मारियो।[18]

(4) जैतारण युद्ध—मेघसिंह के पिता नरसिंह ने सवाजी के पुत्र (नरबद के भाई) आसकरण को मारा था। इसी का बदला लेने के लिए वि.सं. 1544 (ई.सन् 1487) में जोधाजी की आज्ञा से उनके पुत्र दूदाजी ने जैतारण के स्वामी मेघा सिन्धल पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर मेघा सिन्धल मारा गया।[19] पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ की भांति पं. रामकर्ण आसोपा ने भी इस[20] घटना का उल्लेख किया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में[21] सिन्धलों द्वारा आसकरण को मारने तथा कायलाणा लूटने का वृत्तान्त है लेकिन दूदाजी तथा मेघसिंह सिन्धल के बीच द्वन्द्व युद्ध का कहीं जिक्र नहीं हुआ है।

राव सूजाजी और सिन्धल—

(1) रायपुर का युद्ध—सिन्धल राठौड़ों की शक्ति मारवाड़ के महाराजा राव सूजा के समय अत्यधिक बढ़ गई थी और उन्होंने सोजत परगने में आतंक मचा रखा था। उसे शान्त करने के लिए राव सूजा ने अपने पुत्र शेखा के नेतृत्व में एक सेना रायपुर भेजी जहां सिन्धल वीरों के साथ मारवाड़ की सेना का वि.सं. 1555 में कई दिनों तक संघर्ष होता रहा और अन्त में दोनों सेनाओं के बीच[22] सम्मानजनक संधि होने पर युद्ध

समाप्त हुआ। जोधपुर राज्य की ख्यात में यह वृत्तान्त नहीं मिलता है।

(2) चाणोद युद्ध—मारवाड़ में चाणोद के शासक सिन्धल राठौड़ थे। मारवाड़ के शासक राव सूजाजी के समय वि.सं. 1560 में चाणोद के सिन्धल राठौड़ों ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तब राव सूजाजी को चाणोद जाना पड़ा जहां दोनों सेनाओं के बीच अनेक दिनों तक युद्ध चलता रहा और अन्त में राव सूजा ने सन्धि करके सिन्धलों को उनका राज्य लौटा दिया।[23]

(3) जैतारण युद्ध—जैतारण के शासक सिन्धल थे। राव सूजाजी के पुत्र उदाजी द्वारा जैतारण छीनने का उल्लेख पं. रामकर्ण आसोपा ने किया है।[24] लेकिन ख्यात में इस तरह का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

राव मालदेव और सिन्धल—सिन्धल राठौड़ वीरों ने राव रिड़मल एवं जोधा के पश्चात् राव मालदेव से भी अनेक युद्ध लड़े जिनमें दो युद्ध प्रसिद्ध हैं। प्रथम भाद्राजूण युद्ध एवं द्वितीय रायपुर का युद्ध।

(1) भाद्राजूण युद्ध—राव मालदेव के समय भाद्राजूण पर वीरा सिन्धल राठौड़ का आधिपत्य था। सिन्धल वीरा अपने शौर्य के लिए इतिहास प्रसिद्ध है। राव मालदेव ने विशाल सेना के साथ भाद्राजूण पर आक्रमण किया तब सिन्धल वीरों ने अत्यन्त बहादुरी के साथ युद्ध करते हुए मातृभूमि की रक्षा का प्रयास किया किन्तु वीरवर वीरा सिन्धल के वीरगति प्राप्त होने पर भाद्राजूण पर राव मालदेव का अधिकार हो गया। यह घटना वि.सं. 1588 की मानी जाती है। ख्यात में इस घटना का उल्लेख निम्नानुसार है- "सम्बत 1588 में वीरा सिन्धल ने मारने भाद्राजूण लिवी, ने कुंवर रतनसिंह ने पटे दीवी।"[25] पं. विश्वेश्वर नाथ रेउ[26] तथा गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[27] के ऐतिहासिक ग्रन्थों से इस घटना एवं संवत् की पुष्टि होती है परन्तु बांकीदास की ख्यात[28] तथा वीर विनोद[29] में वि.सं. 1596 में भाद्राजूण लेना लिखा है।

(2) रायपुर युद्ध—रायपुर पर भी सिन्धल राठौड़ों का अधिकार रहा है। रायपुर का भूमि क्षेत्र भी मारवाड़ के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इसीलिए राव मालदेव ने रायपुर के सिन्धल राठौड़ों पर आक्रमण किया तब सिन्धलों ने भी अपूर्व वीरता का प्रदर्शन करते हुए मारवाड़ की सेना का सामना किया, किन्तु रायपुर के स्वामी का देहान्त होने पर वहां भी मालदेवजी का अधिकार[30] हो गया। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए लिखा गया है-"गोढ़वाड़ इलाकै रो

रायपुर सिंधला ने मार ने लियो ने भाखर ऊपर मालगढ़ करायो।"[31]

उपर्युक्त दोनों घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि सिन्धलों के पास सैन्य शक्ति के साथ-साथ एक विशाल उपजाऊ भाग भी था जिसे प्राप्त करने के लिए मारवाड़ रियासत के शासकों की दृष्टि लगी रहती थी। राव मालदेव के साथ अन्य युद्धों में भी सिन्धलों ने बलिदान देकर अपनी यश गाथाओं को अमरता प्रदान की।[32]

मोटा राजा उदयसिंह और सिन्धल—जालोर में सिन्धल राठौड़ों का भूमि क्षेत्र सिन्धलवयि कहलाता था। मारवाड़ के इतिहासकार पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने मोटा राजा उदयसिंह के वि.सं. 1643 में जालोर स्थल सिन्धलवाटी पर आक्रमण करने तथा सिन्धलों के अनेक गांवों को लूटने का लिखा है।[33] इस युद्ध में सिन्धल राठौड़ वीरों ने मोटा राजा उदयसिंह की सेना का बड़ी बहादुरी के साथ सामना किया और अनेक सिन्धल वीर उस युद्ध में मारे गये। जोधपुर राज्य का ख्यातकार लिखता है "सम्बत् 1643 कंवर भगवानदास, भोपत, दलपत, जेतसिंह ए च्यार कंवर मोटा राजा रा, सिंधला ऊपर गया। अर सिंधला रा गांव लूटिया तठे साथ भागणो।"[34]

सवाई राजा सूरसिंह तथा महाराजा गजसिंह और सिन्धल—महाराजा सूरसिंह के दक्षिण में चले जाने से मारवाड़ रियासत का प्रबन्ध महाराजा कुमार गजसिंह तथा भाटी गोयन्ददास के हाथ में था। वि.सं. 1668 (ई. 1611) में मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह के वीरों ने अहमदाबाद से आगरे की ओर जाते हुए व्यापारियों के एक समूह का मारवाड़ के दूनाड़ा नामक ग्राम तक पीछा किया, किन्तु समय अधिक हो जाने के कारण वे उन व्यापारियों को लूट न सके और वापस मेवाड़ की ओर लौटने लगे। इस घटना की सूचना पाकर भाटी गोयन्ददास ने मारवाड़ से सेना लेकर मालगढ़ तथा भाद्राजूण के करीब मेवाड़ की सेना को रोक लिया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह की ओर से सिन्धलों के प्रसिद्ध वीर सिंधल वीदो, सिंधल सांवलदास वीदावत, सिंधळ अमरो भांडावत, सिंधल तोगों भांडावत[35] आदि ने अपने सहयोग से मेवाड़ की सेना को शक्तिशाली बनाया था। पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने मारवाड़ की तरफ से काम आने वाले[36] वीरों का उल्लेख किया है। किन्तु सिन्धल राठौड़ों सहित अन्य उन वीरों का जो मेवाड़ की ओर से लड़ रहे थे, उनका नामोल्लेख नहीं किया।

महाराजा जसवन्तसिंह और सिन्धल—

(1) पांचोटा-कंवला युद्ध—वि.सं. 1713 में पांचोटा तथा कंवरा का भौगोलिक

क्षेत्र सिन्धल राठौड़ों के अधिकार में था। सिन्धल राठौड़ों की शक्ति क्षीण करने के लिए मारवाड़ के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम ने एक सेना सिन्धलों पर भेजी।[37] इसके जवाब में सिन्धल राठौड़ों ने भी मारवाड़ की सेना पर आक्रमण किया। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का उल्लेख विस्तार से हुआ है- "सम्बत 1713 रा वैशाख वद 2 श्री महाराजा जी रो साथ मुहणोत सुन्दरदास जेमलोत सिन्धलां रौ गांव पांचेटो कवलां झूविया। सिन्धला वाघ आदमी जणा 401 सूं गांव कंवला। सझियों थो। रावलो साथ चढियो . . . . सो सिन्धल जणा 28 (अठाइस) काम आया[38]

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि सिन्धल राठौड़ों की सैन्य शक्ति तथा विस्तृत भूभाग के स्वामित्व के कारण तत्कालीन राजनीति में उनका विशेष एवं गौरवपूर्ण स्थान था।

मारवाड़ के शासक राव रिड़मल से लेकर महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम तक सिन्धल राठौड़ मारवाड़ के राठौड़ों के साथ युद्धरत रहे किन्तु इनके जन-बल शक्ति का लोहा मारवाड़ के शासक निरन्तर मानते रहे। अपवाद स्वरूप कुछ उदाहरण अवश्य मिलते हैं जिसमें सिन्धल वीर का मारवाड़ की तरफ से युद्ध करते हुए काम आने का उल्लेख हुआ है। मालदेव के समय सिंधल डूंगरसी, जसवन्तसिंह के समय में सिन्धल जगनाथ(उरजनोत) एवं महाराजा अजीतसिंह के समय सिंधल दला आदि ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिसमें वे मारवाड़ का पक्ष लेते हुए वीर गति को प्राप्त हुए।

सिन्धल राठौड़ों की यह कथा तब तक अपूर्ण मानी जायेगी जब तक राजमाता गोपालदे सिन्धल के राज्य संचालन, युद्ध संचालन, शौर्य, साहस, धैर्य, बुद्धिमता, प्रजावत्सलता एवं क्षात्र धर्म का उल्लेख नहीं होगा। राजमाता गोपालदे सिन्धल के चरित्र-चित्रण से यह सिद्ध होता है कि सिन्धल वीरों की भांति वीरांगना ने भी देश एवं क्षात्र धर्म की रक्षार्थ तलवार उठाकर अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया।

यद्यपि इस वीरांगना का उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में नहीं हुआ है किन्तु चौहान कुलकल्पद्रुम तथा बीकानेर राज्य की ख्यात से यह ज्ञात होता है कि मध्यप्रदेश के खिलचीपुर राज्य के संस्थापक उग्रसेन खीची थे जिनका प्राचीन राज्य चाचरणी था। इनके निधन के पश्चात् उनके पुत्र बाघसिंह राजगद्दी पर बैठे जो नाबालिग थे। अतः चाचरणी रियासत का राज्य संचालन उनकी माता गोपालदे सिन्धल को करना पड़ा। ख्यात से यह ज्ञात होता है कि राजमाता स्वयं मदनि वस्त्र धारण कर तथा शस्त्र ग्रहण कर रियासत के दरबार में बैठकर राज्य कार्य करती थीं। वे अपने पास सदा एक बड़ी तलवार रखती थीं। दिल्ली के मुगल बादशाह जहांगीर ने जब बूंदी के राव रतनसिंह

को महुआ का परगना पुरस्कार स्वरूप देकर खीचीवाड़े पर चढ़ाई की तब उन्होंने चाचरण रियासत को भी लेने का मानस बनाया। तब राजमाता ने खाताखेड़ी के भीलों को साथ लेकर तथा स्वयं पुरुष वेश धारण करके मुगलों तथा हाड़ाओं की संयुक्त सेना से युद्ध किया। चार मास तक युद्ध हुआ तथा चार बार शत्रु सेना को उस देवी के सामने से भागना पड़ा। इस विजय से सिन्धळ देवी का नाम और यश जगत् व्याप्त हो गया। राजमाता के गौरव का गान करने वाला भाट सुबुद्धराम का यह सवैया द्रष्टव्य है—

कै भई चंद्र बुया घर इच्छन, शाइनशह निजाम की जाई।
कै दुरगावति खेत चढै रण, फौज बहादुर की बिच लाई।
कै भई राणी गोपालदे सिंधल, राव रतन सूं तेग बजाई।
हो अस्वार हथियार ले सिंधल, बाघन हो रहि बाघ की जाई ॥

सिन्धल राठौड़ों की वीरता, देशभक्ति, स्वतन्त्रता-प्रेम और संस्कृति गौरव का मूल्य न तो उस समय समझा गया और न ही कालान्तर में। अगर इस अपार शक्ति सम्पन्न क्षत्रिय शाखा का सहयोग मारवाड़ रियासत को प्राप्त हो गया होता तो राठौड़ों की रियासतों के विस्तार के साथ-साथ इतिहास में सिन्धल राठौड़ों को भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो सकता था।

सिन्धल राठौड़ों द्वारा स्थापित सिन्धलवाटी का भौगोलिक क्षेत्र जिनमें रोड़ला कवराडा, गुडिया, भूती, कवला, साण्डेराव आदि गांव आज भी विद्यामान हैं, जो इस प्रसिद्ध क्षत्रिय शाखा के वैभव का परिचायक है।

राजस्थानी शोध संस्थान
चौपासनी, जोधपुर

संदर्भ संख्या—

1. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास — पं. रामकर्ण आसोपा; पृ. 72
2. बांकीदास री ख्यात; संपा. पं. नरोत्तमदासजी स्वामी, पृ. 4
3. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास — पं. रामकर्ण आसोपा; पृ. 72
4. जोधपुर राज्य की ख्यात; संपा. रघुवीरसिंह, मनोहरसिंह राणावत, पृ. 26
5. बांकीदास री ख्यात; संपा. पं. नरोत्तमदासजी स्वामी, पृ. 48
6. जोधपुर राज्य की ख्यात में भी सिन्धलों के विभिन्न ठिकाणों का उल्लेख हुआ है किन्तु एक स्थान पर न होकर विभिन्न प्रसंगों में उल्लेखित हैं।
7. जोधपुर राज्य की ख्यात; संपा. रघुवीरसिंह, मनोहरसिंह राणावत पृ. 52-53
8. वही, पृ. 138

9. वही, पृ. 44
10. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 73
11. बांकीदास री ख्यात - संपा पं. नरोत्तमदास जी स्वामी; पृ. 52
12. मारवाड़ रा परगना री विगत - प्रथम भाग; पृ. 38
13. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पाद टिप्पणी, पृ. 80
14. वही, पृ. 96-97
15. मारवाड़ रा परगना री विगत - द्वितीय भाग; संपा. डॉ. नारायणसिंह भाटी; पृ. 217
16. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास; पं. रामकर्ण आसोपा; पृ. 189
17. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 97
18. जोधपुर राज्य की ख्यात; पृ. 52
19. मारवाड़ का इतिहास; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 101
20. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास; रामकर्ण आसोपा; पृ. 195-96
21. जोधपुर राज्य की ख्यात; पृ. 66
22. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पृ. 108, मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास; पृ. 223
23. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास; पं. रामकर्ण आसोपा; पृ. 223
    मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं.विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 109
24. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास; पृ. 224
25. जोधपुर राज्य की ख्यात; पृ. 76
26. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 116
27. राजपूताने का इतिहास - चौथी जिल्द - पहला भाग; गौरीशंकर हीराचन्द ओझा; पृ. 285
28. बांकीदास री ख्यात, संपा. पं. नरोत्तमदास जी स्वामी; पृ. 12
29. वीर विनोद - भाग 2; श्यामलदास; पृ. 808
30. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 116
31. जोधपुर राज्य की ख्यात; पृ. 95-96
32. वही; पृ. 87-88
33. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पृ. 173
34. जोधपुर राज्य की ख्यात; पृ. 121
35. वही; पृ. 138
36. मारवाड़ का इतिहास - प्रथम भाग; पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ; पृ. 188
37. वही; पृ. 219
38. जोधपुर राज्य की ख्यात; पृ. 258-59

बच्छराज कृत गिरधरोत व्यासों की ख्यात के ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण

डॉ. सोहनकृष्ण पुरोहि

19वीं शताब्दी में देशी रियासतों के शासकों ने अपनी अपनी रियासतों के इतिहास लेखन पर ध्यान देना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप 20वीं सदी के प्रारम्भ तक राजस्थान की कई रियासतों में इतिहास लिखने का कार्य सम्पन्न भी हो गया। मारवाड़ में इतिहास लेखन का कार्य विश्वेश्वरनाथ रेउ, रामकर्ण आसोपा, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और जगदीशसिंह गहलोत आदि विद्वानों ने किया। इन लेखकों के ग्रन्थों का आधार राजघराने से प्राप्त सामग्री होने के कारण वे सर्वाङ्गीणता प्राप्त न कर सके क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं के संबंध में क्षत्रिय एवं क्षत्रियेतर जातियों के निजी संग्रह में जो शोध सामग्री उपलब्ध थी उसका तो उपयोग ही नहीं किया गया था। विवेच्य शोध पत्र में ऐसे ही एक ग्रन्थ व्यास बच्छराज कृत गिरधरोत व्यासों की ख्यात का अध्ययन उसके ऐतिहासिक संदर्भों का विश्लेषण करते हुए किया गया है।

गिरधरोत व्यासों की ख्यात को व्यास बच्छराज ने संवत् 1951 में प्रकाशित किया। लिथोप्रिन्टिग विधि से छपी हुई यह कृति 34 पृष्ठों की है। इसमें कुछ वंशावलियाँ तथा एक ताम्रपत्र की नकल परिशिष्ट में दी गई हैं। इस ख्यात की भूमिका, न्यायाधीश पुरोहित हरदेव शर्मा ने लिखी। बच्छराज व्यास ने अपना ख्यात ग्रन्थ लिखकर पुष्करणा हितकारिणी सभा, जोधपुर को प्रस्तुत किया, जिसने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

राजस्थान में ख्यात लेखन की परम्परा राजघरानों में अधिक है। 1891 ई. में मारवाड़ सरकार ने मर्दुमशुमारी रिपोर्ट प्रकाशित की। किन्तु विभिन्न जातियों ने अपने वंश का ख्यात लेखन कार्य इससे पहले ही प्रारम्भ कर दिया था ताकि जाति विशेष अपनी प्राचीनता और उपलब्धियों का लेखा जोखा प्रस्तुत कर सके। राजस्थान में पुष्करणा ब्राह्मण प्रायः जैसलमेर, पोकरण, फलोदी, बीकानेर, नागौर, किसनगढ़ और जोधपुर में बहुतायत से पाये जाते हैं। इनमें व्यास एक उपजाति है जिसकी कई खांपें हैं जैसे गिरधावत, जोधावत और नाथावत व्यास आदि।

गिरधरोत व्यासों की ख्यात से गिरधरजी एवं उनके वंशजों तथा नागौराधिपति

राव अमरसिंह राठौड़ के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। ख्यात के अनुसार गिरधरोत व्यास भारद्वाज ऋषि की संतान हैं। व्यासों की प्रारम्भ में तीन खांपें थी जिनके नाम हैं टकसाली, कांकरोला और मथुरिया।

व्यास परिवार में गिरधरजी वीर पुरुष हुए। उनमें 9 पीढ़ी पूर्व ललुजी लोद्रवा में निवास करते थे। उनके बाद सारंगजी, पुरखाजी, रेखाजी, रामाजी और देव ऋषि हुए। देव ऋषि के चार पुत्र पोपाजी, नकजी, जूठोजी और गंगाधर हुए। उनकी संतानें जैसलमेर, सिन्ध, फलोदी और जोधपुर में आकर बसीं। बीरमजी के पुत्र जोधाजी की संतान जोधावत व्यास और दूदाजी के वंशज किसनांणी व्यास कहलाते हैं। तेजोजी के पुत्र गांगोजी, कचरोजी और तापोजी हुए। चतोजी के वंशज चताणी व्यास कहलाये। परसोजी के परिवार वाले खेरबे (मेड़ता) के व्यास कहलाते हैं।

व्यास परिवार में तेजाजी के पुत्र भोजाजी जैसलमेर में रहते थे। उनके मामा सेवाजी का उदयसिंहजी से स्नेह सम्बन्ध था। उन्होंने मारवाड़ का शासक बनने पर सेवाजी को जोधपुर आने का निमंत्रण भेजा परन्तु उन्होंने स्वयं न आकर अपने चार भानजों को महाराजा साहब की सेवा में भेज दिया।

मरुधराधीश उदयसिंह ने भोजाजी को व्यास पदवी, कुरब तथा लवाजमा प्रदान कर सम्मानित किया। भोजाजी के संतान न होने पर उन्होंने अपने अनुज तापोजी को गोद ले लिया। गांगाजी अपने भाई भोजाजी के साथ ही रहते थे। उनके पुत्र गिरधर को तापोजी ने गोद ले लिया किन्तु बाद में उनके भी पुत्र उत्पन्न हो गया जिनका नाम नाथोजी रखा गया। नाथोजी की संतान नथावत व्यास और गिरधर जी के वशंज गिरधरोत या गिरधावत व्यास कहलाये। तापोजी के बेटों पोतों ने भीमजी का मोहल्ला जोधपुर में तापी बावड़ी का निर्माण करवाया था।

व्यास गिरधर महाराजा गजसिंह को सरकारी राजकाज में सहयोग करते थे। महाराजा गजसिंह[1] (1619-1638 ई.) के दो पुत्र कुंवर अमरसिंह तथा जसवन्तसिंह थे। किन्हीं कारणों से महाराजा गजसिंह अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। इसलिये उन्होंने कुंवर अमरसिंह को बादशाह शाहजहां[2] (1628-1658 ई.) की सेवा में आगरा भेज दिया। उनकी देखभाल के लिये व्यास गिरधर को भी उनके साथ भेजा गया। शाहजहां ने कुंवर अमरसिंह को वीर समझ कर उन्हें बुन्देलों के विरुद्ध भेजा। वहां अमरसिंह ने अपने शौर्य कौशल का परिचय दिया। इससे प्रसन्न होकर शाहजहां ने अमरसिंह को तीन हजार का मनसब और नागौर, डीडवाना, कोलिया

एवं दौलतपुरा के परगने इनायत किये।[3] इस जागीर का नौं मोहरा फरमान बादशाह ने जारी किया जिसे कुंवर अमरसिंह ने गिरधरजी व्यास को सौंप दिया जो उनके परिवार में रामबक्सजी के पास नागौर में ख्यात लिखे जाने के समय तक सुरक्षित था।

मनसब मिलने के बाद अमरसिंह राठौड़ नागौर आये और वहां पर राजकाज स्थापित किया। इस अवसर पर उन्होंने अपने सहयोगी एवं संरक्षक गिरधरजी व्यास को व्यास पदवी, दो गांव रातंगा तथा सोनेला इनायत कर इसका ताम्रपत्र बनवाकर प्रदान किया।[4] गिरधरजी के राजव्यास बन जाने पर कई पुष्करणा ब्राह्मण उनके साथ नागौर चले गये और फिर वहीं बस गये। एक बार ऐसा भी अवसर आया जब लोगों ने राव अमरसिंह के कान भर दिये जिससे नाराज होकर उन्होंने गिरधरजी से व्यास पदवी और दो गांव वापिस ले लिये। बाद में सत्यता मालूम होने पर गिरधरजी को अपना व्यास पद और गांव वापिस प्राप्त हुए।

महाराजा गजसिंह का देहान्त (1638 ई.) हुआ[5] तब अमरसिंह काबुल में थे। गजसिंह की मृत्यु के बाद बादशाह ने अमरसिंह को राव का खिताब तथा चार हजारी का मनसब दिया। रेउ ने उसे तीन हजारी जात व 3 हजारी सवारों का मनसब देना लिखा है (खण्ड 2, पृष्ठ 651)। बच्छराज व्यास ने भी उनके विचारों का समर्थन किया है। पिता के निधन की सूचना पाकर वे जोधपुर आये तथा शोक समाप्त हो जाने पर वे गिरधरजी को साथ लेकर आगरा चले गये। वहां दरबार में बख्शी सलावतखां तथा अमरसिंह राठौड़ में कुछ कहासुनी हो गई। सलावतखां ने अमरसिंह को गंवार कहा तो रावजी ने भरे दरबार में उस पर कटार से वार कर दिया जिसमें उसकी वहीं मृत्यु हो गई। इस घटना से नाराज होकर शाहजहां के अमीरों में से खलीलउल्ला तथा अर्जुन गौड़ (रावजी का श्यालक) ने रावजी पर उस समय आक्रमण किया जब वे दुर्ग की खिड़की में से निकल रहे थे।[6] लेकिन घायल हो जाने पर भी अमरसिंह ने कुछ मुगल सैनिकों को मार डाला और अन्त निकट होने पर भी अपनी कटार से अर्जुन गोड़ को घायल कर दिया।[7] अमरसिंह राठौड़ का भी घटना स्थल पर निधन हो गया। विश्वेश्वर नाथ रेउ के अनुसार यह घटना वि.सं. 1701 श्रावण सुदि 2 तदनुसार 25 जुलाई 1644 ई. को घटित हुई।[8] जब यह दुःखद समाचार रावजी के सैनिकों के पास पहुंचा तो हरसोलाव ठाकुर बल्लूजी चांपावत, व्यास गिरधरजी और उदावत सरदार ने मिलकर यह निश्चय किया कि रावजी पर घात का बदला लेने से पूर्व सारे जनाना को कत्ल कर दिया जाए।[9] इस पर हाडीजी ने कहा कि हमारी चिन्ता मत करो। हम अपनी रक्षा स्वयं करने में सक्षम हैं। हम जिन्दा रहकर तुम लोगों का युद्ध देखना चाहती हैं। इसलिये आप सब लोग हमारे सामने युद्ध करो। हाड़ीजी की आज्ञा मानकर गिरधरजी

व्यास ने हाथी के हौदे पर बैठ कर अपने वीर सैनिकों के साथ अर्जुन गौंड के डेरे पर आक्रमण कर दिया।[10] तब तक वहां बादशाह शाहजहां की सैनिक टुकड़ी आ चुकी थी। व्यास बच्छराज के अनुसार दोनों पक्षों में लड़ाई श्रावण सुदि एकम को (संवत् 1701) हुई जब कि महाराजा गजसिंह की ख्यात में इस लड़ाई का द्वितीया को सम्पन्न होना लिखा है जो उचित भी है।[11] गिरधरोत व्यासों की ख्यात के अनुसार पहले दिन गिरधरजी हाथी पर बैठकर तथा बल्लूजी चांपावत ने युद्ध में वीरता का परिचय दिया।[12] दूसरे दिन गिरधरजी भी घोड़े पर सवार होकर युद्ध में सम्मिलित हुए और शीश कट जाने पर भी श्रावण सुदि तृतीया तक लड़ते रहे इसलिये वे झूंझार कहलाते हैं।[13] गिरधरोत व्यासों की ख्यात के अनुसार यह युद्ध तीन दिन तक चला जबकि महाराजा गजसिंह की ख्यात से ज्ञातव्य है कि संघर्ष द्वितीया को ही हुआ।[14] मूल ख्यात तथा परवर्ती ख्यात में तिथियों का एक दो दिन का अन्तर आना तो आम बात हैं किन्तु दोनों ख्यातों में जो घटनाक्रम दिया गया है वह लगभग समान है। हमारा विचार हैं कि यह युद्ध केवल एक ही दिन हुआ जिसे व्यासों की ख्यात में बढ़ा चढा कर 3 दिन बताया गया है। श्रावण सुदि 3 को तो रावजी तथा उनके सहयोगियों का दाह संस्कार हुआ था। उनकी रानियाँ आगरा में उसी दिन सती हुई। गजसिंह की ख्यात अमरसिंह की हत्या होने पर दो युद्धों का उल्लेख करती हैं। प्रथम शाही सैनिकों द्वारा रावजी की लाश मारवाड़ के सैनिकों को संभलाते समय और दूसरा अर्जुन गौड़ के डेरे पर[15] रावजी, गिरधरजी, बल्लूजी का अन्तिम संस्कार यमुना नदी के किनारे पर आगरा में किया गया।

वीर गिरधरजी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने नागौर में रघुनाथजी का मन्दिर, विशाल हवेली, धर्मशाला और एक बगीचा बनवाया।

गिरधरोत व्यासों की ख्यात में कहा गया है कि व्यास गिरधरदास ने हाथी के हवदे पर बैठकर मुगलिया सेना से युद्ध किया। यह विवरण केवल कपोलकल्पना नहीं है। इस घटना की पुष्टि प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित महाराजा गजसिंह की ख्यात से होती है जिसमें राव अमरसिंह की मृत्यु का पूरा ब्यौरा तथा उनके साथ सती हुई महिलाओं के नाम दिये गये हैं। यह ख्यात लगभग 18वीं शताब्दी की है। इस ख्यात के अनुसार राव अमरसिंह की हत्या हो जाने के बाद राठौड़ों ने अपने स्वामी हन्ता की सेना से युद्ध किया। ख्यातकार लिखता है कि 'पुसकरनो व्यास गिरधर रावजी के नोकर था वह हाथी रै हवदे बैठकर डावी चूंच री पाघ बान्धने केसरिया कर काम आयो।[16] उनकी औलाद गिरधरोत व्यास कही जाती हैं और वे डावी पाघ आज तक बान्धते हैं। इस ख्यात में (गजसिंह की ख्यात) डेरे पर मारे गये लोगों की सूची अलग

से भी दी गई है जिसमें संख्या 27 पर गिरधर व्यास पोहकरना का नाम दिया हुआ है।[17]

डा. शिवदत्तदान बारहठ तथा 1992 ई. में डॉ. विक्रमसिंह राठौड़ ने राव अमरसिंह रा झूलणा शीर्षक निबन्ध शोध पत्रिका, उदयपुर में प्रकाशित किया जिसका लेखक किसना दुरसाउत था।[18] उन्होंने अपने इस निबन्ध में प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में ग्रन्थांक सं. 15634 पर संगृहीत अमरसिंह के झूलणों की भी चर्चा की है। जोधपुर की इस प्रति में इन झूलणों का रचयिता दुरसा आढा कहा गया है। डॉ. विक्रमसिंह का मत है कि अमरसिंह रा झूलणा का लेखक किसना दुरसाउत ही है जिसे प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की प्रति में गलती से किसना आढा लिख दिया गया है। इन झूलणों की अन्य प्रतियां जोधपुर के कुछ निजी संग्रहों में हैं लेकिन आम नागरिकों के लिये उपलब्ध नहीं हैं। झूलणों का रचना काल संवत् 1786 लिखा मिलता है। सभी प्रतियों में राव अमरसिंह के साथ आगरा में मारे जाने वाले लोगों के नाम मिलते हैं। इनमें गिरधर व्यास के बारे में लिखा है "गिरधर गांगावत मुओ राववनअढारे।[19] यद्यपि झूलणों की प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की प्रति कुछ बाद की है जो सम्भवत मूल प्रति से ही नकल की गई थी।

गिरधरोत व्यासों की ख्यात में राव अमरसिंह की हत्या का जो विवरण है वह बादशाहनामा से मेल खाता है। किन्तु उसमें बाद के घटनाक्रम का उल्लेख नहीं मिलता जिसकी पूर्ति विवेच्य ख्यात के अलावा महाराजा गजसिंह की ख्यात तथा राव अमरसिंह रा झूलणों से होती है। पं. विश्वेश्वनाथ रेउ सहित अन्य सभी इतिहासकारों ने अमरसिंह की हत्या का बदला लेने वाले जिन योद्धाओं की सूची दी हैं उसमें हाथी पर बैठकर युद्ध का संचालन करने वाले गिरधर व्यास का नाम नहीं दिया है। इससे स्पष्ट है कि इतिहासकार भी अपने ग्रन्थ विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखते थे।

गिरधरोत व्यासों की ख्यात के अनुसार गिरधरजी व्यास के तीन पुत्र मनोहरदास, ऋषिदास और सतीदास राव अमरसिंह के पुत्र रायसिंह की सेवा में रहे। अमरसिंह राठौड़ की हत्या के बाद शाहजहां ने नागौर की जागीर को जब्त कर लिया। तब रायसिंहजी ने गिरधरजी के पुत्रों से सलाह ली और आगरा जाकर शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए। तब बादशाह शाहजहां ने प्रसन्न होकर उन्हें नागौर की जागीर पुनः प्रदान कर दी। रायसिंह ने नागौर पहुंच कर मनोहरदास को अपना राजव्यास नियुक्त कर उन्हें कुरब कायदा तथा लवाजमा इनायत किया। रायसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह ने गिरधरव्यास के पुत्र-पौत्र जसकरण, गणेशदत्त, अमरदत्त को गांव रातंगा (परगना जायल) सांसण में

इनायत किया। इसके लिये एक ताम्रपत्र भी तैयार करवाकर भी प्रदान किया। यह ताम्रपत्र कई वर्षों तक गिरधरजी के वंशजों के पास सुरक्षित था किन्तु उसका अब पता नहीं हैं जिसकी नकल गिरधरोत व्यासों की ख्यात में अवश्य उपलब्ध हैं।[20]

व्यास जसकरणजी ने मूंदियाड में एक गणेश मन्दिर का निर्माण करवाया और उसकी व्यवस्था हेतु अपने सारे खेत भी उस मन्दिर को भेंट कर दिये। गणेशदत्तजी के पुत्र महासिंह थे, उन्हें महाराजा मानसिंह ने बालोतरा के किसी गांव का दरोगा बनाया। उनकी चौथी पीढी में रामदासजी ने जोधपुर में नरसिंह दड़ा पर रामेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया और बगीचा लगवाया। गिरधरजी के मंझले पुत्र सतीदास महाराजा बखतसिंह के साथ रहे। उनके पुत्र मूलचन्दजी को बखतसिंह ने व्यास पदवी कुरब और लवाजमा प्रदान किया। महाराजा साहब ने गिरधरजी व्यास के परिवार को 500 बीघा जमीन भी प्रदान की जो गांव घाटियाद, सोनजी तथा भाकरोद में स्थित थीं। मूलचन्दजी के वंशजों को डावी चूंच की पाघ बान्धने की भी स्वीकृति दी गई। बखतसिंह जब जोधपुर में आकर रहने लगें तो अपने साथ गिरधरजी के परिवार के सदस्यों को भी साथ में लाये। सतीदासजी के पुत्र देवकिसन को महाराजा साहब ने जरजरखाना का दरोगा बना दिया। ऋषिकेशजी की पांचवी पीढ़ी में व्यास सूरतदास महाराजा मानसिंह के समय में राजव्यास पद पर रहते हुए भी जरजरखाना के दरोगा रहे। इसी परिवार में से गोकुलचन्द को मेहरानगढ़ दुर्ग में नागणेंचिया माताजी के मन्दिर की पूजा का कार्य सौंपा गया। महाराजा तखतसिंहजी ने गिरधरोत व्यास परिवार के कनीराम को टकसाल का दरोगा बनाया और उन्हें हवाला का कुछ महत्वपूर्ण कार्य भी सौंपा। कनीराम व्यास परदायत लछीराय की भी सेवा में रहे और वे यह कार्य संवत् 1936 तक करते रहे।[21]

गिरधरोत व्यास परिवार में ऋषिकेशजी के पुत्र विट्ठलदासजी को महाराजा मानसिंह ने पटराणी भटियाणी की सेवा में नियुक्त किया था। उन्होंने जोधपुर शहर में जालोरी गेट के अन्दर भोलीबायां, भावडियांजी, गणेशजी और चामुण्डा माता का मन्दिर बनवाया। वे मेड़ता के कालू गांव के हवालदार भी थे। इसलिये वहां पर उन्होंने बिट्ठलेश्वर महादेव मन्दिर बनवाया। एक बार बून्दी के राव रायसिंह ने जोधपुर राजपरिवार के बाईजी लाल को रोक लिया। तब विट्ठलदास जी ने बाईजी का रुक्का बागी बूढसू ठाकुर प्रतापसिंह के पास पहुंचाया जिन्होंने समय पर अपने 500 योद्धाओं के साथ पहुंच कर बाईजी को बन्धनमुक्त करवाया। बाईजी ने महाराजा मानसिंह से कहकर बूढसू ठाकुर की जागीर को बहाल करवा दिया और विट्ठलदासजी को खातिरी का विशेष रुक्का दिलवायां जो उनके परिवार वालों के पास मौजूद है। 22 ऋषिकेश जी

के परिवार में सालगरामजी वैकुण्ठवासी महाराजा तखतसिंह की सवारी के साथ हरिद्वार गये थे। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर राज मारवाड़ ने उन्हें मासिक पेंशन स्वीकृत कर दी, जिसे वे आजीवन प्राप्त करते रहे।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता हैं कि व्यास बच्छराज द्वारा रचित गिरधरोत व्यासों की ख्यात व्यास परिवार और मारवाड़ राजघराना के सम्बन्धों पर प्रकाश डालती हैं। इससे अमरसिंह राठौड़ की हत्या का विस्तृत विवरण और वीर गिरधरजी व्यास के अपूर्व शौर्य के प्रदर्शन की पूर्ण जानकारी मिलती है। यह ज्ञातव्य है कि किसी भी इतिहासकार ने गिरधर व्यास के योगदान का उल्लेख अपने ग्रन्थों में नहीं किया है।[23] विवेच्य ख्यात पुष्करणा ब्राह्मण समाज के वंश विशेष गिरधरोत व्यास परिवार की विस्तृत जानकारी प्रदान करती है।

प्रायः यह कहा जाता है कि राजघरानों का इतिहास लेखन करते समय क्षत्रियेतर जातियों का विवरण छोड़ दिया जाता था। किन्तु महाराजा गजसिंह की ख्यात का अध्ययन करने पर यह धारणा भ्रान्त प्रतीत होती है। क्योंकि उसमें राव अमरसिंह के साथ व्यास गिरधर के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी गई है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि व्यास बच्छराज ने जब गिरधरोत व्यासों की ख्यात ग्रन्थ लिखा तो उन्होंने महाराजा गजसिंह की ख्यात में उपलब्ध सामग्री को अपने लेखन कार्य का आधार बनाया हो। अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गिरधर व्यास एक महान् योद्धा थे। इसके अलावा मध्यकाल में जब युद्ध लड़े जाते थे तो उसमें क्षत्रियों के अलावा अन्य जातियों के वीर भी सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। आवश्यकता पड़ने पर कई बार राजपूतों के अलावा अन्य जातियों के लोग भी सेनापति के रूप में युद्ध संचालन करते थे। ऐसे प्रसंगों में व्यास गिरधर का उदाहरण अपने आप में महत्वपूर्ण है।

सह आचार्य, इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

संदर्भ संख्या—

1. रेउ, विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास खण्ड पृ. 199-209
2. मुगल साम्राज्य का इतिहास पृ. 380-411
3. व्यास बच्छराज, गिरधरोत व्यासों की ख्यात, पृ. 7-8
4. वही, पृ. 8
5. रेउ, पूर्वो पृ. 208
6. व्यास बच्छराज, पूर्वो, पृ. 11, महाराजा गजसिंह की ख्यात, पृ. 179-180 (अनुवाद)
7. बादशाह नामा, भाग 2, पृ. 382
8. रेउ, पूर्वो. पृ. 654 (खण्ड 2)
9. व्यास, बच्छराज, पूर्वो पृ. 13
10. वही; महाराजा गजसिंह की ख्यात पृ. 183-184
11. वही; महाराजा गजसिंह की ख्यात, पृ. 183
12. वही,
13 वही
14. महाराजा गजसिंह की ख्यात पृ. 176
15. महाराजा गजसिंह की ख्यात पृ. 176-182
16. वही, पृ. 184
17. वही, पृ. 193
18. शोधपत्रिका, वर्ष 43, अंक 2, पृ. 12-31
19. वही, पृ. 18, 30
20. व्यास बच्छराज, पूर्वो. देखे ताम्रपत्र की नकल परिशिष्ट।
21. वही, पृ. 20-21
22. वही, पृ. 23-24
23. व्यास बच्छराज कृत गिरधरोत व्यासों की ख्यात की तीन प्रतियाँ प्रकाश में आई हैं जो श्री बालकृष्ण व्यास, स्व. श्री विजयराज जी व्यास के पुत्रों तथा श्रीकृष्ण पुरोहित के पुत्र आतुजी के पास जोधपुर में उपलब्ध है। इस कृति के नायक वीर गिरधरजी व्यास के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण हेतु द्रष्टव्य, राजस्थान इतिहास कांग्रेस, सिरोही अधिवेशन की रिपोर्ट में प्रकाशित मेरा लेख वीर गिरधर व्यास जूंझार पृ. 73-78, व्यास सूर्यराज, वीर गिरधरजी, (सं. 1982)

राव अमरसिंघजी रो उवाकौ - एक अध्ययन

(स्व.) डॉ. शिवदत्तदान बारहट

ऐतिहासिक गद्य साहित्य के रूप में राजस्थानी भाषा में लिखी गई ख्यातें, विगत पाटनामें, वंशावलियां, पिडियावलियों के साथ ही बात साहित्य इतिहास निर्माण में आधार ग्रन्थों के रूप में उपयोगी सिद्ध होता है। ख्यातों, विगत, वंशावलियों में जहां राज्यों, वंशों अथवा जातियों का सम्पूर्ण इतिवृत्त होता हैं, वही पर वात साहित्य का वर्ण्य विषय कोई घटना विशेष अथवा ऐतिहासिक जीवनचरित्र अथवा ऐतिहासिक पुरूष के जीवन का कोई काल खण्ड ही होता है। इसी तरह साकों का विवरण अथवा वाकौ का इतिवृत्त वात साहित्य का ही एक अंग माना जा सकता है। श्री नटनागर शोध संस्थान, में संगृहीत कविराजा संग्रह के हस्तलिखित ग्रन्थों में 'राव अमरसिंघजी रो उवाकौ' शीर्षक एक लघु रचना संगृहीत है। इस लघु कृति का मुख्य वर्ण्य विषय राव अमरसिंह का आगरा में दाराशिकोह की हवेली पर मारा जाना और उसके सामन्तों द्वारा किया गया सशस्त्र संघर्ष है। इस मुख्य विषय के साथ ही इस उवाकै में संक्षेप में सन् 1634 से 1643 ई. तक की राव अमरसिंह के जीवनकाल की घटनाओं का भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। इस लघु रचना को राव अमरसिंह के मारे जाने के कोई डेढ़ वर्ष बाद फाल्गुन सं. 1703 वि. में लिखा गया था जिसकी गुरूवार कार्तिक वदी 6, 1871 वि. के दिन जों प्रतिलिपि तैयार की गई वही प्रतिलिपि वर्तमान में कविराजा संग्रह में संगृहीत है। यों निकट समकालीन रचना होने के कारण राव अमरसिंह के इतिवृत्त के लिये उपयोगी सिद्ध होती है, अतः यहां इसी लघु कृति का विवेचन किया जा रहा है।

'राव अमरसिंहजी रो उवाकौ शीर्षक इस कृति में राव अमरसिंह के जोधपुर के राज्याधिकार से अलग किये जाने के पश्चात् के जीवन काल का ही चित्रण किया गया है। अतः राव अमरसिंह के जीवन काल की विभिन्न घटनाओं के आधार पर इस लघु रचना उवाकौ का विवेचन करने से पूर्व उसके प्रारंभिक जीवन का संक्षिप्त परिचय देना समीचीन होगा।

जोधपुर के शासक महाराजा गजसिंह की रानी मनसुखदे की कोख से पौष सुदी 10, 1670 वि. शनिवार, दिसम्बर 11, 1613 ई. के दिन राजकुमार अमरसिंह का जन्म हुआ।[1] महाराजा गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण अमरसिंह उनका उत्तराधिकारी भी था। किन्तु राजकुमार की वाचालता और उद्दण्ड स्वभाव के कारण महाराजा गजसिंह

की पासवान अनारा का वह कोप भाजन बन गया। फलस्वरूप राजकुमार अमरसिंह धीरे-धीरे महाराजा गजसिंह की नजरों से उतरता गया। बढ़ते हुए इस मनमुटाव का परिणाम राजकुमार अमरसिंह के लिये घातक निकला। महाराजा गजसिंह ने अपने छोटे पुत्र राजकुमार जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया।[2] अपने इस निश्चय को अमली जामा पहनाने के लिये वह उचित अवसर की तलाश में रहने लगा। सन् 1634 ई. में उसको यह अवसर भी मिल गया। इस समय बादशाह शाहजहां लाहौर में निवास कर रहा था और महाराजा गजसिंह भी उसके दरबार में उपस्थित था।[3] तब उसने राजकुमार अमरसिंह को बादशाह से पृथक् जागीर दिलवा कर अपने छोटे पुत्र राजकुमार जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय कर राजकुमार अमरसिंह को लाहौर बुलवाया। साथ ही अपने प्रधान राठौड़ राजसिंह कूंपावत को अपने निर्णय से अवगत करवाते हुए अमरसिंह को लाहौर भेज देने को लिखा। इसी घटना के उल्लेख के साथ 'ऊवाकौ' की यह लघु कृति प्रारम्भ होती है- 'संवत् 1690 रै वैसाख में राजाजी श्री गजसिंहजी बार बटौ दियौ' [4]

महाराजा द्वारा लाहौर बुलवाये जाने के आदेशानुसार राजकुमार अमरसिंह वैसाख वदी 11, 1690 वि. रविवार, अप्रैल 13, 1634 ई. के दिन जोधपुर से रवाना होकर बिलाड़ा होता हुआ मेड़ता पहुंचा।[5] मेड़ता में राठौड़ राजसिंह कूंपावत उससे मिला और महाराजा गजसिंह के वास्तविक निर्णय से राजकुमार अमरसिंह को अवगत करवाया। ऊवाकौ में उल्लेख मिलता है कि 'कंवर अमरसिंघजी नु गुदराया अमरसिंघ कागल वाच माथे चढ़ाय लीयौ' तिज माह लिखीयौ हुतौ: अमरसिंघ नु इतरौ दियौ तिणरी विगत दस हजार रुपीया रोकड़ा ने पांच घोड़ा खासा : ऐक हाथी.... ।[6]

यों राजकुमार अमरसिंह अनायास ही अपने पैतृक अधिकार से वंचित कर दिया गया। इन विपरीत परिस्थितियों का उल्लेख हमें ऊवाकै में मिलता है।[7]

तरै अमरसिंघ चिंता करण लागौ : तरै गौढे एक पौहकरणों वीरामण सुंदर थौ आगै वहुजी सोनगरीजी अमरसिंघ जी री मा हुती : तीण रौ चाकर हुतौ : तिण कहीयौ : कुवरजीराज मन माहै काई चिंता करौ : रावलौ बखत बडौ छै: राज कड़ काठी करौ तरै कंवर जी बोलिया : जै सुंदर ईतरै खरच आंपै श्री पातसाहजी आगै पौहचां नहीं : का सुकड़ काठी करू.... ।'

वस्तुत : राजकुमार अमरसिंह के समक्ष इस समय धन का अभाव और साधनों की कमी की विकट समस्या थी। इस समस्या का कैसे निराकरण किया गया इसका

राव अमरसिंघजी रो उवाकौ - एक अध्ययन

(स्व.) डॉ. शिवदत्तदान बारहट

ऐतिहासिक गद्य साहित्य के रूप में राजस्थानी भाषा में लिखी गई ख्यातें, विगत पाटनामें, वंशावलियां, पिडियावलियों के साथ ही बात साहित्य इतिहास निर्माण में आधार ग्रन्थों के रूप में उपयोगी सिद्ध होता है। ख्यातों, विगत, वंशावलियों में जहां राज्यों, वंशों अथवा जातियों का सम्पूर्ण इतिवृत्त होता हैं, वही पर वात साहित्य का वर्ण्य विषय कोई घटना विशेष अथवा ऐतिहासिक जीवनचरित्र अथवा ऐतिहासिक पुरूष के जीवन का कोई काल खण्ड ही होता है। इसी तरह साकों का विवरण अथवा वाकौ का इतिवृत्त वात साहित्य का ही एक अंग माना जा सकता है। श्री नटनागर शोध संस्थान, में संगृहीत कविराजा संग्रह के हस्तलिखित ग्रन्थों में 'राव अमरसिंघजी रो उवाकौ' शीर्षक एक लघु रचना संगृहीत है। इस लघु कृति का मुख्य वर्ण्य विषय राव अमरसिंह का आगरा में दाराशिकोह की हवेली पर मारा जाना और उसके सामन्तों द्वारा किया गया सशस्त्र संघर्ष है। इस मुख्य विषय के साथ ही इस उवाकै में संक्षेप में सन् 1634 से 1643 ई. तक की राव अमरसिंह के जीवनकाल की घटनाओं का भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। इस लघु रचना को राव अमरसिंह के मारे जाने के कोई डेढ़ वर्ष बाद फाल्गुन सं. 1703 वि. में लिखा गया था जिसकी गुरूवार कार्तिक वदी 6, 1871 वि. के दिन जो प्रतिलिपि तैयार की गई वही प्रतिलिपि वर्तमान में कविराजा संग्रह में संगृहीत है। यों निकट समकालीन रचना होने के कारण राव अमरसिंह के इतिवृत्त के लिये उपयोगी सिद्ध होती है, अत: यहां इसी लघु कृति का विवेचन किया जा रहा है।

'राव अमरसिंहजी रो उवाकौ शीर्षक इस कृति में राव अमरसिंह के जोधपुर के राज्याधिकार से अलग किये जाने के पश्चात् के जीवन काल का ही चित्रण किया गया है। अत: राव अमरसिंह के जीवन काल की विभिन्न घटनाओं के आधार पर इस लघु रचना उवाकौ का विवेचन करने से पूर्व उसके प्रारंभिक जीवन का संक्षिप्त परिचय देना समीचीन होगा।

जोधपुर के शासक महाराजा गजसिंह की रानी मनसुखदे की कोख से पौष सुदी 10, 1670 वि. शनिवार, दिसम्बर 11, 1613 ई. के दिन राजकुमार अमरसिंह का जन्म हुआ।[1] महाराजा गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण अमरसिंह उनका उत्तराधिकारी भी था। किन्तु राजकुमार की वाचालता और उद्दण्ड स्वभाव के कारण महाराजा गजसिंह

की पासवान अनारा का वह कोप भाजन बन गया। फलस्वरूप राजकुमार अमरसिंह धीरे-धीरे महाराजा गजसिंह की नजरों से उतरता गया। बढ़ते हुए इस मनमुटाव का परिणाम राजकुमार अमरसिंह के लिये घातक निकला। महाराजा गजसिंह ने अपने छोटे पुत्र राजकुमार जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया।[2] अपने इस निश्चय को अमली जामा पहनाने के लिये वह उचित अवसर की तलाश में रहने लगा। सन् 1634 ई. में उसको यह अवसर भी मिल गया। इस समय बादशाह शाहजहां लाहौर में निवास कर रहा था और महाराजा गजसिंह भी उसके दरबार में उपस्थित था।[3] तब उसने राजकुमार अमरसिंह को बादशाह से पृथक् जागीर दिलवा कर अपने छोटे पुत्र राजकुमार जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय कर राजकुमार अमरसिंह को लाहौर बुलवाया। साथ ही अपने प्रधान राठौड़ राजसिंह कूंपावत को अपने निर्णय से अवगत करवाते हुए अमरसिंह को लाहौर भेज देने को लिखा। इसी घटना के उल्लेख के साथ 'ऊवाकौ' की यह लघु कृति प्रारम्भ होती है- 'संवत् 1690 रै वैसाख में राजाजी श्री गजसिंहजी बार बटौ दियौ' [4]

महाराजा द्वारा लाहौर बुलवाये जाने के आदेशानुसार राजकुमार अमरसिंह वैसाख वदी 11, 1690 वि. रविवार, अप्रैल 13, 1634 ई. के दिन जोधपुर से रवाना होकर बिलाड़ा होता हुआ मेड़ता पहुंचा।[5] मेड़ता में राठौड़ राजसिंह कूंपावत उससे मिला और महाराजा गजसिंह के वास्तविक निर्णय से राजकुमार अमरसिंह को अवगत करवाया। ऊवाकौ में उल्लेख मिलता है कि 'कंवर अमरसिंघजी नु गुदराया अमरसिंघ कागल वाच माथे चढ़ाय लीयौ' तिज माह लिखीयौ हुतौ: अमरसिंघ नु इतरौ दियौ तिणरी विगत दस हजार रुपीया रोकड़ा ने पांच घोड़ा खासा : ऐक हाथी..... ।[6]

यों राजकुमार अमरसिंह अनायास ही अपने पैतृक अधिकार से वंचित कर दिया गया। इन विपरीत परिस्थितियों का उल्लेख हमें ऊवाके में मिलता है।[7]

तरै अमरसिंघ चिंता करण लागौ : तरै गौढे एक पौहकरणों वीरामण सुंदर थौ आगै वहुजी सोनगरीजी अमरसिंघ जी री मा हुती : तीण रौ चाकर हुतौ : तिण कहीयौ : कुवरजीराज मन माहै काई चिंता करौ : रावलौ बखत बडौ छै: राज कड़ काठी करौ तरै कंवर जी बोलिया : जै सुंदर ईतरै खरच आंपै श्री पातसाहजी आगै पौहचां नहीं : का सुकड़ काठी करू.... ।'

वस्तुत : राजकुमार अमरसिंह के समक्ष इस समय धन का अभाव और साधनों की कमी की विकट समस्या थी। इस समस्या का कैसे निराकरण किया गया इसका

विवरण हमें 'ऊवाकै' में ही मिलता है। 'उवाकै' के वर्णनानुसार पुष्करणा ब्राह्मण सुंदर की सलाह और सहायता से राजकुमार अमरसिंह ने सूरपुरा ग्राम के बोहरा महाजनों से 10,000/- रु., आंबेर के व्यापारी दामोदर से 10,000/- रु. तथा मारवाड़ के अन्य व्यापारियों से 30,000/- रुपयों का ऋण पत्र लिख कर कर्ज लिया तथा अमरसिंह की मां ने इस समय चार हजार रुपयों के साधन जुटा कर और उसकी कछवाही पत्नी ने चार हजार रुपये की नकद सहायता की।[8] यों धन समस्या हल हो जाने के बाद राजकुमार अमरसिंह ने मारवाड़ के राजपूत सरदारों को पत्र लिख कर अपने साथ शाही दरबार में चलने और उनको राह खर्च एवम् उचित जागीर देने के आश्वासन दिया। राजकुमार द्वारा दिये गये इस निमंत्रण पर मारवाड़ के कई सरदार मेड़ता में उसके पास उपस्थित हुए। जिनमें सोनगरा जगन्नाथ, भाखरसिंह, वीरमदेव राठौड़, राजसिंह विसनदासोत, रतन महेसदासोत, प्रतापसिंह गोपालदासोत और विठलदास किसनसिंहोत आदि प्रमुख थे।[9] इस प्रकार इन सरदारों के मेड़ता में एकत्रित हो जाने के बाद आश्विन सुदी 10, 1691 वि. सोमवार सितम्बर 22, 1634 ई. के दिन[10] वह मेड़ता से रवाना हुआ। मार्ग में मारवाड़ के राजपूत सरदार उसके साथ होते गये। यों दिसम्बर, 1634 के प्रारम्भ में 2800 सैनिकों सहित जब वह अपने पिता के पास लाहौर पहुंचा तो ऊवाकौ के अनुसार श्री पातसाहजी सांभल में खुस हुआ नै राजा श्री गजसिंहजी वैराजी हुआ।[11]

ऊवाकौ के अनुसार लाहौर पहुंचने के बाद बादशाह शाहजहां राजकुमार अमरसिंघ और उसके साथ आये राजपूत सरदारों को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और अमरसिंघ को चार लाख वार्षिक आय की जागीर के रूप में बड़ोद, सांगोद, आंतरदा, झिलाय और समधी पांच परगने प्रदान किये।[12] अन्य समकालीन फारसी ग्रंथों के विवरणों और राजस्थानी ख्यातों से ऊवाकौ का यह विवरण प्रमाणित होता है। वास्तव में राजकुमार अमरसिंह के लाहौर पहुंचने के बाद दिसम्बर 4, 1634 ई. के दिन वह अपने पिता महाराजा गजसिंह के साथ शाही दरबार में उपस्थित हुआ। तब बादशाह शाहजहां ने 29, जमादिउल आखिर सन् 8 जुलूस गुरूवार दिसम्बर 11, 1634 ई. के दिन मनसब झण्डा, हाथी प्रदान कर पांच परगनों की पृथक् जागीर प्रदान की।

राजकुमार अमरसिंह को पृथक् जागीर मिलने के उल्लेख के बाद उवाकै में महाराजा गजसिंह के स्वर्गवास के बाद स्वर्गीय राजा की इच्छानुसार जसवन्तसिंह को जोधपुर का टीका तथा अमरसिंह को 19 पट्टियों सहित नागौर की स्वतंत्र जागीर और राव की पदवी प्रदान करने का उल्लेख है।[13] उवाकै से पता चलता है कि इस समय अमरसिंह शाहजादा शुजा के साथ कंधार की सैनिक मुहिम पर गया हुआ था। अतः यह सब सम्मान उसके प्रतिनिधि सिंघवी सिंहमल ने स्वीकार किये और बड़ोद से चल कर

कार्तिक, 1695 वि. में नागौर पर अधिकार कर लिया और राव अमरसिंह की वसी को भी नागौर ले आया।[14] अत: जब राव अमरसिंह कंधार-अभियान से लौटा तो बादशाह से आज्ञा लेकर नव अर्जित जागीर नागौर आया और अगले डेढ़ वर्ष तक वह नागौर में निवास करता रहा। ऊवाकौ से हमें यह भी ज्ञात होता है कि नागौर निवास काल में देस में सुकाल रहा और राव अमरसिंह ने नागौर में महल आदि बनवाये।[15] राव अमरसिंह द्वारा नागौर में करवाये गये निर्माण कार्यों का उल्लेख उसके समकालीन कवि किसना आढ़ा ने भी किया है। यथा-

अमर वणायो नागपुर मिंदर भुज जाला।
चौबरा चित्रसालियां बाजार धजाला।[16]

इस विवरण के पश्चात् ऊवाकै में राव अमरसिंह का नागौर से लौट कर दरबार में जाना और वहां से काबुल के सैनिक अभियान पर उसकी नियुक्ति के संकेत मात्र के पश्चात् उसकी अनुपस्थिति में बीकानेर राज्य के साथ सीमा विवाद को लेकर चलते हुये संघर्ष का वर्णन लिखा गया है। इससे पता चलता हैं कि नागौर और बीकानेर राज्य सीमा पर आबाद जाखाणिया व सीलवा ग्राम की सीमा को लेकर विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया और दोनों शासकों की अनुपस्थिति में कार्तिक वदि 11, 1699 वि. (न कि 1700 वि. जैसा कि ऊवाकौ में भूल से सशस्त्र लिखा गया है।) अक्टूबर 9, 1642 ई. के दिन सशस्त्र संघर्ष हुआ। इस समय राव अमरसिंह की सेना में सिंघवी सिंहमल प्रमुख अधिकारी था। इस युद्ध में राठौड़ गोयंददास खींवावत, सोनगरा जगन्नाथ जसवंतोत आदि प्रमुख सामन्तों सहित 114 सैनिक मारे गये और सिंहमल को पराजय का मुंह देखना पड़ा।[17]

इस घटना के समय राव अमरसिंह काबुल अभियान से लौटकर आगरा में निवास कर रहा था। वहीं पर उसे अपनी सेना की पराजय का समाचार मिला। तब वह बहुत दुःखी हुआ। हमें उवाकौ के वर्णन से पता चलता है कि इस समय राव अमरसिंह बादशाह से अनुमति लेकर नागौर आया और सिंघवी सिंहमल को भला बुरा कहा। फिर उसने कहा 'सिंहमल में किसौ दोष श्री दामोदरजी करै सौ खरो।'[18] इसके बाद अमरसिंह का नागौर में निवास, नवम्बर में शाहजहां के अजमेर आने के अवसर पर उसका अपने पुत्र रायसिंह के साथ अजमेर में बादशाह के समक्ष उपस्थित होना, रायसिंह को मसूदा की जागीर मिलना और दिसम्बर 17, 1643 ई. को बादशाह के साथ ही अमरसिंह का आगरा आने का उल्लेख हमें उवाकौ[19] व किसना आढ़ा के झूलणों[20] के अतिरिक्त किसी फारसी ग्रन्थ में नहीं मिलता।

इसके बाद आगरा में शाहजादा दाराशिकोह द्वारा हाथियों को लड़वाकर अमरसिंह पर व्यंङ्ग्य करना, राव अमरसिंह द्वारा पुन: बीकानेर पर सैनिक अभियान की अनुमति

मांगना तथा अपने सरदारों को आवश्यक निर्देशों के साथ नागौर भेजने का वर्णन उवाकै में किया गया है। राव अमरसिंह ने अपने सरदारों को बीकानेर से शीघ्र लड़ाई करने का निर्देश देते हुए कहा कि युद्ध के समाचार आने पर ही दरबार में जाऊंगा। इसी समय उसके 'साथल रै अरीयौ रू तोड़ तिणज दीन हुओ तिण रो पिण मिस हुयै।'[21] यों ऊंवाकै के वर्णन से स्पष्ट होता है कि राव अमरसिंह युद्ध के समाचारों की प्रतीक्षा में 24 दिन तक शाही दरबार में नहीं आया।[22]

इसके पश्चात् उवाकै में राव अमरसिंह के दाराशिकोह की हवेली में मारे जाने और उसके बाद राव के सरदारों के सशस्त्र संघर्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस विवरण के अनुसार जुलाई 25, 1644 ई. के दिन व्यास गिरधर द्वारा समझाने पर राव अमरसिंह ने सायंकालीन दरबार में जाने का निश्चय किया।[23] अत: सावण सुदी 2, 1701 वि. गुरूवार, जुलाई 25, 1644 ई. के सायंकाल शाही दरबार में जाने के लिये वह तैयार हुआ। इस समय बादशाह शाहजादा दारा की हवेली में निवास कर रहा था। जब राव अमरसिंह अपने साथियों के साथ अपनी हवेली से रवाना हुआ तो अपशगुन हुए।[24] उवाकै में लिखा हैं कि 'सांझ हुई तरै सगला ठाकर त्यार होय आया हाथा रो चह बचो आय हाजर हुवौ, तेरे रावजी हाथी सवार हुतां छींक हुई। तरै व्यास गिरधर अरज की महाराज आज छींक होय छै मत पधारो किन्तु राव अमरसिंह माना नहीं। 4 सरदारों व 40 सेवकों के साथ दाराशिकोह की हवेली पहुंचा।[25] उवाकै में आगे उस समय शाही दरबार में उपस्थित मनसबदारों के नाम, राव अमरसिंह के मन में सलाबतखां के प्रति शंका उत्पन्न होना और उत्तेजित होकर सलाबतखां की कटारी से हत्या करने का वर्णन लिखा गया है।[26] इस घटना से शाही दरबार में आंतक फैल गया। बादशाह शाहजहां के सामने अमरसिंह सुस्त पड़ कर दरबार से जाने लगा। तब दाराशिकोह ने बादशाह को कहा कि अमरसिंह को छोड़ना नहीं चाहिये।[27] अत बादशाह ने पुन: आदेश दिया कि अमरसिंह को मार दिया जाय। तब दरबार में उपस्थित अमीर उमरावों ने राव अमरसिंह को रोका। इस समय अर्जुन गौड़ ने राव अमरसिंह पर पीछे से वार किया, जिससे अमरसिंह नीचे गिर पड़ा। गिरते हुए अमरसिंह ने कटार का प्रहार अर्जुन गौड़ पर किया और अपने साथ आये सेवक भोजराज पेथड़ को बाहर खड़े अपने सरदारों को सूचित करने का इशारा किया। किन्तु इसी बीच नीचे गिरे हुए अमरसिंह पर गर्जवरदारों ने आक्रमण कर उसको मार डाला।[28]

उवाकै के लेख से पता चलता है कि बादशाह ने राव अमरसिंह की लाश उसके सरदारों को सौंप देने का आदेश दिया। तब मीरखां तुजक तथा बख्शी मलूकचंद उसकी लाश को उठाकर हवेली के बाहर खड़े राव के सरदारों को सौंपने गये। वहां

पर राव अमरसिंह के उत्तेजित सरदारों ने मीरखां व मलूकचंद पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। हवेली के बाहर हुए संघर्ष में राठौड़ श्यामसिंह कूंपावत, राठौड़ गोकुलदास, राठौड़ जगन्नाथ भीमोत, भाटी हरनाथ जोगीदासौत आदि 13 सरदार मारे गये।[29]

इस घटनाक्रम के बाद उवाकै में वर्णन मिलता है कि दूसरे दिन प्रातः राठौड़ बल्लु चांपावत व राठौड़ भावसिंह, व्यास गिरधर व मिर्जाराजा जयसिंह के बख्शी पंचोली महेशदास की सहायता से यमुना नदी के किनारे राव अमरसिंह की रानियां सती हुई।[30] इस अवसर पर राव अमरसिंह के सभी परिचित भी एकत्रित हुए। राव अमरसिंह की हवेली में एकत्रित राठौड़ों में व्याप्त रोष के कारण अर्जुन गोड़ को भय हुआ और उसने बादशाह शाहजँहा को इन राठौड़ सरदारों द्वारा उपद्रव करने की आशंका व्यक्त की। तब बादशाह ने राव अमरसिंह की हवेली पर एकत्रित राठौड़ों को दबाने के लिये खानजहां के नेतृत्व में एक सेना भेजी। उवाकै से पता चलता हैं कि श्रावण सुदि 3, 1701 वि. 26 जुलाई 1644 ई. के दिन लड़ाई हुई जिसमें राव अमरसिंह के सरदारों में से राठौड़ बलू चांपावत, राठौड़ भावसिंह कूंपावत, व्यास गिरधर सहित 64 प्रमुख सरदार मारे गये। इस संघर्ष के लिये उवाकै में लिखा गया है कि 'राठौड़ा री हथववा संघडी हुई, तिण वासतै पातसाही आराबौ तोपा मैह आय गयो तिण सूं छूट सकीयौ नहीं तरै आडै लोहडे वाजिया तरै हथवाह राठौड़ा रे हाथ रही।[31]

इसके बाद आगरा में राव अमरसिंह की रानियों और उसकी खवासौं का सती होना उल्लेखित है। उवाकै के अन्त में इसकी रचनाकाल और प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रतिलिपि करने का उल्लेख किया गया है।[32] 'मु. भेरवदास री पोथी प्रमाणै लिखीयो, आ पोथी सं. 1703 रा फागुण री लिखी थी, तिण प्रमाण आ पोथी भंडारी तिलोकमल जोधपुर में लिखी सं. 1871 कातीवद 6 वार गुरूवार।[33]

यों स्पष्ट है कि राव अमरसिंह के मारे जाने के कुंछ समय बाद ही इस उवाकै को लेखबद्ध किया गया था। अतः राव अमरसिंह के विवरण के लिये यह एक प्राथमिक आधार ग्रंथ के रूप में शोधार्थियों के लिये उपयोगी सिद्ध होता है।यह ग्रन्थ अब तक शोधार्थियों के लिये अल्पज्ञात ही था। ऐसी स्थिति में इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

वरिष्ठ शोध अधिकारी
श्री नटनागर शोध संस्थान
सीतामऊ (म.प्र.)

संदर्भ संख्या—

1. राठोड़ा री ख्यात, पृ.49 क, जोधपुर राज्य की ख्यात भाग 1, पृ. 272.
2. राठौड़ों री ख्यात, ग्रन्थ सं. 74, पृ. 105 ख,
3. मूंदियाड की ख्यात न. 2, पृ. 120,
4. राव अमरसिंघ जी रो ऊवाकौ, कविराजा संग्रह ग्रंथ 135, प. क । क।
5. राठौड़ा री ख्यात । वणसूर महादान । प. 49 ख ।
6. ऊवाकौ. प. ।ख ।
7. ऊवाकौ., प. ।ख ।
8. उवाकौ. प. 2 क ।
9. उवाकौ प. 2 क-ख·।
10. राठौड़ा (वणसूर महादान), प 49 ख ।
11. ऊवाकौ., प. 2 ख ।
12. उवाकौ. प. 3 क, 2ए-पादशाहनामा. 2 पृ. 293
13. ऊवाकौ प., 3 ख ।
14. ऊवाकौ. प. 3 क-4क ।
15. ऊवाको., प. 4 क ।
16. राव अमरसिंघ जी रा झूलणा, झूलणा नं. 2 शोध., पत्रिका, वर्ष 32 अंक 1, पृ. 23.
17. उवाकौ. प. 4 ख-5 ख ।
18. उवाकौ., प. 5 ख ।-
19. उवाकौ. प. 5 ख - 6 ख ।
20. झूलणा. शोध-पत्रिका, वर्ष 32, अंक 1, पृ. 24.
21. उवाकौ. प. 7 क-ख ।
22. उवाकौ., प 7 ख ।
23. उवाकौ., प. 8 क ।
24. उवाकौ., प. 8 क-ख ।
25. उवाकौ. प. 8 ख ।
26. उवाकौ. 9 क-10 ख ।
27. उवाकौ., 10 ख ।
28. उवाकौ., प. 11 क.0 ख ।
29. उवाकौ., प. 12 ख-13 क ।
30. उवाकौ. प. 14 क ।

31. उवाकौ. प. 14 ख ।
32. उवाकौ. 14 ख-15 क ।
33. उवाकौ. पं. 15 ख ।

जोधपुर परगना रा निजरो देखिया

रामदत्त थानवी

यह 'जोधपुर परगना रा निजरो देखिया लेख संग्रह' गद्य साहित्य के रूप में अपना विशेष महत्व रखता है। क्योंकि यह ग्रंथ अप्रकाशित होने से अल्पज्ञात रहा है इसलिये इसका तात्त्विक विवेचन करना उचित एवं अपेक्षित है। इस ग्रंथ के रचनाकार श्रीकिशन पुरोहित जोधपुर नगरीय पुष्करणा ब्राह्मण समाज में सेवग पुरोहित गोत्र में पैदा हुए थे। इनका निवास स्थान नवचौकिया मौहल्ला में सिंहपोल की घाटी पर था, जहां अभी भी इनके वशंज निवास करते हैं। पुरोहितजी ने घूम-घूम कर जोधपुर शहर की और परगने के गांवो की देवलियों, बावड़ियों, मंदिरों आदि के लेखों को अपनी नजरो से देखा, पढ़ा और उनको पुस्तक के रूप में तैयार किया। यह ग्रंथ 11"x6" के आकार का 62 पत्रों का है, जिसमें जोधपुर शहर के चौबीस स्थलों के 228 लेख हैं तथा 112 लेख परगने के गाँवों से लिये गये हैं। श्रीकिशनजी के पुत्र हरिकिशनजी के पास यह हस्तलिखित सामग्री आज भी सुरक्षित रखी हुई है।

राजस्थान के इस ऐतिहासिक गद्य ग्रन्थ का नाम स्वयं प्रमाणित करता है कि इसमें जो भी ऐतिहासिक वर्णन किया गया है वह सब प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसलिये इसका नाम 'जोधपुर परगनों का नजरो देखियाँ लेख संग्रह' रखा गया है। प्रारम्भ में ही जोधपुर शहर के दरवाजों आदि पर जो सतियों के हाथ छपे हैं उनकी गणना की गई हैं। इस गणना से सती की महिमा का मण्डन नहीं होता अपितु यह जानकारी मिलती हैं कि जिन-जिन दरवाजों पर हाथों की छापों की संख्या अधिक हैं, उस ओर शहर के दाह-स्थल श्मशान स्थित थे, जो आज भी मौजूद हैं। जैसे चांदपोल के बाहर कैलाश श्मशान, सिंवाची दरवाजे के बाहर भांडेलाव तथा नागौरी दरवाजे के बाहर कागा श्मशान है। इसके बाद अलग-अलग स्थानों पर लेखों के आलेख जो इतिहास कार को मिले हैं जो जोधपुर केअंदर 228 हैं और पास के परगने के अंदर 112 हैं उनमें से सतियों के आलेखों को छोड़ दें तो भी हमें मंदिरों, बावड़ियों तथा अन्य स्थलों की जानकारी देने वाले लेख मिलते हैं। कई लेख रानियों का इतिहास बतलाते हैं तो कुछ एक सामाजिक परिस्थितियों में होने वाली सतियों के विभिन्न कारणों पर भी प्रकाश ड़ालते हैं। कई लेख जैन जातियों के चरण पादुकाओ का इतिहास प्रकट करते हैं तो कई लेखों से साधुसंतो की बनी समाधियों का भी वर्णन दृष्टिगत होता है। किन्हीं लेखों से राजाओं के दान पत्र की जानकारी मिलती हैं तो कोई लेख ऐतिहासिक भूलों

की ओर भी ध्यानकर्षित करते दिखाई देते हैं। अगर हम सतियों के लेखों की उपेक्षा ही कर दें तो हमें कई ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी से अनजाना रहना पड़ेगा। अत: ऐतिहासिक महत्व की सूचनाओं वाले सतियों के लेखों का भी संदर्भ के रूप में उपयोग करना अपेक्षित होगा।

खोजी इतिहासकार ने जोधपुर शहर के 24 स्थलों का—चांदपोल, कैलाश श्मशान, गोरधन तालाब, बोड़ों की बगेची, तापड़िया कुआं, रामेश्वरजी का मंदिर, नवचौकिया मौहल्ला, लोढ़ों की गली, पचेटिया पहाड़ी, चांदबावड़ी, रानीसर तालाब, रासोलाई, जोधपुर किला, गुलाबसागर, फतेहसागर, कागा श्मशान, जूनी धान मण्डी, आड़ा चौटा, सिवांची गेट, सोजती गेट, भांडेलाव् श्मशान, बकतसागर, अखेराजजी का तालाब और गुरों के तालाब का भ्रमण कर लेख इकट्ठे किये हैं। इसी प्रकार परगने के गाँव चावंड, नेवरा, बोहरावास, बनाड़, सूरपुरा, गड़ाव, गुजरावास, भीखमखोर,ओसियाँ, देवतड़ा, आसोप, हीराबाड़ी, मथानियाँ, गजसिंहपुरा, नाड़सर, लवेरा बावरी, चेराई और गाँव करवड़ में स्थित लेखों का प्रत्यक्ष पठन करके उनको संगृहीत किया है।

अब हम विभिन्न लेखों के नमूने यहाँ प्रकट करने जा रहे हैं। लेख नम्बर 15 'चांदपोल कैलाश श्री पुरोहितजी रा कुँआ देवल कीर्तिस्तम्भ चार पहलू, चार देवता उत्कीर्ण संवत् 1787 भादवा......श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज अभयसिंहजी, महाराज कुमार श्रीरामसिंहजी..... ।' इस लेख से जोधपुर नरेश अभयसिंह जी के समय का कुँआ बनाया जाना मालूम होता है।

(1) लेख नम्बर 24 'चांदपोल बाहर बोड़ो री बगेची श्री उंठा देवी (सारका देवी) रे चरण चौकी पर लेख संवत् 1877 सा. के 1782 भादव शुक्ल पक्षे चार सोमवासरे, मकराना में मुरतियो चरण पोकरणा बाह्मणों समस्थो री कुल देवीश्री श्री उठा देवी जी शरण, व्यास जमनादास हरष नवलराय चरण.....' इस लेख से पुष्करणा ब्राह्मणों की कुल देवी की प्रतिष्ठा का इतिहास जानकारी में आता है।

(2) लेख नम्बर 26 'बोड़ों की बगेची का है। इससे प्रकट होता है कि किसी स्वामीजी की समाधि संवत् 1925 माह वद 5 को बनाई गई थी और उसकी प्रतिष्ठा 1930 वैशाख सुद चौदस को की गई थी।

(3) लेख नम्बर 27 'श्री रामेश्वरजी रा मंदिर में श्री गजानन्दजी रे चरण के नीचे लेख (प्रतिष्ठा) संवत् 1701 बरखे साके 1566 वैसाक सूद 11 शनिवारे श्री जोधपुर

महाराज श्री जसवंतसिहजी राज्ये श्रीमाली सुन्दरदास पुष्कर जी पुष्करणा सुतसारण जी सुत पंचाली जीवराज मोहनदासजीप्रतिष्ठा सूत्रधार नाउर (नाहर)'

इससे यह जानकारी मिलती है कि रामेश्वरजी के मंदिर की प्रतिष्ठा जोधपुर नरेश श्री जसवंतसिंहजी प्रथम के समय हुई थी।

(4) लेख नम्बर 30 'चांदपोल त्रीवाडियों रा झालरो (क्रिया रो) पर कीर्तिस्तम्भ लाल पत्थर का चार पहलू व चार देवता ऊबा हैं संवत् 1775 महासुद एकम (1) त्रिवाडी सूकदेवजी जालरो करायो। सुखदेवजी ने उदयराम झालरो बंदायो, उदयराम सिवरीख साथ मोतीराम झालरा री प्रतिष्ठा संवत् 1885 रा माघ मासे शुकल पक्षे पुनातिथ त्रियोदसमिया सोमवासरे पुष्यनक्षत्रे...' इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि इस प्राचीन जल स्रोत झालरे का निर्माण श्रीमाली ब्राह्मण त्रिवेदी सुखदेवजी ने करवाया था। यह झालरा आज भी मौजूद है और मृत्यु संस्कार के ग्यारवे दिन क्रिया का काम सम्प्रति यहां हो रहा है।

(5) लेख नम्बर 42 'चांदपोल दरवाजा बाहर नैणसीरा बाग में बड़ी छत्री बीसथम्बों री संवत् 1831 साके 1696 प्रवर्तमासे मासोतम मासे दूतक वैसाक शुकल पक्षे तीथि 10 शनिवासरे मोहणोत राव श्री सुरतरामजी भगवतसिंहजी रा बेटा संग्रामसिंहजी रा पोता देवलोक पधारिया तिण पर मण्डप छत्री हुई तिणरी प्रतिष्ठा संवत् 1833 साके 1698 बैशाख चौदस गुरू ने कीनी।' इस लेख से छत्री की ऐतिहासिकता और वास्तुकला का ज्वलन्त उदाहरण मिलता है और यह भी जानकारी मिलती है कि यह बाग महाराजा जसवंतसिंहजी प्रथम के दीवान मुथा नैणसी का था।

(6) लेख नम्बर 44 'मौहल्ला नवचौकिया दमजी व्यास रो चौक श्री गोविन्ददेवजी रे छबणे पर स्वस्ति राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाजी श्री 108 श्री मानसिंह साहबों रे अंतेश्वर महाराणीजी श्री कच्छवाहीजी श्री सूरजकंवरबाई मंदिर करवायो, ठाकुर श्री गोविन्ददेवजी रो संवत् 1872 महासूद सातम बोहरा महारामजी' इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि इस वैष्णव मंदिर की स्थापना महारानी सूरज कंवर ने करवाई और बोहरा महाराम को पूजा का भार सौंपा। दमजी व्यास के चौक में यह मंदिर आज भी स्थित है और मौहल्ले के पुष्करणा ब्राह्मण इसकी पूजा का भार सम्भाले हुए हैं।

(7) लेख नम्बर 45, 46, 47 'पचेटिया ज्वालामुखीजी रा मंदिर कोतवाल भगवान् जी पड़ियार करवायो, खरच राज रो, भींमसेनजी मूर्ती एक सिंह करायों, भीमसेनजी रे

पाकती ऊंचा लेख संवत् 1716 वैसाख वत् 2 सोमवार महाराजा श्री जसवंतसिंहजी हस्ते सिखदार पड़ियार भगवोनजी रे.....(46) श्री भीमसेनजी टोंका जते ऊचा भीत में चूना करायो तीणरो..... श्री श्री 108 श्री मोनसिहजी री बाहर में सिंघवीजी श्री इन्दरराज जी माताजी रे कली चूनो चढ़ाई दसगत चुनगर महरोम रा छे वाचे जीणो मेहरोम रा छे।

(8) पचेटिया की पहाड़ी—अभिलेख न. 47

संवत् 1768 वरखे महावद् 13 शुकरवार (नाल बनना पाया जाता है).....इन लेखों से यह जानकारी मिलती है कि पचेटिया पहाडी पर यह ज्वालामुखी का मंदिर कब बना, किस के समय से बना, इसका विकास कब हुआ, इसके ऐतिहासिक सन् संवत् जानकारी में आते हैं। और यह भी जानकारी मिलती है कि सामाजिक जीवन में मंदिरों का क्या स्थान रहा है व राजवंश का इसमें कैसा सहयोग मिलता रहा है।

(9) लेख नम्बर 49 'चांदबावड़ी' दूसरी पोल के डावी बाजू में मकराना पर लेख है- श्रीरामजी, महाराजा श्री विजयसिंहजी के नाजर दरबारीजी चुहाण बावड़ी रे पट्टो ने देवरो बनवायो, संवत् 1810 वैसाख वद् 13 शनिवार' इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि चांदबावड़ी की सुरक्षा के लिए जो दीवार और पोल बनाई गयी थी वह किस राजा के राज्यकाल में निर्मित हुई, क्योंकि चांदबावडी का निर्माण तो कई वर्षों पूर्व हो चुका था।

(10) लेख नम्बर 50 'रानीसर तलाब के पोल के ड़ावी बाजु थम्बे पर- संवत् 1613 बरखे महाराजाधिराज राव श्री मालदेवजी पोल रानीसर माधो सुथार कनासू, पाग ती लीखता पामल-' इस लेख से यह जानकारी मिलती हैं कि रानीसर तलाब का परकोटा और पोल राव मालदेवजी के समय बने थे।

(11) लेख नम्बर 51 'रानीसर तालाब के ओटे के पास छतरी (मकराना री देवली घोड़े सवार तलवार ताने)- श्री परमेश्वर जी सत्य छै (राजश्री बाहदरसिंहजी बकतावरसिंहजी रा दोनसिंह होत खांप तुंवर राजस्थान गाँव लाखासर बीकानेर रो अठे, पटारो गांव मतोड़ो, खेतासर, भवाद धाट ने प्रदान साँखलो सूरतसिंह नागौर रो गाँव जठेरारो संवत् 1863 वैशाख वद सातम ने घेरा रानीसर रा मोरचा में काम आया तिण ऊपर छतरी कराय ने प्रतिष्ठा कराई। संवत् 1882 वैशाख सुद बीज)'- इस लेख से यह प्रतीत होता है कि रानीसर जलाशय को युद्ध के समय घेरा गया था ताकि किले में रहने वाले

लोगों को पानी न मिल सके और इस घेरे को तोड़ने के लिए जो वीर लड़े उनका इतिहास में वर्णन नगण्य सा है।

(12) **लेख नम्बर 53** 'रासोलाई' का लेख- 'महाराजा मानसिंहजी ने नाड़ी का नाम (झगड़ोलाई) रासोलाई रखा- किलारी सड़क पर देवली मकराना री घोडे सवार तलवार ताने हुए—दीवाणसिंह री जी श्री इन्दरराजजी भीवराजजी लिकमीचन्दजी संवत् 1872 मिति आसोजसुद आठम भोमवार सवापोहर दिन चढ़ियों नवाबमीरखां दंगो कियो, सो गढ़ उपर खॉबगाह रा महलों में आयसजी श्री देवनाथजी महाराज सामल काम आया, ने सिरे पोल होये रासोलाई पर दाग हुवो तिण ऊपर छतरी कराई। प्रतिष्ठा संवत् 1877 असाढ़ सुद आठम छतरी राजसु हुई, (पुत्र अखे राज जी रे तालाब पर छतरी कराई जो मौजूद है।' इस लेख से महाराजा मानसिंह जी के समय किले में हुए षड्यंत्र की जानकारी मिलती है, तथा यह भी सिद्ध होता है कि स्वामिभक्त लोगों की मृत्यु पर उनकी अर्थी, किले के सिरे पोल से निकाली जाती रही है। इससे यह भी मालूम होता है कि दीवान सिंघवी इन्दरराजजी की छतरी का निर्माण राजकीय कोष से करवाया गया था। यह स्मारक रासोलाई के पास आज भी प्रमाण के रूप में मौजूद है।

(13) **लेख नम्बर- 59** 'गुलाबसागर तालाब आथुणे पट्टे पर चबुतरा पर कीर्तिस्तम्भ चार पहलू चार तरफ देवता है' नीचे लेख- श्री गणैशाय नम: श्री विक्रम संवत् 1845 साके 1710 मासोत् मासें भाद्रपद शुकल पक्षे पंचामया (5) गुरूवासरे घड़ी 55 पल 27 स्वात नक्षत्रे घटे योगे 45 पल 37 कमनाम योगे घटी नौ पल 26 गौ ब्राह्मण प्रतिपाल क्षात्रधर्म प्रर्वतक सरबसामत मुकट जित चरणस्थ राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री 108 श्री श्री विजयसिंहजी कस्य धर्मपत्नी महाराणीजी श्री पासवान जी गुलाबराय जी परापती पुत्र महाराज कुमार श्री 108 सेरसिंहजी सागरस्य नाम गुलाब सागरस्य'-

(14) **लेख नम्बर-60** 'गुलाब सागर मोयला बागरा झालरा कीर्ति स्तम्ब चार पल्लू चार देवता ऊबा है' संवत् 1837 पौषवद छट रविवारे महाराजाधिराज श्री 108 श्री विजयसिंह जी....।'

(15) **लेख नम्बर-61** 'गुलाबसागर निज मंदिर री ओल में (उम्मेद स्कूल पास) आला में देवली बीच में महादेवजी आजू बाजू पती पत्नी चवर करते हुए- आयस जी श्री सूरतनाथजी रे पुत्र बालनाथजी रा पुत्र भुतनाथजी देव लोक लारे बहु अजतकंवर सत कियो संवत् 1903 दुतक जेठ सुद तेरस शनिसरवार गढ जोधपुर श्री निज मंदिर महाराजा श्री मानसिंहजी री वार में लारे सिंभु भेंटव कियो भंडारो कियो समादरी प्रतिष्ठॉं।

इन लेखों से गुलाबसागर जलाशय के निर्माण और महिलाबाग के झालरे का निर्माण महाराजा विजयसिंह जी की पासवान गुलाबराय ने करवाया था। जोधपुर के परम्परागत जल स्रोतों में राजवंश का कितना और कैसा योगदान रहा है इसकी जानकारी प्रामाणिक रूप से मिलती हैं।

(16) लेख नम्बर 64– 'फतेहसागर के पास में दादाबाड़ी में मकराना चौकी पर चरण बाजु में लेख—श्री जोधपुरनग्रे महाराजा श्री 108 श्री मानसिंहजी राज्ये श्री जीन चन्द्र सुरीश्वर श्री जीन कुशल सुरीजी.... संवत् 1866 साके 1731 वैशाख सुद 4 बुद्धवासरे पुख नक्षत्रे।' इस लेख से जैन धर्म के जतियों के चरणों के चौकी लगाने की जानकारी मिलती है। जिनका समय जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंहजी के राज्य काल का है।

कागा में कुल 38 छतरियों के लेख संगृहीत है जिनमें से कुछ का वर्णन यहां करना उपयुक्त होगा। जैसे लेख नम्बर 78 'कागा बाग में छंगाणी कचरदासजी रा श्री महादेवजी रा मंदिर में एक कीर्तिस्तम्भ जो राव अमरसिंहजी रा पौत्र इन्दरसिंह को साह ने जोधपुर राज्य खालसे कर संवत् 1736 जेठ में दिया, कोटवाल डूंगरसी गहलोत ने एक कुण्ड बनवाया जिसका लेख चूना पोतने से मिट गया-संवत् 1737 महासूद पूनम राजाश्री....(इन्दरसिंह)....सीकदार डूंगरसिंह.....मतरू कुण्ड कस्यते....स्तम्भ.... ।' इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि बादशाह औरंगजेब ने जोधपुर पर अधिकार करके मारवाड़ राज्य को अपने अधीन कर लिया था और महाराजा जसवंतसिंह प्रथम की मृत्यु के बाद राजकुमार अजीतसिंह को यह राज्य न देकर नागौराधिपति राव अमरसिंह के पौत्र इन्दरसिंह को दिया था। इसी राज्य को प्राप्त करने के लिए स्वामिभक्त दुर्गादास राठौड़ ने 28 वर्ष तक औरंगजेब से युद्ध किया था।

(17) लेख नम्बर 103–'कागा में ठाकुर गम्भीरसिंहजी का थड़ा रावटी में मकराना री देवली घोड़े पर सवार हाथ में भाला, आगे दो औरते हाथ जोड़े खड़ी लेख नजर नहीं आया। सुनते हैं कि महाराजा तखतसिंहजी ने जोधपुर गोद आने पर दस्तकत कर दिये 'सवि, समाध, वघ्नि' नहीं होने देगा। ठाकुर का देहान्त हवेली में हुआ पाग मोलिया नहीं भेजा। झालामण्ड से तीन रानियें थीं एक ऊपर से गिर देवलोक दो सतियें कागे पधारीं जहां दाह के लिए लाये सतियों ने पूछा—पाग मोलिया क्यू नहीं भेजा जबाव दिया अन्नदाता ने नहीं भेजने दी। श्राप दिया तुम्हारे साथ कोई नहीं चलेंगी। संवत् मिती नहीं मिली संवत् 1913 में होना पाया जाता है।' इस लेख से सतियों की नाराजगी और शाप की जानकारी मिलती है साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि तखतसिंह ईडर से (गुजरात) महाराजा मानसिंहजी की गोद आये थे और उस पर लोगो ने एतराज

उठाया था जिसकी लड़ाई में कई सामन्त मारे गये थे।

(18) लेख नम्बर-110– 'छतरी में देवली- हंजारी मानदातजी रा बेटा केवलराम, हंजारी सदासिंह रो भाई बकतावरसिंह साकधड़ा में काम, तिण ऊपर छतरी कराई, प्रतिष्ठा संवत् 1881 आसोज सुद 6 रुघसिंघ कराई—साकधड़ा का साका महाराजा भीमसिंह जी री फौज, महाराजा मानसिंह पाली लुट जाते- गांव साकधड़ा में मुकाबला हो गया, जिसमें सैकड़ों राजपूत खेत रहे। यह घटना संवत् 1857 की है। महाराजा मानसिंह जी कुशल निकले। इस लड़ाई को 'साकधड़ा' साका कहते हैं।' इस लेख से महाराजा मानसिंह जो जालौर में थे उन पर भीमसिंह जी ने फौज भेजी। दोनों की सेना में साकधड़ा गांव के पास घमासान युद्ध हुआ। यह ऐतिहासिक घटना इस लेख के सूत्रों से प्रकट होती है। इसके लिए एक दोहा भी प्रचलित है—'पिण्ड़री थी परतीत साकधड़ा दीठी सही.....'

(19) लेख नम्बर 114–जूनीधान मण्ड़ी गंगश्याम जी रा मंदिर पोल के डावी बाजु छतरी रे नीचे मकरानारी सुरह गाय बच्चा चुंगता हुआ। नीचे लेख है- स्वस्ती श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजाश्री 108 श्री मानसिंहजी माहाराजकुमार श्री छत्रसिंहजी देव वचनायते पाय तकतगढ़ जोधपुर में महाजना बोपारियों वगैरे खुमा समस्तों सु मेहरबान होय ने गरहाटो रो भाड़ो माफ कियो सो कदई न लिरीजसी तिणरी सुरह रुपाय दीणी छै, सो आल औलाद कदेई न लेईजसी दस्तकथ व्यास चतुरभुजजी छंगाड़ी कचरदासजी संवत् 1869 आसोज वद् नम भोमवारे।'

(20) लेख नम्बर 115–'पास में सुरे मकराना री बाकी ऊपर मुजब स्वस्ती स्वरूप श्री अनेक सकल शुभ ओपमा विराजभान श्री राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री 108 श्री तखतसिंहजी महाराज कुमार श्री.....देव वचनायते तखतगढ़ जोधपुर महाजनों समस्थों ने श्री हजूर सूं मेहरबान होकर दण्ड विराड़ माफ कियो जिणरे दीवाणों री सनद फागुन सुद तीज री सिकदार मुसरफो रे नाम श्री हजूर रा खास दस्तकथों रो सही कियोड़ी है जिणरी सुरह रुकवाई है सो आल औलाद कदेई लिरेजसी नहीं जमो खातरे राख विणज व्यापार किया जावजो थो ऊपर सदा सर्वदा शुभ नजर रेवसी। श्री हजूर रो हुकम छै दु:स्कथ राव राजा बहादर, साह रिदमल विदवोन सिकदार पंवार शेरकरण संवत् 1901 फाल्गुन सुद चौथ।' इन दोनों लेखों में महाराजा मानसिंह और महाराजा तखतसिंह द्वारा जूनी धान मण्ड़ी में हाट और व्यापार में कर वसूली की छूट की विज्ञप्ति है जो आम तौर पर सार्वजनिक की गई है। इससे पता चलता है कि राजकीय आज्ञाएँ वंश परंपरा के लिए लागू होती थीं अर्थात् जिसे आने वाले राजाओं को मानने को

बाध्य होना पड़ता था। उनके लिए गाय और बछड़ा की प्रतिमा स्थापित कर उसके नीचे सम्पूर्ण राजाज्ञा ज्यों की त्यों अंकित की जाती थीं। ऐसी आज्ञाओं के लिए बार-बार के आदेश प्रसारित करने की आवश्यकता नहीं होती थी और कभी राज प्रशासन से कर वसूली का काम होता तो व्यापारी ऐसे आलेखों से राज्य सरकार और राजाओं को उचित कार्यवाही की जानकारी दे सकते थे।

(21) लेख नम्बर 116–'आड़ा चौटा बाजार में श्री ब्रह्माजी रा मंदिर के बाहर ड़ाबी बाजु दीवार में लगा है- श्रीगणेशाय नमः संवत् 1886 बरखे साके 1751 प्रवर्त माने माघ मासे शुकल पक्षे तिथो 5 गुरु शुक्रवासरे दिन घड़ी 2 पल 45 दिन चढ़े तो कुम्भ लगन में देवता स्थापित किया नाजर दौलतराम चवाँण वासढियाई नूनाणा मंदिर करायो तिण रा रूपया इन माफक लागा' - इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि जोधपुर में भी ब्रह्मा जी का मंदिर स्थित है जबकि पुष्कर तीर्थ पर ब्रह्माजी के मंदिर की बात सर्व विदित है तथा यह भी प्रमाण मिलता है कि इस ब्रह्माजी कें मंदिर को सरकार की ओर से बनाया गया था।

(22) लेख नम्बर 121–'भांडेलाव तालाब- जिसके पाल पर दाग होता- संवत् 1872 आसोज सुद आठम मोदीजी श्री मूलचन्द जी काम आया सो झून्झार हुआ छतरी री प्रतिष्ठा संवत् 1888 आसोजसुद 8 शुकर ने। मोदीजी की देवली देखने से पाया जाता है, आपके साथ स्त्री सती हुई, वर्णन नहीं है। मीरा खाँ को अखेचन्द ने कहा कि इन्दर राज देवनाथ आदि को मार डालो। तुम्हे दो लाख रुपये देंगे। मीरखाँ ने 27 आदमी कुसुबखाँ के पास भेजे जो रात घड़ी दो तीन, गये। इन्दरराज से खर्ची मांगी। धोखा दे 27 फायर साथ किये खावेगयावाह के महल में जिसमें सिंघी इन्दरराज देवनाथ, पुरोहित गुलाबसिंह दरजी शिवजी रो चाकर जालो, पुरबिया तीन, छंगाणी गोरधन जी रे गोली लागी ठावा आदमी दस मारे गये। बाद में महाराजा मानसिंह जी रा कहना से सकुसल किला से उतरे।' इस लेख से माहाराजा मानसिंह के दीवान सिंघवी इन्दरराज को मीर खाँ ने जिस षड़यंत्र से मरवाया उसमें असली मारने वाले की प्रमाणिक ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। यह सूचना ऐतिहासिक रूप से बहुत ही महत्व की मानी जाती हैं।

(23) लेख नम्बर 151–'भांडेलाव पोकरणा ब्राह्मणों रे श्मशान में पास में साल छोटी में आला में देवली घोड़े पर सवार आगे औरत पुत्र को गोद में लिये बैठी संवत् 1885 जेठ सुद चौदस व्यास अनन्तरामजी रा बेटा प्राणनाथ जी रा पोता.....चणवाणी जोशी- केशुदास जी री बेटी.....पति देहान्त पहले लड़का हुआ पिता पुत्र की चोटी गुथाएं

बगैर पहले देहान्त, सतीजी ने आज्ञा मांगी पर जनता ने नही दी। दो तीन साल में पुत्र देवलोक, तब आप ने ही हिदायतें दी देखते ही देखते सती हुई।' इस लेख से सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है कि जब संतान के मरने से औरत का भविष्य अंधकारमय बन जाता है तो संसार से वैराग्य हो उठता है और पुत्र की लाश के साथ ही दुखियारी मां असहाय हालत में स्वेच्छा से विदा हो जाती है। सामाजिक इतिहास का इससे अच्छा उदाहरण मिलना मुश्किल है।

(24) लेख नम्बर 153–बखतसागर तालाब पाल-बगीचे की पोल के पास चबूतरा पर आला में पत्थर की देवली घोड़े पर सवार औरत हाथ जोडे खड़ी संवत् 1788 रा बरसे, बोहरा जी रामचन्द जी देवलोक अठे व्यासणजी बावलां जी सत कियो। बंशज बोहरा धनराज जी ने कहा बोहरोंजी अहमदाबाद फौज में गये। पत्नी पहुंचाने यहां तक पधार पति को सीख देते कहा फतेहकर पधारोगे तो मैं इसी जगह स्वागत करूंगी, यदि लड़ाई में काम आये, इसी जगह सत करूंगी। बोहराजी संवत् 1787 आसोज सुद आठम को काम आये थे। मायूसी होने से मकान पर पाग मोलिया नहीं भेजा गया। छः माह बाद सुद आठम दसरावा को सत आया वंशज दसरावा को गुल न गाले आदि हिदायत दे सती हुए।' इस लेख से महाराजा अभयसिंहजी के समय सर बुलन्द के साथ अहमदाबाद युद्ध की घटना का संकेत मिलता है और यह भी जानकारी मिलती है कि युद्ध के समय औरतें अपने पति को किस प्रकार से खुशी के साथ विदा करती थीं।

(25) लेख नम्बर 155–'लोढ़ों की गली पास में श्री छोटा दाऊजी का मंदिर ऊपर साल रा थाम्बो में मकराने पर लेख है, 'श्री बलदेव जी शाय छै, श्री बलदेव जी का मंदिर सिरे बाजार करवायो जिणरी प्रतिष्ठा संवत् 1902 वैशाख सुद पाँचम वार शुकर ने कराई। वन्दे बोड़ा चन्द लाल कुन्जलाल किशनलाल नन्दलाल मुरलीधर जीरा बेटा पोता।' इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि भगवान् श्री कृष्ण के भ्राता बलदेव जी का मंदिर बनाने में समाज के लोगों का भी बड़ा सहयोग मिलता रहा था। यह मंदिर पुष्करणा ब्राह्मण के एक बोड़ा परिवार द्वारा निर्मित करवाया गया था जिसकी पूजा संप्रति उसके वंशज करते आ रहे हैं।

(26) (गुरों रा तालाब) लेख नम्बर 163 से 166–भट्टारक जतियों रा चरण पादुका इन चरण पादुकाओं के स्थापन का समय संवत् 1904 व 1923 का है जिसमें भट्टारक श्री देवचन्दजी, श्री निहालचन्दजी, श्री हरकचन्दजी व श्री देवचन्दजी की चरण पादुकाएं हैं। इन लेखों में से एक लेख यह जानकारी देता है कि भट्टारक श्री हरकचन्द

जी ने महाराजा मानसिह जी के पुत्र महाराज कुमार छत्रसिंह जी का इलाज किया था।

(27) लेख नम्बर 171—'श्री मण्डलेश्वरजी बैजनाथ जी रा मंदिर से उत्तरादी तरफ एक माइल पर विराजे, पहाड़ में मंदिर के चौक में एक छोटा कीर्ति स्तम्भ चार पहलू सादा नीचे लेख (चौक बंदवाने से गड़ गया) संवत् 1788 वैशाखसुद सातम गुरू...भण्ड़ारी जी श्री दाखमदास जी....अतिसूत्र देवी दास।' यह लेख मण्ड़नाथ के मंदिर की व्यवस्था का एक प्राचीन पहलू प्रकट करता है कि इसके संरक्षण के लिए सरकार का ध्यान गया था। यह तीर्थ आज भी पहाड़ी पर शोभायमान है और पुष्करणा ब्राह्मण हर वर्ष यहां उत्सव मनाया करते हैं।

(28) लेख नम्बर 172—से 193 पंचकुण्ड़ की पहाड़ी पर मण्ड़ोवर के पास जिसे माण्डवाश्रम भी कहते हैं, अनेक छत्रियां हैं जो कई रानियों की स्मृति में बनाई गयी हैं। उनमें लगे लेखों से यह जानकारी मिलती है कि पुराने समय में जोधपुर राजवंश के व्यक्तियों का यहां दाह संस्कार होता था जो महाराजा श्री तखतसिंहजी के समय तक चलता रहा।

(29) लेख संख्या 192—से यह जानकारी मिलती है कि महाराजा मानसिंहजी ने सन्यास धारण किया और मण्डोर में उनका दाह संस्कार हुआ।

(30) लेख नम्बर- 200—'रामनामी रामद्वारा के डावी बाजु मकान में मकराना री छतरी में तस्वीर में दरियावजी बैठा है। सोमा दो शिष्य हरकारामजी सुखराम जी लारे किशनराजजी, लिकमीरामजी, राम कवर जी चंवर करे। छतरी में चरण मकराना पर भरण नीचे लेख है 'रामनामी श्री 108 श्री लिकमीराम जी संवत् वास नागौर 1864 सावण वद सातम सोमवार मण्ड़ोर में रामसरण धाम प्राप्त हुआ तिण री समाध ऊपर रामसाल कराय ने चरण पदराया पास में कुंडलिया है।' इस लेख से यह जानकारी मिलती हैं कि साधु संतों की समाधि पर भी समाधि स्थल बनाये जाते थे और उपयोग हेतु पानी का कुण्ड आदि का निर्माण किया जाता था। यह रामद्वारा मण्ड़ोर के पुल के पास आज भी स्थित है।

(31) लेख नम्बर 208—बड़ली के ताम्बा पत्र (दान पत्र) राव चुण्डा जी ने पुरोहित साढ़ा को दिया। संवत् 1478 लाइने 13 (1) श्री रावचूण्ड़ा जी रो दत्त बड़ली गाँव (2) पुरोहित साढ़ा ने दीधो संवत् 14 आठोतरारी कातिसुद पूनम रे (4) दिनदवार सूरज पुष्कर जी माथे (5) पुण्यार्थ कीधो महाराज चूड़ाजी (6) दुवो तेबीस हजार बीघा जमीनी

(7) में सीमसमेत इश्वर प्रीत में (8) गाँवदीधो हिन्दु ने गऊ मुस्लमां (9) सुर माता मां चानुण्ड़ा जी से बेमुख (10) आल औलाद अणारी कोई गोती-पोती (11) ईश्वर सुब मुख, पुरोहित सादा ने (12).........(13) पीछे लेख राव चूण्ड़ा जी भण्ड़ारी शिव चन्द रे।' इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि मण्ड़ोर को अपनी राजधानी बनाने वाले राव चूण्डाजी ने राजपुरोहितों को दानस्वरूप बड़ली प्रदान किया था। और इस दान को उनके वंशज मानते रहे। इसलिये आम सूचनार्थ यह लेख पत्र पर लिखा गया। यह भी एक राजाज्ञा ही है।

(32) लेख नम्बर 211–अरना-झरना (जोधपुर में दो लेख संवत् 1338 और 1563 के हैं, विगत नहीं है। एक लेख बिना संवत् का 'ॐ भगवती नन्दा देवी को नमस्कार जग्गणा में रहने वाले ब्राह्मण दोधक के पुत्र बसंत उदा के पुत्र अत्रिस गोत्र वाले कृष्ण ने हेमवन्त सीकर में रहने वाली नन्दा देवी का मंदिर बनवाया (यह लेख मारवाड़ के प्राचीन लेख संग्रह मुंशी देवीप्रसाद गौड़ ने छपवाया था।

(33) लेख नम्बर 212–'दहीझर मण्ड़ोर से उत्तराद गाँव में श्री माताजी के मंदिर के सामने तालाब है जिसमें पानी झरने से आता है तालाब का पट्टा तीन खण्ड़ में बंधा हुआ। संवत् 1919 में बारिस की झड़ी नौ दिन रही तलाब फूट गया। तब गाँव नाथ जी के पट्टे था। मंदिर के दाहिने बाजु लेख हैं- संवत् 1674 बरखे जेठ सुद चौदस दिने वार बुद्ध सूत्र धार चोपा, भोजा, जोगा नाथो आदि यह सूत्रधार सोमपुरा के थे। मण्ड़ोर में देवल इन्हीं लोगो के बनवाये हुए हैं। सूरजकुण्ड़, सूरसागर, तलेट रा महल आदि इन्होंने बनाये थे। इस लेख से उन कारीगरों का इतिहास मिलता है जो देवल आदि निर्माण करने में पारंगत थे। इन लोगों की वास्तुकला का उदाहरण आज भी इन स्मारकों व महलो में देखने को मिलता हैं। दहीझर के अन्य लेख सं. 218 व 222 से यह ऐतिहासिक जानकारी मिलती है कि दहीझर के कुण्ड़ महाराजा अजितसिंह जी की रानी राणावतजी ने बनवाया था जहाँ पर योगी तपस्या किया करते थे।

(34) लेख नम्बर 228–(यह लेख ऐतिहासिक महत्व का है जो यह बताता है कि सोजती दरवाजा बाहर कचहरी जाते हुए सड़क के दांयी ओर जो छतरी हैं वह गोराधाय की छतरी नही है किसी और माली जाति की महिला की छतरी है)- 'सोजती दरवाजा के बाहर कचहरी जाते सड़क से जीवणी बाजु छतरी देवली में मरद हाथ में भाला औरत हाथ जोड़े खड़ी माली जोधाजी बेटा हीरा जी जातरा टाक रेवासी सोजती दरवाजा बाहर बावड़ी पर रेवे रामसरण हुवा। वीरी श्रीवारे संग में सती हुआ। साथ में माँ बेटी माला जी में साह सोलंकियो री बेटी धोगावरी (गोदावरी) सती मीति संवत्

वैशाख सुद 5 सोमवार संवत् 1848 (47)।' जोधपुर के इतिहासकार श्री जगदीशसिंह गहलोत ने इस छतरी को गोराधाय की छतरी बताकर इसे महिमा मंडित करने का प्रयास किया है और आज दिन तक इतिहासकार की इस भूल के कारण यह छतरी गोरांधाय टाक की मानी जाती रही है। लेकिन इस लेख के पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि यह छतरी गोदावरी नामक औरत की है जो अपने टाक जाति के पति के पीछे सती हुई थी। इसका संवत् 1848 है। संभवतः लेख के अक्षर न पढ़े जाने पर 'गोदा' को गोरा पढ़ लिया गया हो और 'वरी' को धारी पढ़ लिया गया हो जिससे गोदावरी की जगह गोरा धारी बना दिया गया है। यहाँ मात्र एक छतरी है और कोई दूसरी छतरी नहीं बनी है। तब यह विचार करने का विषय बन जाता है कि गोदावरी टाक की छतरी किस प्रकार गोराधारी की छतरी बनगयी। यदि यह छतरी गोराधारी की मानी जाय जैसा कि इतिहास कार बतलाते हैं तो फिर गोदावरी टाक की छतरी कहाँ गयी।

जोधपुर के बाहर के गाँवो में वैसे तो 82 लेख प्राप्य हैं परन्तु इसमें कुछ दो चार लेखों का ही वर्णन यहाँ किया गया है।

(35) लेख नम्बर 4—बनाड़ (जोधपुर से पूरब में 9 माइल हैं।) 'गाँव में श्री महादेव जी रा मंदिर के बाहर सुरे गाय बच्चा चूंगता हुआ- सिद्ध श्री राजराजेश्वर महाराजधिराज महाराजा श्री भीमसिंह जी बचनाते दत्त गाँव व बनाड़ में श्री सदाशिवजी रो मंदिर है ने प्राचीन सेवा बिराजे जठे गाँव रा हासल मोयसू इन माफग दीरजसी शिव थापे ती...गाल छै संवत् 18 जेठ वद बीज।' यह लेख भी सरकारी विज्ञप्ति का एक नमूना है।

(36) लेख नम्बर 14—'गड़ाब गाँव दहीझर मण्ड़ोर के पास (कहते हैं राव सातल जी ने घडूला खांसे लड़ाई कोसणा में की थी। सारंगदेव जी खींची ने मारा' धड़ गड़ाव में माथो मेलावास में गाड़ा गया। पाहड़ री गाल में श्री आशा पुरा माता जी रा मंदिर है नीचे स्वामी जी का आसन है। श्री माता जी कने एक मकराना री चौकी में माता जी सिंह पर सवार लारे सकस खिड़किया पाग जामा छवर करता संवत् 1768 वैशाख सुदी तीज वार रवि माता श्री आशापुरा जी श्री सेवग खींची शिवराज जी कल्याणदास रामसिंहगोत' (यह मंदिर महाराजा अजितसिंह जी 28 वर्षों बाद जोधपुर फतेह किया वाद में पाँच वर्ष बाद बनवाया गया।' इस लेख से महाराजा अजितसिंहजी का मारवाड़ प्राप्त करना और उसके बाद भगवती पूजा के प्रमाण में मंदिर बनवाने की जानकारी मिलती हैं।

(37) लेख नम्बर 18 से 23 तक—ये लेख ओसियाँ में स्थित जैन मंदिर और सच्चियया माता के निर्माण की ऐतिहासिक जानकारी देते हैं।

(38) लेख नम्बर 29—'हीरा बाडी- रजलाणी बावड़ी पर लेख। लोग इसे भूतों री बनाई कहते हैं। यह बावड़ी राव मालदेवजी ने संवत् 1594 में थाणा मुकरर करके सेनापति जेताकूपा को रखा- अच्छी तरह रखने पर लोगों ने पन्द्रह हजार भेंट किये। परोपकार समझ गाँव में बावड़ी बनाकर लेख लिखा। बावड़ी का कीर्तिस्तम्भ चार पहलू, चार देवता खड़े हैं लेख के दो भाग हैं- (1) में 17 श्लोक हैं। देवता री स्तुति है (2) पर इतिश्री विक्रमायित साके 1440 संवत् 1597 वरखे कातिसुद पूनम दिने रविवारे राज श्री मालदेवरा राठड़ रा वारा बावडीरा कमठण उदरतो। राजि रिणमल राठवड़ गोतो तत् पुत्र राजि अखेरा सुतन राज श्री पंचायण सुतन श्री जेताजी बावड़रा कमठ उदता। बाद में वंशजों के नाम दिये हैं। बावड़ी का काम संवत् 1594 की मिगसर वद पाँचम रविवार को हुआ जिसे बनवाने में कारीगर 151 साथ में 171 पुरूष व 221 औरतें काम करती थी। बावड़ी के बनावाने में जो सामान लगा बिकतवार है सुत (5) मण लोहा (520) मण 321 गाडिये जो अड़ावला पहाड से लोहा लाती थी। 25 मण घिरत 121 मण सण 221 मण पोस्त (तिजारारा डोडा) 721 मण नमक (121) मण घिरत (2555) मण गेहूं दूसरा धान (1121) मण (25) मण अफिम कारीगरो के लगे थे। इस बावड़ी बनवाने में (121111) फदिये खर्च हुए थे।' यह लेख परम्परागत जल स्रोत बावड़ी के निर्माण के बारे में बहुत विस्तार से जानकारी देने वाला सिद्ध हुआ है। संप्रति INTACH जोधपुर क्षेत्र ने इस बावड़ी के संरक्षण में योगदान दिया है। अतः यह लेख बहुत महत्व का माना जाता है।

कड़वड़ गाँव के लेखों के संग्रह में बहुत सी बाते इतिहास के महत्व की मिलती हैं। लेखक ने इसके बारे में जो सूचना दी है वह मनन योग्य है। संवत् 1992 वैसाख वद सन् 1935 में क़ोर्ट आफ वार्डस् से हवालदार कड़वड़ (मण्डोवर) के पास मुकरर हुवा। तालाब के पश्चिम पहाड़ घाटी उतर कर गया। आजे एक गरठ से लड़ियो का पड़ा है आगे भाले के पाट पर पत्थर की देवलियाँ दो तीन मकराने की है ताल सुदी बाहर खडी है देवलियो 100 करीब है जिन पर लेख संवत् 1000 से 1500 तक के हैं। देखने से यहां शहर बसना मालूम होता है। यवनों की लड़ाइयों से यह बर्बाद हुवा। गाँव वाले नाई के द्वारा शहर गारत होना कहते हैं। देवलियों से पहरवास व शस्त्रों का पता चलता हैं। नगर का नाम गोधा, राणा पदवी थी। लेख में गोदाराणा आता है, मण्डोवर से 5-6 माइल है किसी ख्यात में नाम नहीं आता है। ये 400 वर्षों के लेख हैं।

इतने लेखों के संदर्भ से जो ऐतिहासिक जानकारी इस हस्तलिखित ग्रंथ से मिलती हैं उससे इस ग्रंथ की महत्ता असंदिग्ध है। जिस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं का मंदिरों के निर्माण का व जलस्रोतों के निर्माण का जतियों के चरण पादुकाओं के स्थापन का और रामद्वारों के निर्माण के इतिहास का ज्ञान हमें मिलता है वह इतिहास लेखन का एक प्रकार से आधार ही है। अतः यह ग्रंथ इतिहास के लेखकों के शोध के लिए लक्ष्य ग्रंथ ही है। इस ग्रंथ में हमें तीन मुख्य बातों की जानकारी मिलती हैं वह हैं राजाओं द्वारा दान पत्र और प्रशासकीय विज्ञप्ति के लेखन की शैली दूसरी गोरां धाय की छतरी की अप्रमाणिकता और तीसरा हीराबाडी रजलाणी बावड़ी के संबंध में विस्तृत विवरण जो अपने आप में अद्वितीय और अलभ्य ही माने जाते रहेंगे।

द्वारा—सुमेर प्रिन्टिग प्रेस
सोजती द्वार बाहर, जोधपुर

जोधपुर की राजकुमारी सूरजकँवर के विवाह की बही (सं. 1779) का ऐतिहासिक महत्व

डॉ. ब्रजमोहन जावलिया

इतिहास लेखन में प्रयुक्त होने वाले साधनों में बहियों का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इनका प्रयोग संभवत हमारे देश में प्राचीनकाल से ही होता आया है। वेद और वैदिक साहित्य में धनिक और उद्धारणीक[1] के उल्लेख, पाणिनी के द्वारा अष्टाध्यायी में कुसीदकी संस्था के विवरण[2], स्मृति ग्रंथों, अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि में अभिलेखीकरण के उल्लेखों से लेख्य रखने की वैज्ञानिक प्रणाली के प्रचलन का अनुमान लगाया जा सकता है। शुक्रनीति[3] में सात प्रकार के लिखित अभिलेखों की व्याख्या की गई है, वे हैं- सम्पत्ति का बंटवारा, उपहार, क्रय, विक्रय, प्राप्ति, समर्पण, और ऋणी। ये अभिलेख बहियों के रूप में ही रहे होंगे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र[4] में लेखा-कर्म में प्रयुक्त साधन का नाम निबन्ध या पुस्तक दिया है। बौद्ध जातकों में ऐसे निबन्ध या पुस्तक को 'पोत्था' कहा गया है। आजकल लेखा पुस्तिका के लिये प्रयुक्त बही शब्द का मूल कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त निबन्ध, निबन्धिका या बन्धिका में रहा होगा।

बहियों का प्रयोग राज्य सरकारों और व्यापारी वर्ग में तो आय व्यय का विवरण लिखने में होता ही रहा है, पर जनसामान्य में भी इस दृष्टि से इनका उपयोग होता रहा है। इन बहियों में तत्कालीन विवाहादि की पद्धतियाँ, दान-दहेज, महावसरों, पर्वोत्सवों पर सम्पन्न की जाने वाली रस्मों या क्रियाओं, राजा-प्रजा के रस्मरिवाजों की विधि-प्रविधियों, भावताव, कर प्रणाली, भूमि और राजस्व विषयक नियम, उपनियम, आय के स्रोत और व्यय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर और उसकी विभिन्न शाखाओं में, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर जैसी निजी संस्थाओं और भूतपूर्व राजाओं व जागीरदारों के परिवारों की संगृहीत बहियों में रियासतों और ठिकानों के महत्वपूर्ण निर्णय, खरीते, महत्वपूर्ण घटनाओं के विवरण आदि प्राप्त होते हैं। खरीता बही, सनद बही, हकीकत बही, परवाना बही, अर्जी बही, रोकड़ बही, पट्टा बही, खजाना बही ब्याव री बही जैसी सैकड़ों प्रकार की बहियाँ इन संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। इन में ब्याव री बहियों का भी अपना ही महत्व है। इनमें एक राजकुल

के अन्य राजकुल के साथ वैवाहिक संबंधों की जानकारी के साथ-साथ आनुषंगिक रूप से उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, और धार्मिक परिस्थितियों और रीतिरिवाजों आदि की भी पर्याप्त जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

जोधपुर के महरानगढ़ दुर्ग में स्थित महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश में क्रम सं. 833 पर महाराजा अजितसिंह की राजकुमारी सूरजकंवर के जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के साथ बैशाख वदि 9 सं. 1776 को संपन्न हुए विवाह की बही को ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण समझ कर उसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

बही के प्रारंभिक शीर्षक में इसे "बाईजी सूरजकंवर जी ब्याव री विगत" वि.सं. 1776 कहा गया है। विगत से तात्पर्य यहाँ विवाह के ब्यौरेवार विवरण से ही है, जो इतिहास का ही पर्याय शब्द है।इसी क्रम में वधू और वर का परिचय देते हुए वधू को महाराजा अजितसिंह की बड़ी भटियाणी राणी की पुत्री और जैसलमेर के रावल अमरसिंह की दोहिती के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वर का परिचय देते हुए उसका महाराजाधिराज सवाई जयसिंह नाम बताया गया है और उसे आमेर के धणी (स्वामी) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बही में उसके पिता का नाम बिसनसिंह और पितामह का नाम बड़ा जयसिंहजी बताया गया है।

सूचना दी गई है कि उस समय सवाई जयसिंह महाराजा अजितसिंह (श्री जी) के अतिथि रूप में सूरसागर बाग में ठहरे हुए थे। बैसाख वदि 7 को वह सूरसागर से सवार होकर श्री जी (अजित सिंह जी) से अभिवादन (राजदरबार में उपस्थिति देने) के लिये दुर्ग में गये, जहाँ उनके सम्मान में दो घड़ी रात गये (लगभग 7 बजे) सिणगार चौकी पर दरबार (राजसभा) का आयोजन किया गया। दरबार में बड़े-बड़े रिडमल और जोधा के वंशज राठौड़ उमराव और अन्य अनेक राजा और रावत उपस्थित थे। राजा जयसिंह ने महाराजा अजितसिंह से इस अवसर पर निवेदन किया कि पूर्व में आपने सगाई का नारियल भेज कर कृपा की थी, अत: अब आप हमें रजपूत करने की कृपा करें अर्थात् कन्यादान कर सम्मान दें।

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने मरुभारती में प्रकाशित अपने एक लेख में यह सूचित किया है कि इस विवाह के लिये परम्परा के अनुसार सगाई का नारियल पूर्व में नहीं भेजा गया था और वर के द्वारा विवाह के लिये की गई इस प्रकार की प्रार्थना उस समय की प्रणाली के विपरीत है। अत: उनके अनुसार यह विवाह नियमविरुद्ध जल्दी में किया गया था।[5] डॉ. शर्मा का यह कथन समीचीन नहीं है। उक्त बही के प्रारंभ

में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सगाई के लिये नारियल पूर्व में ही भेज दिया गया था। वास्तव में अजितसिंह ने जयसिंह के लिये सगाई का नारियल 26 जुलाई सन् 1708 को उस समय भेज दिया था, जब वह 3 जुलाई सन् 1708 को मेड़ता से जोधपुर आया और 1 अगस्त सन् 1708 तक वहाँ रहा।[6] जयसिंह ने उसी समय यह नारियल स्वीकार कर लिया था। पर कई एक राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी आईं, जिनसे दोनों नरेशों के मध्य मनमुटाव भी हो गया और यह विवाह कई वर्षों तक सम्पन्न न हो सका। उचित अवसर आने पर ही जयसिंह ने विवाह के लिये निवेदन किया और अजितसिंह ने इसे स्वीकार कर दोनों राज-परिवारों के मध्य स्नेह-संबंधों की पुनः स्थापना में योग दिया।

सवाई जयसिंह के निवेदन पर राजा अजितसिंह ने विवाह की घोषणा की और अपनी पुत्री के विवाह की तांबूल वीटिका सवाई जयसिंह को भेंट करने की आज्ञा बीडिया व्यास फतहचंद को दी। सवाई जयसिंह ने सलाम (अभिवादन) करके अत्यन्त प्रसन्नता के साथ वीटिका को स्वीकार किया। महाराजा अजितसिंह ने सवाई जयसिंह का हाथ पकड़ कर अपने समीप लेते हुए आत्मीयता का परिचय दिया और जयसिंह को अपने डेरे के लिये विदाई दी।

इस विवरण में राजकुलों की शिष्टाचार की परम्परा के निर्वाह की जानकारी मिलती है।यहीं से विवाह संस्कारों में अपनाई जाने वाली पद्धति और विधिविधान का वर्णन प्रारंभ होता है। अपने डेरे पर पहुंच कर राजा जयसिंह ने अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिये रागरंग का आयोजन किया।

महाराजा अजितसिंह ने तत्काल व्यास फतैचंद, पुरोहित रणछोड़, चंडवाणी और श्रीमाली जोशियों (ज्योतिषियो) पंडित देवधर ओझा, हरकिशन दायमा और भट्ट सीताराम जैसे वेदज्ञ और विद्वान् पंडितों को एकत्र कर विवाह के विधिविधान के विषय में मंत्रणा की और निश्चय किया कि सूरजकंवर का विवाह उसी विधिविधान और वैदिक पद्धति से करना है, जैसा पूर्व में मोटा राजा उदयसिंह ने अपनी बारह पुत्रियों के विवाह किये थे।

विवाह की तिथि और मुहूर्त निश्चित कर लौकिक व्यवहार के अनुसार महाराजा ने खींवसी भाटी के पुत्र थानसिंह और व्यास फतैचंद को लगन देकर राजा जयसिंह के पास भेज कर उन्हें विवाह की तैयारी करने हेतु कहलाया।

विवाह का मुहूर्त्त निश्चित करने के उपरान्त जनाना ड्योढी पर उपस्थित लोगों को मांगलिक गुड़ वितरित किया गया और साथ ही पंडितों और ज्योतिषियों को दक्षिणा या नेग के रूप में रुपयें भी भेंट किये गये। वैवाहिक विधिगत रीति-रिवाजों के क्रम में हाथ काम (पत्र सं. 18 तक) विनायक स्थापना और पूजा (पत्र सं. 19), कांकण डोरड़ा बांधना, पीठी (उबटन) संपाड़ा (स्नान), बड़बेड़ो, (20-20), मायाँ की स्थापना, (गऊदान, वरणी, नवग्रह, कलश स्थापना आदि) रातीजोगा, मंडप निर्माण, (तोरण स्थापना, ध्वजापताका स्थापना), बन्दोळो (बंदोरा), कुम्हार के घर से थांभ रोपना और पूजा, ऊकरड़ी पूजा, सामेला, वर की नाक खिंचाई, वर के कद का मोळी से नापना, सासू की ओढणी कीलना, हल, जूडा, मूसल आदि से पोखणा, चँवरी में पहुँच कर देवताओं की पूजा, हथलेवा, गठजोड़ा बंधन, वर-वधू द्वारा संकल्प, सेवरा का नेग, सप्तपदी, विवाह के उपरान्त शकुन कराना, हथलेवा छुड़ाना, कंवर कलेवा, हिंगलाज, खेतरपाळ दर्शन, गठजोड़ा बांधे ही चकडोल में बैठ कर वर-वधू का प्रस्थान, मिजमानी, आणा, सीरावण डायजा आदि की रस्मों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

विवाह के इन रीतिरिवाजों की सूची और विधिविधान को देखने पर हिन्दुओं में जन सामान्य के यहाँ और राजा महाराजाओं के विवाहों में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। अंतर यदि कोई है, तो वह उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार आयोजनों और व्यय का ही है।

हाथकाम में राजकुमारी को पाट पर बिठा कर ड्योढ़ी से आये पूजा के थाळ से व्यास और जोशियों ने पूजा की। वहाँ से राजकुमारी की माता भटियाणीजी के महल में ले जाकर राजकुमारी के पीढ़ी का दस्तूर किया गया। व्यास फतेचंद की बहू ने तिलक किया और विवाह के लिये धान शोधने की रस्म पूरी करने के लिये चार छाजलों में धान लेकर शोधन किया गया। छोटी राजकुमारी पद्मावती ने राजकुमारी सूरजकंवर की आरती की। भटियाणी राणी ने खालसा की बडारणियों और महलों की बडारणियों को नारियल बाँटे, पद्मावती बाई को आरती में 1 मोहर और व्यास की बहू को 1 रुपया और नारियल तिलक में दिया गया। धवळेरणियों (मांगलिक गीत गाने वाली स्त्रियाँ), खालसा की बडारणियों, कंचनियों, पातरियों को लप्सी के कांसे परोसे गये। विनायकजी के लिए भी कांसे परोस कर धवळेरणियों को दिये गये। नायणियों को पाट बैठने के नेग के रूप में 4 रु., नारियल, घी और गुड़ दिया गया।

साथ ही देवस्थानों, राजराणियों, राजकुमारों, राजकुमारियों राजमाताओं, महाराजा की सासुओं, पासवानियों, खवासनियों, खालसा की सहेलियों, महलों की पड़दायतणियों,

खोजों, नाजरों, सिकदार, महलों और खालसा की बडारणियों, राजमाताओं के चाकरों, गायणियों, उड़दा बेगणियों, नाइणियों, दरजणियों, पुरोहिताणियों, धायभाइयों, धोबणियों, सिक्वियों, भगतणों, गीतेरणियों, तंबोलियों, भगत, चितारों, मोची, भड़भूंजा, सेवग, धोबी, कुम्हार, सांप पकड़ने वाली जोगणियों, मालणों, सुनारणियों को तथा सरकारी उमरावों, चांपावतों की मिसलों और अन्य खांपों के उमरावों राजपूतों, आमात्यों-(सिंघवी, भंडारी, मुणोत), पंचोली, व्यास, जोशी, ड्योढ़ीदारों तथा रसोवड़ों, कोठार, विभिन्न कारखानों के अधिकारियों और कर्मचारियों, पोलो के नायकों, नीसाणबरदार, नकीब, किरणियाबरदार, चोपदार, तावीनदार, वरकमदाज, रंगरेज, मोची महत्तरों, छीपों हलकारों, पिंजारणियों, कांमड़ों, डूमणियों, ओलगाणियों, बीलदारों, कलावंतों, भोजगणियों, बांभियो) ओळगों, रबाबियों, वैद्य, काजी, कबणीगर, पहलवान, गजधर, चूनगर, आदि को गुड़ बांटा गया।

इस सूची से जोधपुर की शासन व्यवस्था की जानकारी मिलती है साथ ही इन सबके नाम भी प्राप्त हो ज़ाते हैं, जो इन कारखानों, कोठारों या विभागों में उच्च से उच्च पद से लगाकर निम्नस्थ पदों पर नियुक्त थे। साथ ही राजपरिवार के सदस्यों और उनके संबंधियों की नामावली की भी हमें जानकारी मिल जाती हैं।

उस काल में जोधपुर स्थित प्रमुख देवस्थानों की भी सूची हमें प्राप्त होती है, जिनमें राज परिवार की आस्था थी। ये नाम हैं- श्री आणंदरायजी (दुर्ग में), श्री किलाणराय जी (कल्याणराय ज़ी) (दुर्ग मे), श्री गंगश्यामजी (शहर में), श्री सांवळाजी श्री चतुरभुजजी, श्री गिरधारीजी, श्री वाहाराजी, श्री मुरलीमनोहरजी, श्री जुगलकिशोरजी, चावंडमाताजी, हिंगलाज माताजी, ज्वालामुखी माताजी (पंचेटिया), बाण माताजी, जुझार रा भैरूं, वाजरा भैरूं, काला गोरा भैरूं, मंडोवर में स्थित देवता, श्री लक्ष्मीनारायणजी, तथा गणेशजी भैरूं दरे के बीच में। सूची में अजितसिंह की तेरह रानियों, 9 राजकुमारों तथा 9 राजकुमारियों के नाम दिये गये हैं। खवासणियों, राणियों की निजी सहेलियों, महल की पड़दायतणियों आदि के संस्कृत नाम रखने और सर्वसाधारण के नामों से उनके नामों के अंतर की जानकारी भी इस बही से मिलती है। इनमें से कतिपय नाम हैं- नैणसुख, गुलबदन, रूपजोत, रायजोत, रतनमाल, रंभा, चन्द्रमणि, चमेली, श्याम-जोत, निरतशोभा, रूपकली, रामकली, रंगजोत, चंद्रशोभा, गुणप्रवीण, श्याममाला, हरमल, मलयागिरि, फूलमाला आदि।

बही में दी गई इस सूची से जोधपुर में उस समय के राजकीय विभागों और विभागाध्यक्षों, प्रमुख अधिकारियों, और कर्मचारियों की संख्या और नाम आदि पर भी प्रकाश पड़ता है। बही में प्रदर्शित विभागों की सूची में इन विभागों को कोठार और

कारखाना के नाम से बताया गया है। यथा रसोवड़ा (पाकशाला), वागां रो कोठार, नवा कपड़ा रो कोठार, सेजखानो, सुग्गाखानो, तातेड़खानो, तंबोलखानो, फराशखानो, चितरखानो, जीणखानो, कबूतरखानो, नीमतखानो, घड़ियालखानो, आबदानखानो, नगारखानो, जनानी डोढी, आदि। इन विभागीय नामों के देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि राजस्थान की अन्य रियासतों की भाँति ही जोधपुर में भी मुगलों की शासनप्रणाली के अनुसार विभागों का वर्गीकरण कर नाम रखे गये थे।[7]

विवाह के अन्तर्गत सम्पन्न किये जाने वाले अनेक रीतिरिवाजों और उत्सवों का बही में विस्तार से वर्णन किया गया है।

विनायकजी की स्थापना के विवरण में बताया गया है कि विनायकजी की मूर्त्ति कुम्हार के यहाँ से लाकर स्थापित की गई। उसे लेने के लिये खालसा के आदमी, महाराणियों के खवास, सहेलियाँ, पड़दायतणियाँ आदि, पुरोहित, भंडारी, व्यास, सिकदार, आदि गये। उनके साथ जुलूस में नौबंत और बाजे बजाये जा रहे थे। निशान (ध्वजा) का घोड़ा और हाथी भी जुलूस में थे।

विनायक की मूर्त्ति को चाँदी की खूम में स्थापित करके सूरजकँवर बाई की माता, बड़ी भटियाणी राणी की बडारण रामरंग के सिर पर रख कर मरदानी डोढ़ी के रास्ते दुर्ग में लाकर नागणेचिया माताजी के समीप प्रतिष्ठित किया गया। कुम्हार को नेग और दापा देकर विनायक की पूजा की गई।

राजकुमारी सूरजकँवर को विनायक स्थापना के स्थान पर लाकर कांकण डोरडे बाँधे गये। महाराजा और राजकुमारों की उपस्थिति में रानियों ने तेल पीठी (तेलपाणी) करके राजकुमारी को स्नान कराया और उस पर न्यौछावर करके खैरात बाँटी गई। निछरावल करने वालों में रानियाँ और राजकुमारी पद्मावती के अतिरिक्त खवासिनें और अन्य स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं। उमरावों और कामदारों की जो स्त्रियाँ इस अवसर पर निमंत्रित थीं उन्हें भटियाणी राणी ने सिरोपाव दिये। विनायकजी के लप्सी और गूघरी का भोग लगा कर स्वपक्ष और वरपक्ष के लोगों में बाँटा गया। वर पक्ष के लश्कर में बाँटी गई लप्सी में जिन लोगों के नाम दिये हैं उनमें खंगारोत सालिमसिंह, कुंभाणी बुधसिंह, कुंभाणी दीपसिंह, पु. जेतसिंह, दीवाण श्रीचंद, और खत्री आसकरण के नाम प्रमुख रूप से दिये गये हैं।

इस प्रसंग में नागणेची माता के मंदिर में 14 नई मातृका मूर्त्तियों की स्थापना की

जानकारी मिलती है। ये मूर्त्तियाँ प्रथम बार चाँदी की बनाकर बाजोट पर स्थापित की गई थीं। इससे पूर्व चाँदी की मातृकाएं नहीं थीं। वेदिया सूरजमल से मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करा कर महाराजा ने इनके लिये सोने का चम्मच और अंगूठियाँ, तथा चाँदी की बाटकी और चाँदी की ही अंगूठियाँ भेंट करने का वर्णन है। बाई पद्‌मावती को भी वैवाहिक रस्म के अनुसार सोने की सीळी और माया के लिये घी की धार देने के लिये सोने का चमचा नेग में देने का उल्लेख है।

विवाह के लिये वेदी और मंडप निर्माण का वर्णन अत्यन्त ही सरस रूप में किया गया है। इनके निर्माण में विधि-विधान का पूरा पालन किया गया था।

वेदी (चौकी) के निर्माण तथा उस पर बनाये जाने वाले मंडप की लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई आदि के मान हाथ, बैंत और अंगुल के मान से दिये गये हैं। मंडप-निर्माण में प्रयुक्त खंभों के विषय में तथा ऊपर बांधी जाने वाली थांभलियों, भित्तियों, द्वारों, काष्ठपट्टों का परिचय देते हुए बताया गया है कि मंडप की मजबूती के लिये थंभों का पाँचवां हिस्सा धरती में रोपा जावे। मंडप की छावन के लिये थंभों पर आम, केले, बाँस के पत्तों को लपेट कर बाँधने और सजाने तथा द्वार आदि निर्माण में विधान पारिजात और कुंड-मंडप सिद्धि जैसे ग्रंथों के विधान का अनुकरण पंडितों और शिल्पियों के शास्त्र ज्ञान का परिचायक है। तोरणों और द्वारों की स्थापना में विभिन्न प्रकार के विशिष्ट काष्ठों और प्रयोग किये जाने वाले रंगों का भी निर्देश दिया गया है। शास्त्रानुसार निर्धारित काष्ठों की उपलब्धि के अभाव में अन्य काष्ठों के भी देश-कालानुसार उपयोग की छूट का निर्देश भी इस वर्णन में दिखाई देता है। मंडप के ऊपर काष्ठ-निर्मित कलश की स्थापना, मंडपायन की छावन में खुंवारा वृक्ष की शांखाओं तथा सिंदूरी रंग में रंगी सींदरी (रस्सी) और चारों ओर की भित्तियों को स्तंभों सहित लाल दरियाई वस्त्र से छाये जाने की जानकारी मिलती है।

भीतरी मंडप में पचरंगी चंदोवे लगाये गये, चारों द्वारों पर दर्पण टांगे गये, चंवरी के चारों ओर सजावट के लिये फल-फूल और पीपल के पत्ते लटकाये गये। मंडप पर दरियाई वस्त्र की तेरह ध्वजाएँ और तेरह पताकाएँ लगाई गईं। प्रत्येक ध्वजा पाँच हाथ लंबी और दो हाथ चौड़ी थी जो रेजे (वस्त्र) की बनी थी। मंडप के ऊपर मध्यस्थ कलश की ध्वजा (महाध्वजा) दस हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी थी। ये ध्वजाएँ पंचरंगी थीं जिनकी किनारियों पर चाँदी की घूघरियाँ टांगी गई थीं।

उक्त मंडप की स्थापना जनाना ड्योढ़ी, नागणेचीजी के थान, चित्रशाला और

राजनिवास तथा अगरणी की साळ (शाल) के बीच में जोधाजी के चौक में बनवाई गई थी। इसके साथ ही बड़ी पोळ, लोहा पोळ, मरदानी ड्योढ़ी, सिंदूरिया पोळ, जनानी ड्योढ़ी, और नागणेची माता के थान पर भी चाँदी के तोरण स्थापित कर उनमें गणेश मूर्तियाँ और चौखटों में प्रतीक-चिह्नों के रूप में कमल, सरू, छोतरे, सुग्गे, मोर, केल, मोगरी, पुष्प जाली, पुत्तलियों, महराबों, गुड़हल पुष्पों, कमल-कलियों आदि अलंकरणों से सजावट करने की भी सूचना है। (पत्र 29)

विवाह के अवसर पर सम्पन्न की गयी रस्मों में बनाये जाने वाले पकवानों, नेग आदि में प्रदत्त वस्त्रादि की भी विस्तृत जानकारी इस बही से मिलती है।

पूजा आदि अवसरों पर मांगलिक भोजन के रूप में उस काल में लप्सी और गूघरी बनाने का अधिक रिवाज था। लप्सी और गूघरी बनाकर गाड़ियों, ओडों (टोकरियों), छावड़ों, (छाबों) आदि में भरकर बॉटने के लिये विविध स्थानों पर भेज दी जाती थीं। हाथकाम के अवसर पर पचास मन गुड़ की लप्सी बनाने, विनायक पूजा के समय 100 मन से भी अधिक लप्सी दुर्ग और तलहटी के महलों में बना कर वितरित करने का उल्लेख है। तलहटी में बनाई गई लप्सी में से छह कढ़ावों में भरकर 50 मन लप्सी और गाड़ों में भरकर 12 मन गूघरी जयसिंह के लश्कर में भेजने का उल्लेख है। विनायक स्थापना के अवसर पर भी इसी प्रकार लप्सी और गूघरी बनाकर वितरित करने का उल्लेख है।

राजकुमारी के लिये गाजे-बाजे के साथ गीत गाती स्त्रियों के साथ तलहटी से विभिन्न राणियों, पासवानों, खवासों, महाराजा की सासुओं आदि की ओर से मिठाइयों के खूम (थाल) भेजने का उल्लेख है, पर इनमें मिठाइयों के नाम नहीं दिये गये हैं। परन्तु अन्यत्र, चूरमा, सीरा, पूड़ी लाडू, जलेबी, दहीबड़ा का तथा बेसण और नीलोती की तरकारियाँ बनाने के उल्लेख हैं।

बही में रानियों के यहाँ राजा के जाने पर रानियों के द्वारा उनके स्वागत में की गई तैयारी आदि की जानकारी भी मिलती है। विनायक पूजा के दिन महाराजा अजित सिंह अपने राजकुमार अभयसिंह, बखतसिंह, अणंदसिंह, किसोरसिंह, रायसिंह और प्रतापसिंह को लेकर जब बड़ी राणी के घर (महल) में गये तब महाराणी की दासी किशनकली ने बडबेहडा बंधा कर स्वागत किया। राणी ने स्वयं गीत गाती धवळेरणियों, गीतेरणियों के साथ आगे आकर खीनखाप, पाछदर अतलस के थानों का पगमंडा किया और उन पर 25 रु. की निछरावल (न्यौछावर) करके सोने की 9 मोहरें भेंट कीं। महाराजा ने इत्र

और गुलाबजल तथा पान का बीड़ा और शराब रानी को भेंट किये।

कुम्हार के घर से बेह (बासणी) लाने की भी प्रथा थी। बेह लाने के लिये भी दुर्ग से हाथी, कोतल घोड़े के साथ गाजे-बाजे और गीत गाती स्त्रियों के साथ जाकर विधिविधान से बेह लाने की रस्म पूरी की।

महाराणी भटियाणी के यहाँ मेहमान बन कर गये महाराजा की वेशभूषा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि महाराजा उस समय सिर पर मीनाकारी चिकन की पाघ बांधे थे, जिस पर जड़ाऊ उतरासण सिरपेच सुशोभित था, कंठ में चार मोतियों की मालाएँ धारण कर रखी थीं, शरीर पर सब्जरंग का बागा था जिस पर इत्र छिड़का हुआ था।

इसी प्रकार राजा जयसिंह के लिये महाराजा अजितसिंह के द्वारा भाटी अजबसिंह रघुनाथोत के साथ तोरण पर आने हेतु भेजे गये वस्त्रादि का भी वर्णन है।

महाराजा ने जयसिंह के लिये पचगवा सिरोपाव, तास का तमामी वागा, तास की ही लप्पेदार पाग, पोलियादार पीती, कारचोबी बालाबंदी, पारचा की तब्रकी सूथण और कलंगी के लिये जुहार भेजे। राजा जयसिंह के दरजी जयराम को एक मोहर और सिरोपाव दिया। साथ में भंडारी थानसिंह के बारगीर के साथ कुमेत घोड़ा सोने की सजाई लगा कर भेजा साथ ही केसर के 10 घोड़े भी भेजे।

बही में राजा जयसिंह की ओर से राजकुमारी (वधू) के लिये भेजी गयी वस्तुओं की सूची दी है। इनमें मखमल का मोड जिस पर मोतियों के बूटों (अलंकरण) बने हुए थे, गले का देवड़ा जिसके मध्य में मोती लगे थे और चारों ओर सिहाव, नथ, देवताओं के फूल, चाँदी का हार, जवाली, तथा चार कड़े, साळ की दोवड़ीकोर की साड़ी, नीले अस्तर की छापदार आंगी, छापदार लाल ओढणी और मुकेसर फूंदों की जोड़ी थे। साथ में रिवाज के अनुसार कुंकुम, चूड़ा, लौंग, डोडे, पिस्ते, मिश्री, हल्दी, किसमिस, बादाम आदि भी भेजे गये।

राजा जयसिंह के यहाँ से गाजे-बाजे के साथ रंग की रस्म में केशर, कुंकुम, पान (तांबूल), सुपारी, आल, नारियल, मिसरी, मजीठ, मेथी और हल्दी के कड़े भेजे गये।

बही से पता लगता है कि जनाना महलों में प्रवेश करने वाली स्त्रियों के नाम

आदि की बडारणें सूची बनाया करती थीं। ऐसी ही एक सूची सूरजकंवर के विवाह के दिन जनाना महल में जाने वाली स्त्रियों की दी गई है, जिनमें 27 चांपावतों, 71 कूंपावतों, 7 मेड़तियों, 2 उदावतों, 3 करणोतों, 1 जैतावत, 2 भाटी, 6 सीसोदियों, व्यास फतेचंद के घर की 3 तथा प्रो. अखयराज दलपतोत के घर की 5 स्त्रियों का उल्लेख है।

सामेला का वर्णन करते हुए बताया गया है कि इसमें दोनों ही पक्षों के व्यक्ति अपने अपने स्थान से चल कर सूरजकुंड के समीप एकत्र हुए। जोधपुर राजपरिवार के वधू पक्ष की ओर से महाराजकुमार आणंदसिंह, राजकुमारी (वधू) का सगा भाई), राजकुमार किशोरसिंह, हाथियों पर सवार थे। उनके पास खींची जोधा बैठा था। अन्य सभी उमराव और कामदार भी जुलूस में थे।

राजा जयसिंह सूरसागर के महलों से, केसरिया किये हुए अपने बड़े उमरावों, कामदारों, सगे-संबंधियों के साथ फूलबाडी बना, आतिशबाजी करते हुए जुलूस बना कर आये। राजा जयसिंह हाथी पर सवार थे।

सूरजकुंड पर सम्मिलित होकर उन्होंने दुर्ग की ओर प्रस्थान किया। जोधपुर के राजकुमार हाथी पर सवार थे और राजा जयसिंह हथिणी पर। सवारी फूलै के दरवाजे से शहर में गयी। बड़ी पोळ से महाराजकुमार की सवारी आगे बढ़ी और सूरजपोळ से आगे चौक में हाथी से उतर कर वे महाराजा अजितसिंह के पास गये।

राजा जयसिंह को दुर्ग की पोळ से ही लुंगी वस्त्र के थान के पगमंडे बिछाकर लोहापोळ तक ले गये। व्यास और पुरोहित ने वहाँ लगन बधाया और जयसिंह ने हथिणी पर सवार होकर लगन स्वीकार किया। जयसिंह की ओर से लगन में 20 मोहरें और 1 रुपया रखा गया। जयसिंह ने छड़ी से तोरण मारा। तोरण ऊँचाई पर बंधा था, अतः महाराजा को अंबाडी से बाहर होकर तोरण मारना पड़ा।

हथिणी से उतार कर जयसिंह को मखमल की गादी लगे बाजोट पर बैठाया गया, जहाँ व्यास फतैचंद ने मोतियों के आखे (अक्षत) चढ़ा कर झिलमिल आरती की। आरती में जयसिंह ने 20 मोहरें चढ़ायीं। महाराजा ने वहां बडबेवड़ा में भी 105 मोहरें डालीं। पद्मावती बाई, और धवळेरणियों आदि को भी नेग चुकायी।

तदुपरान्त राजा जयसिंह के मिसरू के थान के पगमंडे पर पैदल सूरजपोळ की

ओर जाने और उनके स्वागतार्थ राजा अजितसिंह और राजकुमारो का सामने आने का वर्णन है। राजा जयसिंह का मुजरा स्वीकार कर अजितसिंह जयसिंह का हाथ पकड़ कर खास ड्योढ़ी तक लाये और अपने महल में सिणगार चौकी में लाकर बिठाने का वर्णन है। उनके पास बैठने वालों में राजकुमार, राजा मानसिह सत्रशालोत (रतलाम वाला) वीदावत संगरामसिंह रतनसिहोत, राणावत फतहसिंह (राणा राजसिंह का पोता), जादव अमरमल, कंवरपाल सीनोदिया, भाटी बीसनसिंह, सूरमसिंह (रावल अमरसिंह का बेटा) और पोता तथा अन्य बड़े-बड़े उमराव और छोटे उमराव उपस्थित थे।

राजा जयसिह की बारात में आये गौड़ उत्तमराम का बेटा, सीसोदिया अखैसिंह (राणा राजसिंह का पोता) और अन्य छोटे बड़े उमराव थे।

इस स्थान पर राजा जयसिंह को बाजोट पर बिछी गादी पर खड़ा करके व्यास फतहचंद के द्वारा नाक खींचने, बागे की एक कस तोड़ने, मोली (लच्छे) के द्वारा नख से शिखा पर्यन्त नाप लेने का तथा पुरोहित सूरजमल के द्वारा सास की साड़ी (ओढणी) कीलने और सास के स्थान पर स्वयं सूरजमल पुरोहित के द्वारा चाँदी के बने हल, जुए, खीचखांडणे (मूसल), नेतरे तथा गुडलिये और भटियाणी राणी के नौसरहार के द्वारा पोषणे का वर्णन है। पूर्व वर्णित चाँदी के तोरणों तथा पोषण हेतु बनाये गये हल, जुए, खींच खांडणे आदि का निर्माण पेमा, खेता, नेता और भोपत खातियों ने किया था।[8] साथ ही शस्त्रास्त्र धारण करके नागणेची माता के थान में जाकर नागणेची माता, पंचदेवता, विनायक और माया की पूजा कराने का उल्लेख है। महाराजा अजितसिंह की ओर से इस अवसर पर जयसिंह के पुरोहित को सोने से बनी मधुपर्क की दो वाटकियाँ देने, पुरोहित सूरजमल के द्वारा चाँदी की झारी में पानी और चरु से राजा जयसिंह के पाँव पखालने और व्यास के द्वारा तिलक करने का उल्लेख है।

पाँव पखालने का काम स्वयं ससुर करता है, पर राज परिवारों में पुरोहित ही इन कार्यों को सम्पन्न करने की परम्परा की पुष्टि करता है।

. जयसिंह को इस मौके पर सोने का जनेऊ जोड़ा और कानों में स्वर्णनिर्मित मोती पिरोये कुंडल पहनाये गये। उन्हें जड़ाव की अंगूठी और मुकुट भी भेंट किया गया। जयसिंहजी के पुरोहित को तीर कमान तथा धोती और वाटकी दी गई।

हथलेवे के रंगरस पान मेंहदी आदि व्यास फतैचंद की बहू ने बांधे। दोनों पक्षों के पुरोहितों ने आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़े और वधू के पिता और माता ने गठजोड़े के साथ संकल्प लिया।

जयसिंह और बाई सूरजकँवर को चँवरी में ले जाया गया। विवाह संस्कार व्यास फतेचंद, पुरोहित सूरजमल, वेदिये बीजा और तोगा ने सम्पन्न कराया।[9] जयसिंह की ओर से पुरोहित व्यास, वेदिया आदि को नेग तथा ब्राह्मणों आदि को भूरश्री दक्षिणा दी गई।

विवाह की रस्म पूरी हो जाने पर शकुन लेकर गौ के दर्शन कराये। मंगतों को मोहर व गाय दान में दी। हथलेवा छुड़ाने के नेग में 100 मोहरें संकल्प लेकर जयसिंह जी को दी गई। तदुपरान्त हिंगलाज माता के तथा खेतरपाल के दर्शन करा कर गठजोड़े के साथ ही वर-वधू को चकडोल में बिठाकर राजा जयसिंह के डेरे सूरसागर के महलों के लिये विदा किया।

इसके बाद बारात में दिलाई गई खरचे के पेटे आई हुंडियों, रुक्कों तथा न्योते के रूप में आई हुंडियों आदि की सूची दी गई है। सूची निम्न प्रकार है—

मोहता ज्ञानमल के हस्ते 1200 मोहरों की सात हुंडियाँ, 623 मोहरों का सालिगराम का रुक्का, 177 मोहरें नकद, नोते में नवाब अमीर और उमराव हसन अली को 1000 मोहरें, नवाब अब्दुल्ला खाँ से 1000 मोहरों की हुंडियाँ।

पडले में आये बेसों का मूल्य भी बही में दिया गया है जिससे उस समय के परिधानों के भाव आदि की जानकारी मिलती है। घाघरे पारचे, खीनखाप या तास वस्त्र के बनाये जाते थे, जिनमें दरियाई वस्त्र की सजावट लगाई जाती तथा विभिन्न रंगों के अस्तर लगे होते थे, के भाव 58॥ रु. से 84 रु. तक बताये गये हैं। इन घाघरों में सुनहरी कोर लगी होती थी। बूंटीदार (छपाई) के घाघरों का भी उल्लेख है। जरी की सुनहरी, बादलाई, आसावरीया अन्य रंग की साड़ियों का मूल्य 67॥ रु. से 94 रुपये तक, दुपट्टों का मूल्य 29 रु.से 69॥ रुपये तथा कांचलियों की कीमत 8 रु. से 15 रु. तक बताई गई है। ये कांचलियाँ जरी की जालीदार, तास की दोवड़ा कोर वाली जरी की बादलाई या मोठड़ेदार होती थीं।

पुरुषों की पागे तास, कींनखाप, तास मुकेसी, आसावरी लपेदार, मोठड़ीदार आदि के मूल्य पोत के अनुसार होते थे। मुकेसी पागें 100 से 150 रुपये, तास रूपेरी 125 रुपये से 200 रु. आसावरी 100 रु. कीमखाप की 31॥ रु. से 43 रु. गोसपेच, 20 रु. से 30 रु. तक बालाबंदी 35) रु. से 65) रु. तक बादलाई, गंगाजमनी, कसूमल पागों के मूल्य 137॥ रु. से 275) रु. बताये गये हैं। मेड़ता से मंगाई गई लप्पेदार पागों के

मूल्य 49 ।) रु. से 55 ।) रु. तथा गुजरात से आई बादलाई पागों के मूल्य 61 रु. 10 आने से 100 रु. तक थे।

उस समय की प्रचलित मुद्राओं में सर्वत्र रुपये, मोहरे, सोनेटे और फदियों का उल्लेख आया है।

वस्तुओं के तोल मण, सेर में दिये गये हैं। तोल का मान 28 तथा 30 तोल का दिया है। विभिन्न वस्तुओं के दिये तोल से ज्ञात होता है कि 28 और 30 के तोल से तात्पर्य 28 तोले और 30 तोले के एक सेर से ही था। सोने और चाँदी के गहनों और वस्तुओं का तोला, मासा और रत्ती से किया जाता था।

वस्तुओं का लेखा देते समय अनेक व्यापारियों के नाम भी इनमें दिये गये हैं जिनके यहाँ से वस्तुएँ खरीदी गईं या जिनके मारफत खरीदी गईं। ऐसे नामों में मोदी नंदा, सेठ रतन, जवेरी जेठमल, जवेरी महानंद, रूपचंद, बा-नारखां, करमचंद प्रमुख हैं।

विभिन्न अवसरों पर दिये गये आभूषणों की विस्तृत सूची भी देखने योग्य है। वधू के जुहारी के गहनों में बोरला, मंझनायक हीरों का जिसमें नीचे 9 मोती और पागों की सार के मोती लगे थे। सीसफूल 16 गिरद 32 मगरियार का, हीरे-माणक से जड़ा खानपुरी चंद्रमा जिसमें 24 मोती तथा चारों ओर 38 मांग की सार के मोती लगे थे। हीरा-माणिक और पन्नों की घड़ियों की जोड़ी, खानपुरी जिसमें चारों ओर 48 तथा 2 सांकलियों सहित अन्य 31 मोती पिरोये हुए थे। बाजूबंद की एक जोड़ी गीही के दो नग, तथा हीरे, पन्ने, मोती, नीलम, लसणिया, गोमेदक, पिरोजी तथा माणक के 9 ठेकण जड़े हुए थे और पीछे की ओर 35 मोती पिरोये हुए थे। नोसरहार मोतियों का सतलड़ा जिसमें 1120 मोती सर के तथा 2 मोती दुगदुगी पर लगे थे। चौकी 6, घोड़ा 4, दुगदुगी नवग्रही जिसमें चोखूंटे पन्ने का मंझनायक, अलोलख और 2 मणिये लगे थे। हाथ की आरसी (दर्पण) जिसमें 8 हीरे और 13 मोती जड़े थे। 6 जड़ाव की अंगूठियाँ (हीरा, माणक, पन्ना और माणक के फूल सहित), हीरे के जड़ाव के अणवट, पगपान जड़ाव के सांकळी सहित, जड़ाव के बीछिये या नेउर के नाम हैं। जेठ वदि 6 को सूरजकँवर बाई के डायजे में जो आभूषण दिये गये उनकी सूची निम्न प्रकार है—

बेणी कबाण चोवग दिली (दिल्ली में बना हेयर पिन) जिसमें मगनायक हीरा तीन जड़े, सब्ज पन्ना की केरियाभांत कणी, मांग के मोती 21 चूनिया की वाड़ थी। घडिया की जोड़ी जिसमें चारों ओर 38 मोती, 34 हीरे, 20 पन्नों की कळियाँ 2 पन्ने खूंटी के,

2 माणक, और एक चूनिया की डाव थी। मोटे मोतियों की नथ, सादा सिंगोड़ों की पचलड़ी नथ, जिसमें 105 बड़े मोती, 110 छोटे मोती जड़े थे और एक दुगदुगी जिसमें 9 हीरे, अबजी मोती, जड़े थे। सोने की तीन सादी टिकड़ियाँ, बाजूबंद जोड़ी पन्ना की 26 पड़काले छोटे मोटे पन्नों से जटित, 84 मोती तथा मोतियों के मध्य में 76 चुनिये जड़े।

नवसर हार (माताजी का) जिसमें गरगड़ की तरेड की एक दुगदुगी थी। दुगदुगी में 3 मोटे माणक, 1 मोटा पन्ना, 3 बड़े हीरे, 4 छोटे माणक तथा छोटे बड़े माणक पन्ना, और चूनिया पर सादे मोती लगे थे। 8 पन्ने और 4 सीघडा खानपुरी, 1080 सराई के मोती, 2 हरड़ा, तथा दो सब्ज पन्नों की हरड़ के मणके थे।

सीसोदणी राणी की ओर से एक कड़बंद जिसमें 46 जड़ाव के टेकड़े, 22 घूघरे (प्रत्येक घूघरे पर 66 चूनिया), 22 डाबियों पर जड़ाव की हरड़े पिरोई हुई, 22 जालियाँ 1 कलाव तुरावो का था। कांकण जोड़ी एक दो सौ नगों के साथ 16 हीरे, 40 माणक, 62 मोती और एक केरिया पन्ना जड़े थे।

सेसडी जड़ाव की, 3 जड़ाव की खानपुरी डावी, 3 डावी छोटे टींटा चूनिया के पन्ना के, 3 मोटी डाबियाँ नीचे जाली के 3 मोती 11 घोटे मोती कुंड में, 3 हरड़िया चूनिया के पान में, काच सहित मूंदडी हीरे मोती माणक जड़ी, चोटी बंधणा, फूल खानपुरी चूनिया का, पन्ना, माणक मोती जड़ा अंकोटा गोल फूल ऊपर दुपेटा, 8 हीरे पन्ना, माणक, नीलम जड़ी अंगूठियाँ, अणवट जोड़ी, के अतिरिक्त सोने के आभूषणों में तड़कळी का जोड़ा, चीड लड़े 11 पन्नडा दुगदुगी में और जड़ाव की टिकड़ियों से युक्त, 2 सील कड़े, चोलडा चंद्रहार, बाजूबंद जोड़ी, जबलिया री जोड़ी, सहेली जावी 3, चावरनी, हस्तफूल जोड़ी, डाबियों का जोड़ा चूड़ों का, मीने की अंगूठियाँ, कांच सहित मूंदड़ा पन्ने का, बदोलड़ा, नोगरियों की जोड़ी, हीरे माणक के नग रमजोळ घूघरादार का जोड़ा, अणवट, बीछियों की जोड़ियाँ, जेहड़ का जोड़ा घूघरों सहित।

सूरजकँवर बाई के साथ गई बडारणियों को दिये गये गहनों का भी वर्णन है। इन सबके मूल्य भी साथ में दिये गये हैं। बडारणियों की संख्या 24 बताई गई है जिनमें चार प्रमुख जान पड़ती हैं। इनको दिये जाने वाले गहने निम्नांकित हैं-

प्रथम चार बडारणियों को सोने के गहने-

सांकळी सहित चार जोड़ी अंकोट

बाजूबंद की चार जोड़ी
गुजरियों की चार जोड़ियाँ
छापें - 8 तोले
चीड़ 11 तोले
चावखी 12 ।।।) तोले।
तिमणिये तोला 1)1
बींटियाँ - 10 तोले की
जेहडा की 4 जोडियाँ - चांदी की

अन्य 20 बड़ारणियों में से प्रत्येक को-

20 तिमणिये 4 ।)1 ।। तोला
20 मालाएँ 25) ।। तोला
20 चीड 33 ।।।) ।। तोला

उक्त गहने स्वर्ण के थे। उनको दिये गये चाँदी के आभूषण निम्नलिखित थे।

20 जोड़े जेहड़े 47 ।) तोला
20 जोड़ी अंकोट 101 ।।) तोला
20 जोड़ी कांकणियाँ 82 ।।) तोला
20 जोड़ी बाजूबंद 91 ।।।)
100 बीटियाँ छापा सहित 60 तोले

बाई सूरजकंवर को सोने और चांदीनिर्मित निम्नलिखित बासण (बर्तन दिये गये)—

सोने का थाल 149) तोला
5 बाटके (प्याले) 69 ।।।)
1 झारी - 54 ।।) तो. - मूठिया मोरछल का 6)1 तोला
जरजरी 39) तोला, दो पानदान और कैंची - 60)2 तोला डिब्बी-कूपड़ा-तो. 16 ।।)1 ।

चाँदी के बर्तन—

थाल तो. 173 ।।)20 बाटके 8, बाटकियाँ 4 तो. 112 ।।)2, झारी तोला 58 ।।।)2, रकाबी 33 ।।)1 तो., दो पानदान और कैची 85 ।) तोला, 4 चरियाँ - 437) तोला, तातेड़ा 275 ।)1 तोला, 1 कुण्डी 306 तोला, बाजोट 238 ।।।) तोला, 1 पोला 167 ।।)2 तोला, पीलसोत 61)2 तोला, 1 पीकदानी 15 ।।)1 रती, गुलाबदानी

15 ।।।)2 तोला, 4 मुतगा 35 ।)1, चकलोटा 30 तोला- 1 बेलण- 49 ।।।), दो खूमचे 315)1 तोला, 2 कलसिये -38 ।), कुंडलिया 28)1, दो घड़े 441 ।।।), दीवी 57 ।।) तोला, 2 कुंडियाँ 64 ।।) तोला, चालणी 48 ।।।) तोला

देलवाड़ा की हवेली, दयानंद मार्ग,
उदयपुर (राज.)

संदर्भ संख्या—

1. ऋग्वेद 8, 47/7, अथर्ववेद 3/15; 5-6
2. अग्रवाल वासुदेव : पाणिनीकालीन भारत पृ. 269-274 (ई. 1955)
3. शुक्रनीति - अध्याय 4, प्रखंड 5, श्लोक सं. 362-63 (अनुवादक बी.के. सरकार)
4. कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र - ।। सं. शामशास्त्री
5. मरु-भारती — वर्ष 3 अंक 4 जनवरी 1956; पृ. 12-13
6. स्याह बकाया — 27 जुलाई सन् 1708 (जयपुर आर्कविल रेकार्ड के आधार पर) सवाई जयसिंह — डॉ. वीरेन्द्रस्वरूप भटनागर; पृ. 40, 93
7. द्रष्टव्य अबुल फलज कृत आइने अकबरी, अज़ैचंद कृत दफ्तरनामा पर मरुसरस्वती (वर्ष 1 अंक 1 भाग 2 पृ. 62 जनवरी-मार्च 96 में प्रकाशित मेरा लेख); डॉ. वीरेन्द्रस्वरूप भटनागर — सवाई जयसिंह; पृ. 184
8. इन खातियों के नेग के रूप में 100 रु. जरगरखाना से दिलवाये गये थे। (पत्र 29)
9. विवाह के समय चौथे फेरे में वधू के कंठ में सोने की इकलड़ी सांकळी (चेन) में फिरोकर सोने के फूल, खेतरपाळ की मूर्ति, और गोराजी कालाजी की मूर्तियाँ धारण कराई गई।

दवावैत और 'सूरजप्रकास'

डा. राजकृष्ण दूगड़

अन्य साहित्य की भांति राजस्थानी की प्रारंभिक रचनायें भी पद्यात्मक प्राप्त होती हैं। गद्यात्मक रचनायें कब से प्रारंभ हुई इसकी अधिकृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। परन्तु यह अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हमें राजस्थानी में लिखित गद्य के अनवरत रूप में दर्शन होते हैं। राजस्थानी भाषा और साहित्य की विधिवत शोध एवं खोज के पूर्व राजस्थानी पर यह आक्षेप लगाया जाता था कि इसमें पद्य तो बहुतायत से विद्यमान है परन्तु गद्य बहुत हीं कम। परन्तु इधर इस दिशा में की गई विस्तृत खोज ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गद्य की विविध विधाओं, परम्पराओं एवं परिपाटियों का जैसा विशद भंडार राजस्थानी में उपलब्ध है उतना किसी अन्य प्रान्तीय भाषा में नहीं।

प्राचीन राजस्थानी में गद्य की जिन नाना विधाओं के दर्शन होते हैं उनमें प्रमुख है वचनिका, दवावैत, बालावबोध, टब्बा, परवाने, पट्टे, बात, ख्यात, प्रश्नोत्तरी, समाचारी, विलास, विगत आदि। जिम विभिन्न शैलियों में राजस्थानी गद्य की रचना हुई उनमें से एक प्रमुख शैली अलंकृत गद्य की है। इसी अलंकृत गद्य शैली का एक रूप है दवावैत।

राजस्थानी कवियों एवं लेखकों ने इस रचना शैली को किस माध्यम से और कब ग्रहण किया यह कहना कठिन है। वैत शब्द अरबी भाषा का है। इरान के प्रसिद्ध कवि फिरदौसी ने अपनी संसार प्रसिद्ध रचना 'शाहनामा' में इसी वैत छन्द को अपनाया था। राजस्थानी कवियों ने भी समय-समय पर इस छन्द में पर्याप्त मात्रा में लिखा है। हिन्दी में ये रचनायें 'वैत' नाम से मिलती हैं। छन्द शास्त्र के नियमों में बंधी वैत रचनायें दवावैत से भिन्न हैं। "रघुनाथ रूपक गीतां रो" के रचयिता मन्छाराम के अनुसार दवावैत के दो भेद शुद्धबंध और गद्य बंध होते हैं।

तवै मंछ कवि ह्वै, तिके, दवावैत विधि दोय।
एक 'सुद्धबंध' होत है, एक गद्यबंध होय।

ग्रंथ के सम्पादक महताव चन्द खारेड़ ने इस पर टिप्पणी करते हुए इसे किसी प्रकार का छन्द न मान कर विशिष्ट प्रकार का तुकान्त गद्य माना है। उनके अनुसार

"यह कोई छन्द नहीं जिसमें मात्राओं, वर्णों अथवा गणों का विचार हो। यह अंत्यानुप्रासमय गद्य चाल है। अंत्यानुप्रास, मध्यानुप्रास और किसी प्रकार अनुप्रास या यमक लिया हुआ गद्य का प्रकार है। यह संस्कृत भाषा, प्राकृत भाषा, उर्दू भाषा और हिन्दी भाषा में भी अनेक कवियों और गद्यकारों द्वारा प्रयोग में लाया हुआ मिलता है। आधुनिक लल्लूजी लाल के प्रेम सागर आदि ग्रंथों में तथा उर्दू के बहारबोखजां, नौवतन आदि ग्रंथों में तथा फारसी के ग्रंथों में भी देखा जाता है। संभव है डिंगल वालों ने भी उनका अनुकरण किया है। यह दवावैत दो प्रकार की होती है। एक शुद्धबंध अर्थात् पदबंध जिसमें अनुप्रास मिलाया जाता है और दूसरी गद्यबंध जिसमें अनुप्रास नहीं मिलाते हैं।

रघुवरजसप्रकाश में किसना आढ़ा ने अति संक्षेप में दवावैत के संबंध में इतना ही उल्लेख किया है—

दवावैत फिर बात दख, जुगत वचन का जांण,
औछ अधक तुक असम अे, बीढग गद्य बखांन ॥

इस प्रकार किसना ने इसे असम तुक प्रधान माना है, जबकि रघुनाथरूपक में सम और असम दोनों प्रकार के तुकों की व्यवस्था है और उसमें लयात्मकता को भी महत्व दिया है।

मध्यकालीन राजस्थानी गद्य में साहित्यिक दृष्टि से वात और वचनिका की प्रमुखता है परन्तु दवावैत भी काफी संख्या में उपलब्ध हैं। राजस्थानी के प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा ने दवावैत संज्ञक रचनाओं की परपंरा में तेरह स्वतंत्र दवावैतों का परिचय दिया है। इन स्वतंत्र दवावैतों के अतिरिक्त राजस्थानी कवियों की रचनाओं में भी दवावैत काफी मात्रा में प्राप्त होते हैं। प्राय सभी चरित्र काव्यों के रचयिता महाकवियों ने चाहे वह राजरूपक हो या सूरजप्रकाश, विन्हैरासो हो या कीरतप्रकाश, भीमविलास हो या लावारासा, रूपक दीवांन भीमसिहजी का हो या रतनाहमीर वार्ता, शंभूप्रकाश हो या शिवनाथप्रकाश, सभी में सुन्दर दवावैतों की रचना है।

दवावैत राजस्थानी भाषा का एक विशिष्ट रचना प्रकार है जिसमें गद्य के छोटे-छोटे वाक्य खंडों की योजना गद्य में पद्य की-सी रसानुभूति कराती है। दवावैतों की अनुप्रास योजना और तुकबंधता, संस्कृत की वृत्त गद्य शैली का सहज स्मरण करा देती है। इसके सुनने एवं पढ़ने में गद्य होते हुए भी पद्य का सा आनन्द आता है। ये दवावैतें किसी एक घटना, अथवा किसी स्थल अथवा किसी पात्र की जीवन घटनाओं का सारभूत ब्यौरा अपने में समाहित किए रहती हैं।

महाकवि कविराज करणीदान रचित 7500 छन्दों के विशाल ग्रंथ में कवि ने पांच दवावैतें रची हैं। पहली में मुख्य रूप से जोधपुर शहर के बाग-बगीचों, नदी-नालों, फल-फूलों, पशु-पक्षियों, तालाब-सरोवरों के विस्तृत आलंकारिक वर्णन के साथ ही महाराजा के रूप शृंगार, शील, सदाचार, दरबारी ठाटबाट, शान-शौकत का अत्यंत विस्तृत अतिरंजना पूर्ण एवं आलंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। महाराजा के दरबार की शोभा बढ़ाने वाले पंडित गुणीजनों, सरदार सामन्तगणों, संगीतज्ञों-वाद्यकारों, कला प्रवीणों, चारण-भाटों के हुनर का विस्तृत परिचय देते हुए प्रत्येक कला के सूक्ष्म विवरणों का बहुत चमत्कारिक एवं आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(1) ऐसा गढ जोधाण और सहर का दरसाव, जिसके चौतरफ कौं बगीचों का डंबर और दरियाऊं का बणाव। जल निवाणूं का निवास, रतिराज का वास। गुलजार के रसतै होनूं का बणाव। इन्द्रलोक का सा उदोत, अवांसू का दरसाव। फोहारुं की पंक्ति जल चादरूं का उफान। जल चादरुं का घरहर मांनू छिल्ले महिरांन।

(2) जगजीत जोधांन के दरियाव कैसे। अभैसागर बालसमंद दोऊ मानसरोवर जैसे। अम्रित के समुद्र तैसे लहरूं के प्रवाह छाजै। जिनका रूप देखे सै छीर समुद्र का गुमर भाजै। गंभीर नीर तिम तिमंगल ग्राह। थाऊं तै अनेक पावै नहीं थाह।

(3) जिस बखत सो महाराज केसरिया ऊंच पौसाक पहरि खांधी पाग पेज वणवाय। जंवहर के सिरपेच सिर सोमा जग जोतिजगाय। मणि मांणिक हीर पन्ने सोव्रन संजुजत मीने के कांम पाघ पर जवहरी किलंगी धरी सो साजोति की सिखा परिं मांनू नव ग्रहूँ नै पंकति करी। मोतियां का तुररा रतन पेचूं के बीच ऐसा दर साए। मांनू नव ग्रहूं पास तारागण आये।

(4) जिस बखत बेबाहबाज गुणीजनूं नै सुरु का अलाप किया। सप्तसुर तीन ग्राम इकवीस मूरछना अस्ट ताल गुनचास कोटि तांनू संजुगति छराज छतीस रागणी का भदग जिनूंनै बखत प्रमाण उपचार कियै। मानूं सबके दिलूं विच मोहनीमंत्र वसीकरण कियै। स्वर वाजंनू का भेद कहि दिखाय सो कैसे खडज रखव गंधार मधम पंचम धईवत निषाद सुर के अलाप करि को किलूं की बानी सै बोलते हैं। जिसके आनंद तै नरूं के मन मोह वसि हुआ देवतूं के मन झूलते डोलते हैं।

(5) म्रदंगूं के परन धोलकूं के टिकौर। सुरवीणु के झनहण तंबूरुं के घोर। तालूं की झमक झंझरूं के झनकार। काम के घुघर जैसे जंत्र के तार। पिनांकूं का परवेज

स्री मंडलुं का सवाद। रंग की बरखा अलगौंजूं के नाद।

इस प्रकार दवावैत में शहर के विस्तृत वर्णन के साथ ही महाराजा के पहनावें एवं संगीतज्ञों की कला का अत्यंत सूक्ष्म चित्र अंकित है।

शास्त्रीय संगीत के विभिन्न अंगों ग्राम, मूरछना, तानों का वर्णन एवं सप्त सुरों का उल्लेख तथा वाद्ययंत्रों से निकलने वाले सुरों का स्वरानुकुल चित्रण दर्शनीय है।

दूसरी दवावैत में षट्भाषा संस्कृत, पिंगल, अपभ्रंश, प्राकृत, मागधी, शूरसेनी आदि का सोदाहरण विवेचन है।

ऐसी भांति सै खटि भाखा कहि बताई। चातुरी कला की भांति चतुराई। जिसकी साख प्रथम भाखा संस्कृत सो तो अनुभूति कृत्य सारस्वत सो पाई। दूसरी नागभाखा सो नाज पिंगल सौ आई। अप्रभंश भाखा, प्राकृत सो कुल का विचार जिस सेती विस्तार करि गाई। जिसमें पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिण की ए च्यार भाखा कहि दिखाई। दिल्लेसुर पातिसाहूं की भाखा जिसमें पारसी का इलम गाया।

इसी दवावैत में फिर पहलवानों की पहलवानी एवं दांव पेच का वरणन खूबी के साथ किया गया है।

स्रगूं की खाटक चौटी बंगडी के दाव। हमरानी कंमर पेच दाबूं के लगाव। पायकों के हमल्ले बांक पट्टे फूलहत्थूं का दाव। नजर वछेक का हुन्नर अंगूंगा बचाव। हणमंत रूप जग जेठू नै भुजंग दंडू पर दस्तताल दिया।

तीसरी दवावैत में हाथियों की लड़ाई, विविध प्रकार के शिकारों सिघों एवं भैसों की लड़ाई, सूरों के शिकार, खरगोश हिरणों के शिकार का वरणन करते हुए विविध प्रकार के मांस एवं पकवानों के भूंजने एवं सेकने का वर्णन है।

जिस बखत लड़ाणूं लगौ महावत नूं छोड़े छंछाल। झरणा गिरद से नीझर बहत विकराल। अंगूं के अवनाड़। चालते पहाड़। अगडूं परि आय जूटे बीफरे वच्छर दंतूंसलूं के खाटक कैसे दरसावैं। इंद्र वज्र की झाट ऐसी नजर आवै। चाचरुं की मचक सुंडां दंडू का उपाट। चरखूं की भभक घोम घडहड का अंधार।

विविध प्रकार के शिकारों का चित्रोपम वर्णन इस दवावैत में हुआ है, साथ ही मांस तथा भुंजाई का वर्णन भी दर्शनीय है।

चौथे दवावैत में उष्ट्र सेना के ऊंटों के आकार प्रकार का विस्तृत वर्णन करते हुए नागौर के स्वामी राव इन्द्रसिंह पर महाराजा की ससैन्य चढ़ाई का बड़ा ओजपूर्ण फड़कता हुआ वर्णन हुआ है। नमूने के स्थल दृष्टव्य हैं।

गजराजूं की हलवल। बाजराजूं की कलहल। नालूं का निहाव। साबलूं का सिलाव। त्रंबागलूं के डाके। जसोल्लूं के हाके। झूलालूं की झलहल। पैदलूं की हलवल। ढ़ालूं की ढलक। चपडास फूलूं की भलक। मही मुछट रजडंबर का घटाटोप। तिमर का चढ़ाव। भाद्रवै की अमावस घटा का वणाव। तोपूं का जजींरा चौतरफ फेरे। गोलूं का बरसाव। घोमूं का अंधार। घमादूं की घीठ। ओलूं की असण ज्यूं गोलूं की रीठ। दबाव नजदीक लिया। हाकूं सूं धूजै राव का हीया।

पांचवी दवावैत में सरबिलंदखां के युद्धार्थ सज्जित होकर मुकाबले में आने का वर्णन किया गया है। साथ ही नबाव के शान, वैभव, उनके मीर उमराव, सेनापति फौजदार आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए उनके सैन्यबल और युद्धनीति का वर्णन है।

जिस बखत सिरु विलदखां बहादुर ममरजुल मुलक पीरोज जंग मीरजादूं खानंजादू के वीच कैसा दरसावे। लंका की छमा राकसूं के बीच दसकंध सा निजर आवै। तिस बखत परवरदिगार कूं सिजदा करि महमंद मरतुजा अली को याद करि दाहिणै सेती समसेर तोल हुकुम फरमाया। जो यारो दिल्ली के पातिसाह के हुकुम सेती मुझ पर गुस्सा कर हिन्दुस्थांन का पातिसाह जंग करनै कूं आया सो जंग करणै का मनसुभा ठहरावौ। इस हुकुम पर आदाब बजाय खड़े सो सिपाह कैसे। उरस के खंभ सेरुं के झुंड जैसे। रोस के झालाहल आतप के अंगार। खावंद के हुकुम पर जमसेती जंग करै। निमरव की सरीयत पर ज्यांन कुरबान करै। हुर वर वरनैं की उछाह आंनै। मरणा अर मारणा खेल करि जांनै।

इस प्रकार कविया करनीदान द्वारा संवत् 1787 में रचित ये दवावैत राजस्थानी गद्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। श्री अगरचंदजी नाहटा द्वारा वर्णित तेरह दवावैतों के अतिरिक्त न जाने कितने दवावैत राजस्थानी साहित्य में उपलब्ध हैं। श्री सौभाग्य सिंह जी शेखावत ने चारण बखताराम के रुपग दीवान भीमसिंह जी में दो दवावैत, महादान मेहडू के ग्रंथ भीमविलास में एक दवावैत, तेजाराम आशियां रचित महाराणा

जवानसिंहजी के वर्णन में एक दवावैत, गोपालदान कविया के लावारासा में एक दवावैत, स्वामी स्वरूपदास रचित पांडव यशेन्दुचन्द्रिका में एक दवावैत, ठाकुर देवीसिंह सिसोदिया रचित सुजानसिंह री वारता में चार दवावैत, कविराजा गुमानजी की रचना में एक दवावैत, राव गिरवरदास रचित शिवनाथप्रकाश में तीन चार दवावैत, अज्ञात कवि द्वारा रचित रामदयाल नामक व्यक्ति पर दवावैत, डूंगरजी बागड़ी कृत राजा जयसिंह री दवावैत आदि अनेक दवावैतों का उल्लेख किया है। सारी सामग्री स्वतंत्र रूप से एक शोध प्रबन्ध का विषय है।

दवावैतों की भाषा आंलंकारिक होने के साथ ही उर्दू एवं फारसी के प्रभाव से प्रभावित है। ये दवावैतें तत्कालीन इतिहास एवं सस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालने में समर्थ हैं। राज समाज के क्रियाकलापों एवं लोकव्यवहारों का इनमें यथार्थ चित्रण रहता है। इसी कारण इतिहास की दृष्टि से भी ये दवावैत अत्यंतं महत्वंपूर्ण हैं। ये दवावैत लेखक अनेक भाषाओं के मर्मज्ञ एवं अनेक शास्त्रों के जानकार होते थे। रोचकता एवं मधुरता में तो ये दवावैत अपनी सानी नहीं रखते हैं। अनुप्रासों की झड़ी एवं भावों की सुन्दर निष्पत्ति इन दवावैतों की अनुपम विशेषता है।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता हैं कि राजस्थानी साहित्य में बिखरे पड़े इन सहस्रों दवावैतों के शोध से गद्य की इस विशिष्ट विधा एवं इसमें किए कलात्मक भाषा प्रयोग के अनुपम उदाहरण हमें सहज रूप से उपलब्ध हो जायेगें। आवश्यकता है ऐसे अनुसंधित्सु की जो श्रमपूर्वक इनका संग्रह कर सकें और इनका साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन कर सके।

57, गोल्फ कोर्स, जोधपुर।

"जोधपुर की हकीकत बही" (वि.सं. 1821-22)

डा. वसुमती शर्मा

मारवाड़ के इतिहास में नित हकीकत बहियों के लेखन की परम्परा पुरानी है एवं मारवाड़ के नरेशों द्वारा नित विगत का विवरण सदैव लेखबद्ध करवाया जाता रहा। 17वीं शती एवं पूर्व समय की नित हकीकत बहियों का न मिलना, इस ओर ध्यान आकर्षित करता है कि अनेक साक्ष्य मुगल आक्रान्ताओं द्वारा नष्ट किये गये, उनमें यहाँ की कला के साथ ही हकीकत बहियां भी हैं जो नष्ट कर दी गई। यह एक आश्चर्य जनक बात है कि 18वीं के मध्य से 1950 तक की तमाम नित हकीकत बहियाँ मिल रही हैं। मेरे विचार से यह परम्परा पुरानी रही है एवं पूर्व के नरेशों के काल में नित हकीकत बहियां व रोजनामचे लिखे जाते रहे हैं।

यहां इतिहास का यह तथ्य विचारणीय है कि ई.स. 1678 में पेशावर में महा. जसवंतसिंह की मृत्यूपरांत उनके कोई पुत्र न होने से औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को सीधा मुगल शासन के अधिकार में लिया। मारवाड़ में मुगल राजपूत संघर्ष इस मध्य 30 वर्ष तक रहा। मुगल आक्रान्ताओं द्वारा इस समय में यहां की कला संस्कृति के साक्ष्यों को तोड़ा गया एवं ख्यात, बही, वंशावलियों आदि को नष्ट कर दिया गया।

जोधपुर राज्य प्रशासन में वि.स. 1821-22 में महाराजा विजयसिंह का राज्य रहा। राजस्थान राज्य अभिलेखागार में महा. विजयसिंह के शासन काल से 20वीं शती के मध्य तक की करीब 150 नित हकीकत बहियां हैं। इनमें से प्राप्त प्रथम हकीकत बही (वि.स. 1821-30) के दो वर्षों का अध्ययन कर यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

बही की विशेषता :-

यह बही महाजनी लिपि में लिखित 720 पृष्ठीय है जिसमें वर्ष का प्रारंभ विक्रम संवत् माह श्रावण से माना गया है। इसमें नरेश की दैनिक दिनचर्या का उल्लेख प्रमुख रूप से किया गया है।

हकीकत बही में संवत्, माह वदि-सुदि, वार, घड़ी आदि के अनुसार वर्णन दिया गया है।

उदा. बही के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है : -

1) संवत् 1821 सांवण वदि 1 सनी मुकाम मेडते

बही में हर नई बात को लिखने से पूर्व 1 ।) सवा लिखा जाना शुभ संकेत माना जाता था। बही तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति के साथ प्रशासनिक राज्य स्थिति एवँ राजनीति को दर्शाती है।

बही से पारिवारिक स्थिति विवाहोत्सव एवं सामाजिक स्थिति की विवेचना :-

बही में राजपरिवार हेतु जहाँ छोटे घरानों, ठिकानों से डोला, विवाह के प्रसंग आते हैं, वहीं समानस्तर के घरानों से शान-शौकत से विवाह उत्सव मनाये जाने के विवरण प्राप्त होते हैं।

वि.सं. 1821 में बीकानेर के गांव लखासर से तंवरो का डोला आया (सालमसिंघ, दौलतसिंघोत की बेटी का टीका भेजना) बही से विवाह पूर्व टीका भेजने को एवं टीके की सामग्री उसी राज्य में खरीदे जाने का विवरण देखिये-

'बारहट पदमसिंघ सांवतराम को कोटा टीका देकर भेजा गया। टीके में एक हाथी, 2 घोड़े दिये गये एवं 2251) रुपये के पाघ, तास के थान, गोसपेच, बालाबंधी, पोतिया, इलायचा कोटा से ही खरीदा गया।'

फागण सुद 3 वि.सं. 1821 को बाई मानकंवर के विवाह से जोधपुर के राजपरिवार की पारिवारिक, सामाजिक स्थिति बखूबी ज्ञात होती है। इस अवसर पर बून्दी के राव राजा उम्मेदसिंह अपने छोटे भाई राजदीपसिंह के विवाहार्थ आये थे। इस अवसर पर भोज (जीमण) हुए। जलेबी, पूड़ियाँ, चावल, दाल, रोटी, वगैरह बने। यहाँ के नरेश ने कंवर दीपसिंह ने साथ ही खाना खाया। रात्रि विश्राम गढ़ में किया गया। विवाह पश्चात् जात दी गई। विशेष बात यह रही कि बून्दी से विवाहार्थ आई बारात को बाईस दिन जोधपुर में रखा गया जो कि तात्कालिक राजवंश की संपन्नता को दर्शाता है।

विवाह पश्चात् एक हाथी, 25 घोड़े एवं बरतन, गहना अन्य अनेक वस्तुएँ दहेज

में दी गई। इस प्रकार यह बही समय-समय पर घटने वाली घटनाओं एवं सबंधित व्यक्तियों, स्थानों एवं अनेक वस्तुओं का ज्ञान कराती है।

एक उदा माह सुद 15 शनीवार वि.सं. 1822 डूंगरपुर के मेले से आई दालचीनी आबदार खाने को सौंपी जाने का पता चलता हैं।

दाड़मों की कावड किशन गढ़ भेजी जाना, ब्रह्म भोज के जीमण होने एवं विदा का सिरोपाव दिये जाने के विवरण ज्ञात होते हैं।

एक उदा. मिगसर सुदी एक वि.सं. 1821 भगवतसिंह नाथ जी महाराज के बेटे को दरबार विदा का जिसमें एक सिरोपाव, घोड़ा एक, खरची के 2000) दिये गये। बही में व्यापारियों के उल्लेख के साथ पाघ बादलाई, पोतिया गुजराती का विवरण प्राप्त होता हैं। कपड़े के मूल्य भी दिये गये हैं।

29 ।।।) पाघ 2 तासरी
99 ।।।) तास रा थान
33 ।।।) बालाबंधी फरकसाई
पोतिया गुजराती एक 20),
एक 21)
इलायचा थान 11 ।।)

बही का सांस्कृतिक विवेचन—

इस बही के अध्ययन से जहाँ राजपरिवार की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति का ज्ञान होता है, वहीं यह मारवाड़ की सांस्कृतिक झलक को दर्शाती है। बही के 1821-22 के अध्ययन में तात्कालिक समय में राजपरिवार एवं राज्य में वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार रहा। नरेश एवं कुंवर द्वारा शहर के वैष्णव मंदिरों में दर्शनार्थ जाना, पूजा अर्चना करना एवं वैष्णव त्यौहारादि पर मंदिरों में भेट-पूजा आदि चढाये जाने के विवरण प्राप्त होते हैं। आनंदघनजी, घनश्यामजी के मंदिर के अलावा नागणेचियां, चामुण्डा माता के पूजा पाठ के विवरण प्राप्त होते हैं।

मिगसर दस वि.सं. 1821 श्री जी साहब द्वारा 100) रुपये, कंवर की ओर से 30),

गुंसाई जी के चढाये गये। वर्ष के प्रमुख त्यौहारों को परम्परागत रूप से मनाये जाने एवं उसमें राज्य के लोगों की सहभागिता का उल्लेख प्राप्त होता हैं।

होली के त्यौहार पर जनाना, मरदाना होली के खेल होना, गुलाल अबीर के खेल, पानी से खेला जाना, इस अवसर पर सवारियों का बाल समंद पहुँचने आदि का वर्णन है। चैत्र माह में नवरात्रि स्थापना, चामुण्डा नागणेचियां की पूजा-अर्चना, इसके अलावा गवरी पूजन, राखी पूनम, बड़ी तीज मनाये जाने, बड़ी तीज का तमाशा, इस अवसर पर हाथी की सवारी, नागादड़ी का मेला मंडोर में होना, जन्माष्टमी, जल झूलनी ग्यारस का उत्सव, आसोज माह में नवरात्रि स्थापना, दशहरे के अवसर पर हाथी घोड़ों की पूजा, नजर निछरावल, भोज दरबार के आयोजन, दशहरे की सवारी के आयोजन, शमी पूजन, वाहिवाल का मारा जाना एवं दशहरे के त्यौहार का धूमधाम से मनाया जाना तात्कालिक सांस्कृतिक विवेचन की पृष्ठ भूमि तैयार करता है। दीपोत्सव मनाये जाने के साथ ही बसंत पंचमी उत्सव भी राजपरिवार एवं राज समाज में मनाया जाता था। इस प्रकार यह बही तात्कालीक सांस्कृतिक परिवेश को दर्शाने हेतु एक सक्षम साक्ष्य है।

बही से तात्कालिक राजनीतिक प्रशासन का संकेत—

आलोच्य (1821-22 वि.सं.) दो वर्षों में राज्य में शांति का समय रहा, किसी प्रकार के युद्ध प्रसंगों के विवरण प्राप्त नहीं होते हैं।

बही के प्रथम पृष्ठ पर मारवाड़ के परगने-मेड़ते, नागौर, मालकोट, सातलबास, बोरून्दा, बीसलपुर का उल्लेख प्राप्त होता है। बही से मारवाड के परगने एवं उनसे प्राप्त आय के विवरण प्राप्त होतेहैं। परगनों की आय हाकिम दरबार में लेकर आते थे।

त्यौहारों के विशेष अवसरों पर दरबारों के आयोजन के विवरण प्राप्त होते हैं। अक्षय तृतीया, दशहरा, दीपावली, होली पर दरबारों के आयोजन होते थे। दरबारों में सिरोपाव, इनाम आदि दिये जाने, परगनों से हाकिमों द्वारा खजाने पेश करने के विवरण प्राप्त होते हैं।

"काति वद अमावस्या सोम वि.सं. 1822 मुकाम गढ़ जोधपुर" बही में इस प्रकार का लिखा जाना निर्दिष्ट करता हैं कि नरेश जोधपुर में ही हैं। अन्य परगनों में नरेश

के होने पर उसका विवरण भी बही में किया जाता था। दीपावली के दरबार एवं खजाना नजर होने का विवरण देखिये-

'दीपावली के जुलूस का दरबार हुआ, दुपहर को भुंजाई (भोज) रो पांतियो सभा मंडप में हुआ। श्री जी साहब, कंवर साहब नै सकोई सिरदार सभा मंडप में आरोगिया नै निजर, निछरावल रूसनाई रै दरबार नीजर हुई।

1 प्रगना सुं खजानौ

47671) दोपेर रै दरबार

12000) जोधपुर

4000) मेड़ते

2000) पचपदरा

11000) जालोर

1200) नावा

650) सिवाणा

1001) बिलाडा.....एवं कुल 47671) प्राप्त हुआ।

इसी दिन रूसनाई के दरबार में 18807) नजर हुए।

त्यौहारों पर दरबार के साथ ही वर्षगांठ के अवसर पर भी दरबारों का आयोजन किया जाता था जिसमें जायफल, लौंग, डोडा बांटे जाते थे, परगने से खजांना आता था नजर निछरावलें होती थीं एवं वर्षगांठ के जुलूस का वर्णन प्राप्त होता है।

राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में अनेंक विभागों में अध्यक्ष के रूप में दरोगा का पद प्रमुख होता था।

कुछ विभागों की दरोगाई दिये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। आसोज सुद 13 वि.सं. 1821 टकसाल की दरोगाई सिंघवी जोरावर को दी गई। हरष तुलछीराम को कीलीखाने की दरोगाई मगसर सुदि 2, 1821 को प्राप्त हुई। पोस वदि 2, सोमवार वि.सं. 1821 अलेदास खां साहब को तोपखाने की दरोगाई का सिरोपाव आथण के दरबार में हुआ। इसी प्रकार जालोर के सायर की दरोगाई 'अमरदास' को दिये जाने का कागज प्रेषित किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

निष्कर्षतः प्रस्तुत बही के दो वर्षों के विवरण तात्कालिक समय की राजपरिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के साथ ही सांस्कृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि को दर्शाने हेतु सक्षम माध्यम सिद्ध होते हैं।

अंततः जोधपुर राज्य से संबंधित प्राप्त 150 हकीकत बहियों को देखने से ज्ञात होता है कि जोधपुर राज्य में हकीकत बहियाँ लिखने की समृद्ध परम्परा रही है। वि.सं. 1821 ई. की प्राप्त बही को जोधपुर राज्य की प्रथम प्राप्त हकीकत बही के रूप में स्वीकार करना श्रेयस्कर रहेगा।

प्रभारी, शाखा कोटा
रा.प्रा.वि.प्र.

महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के रुक्के परवाने

डॉ. सद्दीक मोहम्मद

इतिहास को जानने की आधारभूत सामग्री के अन्तर्गत हम तत्कालीन पत्रावळी को भी ले सकते हैं। यह पत्रावली अनेक प्रकार की है, जैसे फरमान, निशान, अर्जदाश्त, हस्बुलहुक्म, रज्म और अहकाम, सनद, परवाना, रुक्का आदि। इनमें रूक्के-परवानों की भी इतिहास की दृष्टि से विशिष्ट महत्ता है। रुक्का प्राइवेट पत्र की संज्ञा है। राजा की ओर से प्राप्त पत्र को परवर्तीकाल में खास रुक्का कहने लगे। इसी तरह परवाना प्रशासनिक पत्र की संज्ञा थी जो अपने से छोटे अधिकारी को लिखा जाता। इनमें दी हुई सूचनाएं प्राय: तथ्य से ओतप्रोत हैं क्योंकि दूसरे व्यक्ति को तथ्य से अवगत करना ही, चाहे वह तथ्य कटु हो या मधुर, इन रुक्के परवानों का मुख्य लक्ष्य हैं। काव्य ग्रंथों, ख्यातों, प्रशस्तियों आदि अन्य साधनों की अपेक्षा ये अधिक प्रामाणिक हैं क्योकि ये साधन ऐतिहासिक घटनाओं के समसामयिक हैं। ये उन व्यक्तियों द्वारा लिखे या लिखाये गये हैं जो उस घटनाक्रम में स्वयं कार्यरत हैं। इनमें परिस्थितियों का यथा तथ्य निरूपण है।

रुक्कों, परवानों, सनदों आदि में ऐतिहासिक सामग्री शिलालेखों, सिक्कों आदि से कहीं बढ़कर रहती है। इनसे एक ओर समसामयिक व राजनीतिक परिस्थितियों का पता चलता है वहाँ दूसरी ओर घटनाक्रम को मोड़ देने वाले तत्त्वों और घटनाओं से उत्पन्न परिस्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। अनेक रुक्कों और परवानों में उस समय की सामाजिक परिस्थितियों, धार्मिक विश्वासों, सैनिक अभियानों, युद्ध के तौर तरीकों, राज्य व्यवस्था, लगान, कर, जातीय व्यवस्था, राजाओं को मिलने वाले शाही खिताब, ईनाम आदि के भी महत्त्वपूर्ण संकेत मिलते हैं। अत: वे इतिहास के बहुत बड़े प्रामाणिक साधन हैं।[1]

राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी में महाराजा मानसिंह के रूक्के परवानों की नकलें संगृहीत हैं। मैं यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण रूक्के परवानों के बारे में जानकारी दे रहा हूँ।

(1) सिंघवी इन्दराज रै नावै खास रूक्कौ महाराजा श्री मानसिंघजी सायबा रौ

'सिंघवी इंदराजकस्ये सुपरसाद वाचजै तथा आज पाछली रात रा जैंपर वाळा

कूच कर गया और मोरचा बिखर गया है। और आपणं मतै सारा कूच करै है। इण बात रौ थांनै वडौ जस आयौ और वडौ थें नामून पायौ। इण तरां रौ रासौ हुयोड़ौ थे बिगाड़ियौ। जिणरी थांरी तारीफ कठां तक लिखां। आज सूं थांरे दियोड़ौ राज है। म्हारै राठौड़ां रै बंस में रेसी नै ओ राज करसी वो थांरा घर सूं अस्यानबंद रैसी। थांरै घर सूं कांई तरै रौ फरक राखसी तो इस्ट धरम सूं बेमुख होसी। अब थें मारग में हळकारां री पूरी सावधानी राखज्यौ। सं. 1863 रा भादवा सुदि ९, सही म्हारी।'[2]

यह रूक्का जोधपुर के सेनापति इंद्रराज सिंघवी के नाम है। इसकी तिथि भादवा सुदि 9, सम्वत् 1863 है। इसी समय की घटनावली इसमें दी गई है। जयपुर वाले कूच कर गये और उनका घेरा बिखर गया। दूसरे सरदार भी अपने-अपने स्थान पर चले गये। इस सब के लिए महाराजा मानसिंह ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। महाराजा ने यहाँ तक लिखा है कि राठौड़ राजवंश का कोई भी व्यक्ति इनसे किसी तरह का फर्क रखेगा तो वह इष्ट धर्म से विमुख होगा।

(2) खास रुक्को महाराजा मानसिंघजी रौ अमीरद्दौला बहादुर रै फौज खरच बाबत

'सिंघवी इंदराज मु. सुरजमल दिसै सुपरसाद बाचज्यौ। तथा नबाब अमीरद्दौला वहादुर रै तिनखा स रूपिया रा रूक्का अेक महीना रा तथा बीस दिन रा करार तुलारांम नै देवो हो नै अठै तनखा वाळा रौ धंगौ हद सुदी है। जिण हूं वे रूक्का उठै ही फौज में बेचाण दे ज्यो नै व्याज काटौ लागै सु मामलात ऊपर देराइज्यौ। आ रूपियां री जेज कीज्यौ मती ताकीद सूं बसूल कराय दीज्यौ। सं. 1865 आसोज सुदि ९ मुकांम पाय तखतगढ जोधपुर।'[3]

यह रूक्का भी इन्द्रराज सिंघवी के नाम है। इसकी तिथि आसोज सुदि 9 संवत् 1865 है। इस समय महाराजा मानसिह जोधपुर की गद्दी पर थे। संवत् 1864 के मध्य में महाराजा मानसिंह शत्रुओं से चारों ओर घिरे थे। इनसे बचने के लिए महाराजा मानसिंह ने अमीरखां (अमीरूद्दौला) से बातचीत की। जयपुर के बख्शी को राठौड़ों से मिलकर अमीरखां ने हराया और फिर ढूंढाड़ में लूटपाट शुरू की जिससे भाद्रपद सुदि 13 को जयपुर के महाराजा जगत्सिंह ने जोधपुर का घेरा उठा लिया। चैत्र सुदि 2 (29 मार्च 1808) के दिन महाराजा मानसिंह ने अमीरखां द्वारा पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह को मरवा डाला। इन्हीं सब सेवाओं को पुरस्कृत करना आवश्यक था। इसलिए महाराजा मानसिंह ने कुछ रुक्के दिये थे, जिन्हें बेचकर अमीरखां आदि को चुकाने का आदेश था।

(3) लाटा रा अनाज नै सैनिक सेवा रा लोगां रौ डंड माफी रौ परवानो

'मिति चेत सुद 3 बुध 1864 तथा कसबा रा पसायतां कानुगा वगेरे2 ने पांच रूपिया लेण रौ हुकम हुवो हैं सु लेने विलायती नबाब वीराम बेगजी नुं रू. 5000) पांच हजार दिराया हैं सु देजो उनाळू लाटा रौ धान आवे तिण में आधो तो किला रा लोग नुं दीरीजसी नै आधो मीरखान रै कारखाने दिरीजसी। श्री हजूर रो हुकम छै मिति चेत सुद 1864। कुम्हार तुलछीयो, टोलीयो ने रूपलो, विजयो ए चारू घेरा में कागद लावता तिणां ने डंड माफ रो (हुकम हुवौ)।'[4]

इस पत्र का सम्बन्ध जोधपुर के घेरे से है। सन् 1806 की 30 मार्च को जयपुर नरेश जगत्सिंह, पोकरण ठाकुर सवाईसिंह, अमीरखां और बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह ने जोधपुर को घेर लिया और लगभग तीन सप्ताह बाद यहाँ तक नौबत पहुँची कि महाराजा मानसिंह ने जोधपुर नगर विरोधियों को सौंप दिया। किन्तु कुछ समय बाद जोधपुर वालों ने रुपये देकर अमीरखां को अपनी ओर कर लिया। जब फागी नाम के स्थान पर जयपुर की सेना को पराजित कर अमीरखां और उसके साथ के जोधपुर के सरदारों ने जयपुर रियासत को लूटना शुरू किया तो 14 सितम्बर को महाराजा जगत्सिंह ने जोधपुर का घेरा उठा लिया। किन्तु घेरा उठने से ही सब समस्या हल न हुई। जिन व्यक्तियों ने महाराजा मानसिंह को सहायता दी थी उन्हें सम्मान द्वारा ही नहीं, अपितु धन द्वारा पुरस्कृत करना भी अत्यन्त आवश्यक था। पसायत और कानूंगो आदि से पांच-पांच रुपये लेकर महाराजा ने पांच हजार रुपये एकत्रित किये और यह रकम देकर विलायती नवाब बीरामवेग (बैरमबेग) को प्रसन्न किया। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि जब गेहूं, चने आदि की फसल में राज्य अपना हिस्सा ले तो उसका आधा हिस्सा तो जोधपुर के किले वालों को और आधा मीरखान (अमीरखान) को मिले। यह भी प्रतीत होता है कि इस तंगी के समय शहर के सभी लोगों से रुपये लिये गये थे। किन्तु कुम्हार तुलछिया आदि घेरे के समय भी पत्र आदि ला रहे थे, इसलिए उनका दंड (बलात् सबसे लिया जाने वाला अतिरिक्त कर) माफ कर दिया गया।

(4) महाजनां सूं बेगार न लेणी बाबत परवानो

'आसोज वद 3- 1865

तथा श्री हजूर में उठारा महाजनां अरज मालम कराई जाळोर घेरा में नै हमार पांच रुपिया डंड रा म्हारे टेहेरिया सु तो भर दिया हमें म्हाजन बेगार री खेचल घणी ने ऊंट म्हारा बेगार में पकड़ ने खिजमत म्हेल देवे ने माचा राली मंगावे, सु हुकम हुवो

है ऊंट बेगार में मंगावणो सु वाहर रे काम जरूरी हुवे नैं सिरकार रो हाजर न हुवैं तो मंगावणों दूजो किणी काम खिजमत बेगार में न मंगावणो ने और ही बेठ बेगार मांचा राली वगेरे रो म्हाजनां बोरां सूं खेंचल कीजो मति।'[5]

यह परवाना महाजनों से बेगार लेने के सम्बन्ध में है। महाजनों ने महाराजा मानसिंह से निवेदन किया, जालोर घेरे के समय उनसे पांच रुपये प्रति व्यक्ति दंड के नियत हुए थे सो उन्होंने चुका दिये। फिर भी महाजनों को बहुत तंग किया जा रहा था। बेगार में उनके ऊंट पकड़े जाते और उनसे खाट और गद्दे आदि मंगाये जाते। इसलिए महाराजा मानसिंह ने आज्ञा दी कि ऊंट उसी समय मंगाया जाए जब राज का ऊंट हाजिर न हो और महाजनों से खाट, गद्दे आदि बेगार में न मंगाये जाएं। हासिये में लिखा है कि सनद की एक नकल महाजनों को दी जाए।

(5) जात न्यात बाबत परवानों

'मि. भादवा वद- 1862

तथा दरजी केदारी वड सांमण हुई ने पछै भगवा कपड़ा नांख ने घर में आय बैठी। तरै न्यात वाळा कयो सांमण हुई तिण सूं न्यात रोई राखां नही। तरै उण रौ बेटो कोटवाळ कने गयौ जद कोटवाळ कयो-थारी न्यात जाणे जद दरजीयां बेटा नु तो न्यात में उरो लियौ सांमण हुई तिणनु न्यात बारे काढ दीवी। पछै कोटवाळ दरजियां नुं बुलाया ने कयौ- मानु बूझीयां विना इणनुं न्यात में क्यूं लियो ने सारी न्यात रा सालविया दरजियां ने भाखारी में बेसाणीया ने आबरू पाड़ ने रु. 451) अखरे चार से इकावन में मतो घळायो, ने तलवां घाली छै। आ हकीकत की हजूर मालूम हुई सु हुकम हुवौ है- सु रु. ठहरींया हुवे तो छूट कीजौ, ने कबूलायत पाछी दीजौ, ने किणी रो खत लिखायो हुवे तो पाछो दीजो ने तलब चढाई हुवै तो दिरावजो मति ने इणां री न्यात में अछूत रो माल सदामद खावे है सु खावण देजौ श्री हजूर रो हुकम छै।'[6]

यह पत्र जात-पांत विषयक है। दरजिन केदारी संन्यासिनी बन गई थी, किन्तु फिर घर में आ बैठी। इसलिए उसे न्यात बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया। उसके बेटे ने इस सम्बन्ध में कोतवाल से जब अर्ज की तो कोतवाल ने न्यात-बिरादरी के निर्णय का समर्थन किया। इसके बाद जब जाति ने लड़के को न्यात में लिया किन्तु दरजिन को बहिष्कृत रखा, तो कोतवाल ने उन्हें जेल में रखा और बेआबरू कर उनसे 451 रु. जुर्माने के रूप में लिखवा लिये। महाराजा मानसिंह के सामने अर्ज होने पर आज्ञा हुई कि रुपए वसूल न किये जाएं और यदि कुछ तलब नियत हुई हो तो वह

भी न ली जाय। इनकी जाति में सदा से अछूत आदि का माल उनकी संतान खाती रही है, सो अब भी लड़के को अछूत मां की संपत्ति भोगने का अधिकार दिया जाए।

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि ये रूक्के-परवाने अनेक रूप में उपयोगी हैं। ये उस समय की राजनीतिक उथल पुथल के सर्वोत्तम साक्षी हैं। इनसे राजाओं के आपसी सम्बन्ध, राजकाज का प्रबन्ध एवं राज्य की स्थिति के बारे में अच्छी जानकारी मिलती है। सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र में प्रचलित परिपाटियों का भी इनसे परिचय मिलता है।

महाराजा मानसिंह के शासन एवं कवित्व इत्यादि के विषय में तो जानकारी के कई अन्य स्रोत हैं किन्तु इन रूक्के-परवानों द्वारा उनके व्यक्तितत्व पर जो प्रकाश पड़ता है वह उनके मानवीय पक्ष का सबसे बड़ा उद्घाटक है। महाराजा मानसिंह अपने समय के कुशल राजनीतिज्ञ, जुझारू योद्धा एवं प्रतिभा सम्पन्न कवि ही नहीं एक श्रेष्ठ पुरूष के रूप में भी मारवाड़ के महाराजाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। वस्तुतः उनका यह पक्ष ऐसे व्यस्त एवं जीवन भर परेशानियों में उलझे महाराजा के लिए प्रशंसनीय ही नहीं, विस्मयकारी भी है।

इन रूक्कों-परवानों से तत्कालीन शब्दावली व पत्र लिखने की शैली का भी ज्ञान होता है। इनसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय की पत्रावली में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग बहुलता से होता था।

इन पत्रों का इतिहास लेखन सामग्री के रूप में विशेष महत्त्व है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार के पत्रों के प्रकाशन का कार्य बड़े पैमाने पर हो ताकि इतिहास लेखन का कार्य अधिक प्रामाणिक रूप में किया जा सके।

सम्पादक
राजस्थानी शब्द कोष
चौपासनी।

सन्दर्भ संख्या—

1. परम्परा-ऐतिहासिक रुक्के परवाने, सम्पादकीय, पृष्ठ-4, सम्पादक-डा. नारायण सिंह भाटी
2. श्री महाराजा मानसिंघजी व भीमसिंघजी के खास रुक्के व उनकी नकलें, ग्रंथाक-298, पत्र संख्या-6
3. श्री महाराजा मानसिंघजी व भीमसिंहजी के खास रुक्के व उनकी नकलें ग्रंथांक-298, पत्र संख्या-1
4. परम्परा-ऐतिहासिक रुक्के परवाने-सं. -डा. नारायणसिंह भाटी, पृ. 68
5. परम्परा-ऐतिहासिक रुक्के परवाने-सं. -डा. नारायणसिंह भाटी, पृ. 70
6. परम्परा-ऐतिहासिक रुक्के परवाने-सं. -डा. नारायणसिंह भाटी, पृ. 70-71

तखतसिंह री ख्यात और 1857 की क्रांति

डॉ. बृजकिशोर शर्मा

राजस्थान के इतिहास लेखन में ख्यात साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसे काफी विश्वसनीय ऐतिहासिक स्रोत का दर्जा प्राप्त है। राजस्थान में ख्यात लेखन की परम्परा का आरम्भ 16वीं शताब्दी से आरम्भ होता है तथा 19वीं सदी तक यह क्रम जारी रहता है। मारवाड़ राज्य में ख्यात लेखन की परम्परा अधिक समृद्ध दिखाई देती है। ये ख्यातें लेखनकाल की राजनीतिक घटनाओं के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन पर भी भरपूर प्रकाश डालती हैं। अनेक ऐसी घटनाओं तथा तथ्यों का विवरण इन ख्यातों में मिलता है, जो अन्य स्रोतों में उपलब्ध नहीं होता है। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि इनके अभाव में इतिहास लेखन संभव ही न हो। असल में यह इतिहास लेखन का एक अतिरिक्त सहायक स्रोत ही माना जा सकता है, प्रमुख नहीं। वैसे ख्यात साहित्य लेखन में ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक दोष व्याप्त हैं, ख्यातों में उल्लिखित सूचनाओं की विश्वसनीयता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगता है, क्योंकि पेशेवर इतिहास लेखकों द्वारा इनकी रचना नहीं की गयी है। तथ्यों व सूचनाओं के शोधन की किसी वैज्ञानिक विधि का सहारा ख्यात लेखकों द्वारा नहीं लिया गया है।

मारवाड़ की ख्यात लेखन परम्परा में तखतसिंह री ख्यात लगभग अंतिम कड़ी है। अत: इसका महत्व स्वाभाविक तौर पर बहुत बढ़ जाता है। राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास लेखन में ख्यातों का ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में भरपूर प्रयोग हुआ है। किंतु आधुनिक राजस्थान के इतिहास लेखन में ख्यात साहित्य का उपयोग लगभग नगण्य ही रहा है। इसका मुख्य कारण तो इस काल में ख्यात लेखन की परम्परा का कम होना अथवा समाप्त होना ही रहा है। दूसरा कारण यह भी माना जा सकता है कि आधुनिक काल के इतिहास लेखन की सामग्री पुरालेखागारों में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है किंतु, इसका मतलब यह भी नहीं है कि समकालीन कृतियों का महत्व इससे कम हो जाता है। बल्कि समकालीन साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कृतियां तथा पुरालेखागारों में उपलब्ध सामग्री परस्पर जांच यंत्र के रूप में उपयोग में लाई जा सकती हैं।

महाराजा तखतसिंह री ख्यात आधुनिक राजस्थान के इतिहास लेखन हेतु एक

उपयोगी ग्रंथ हैं। अप्रकाशित अवस्था में इसका उपयोग इतिहासकारों द्वारा नहीं किया गया है। किंतु अब इसके प्रकाशन ने इसकी उपयोगिता को सार्थक बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।[1] मूल रूप से यह ख्यात मारवाड़ राज्य के आधुनिक काल के इतिहास लेखन की सामग्री का महत्वपूर्ण स्रोत है, किंतु इसका महत्व सम्पूर्ण राजस्थान के इतिहास लेखन की सामग्री के रूप में भी कम करके नहीं आंका जा सकता है।

विशेष तौर पर 1857 की क्रांति की घटनाओं व तथ्यों की जानकारी का यह एक महत्वपूर्ण साधन है। जहाँ इस ख्यात में राजस्थान की 1857 की घटनाओं का विशद व सूक्ष्म उल्लेख हुआ है वहीं सम्पूर्ण उत्तरी व पश्चिमी भारत के घटनाक्रमों का उल्लेख भी विस्तार से किया गया है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि संचार साधनों के अभाव अथवा अविकसित अवस्थाओं में भी दिन प्रतिदिन की घटनाओं को जानकारी प्राप्त कर लिपिबद्ध किया गया हैं।

1857 की क्रांति के तात्कालिक कारण के सम्बंध में ख्यात में संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

'जेठ वद 12 दिल्ली सुं खबर आई कै मेरठ री छावणी जेठ वद 1 रविवार रै दिन नोकर हिंदू मुसलमान था जिणा नै कयौ कै कारतूस लेवो सो उण इनकार लियो। ये तो षालडा रा है सो मुढ़ा सु तोड़ा नहीं नै लेवा नहीं। तिण ऊपर अंगरेजां अफसरां तकरार जादा कीवी तरै तकरार रै साथ सिपायां ससत्र उठाय अंगरेजा ने नै मेमा तथा वाल बचा नै मार नांषीया।'[2]

उपरोक्त संक्षिप्त जानकारी क्रांति के तात्कालिक कारण चमड़े के कारतूस के विवाद होने की पुष्टि करती है। इसी प्रकार क्रांति के प्रारम्भिक विकास के बारे में विवरण दिया गया है। 'और इसो सुणी कै मेरठ सुं चीठी तो अंगरेजा दिवी थी दिलि नै, पण अंगरेजा रै कुसी थी सो चीठी पढ़ सकीया नहीं। सो गाफली सुं कर नीसंक रै गया जितरै मेरठ वाला आदमी जाय पूगा सो अंगरेजा नै, नै मेमा नै अर बाल बचा नै सारा नै मार नांषीया। ....पछै दूजे दिन पातसाहाजी कनै जाय तषत ऊपर बेठाण आण दुबाई दिली में फेर दिवी। और अंगरेजा री डाका थी सो सारी बंद कर दीवी। नै मात्र छांवणीया में समाचार दे दीया कै अंगरेज हींदू मुसलमान रो धरम भिष्ट करै है। सु मेरठ नै दिली में तो म्हे फिरंगीया नै मार नै वंदबसत कर नै पातस्या बाहादरस्याहजी नै तषत बैठाण नै उण री आण दुवाई फेर दीवी है। नै थानै धरम राषणो हुवै तो अंगरेजा नै मार सामान मेघजीन खजाना वगैरे रौ बंदोबस्त कर लीजो।'[3]

इसी प्रकार की अनेक रोचक जानकारियां इस ख्यात में उपलब्ध हैं। अनेक नवीन जानकारियां भी इसमें मिलती हैं। अतः भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के नाम से प्रसिद्ध 1857 की क्रांति के इतिहास लेखन में तखतसिंह री ख्यात का सदुपयोग वांछित व अपेक्षित है। यह अपने आप में एक नवीन स्रोत है जिसका उपयोग शोध विद्वानों द्वारा किया जाना अपेक्षित है। ख्यात में दिल्ली एवं मेरठ की घटनाओं के विस्तृत विवरण के अतिरिक्त अन्य स्थानों की घटनाओं का विवरण भी विस्तार से दिया गया है। लखनऊ पर क्रांतिकारियों के अधिकार तथा रेजीडेंसी में हुए अंग्रेजों के कत्लेआम की भरपूर जानकारी इस ख्यात में प्राप्त होती है।[4] इसी क्रम में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई व तांत्याटोपे के विद्रोह सम्बंधी घटनाओं का विवरण दिया गया है।[5] इसका विस्तार से विवरण इस प्रकार दिया गया है—'दूजा जेठ सुद 2 सुणी कै गवालेर में तांतीयो टोपीयो पेसवा रौ कांमेती नै झांसीवाली रांनी नै बांदा रौ नबाब और फौज हजार 10,000 आसरे आप अमल कर लियो नै गवालेर महाराज री फौज रो लोक कंटीजट थो सु बदल गयौ नै महाराज जीयाजी गवालेर मांय सु भाग आगरे परा गया, अंगरेजा कनै..... । जेठ सुद 15 सुणी कै गवालेर में अंगरेजां री फौज गई जिणां को बागी लोगा रै झगड़ौ हुवौ जिणमें अंगरेजां रा अफसर ही काम आया नै झांसी री राणी बागीया सामल थी सो मरदाना भेस सु घोड़े असवार होय भालो ले लड़ाई कर पांच सात आदमी मारीया पछै गोलो लागो तरै काम आई। दिन तीन झगड़ौ हुवौ पछै बागीयां रा पग छूट गया नै अंगरेजां रौ कबजो हुवौ, सु महाराज नै गवॉलेर सूंप दीयो नै लोक उठा सुं निकलीया सु अेक तुंगो तो नरवर री झाड़ी कानी गयौ नै अक तुंगो हाडौती कानी गयौ।'[6] इसी निरंतरता में नसीराबाद, नीमच, एरिणपुरा एवं डीसा की सैनिक छावनियों के सैनिक विद्रोह का वृत्तांत भी तख्तसिंघ री ख्यात में विस्तार से मिलता है।[7] रेवाड़ी के अहीर शासक तुलाराम के विद्रोह का विवरण काफी रोचक है। यह तथ्य अभी तक अधिक ज्ञातव्य नहीं है।[8] दिल्ली में क्रांति के दमन का विवरण भी विस्तार पूर्वक लिखा गया हैं।[9]

तखतसिंह री ख्यात में प्राप्त विवरण सूचनाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है किन्तु, 1857 की क्रांति के संदर्भ में विवरणों में पूर्वाग्रह दिखाई देते हैं, उदाहरणार्थ गोरों की स्थान-स्थान पर प्रशंसा की गयी है, जबकि क्रांतिकारियों को काला जैसे अपमानजनक शब्द से सम्बोधित किया गया है। अनेक स्थानों पर क्रांतिकारियों को बागी कहा गया हैं। अंग्रेजों की बहादुरी की तारीफ भी की गयी है। प्रबुद्ध इतिहासकार क्षीर-नीर विवेक द्वारा ही इस ख्यात का उपयोग इतिहास लेखन में कर सकते हैं।

यह एक स्थापित सत्य है कि राजस्थान के शासकों ने 1857 की क्रांति के दमन

में अंग्रेजों की भरपूर सहायता की थी। इन्हीं के समर्थन का परिणाम था, कि अंग्रेजी सत्ता भारत में बच पायी। तखतसिंह री ख्यात में राजस्थान के विभिन्न राजघरानों द्वारा क्रांति के दमनार्थ अंग्रेजों को दी गयी सहायता का विवरण विस्तारपूर्वक दिया गया है। तथ्यों की दृष्टि से तो यह विवरण उपयोगी है, किंतु इस विवरण में जोधपुर राजघरानों द्वारा अंग्रेजों को दी गयी सहायता को अत्यधिक बढ़ा चढ़ा कर बताया गया है।[10] इस प्रकार के विवरण में अनेक विसंगतियों का होना एक स्वाभाविक बात है।

राजस्थान में 1857 की क्रांति के समर्थन में अथवा इसकी शृंखला में दो विद्रोह प्रमुख हैं। पहला कोटा का तथा दूसरा आउवा का। दोनों ही विद्रोह स्थानीय शासकों तथा अंग्रेजों के खिलाफ थे। इन विद्रोहों का विवरण तखतसिंह री ख्यात में पर्याप्त मिलता है। इन दोनों विद्रोहों की जानकारी प्राप्त करने का यह ख्यात महत्वपूर्ण स्रोत है।[11] आउवा ठाकुर के विद्रोह से मारवाड़ में भारी भय एवं आतंक का वातावरण व्याप्त हो गया था। इस ख्यात में सर्वाधिक विवरण 1857 के पूरक आउवा विद्रोह का मिलता है। इस विवरण के अन्तर्गत दिन प्रतिदिन का समय सहित विवरण विस्तार से लिखा है। आउवा विद्रोह पर शोध कार्य में यह विवरण अत्यधिक उपयोगी होगा तथा इस विद्रोह को तखतसिंह री ख्यात के संदर्भ में देखा जाय तो नवीन तथ्य सामने आयेंगे। इसमें प्राप्त विवरण केवल 1857 की क्रांति तक ही सीमित नहीं है बल्कि आउवा ठाकुर की निर्वासित अवस्था, ठाकुर पर चले मुकदमे एवं ठाकुर की निर्वासित अवस्था में मृत्यु आदि का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है।[12]

कोटा के विद्रोह का विवरण संक्षिप्त किंतु तथ्यपूर्ण है। साथ ही कोटा विद्रोह का विवरण पूर्वाग्रहों से भरा हुआ है। इस विवरण में एक स्थान पर लिखा है कि 'फौज रो लोक परदेशी थो।'[13] यहां परदेसी से तात्पर्य विदेशी से नहीं बल्कि कोटा राज्य के बाहर से है। इसमें आगे लिखा है '..... लोक सारो बदल नै कोटा रौ अजंट बबरण सांहब नै उणरी मीम नै बेटा-बेटी नै मार नांषीया।.....नै डाकदर सालदर साहब ने मार लीयो नै महारावजी रौ अमल किला में रयो।'[14] यह तथ्य भी दोषपूर्ण है, क्योंकि अन्य समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि मरने वालो में एजेंट बर्टन, उसके दो पुत्र एवं डॉ. सैडलर थे। बर्टन की पत्नी उस समय कोटा में नहीं थी। कोटा विद्रोह के संदर्भ में जानकारी मिलती है कि कोटा के महाराव जब किले में कैद होकर रह गये थे एवं सारे शहर पर क्रांतिकारियों का 6 महिने तक अधिकार रहा। इसी दौरान क्रांतिकारियों एवं महाराव के मध्य एक समझौता एक दूसरे पर आक्रमण न करने के संदर्भ में हुआ था। इसका उल्लेख इस ख्यात में नहीं है। जबकि धोखे से करौली एवं अंग्रेजी सेना का चम्बल नदी की तरफ के पिछले दरवाजे से गढ़ में प्रवेश का

उल्लेख मिलता है।[15] इस सेना ने महाराव को मुक्त करवाकर शहर पर कब्जा करके क्रांति को विफल बना दिया। कोटा महाराव पर पोलीटिकल एजेंट बर्टन को मरवाने का आरोप लगा, जिस पर अंग्रेज अधिकारियों का कोर्ट बैठा तथा महाराव को इस आरोप से बरी कर दिया आदि का विवरण इस ख्यात में अवश्य मिलता हैं।[16] किंतु गिरफ्तार क्रांतिकारियों के साथ क्या बर्ताव किया गया, इसका उल्लेख ख्यात में नहीं हुआ है। संभवत: इस तथ्य की छुपाने को प्रयास किया गया है। आश्चर्य की बात यह है कि राजस्थान के बाहर के क्षेत्रों की जानकारी पूर्ण है, जबकि पडौसी स्थान कोटा की जानकारी अपूर्ण है।[17] असलियत तो यह है कि बन्दी बनाये गये कान्तिकारियों के साथ बड़ा ही अमानवीय व्यवहार हुआ था तथा उनको क्रूर एवं बर्वरतापूर्ण तरीके से मारा गया।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि तखतसिंह री ख्यात केवल आधुनिक राजस्थानका ही नहीं बल्कि आधुनिक भारत के इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके प्रकाशन से यह संभव हो पाया है कि अधिकाधिक इतिहास लेखक इसका उपयोग विविध रूपों में कर सकेंगे। यह ख्यात कोई स्वतंत्र लेखन अथवा साहित्य न होकर तत्कालीन मारवाड़ राज्य की सरकार के संरक्षण में लिखा गया घटनाओं का विवरण है जिसमें अनेक विसंगतियां व्याप्त हैं, जो ख्यात साहित्य का एक दोष है।

जहाँ तक इस ख्यात में 1857 की क्रांति के विवरण का प्रश्न है, वह इसमें पर्याप्त मात्रा में विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। किन्तु इसमें उपलब्ध सूचनाओं को यथावत् मान लेना पाठक का दोष होगा। अत: तार्किक बुद्धि से ही इन तथ्यों का दोहन व शोधन संभव है। 1857 की क्रांति का इतिहास लेखन में तखतसिंह री ख्यात एक अतिरिक्त अपने स्वरूप का अलग ही स्रोत है जिसका भरपूर उपयोग करना इतिहास लेखकों द्वारा अपेक्षित है।

इतिहास विभाग,
कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राज.) 324010

संदर्भ संख्या—

1. "महाराजा तखतसिंह री ख्यात" का प्रकाशन सन् 1993 में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा ग्रन्थांक 176 के अन्तर्गत किया है। यह आलेख इसी प्रकाशित प्रति पर आधारित है।
2. तखतसिंह री ख्यात, सं. नारायण सिंह भाटी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1993, पृ. 230
3. वही, पृ. 230
4. वही, पृ. 232, 240
5. वही, पृ. 265.
6. वही, पृ. 265
7. वही, पृ. 235, 250, 260
8. वही, पृ. 250-51 लिखा है वद 5 षबर सुण कै सैर रेवाड़ी में कदीमी अहीरां रो राज थो सो संमत 1860 पछै अंगरेजां रो हुय गयौ नै हमार इण गदर में अहीर तुलाराम रेवाडी सैर रो वारस थो सो आपरो राज वार लीयो। नै रेवाड़ी में सिषां रो मठ कदीम सुं थो जिण री मरनाद तोलाराम पाड़ नाषी नै नासती इणां सुं करी सो सिषां दिली में अन्य दरषासत कर फोज गोरां तथा सिषां री हजार सात ले गया सो तोलाराम नास नै सेषावाटी में परो गयौ। इलाषे जुंझणु रो गांव बलसीसर रा ठाकुर सुं भाईचारो थो सु उठै मास 1 छांने रयौ नै पछै उठा सुं नीसर सायबजादा पिरोज सा सांमल हुवौ। सैर रेवाड़ी गोरां नै सिषा लूट लीवी नै सिषां री फोज रो थांणो बैस गयौ।
9. तखतसिंह री ख्यात पृ. 245 लिखा है—"सुद 5 दिली में लाहोरी दरवाजै पाड़ी ऊपर तो अंगरेजी लोक थो ने जंबू सुं फोज हजार 5000 पांच लड़ायतो लोग आयौ ने हजार 4000 च्यार अंगरेजी लोग पंजाब में थो ने बाकी पाडी माथलो सांमल हुय झगड़ो कीयो सु तोपां री लड़ाई हुती थी नै दिली री कोट सरपना री सफील पाड़ भिड़ गया। सो तरवारां री लड़ाई सुं आदमी दुतरफा 2500 पचीस सौ कांम आया नै कालां रा पग छूट गया सो नास नै लालकोट में बड़ गया। सैर में सारो कबजो अंगरेजां रो हुय गयौ नै दिन 3 तीन तोपां री लड़ाई में गोला हजार 50 पचास बूवा।"
10. तखत सिंह री ख्यात, पृ. 234-236
11. वही, पृ. 241-49, 254, 257, 258, 261, 262, 264, 265, 282-84
12. वही, पृ. 304, 320, 323, 419
13. वही, पृ. 249

14. वही,
15. वही, पृ. 249, 261
16. वही, पृ. 262
17. राजस्थान से बाहर के क्षेत्र का विवरण पृ. 251 पर द्रष्टव्य है, जो इस प्रकार है—"और षबर आये कै जरझर रो नबाब पातसाहाजी सुं दिली में सटपट राषी सो लिषावट रा कागद हाथ आय गया सो फोज मेल नबाब नै पकड़ाय मंगायौ सु दिली में लालकोट रै बारणै फांसी दे दीवी।"

जोधपुर राजवंश के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दस्तावेज 'दारोगा दस्तरी बहियां'

महेन्द्रसिंह नगर

'दारोगा' एक पद था, जैसा दारोगा कोतवाली, दारोगा जनाना ड्योढ़ी, दारोगा रसोड़ा, इसी प्रकार दस्तरी महकमें में दिन प्रतिदिन राज परिवार में आयोजित समारोह, जन्मोत्सव, तीज/त्यौहार, सीख सिरोपाव, मरण-परण, लाख पसाव, पद, आने व जाने पर की जाने वाली पारम्परिक तैयारी एंवं रीतियां, राजसी खेल तमाशों, पहनावा, लोक व्यवहार, इत्यादि का विस्तार से वर्णन इन दस्तरी बहियों में मिलता है।

शोधार्थियों के लिए ये बहियां प्राथमिक सामग्री उपलब्ध कराने में पूर्णतया समर्थ हैं। इस श्रेणी में जोधपुर राजवंश से सम्बन्धित अन्य बहियां भी महत्वपूर्ण हैं; जैसे- हकीकत री बही, हकीकत री खाता बही, सनद परवाना बही, जवाहर खाना री बही, जनाना ड्योढ़ी री बही, ढ़ोलियों के क़ोठार री बही एवं उस शृंखला में 'दारोगा दस्तरी बही' एक अहम् एवं महत्वपूर्ण प्रामाणिक दस्तावेज है जिसे प्रामाणिकता की श्रेणी तक पहुंचने के लिए कुछ सोपान पार करने होंगे।

प्रथम - बही का लेखक जैसा देखता है, वैसी जानकारी मारवाड़ी बोलचाल की में लिखता रहता था और आवश्यकता होने पर सम्बन्धित व्यक्ति जो घटना विशेष के आयोजन में सक्रिय हो, से अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करके बाद में भी दर्ज करता था।

द्वितीय - लेखक द्वारा लिखित जानकारी को 'दारोगा' एक-एक अक्षर पढ़ता है और कहीं भी यदि नियम विरुद्ध कोई त्रुटि हो तो उसे सुधारता था। दारोगा सात दिन की विगत महाराजा के सचिव को मय हस्ताक्षर के प्रेषित करता था।

तृतीय - महाराजा के सचिव भी उस विगत की प्रामाणिकता को जांचते थे और उनके हस्ताक्षर होने के पश्चात् यह विवरण मुख्य दस्तरी बही में दर्ज होता था और महक़मे में सुरक्षित रखा जाता था।

दारोगा दस्तरी लिखने का रिवाज संभवतः महाराजा जसवन्तसिंहजी द्वितीय

(1873-1895) के समय से शुरू हुआ माना जाता है। जोधपुर राजघराने का सारा दस्तरी महकमे का रिकार्ड नाबालगी के समय संभवतः जब रियासत का विलय भारत गणतंत्र में हो गया तब यह महत्वपूर्ण सामग्री बीकानेर आर्काइव्ज में स्थनान्तरित कर दी गई। सन् 1950 के पश्चात् जोधपुर दस्तरी बही लिखने का रिवाज खत्म सा हो गया और अंग्रेजी दफ्तरों के तौर-तरीके, फाइलें रखने का रिवाज प्रारम्भ हो चुका था।

जोधपुर के हाऊस होल्ड की फाइलों में सन् 1960 तक रामलाल क्लर्क के हस्त लिखित रूक्के फाइलों में उपलब्ध हैं जिसमें उन्होंने दफ्तरी बही देख कर प्रश्नों के जवाब लिखे और उसी के अनुसार कार्यवाही हुई। राजपरिवार ने रामलाल दफ्तरी की बही के अनुसार जवाब को प्रामाणिक माना और आदेश उसी के अनुसार पालना करने को दिये।

इस महकमे में तमाम सरकारी कागजात, फरमान जो राजा या दीवान राज की तरफ से लिखते थे, वे इसी दफ्तरी से लिखे जाते थे। तमाम खलीते जो अन्य रियासतों के राजा महाराजाओं एवं रइसों से आते थे, वे भी दफ्तर दस्तरी में रखे जाते थे और उनके प्रत्युत्तर भी रीति एवं रिवाज से 'ओपमा के साथ' लिखे जाते थे।

राज दरबार में दिवाली, जन्मोत्सवों, आखातीज, दशहरा, जागीरदारों को ताजीम, कुरब-कायदे, मातम पुरसी, लवाजमा, नजर-निच्छरावल, राजवंश के सदस्यों की राजकीय यात्राएं, राजधानी में किये जाने वाले दस्तूर, रिवाज, कायदे, महाराजा द्वारा प्रदत्त ओहदे, खिताब, ताजीम, सोना, खिलअत, पदवी सासण, जागीर, एवं उस समय प्रचलित खेल-तमाशे, इत्यादि का विस्तार से आंखों देखा प्रामाणिक एक-एक घटना का निरन्तरता के साथ प्रामाणिक वर्णन लिखा जाता था।

इसके अलावा धार्मिक क्रिया कलाप, कलश-पूजन, हांचल दस्तूर, तालो खोलणरो दस्तूर, राखड़ी दस्तूर, झडूला दस्तूर, यश, पूर्ण आहुति, श्राद्ध, मरण-परण, पानीवाड़ा इत्यादि के सम्बन्ध में सामग्री के नामों के साथ विवरण दर्ज होता था।

इन बहियों में राज व्यास, राजपुरोहित, दानाध्यक्ष, जोशी वेदिया, बडारण खालसा की डावड़िया, घुड़लावालिया, गंविया, गीतेरणिया, जनानी ड्योढ़ी के कामेती, कामदार, नाजर, पुजारी, अंगोलिया, डालीवालिया, तवायफों, भगतण, मीर, ढोलकिया इत्यादि के सम्बन्ध में जानकारी इनमें मिलती है।

दस्तरी में मारवाड़ी का उपयोग—दारोगा दस्तरी बहियों को हमेशा से ठेठ मारवाड़ी की बोलचाल की भाषा में लिखा जाता था। मारवाड़ी भाषा का प्रारम्भ से विकास का इतिहास इन बहियों में दृष्टि गोचर होता है। कुछ शब्द जो मारवाड़ी भाषा के इन बहियों में प्रयुक्त हुए है वे आज आम बोलचाल से लुप्त हो गये हैं। जैसे समोरथो, नीमासामरा, अंगोलियों, बोछरड़ो, रसाल, दमेक, ठावको, ठावो, भलो आदमी, पिंडा, उछब, किहुंक, फ़ाग, धोळा, गलजोड़ो खांडो, नेतरो, तासली, उसका, आसका, डेलाण, ओरो, मेडी, मालियो, बोड़ियो, दुणीया, पटायत, आडो, बारी, परबारा, तावफो, बतलावण, सीख, कनबिन्दण, रानो (रिस्ता) बन्दोला, पेरावणो, खारभंजणा, तरे, हथणी, भोमवार, करड़-मरड़, बेराजी, सिलका, इत्यादि शब्दों की भरमार है।

दारोगा दस्तरी बहियों में उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का मारवाड़ीकरण भी कम रोचक नहीं है। इन बहियों के लिखने में भाषा की शुद्धता का ध्यान हीं रखा जाता था। लेखक जैसा उच्चारण करता था, उसी प्रकार लिखता था। उर्दू के शब्दों में मुख्यतः पेसवाई, मातमपुरसी, हजूरी में, मेहजबी, सुसबखती री बातां, सब्ब, किफायत इनायत, दुसमणारी तबीयत नासाज का प्रयोग खूब हुआँ।

अंग्रेजी के शब्दों को मारवाड़ी में स्वीकार करके उनका प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर किया गया और दारोगा ने उन शब्दों को स्वीकार किया। जैसेः- रीस्टवाच, मेचबगस, अचेवस्टरा (आर्केस्ट्रा) लेमनेट, मीम (मेम), लेंच, फीरम्ये (फ्रेम-सहित) सीलेवर, मीमजम (म्युजियम), असटरे, अगजिबिशन, एटहोम, डीवटी, परसजन्ट, लाट इत्यादि।

दस्तरी के नियमः- दस्तरी बही के विवरण में ओहदों, पदवियों इत्यादि के लिखने के विशेष नियमों का उल्लेख मिलता है। जैसे किसी रानी को 'महारानी' किसी पंडित को 'पंडित' नहीं लिखा जाता था। किसी ठाकुर के नाम के आगे ठाकुर के स्थान पर 'पटायत' लिखा जाता था। उदाहरण के लिए ठाकुर पोकरण के स्थान पर 'पोकरण रो पटायत' लिखा जाता था। जब तक राज द्वारा मंजूर न हो किसी मुत्सदी और खवास-पासवान के नाम के आगे 'सिंह' शब्द नहीं लिखा जा सकता था। महाजन के नाम के आगे 'मल' और कायस्थ नाम के आगे 'लाल' लिखा जा सकता था। राजपूत हो और उसे कोई कुरब, ताजीम जागीर नहीं मिली हो तो उसके नाम के आगे 'करण' लिखा जाता था। जैसे बगतावरसिंह के स्थान पर 'बगतावर करण' लिखा जाता था। जैसे 'मेहता विजयसिंह यदि कोई हो तो दस्तरी में उसका नाम 'विजयमल' लिखा जायेगा। इनके अलावा बड़े-बड़े मुत्सदियों के नामों के आगे 'श्री' या अन्त में 'जी' नहीं लगाया जा सकता। 'श्री' सिर्फ महाराजा, महारानी, महाराजकुमार, एवं युवराज के नाम से पहले

लिखा जाता था। अगर क्लर्क गलती से ही किसी नाम के आगे 'श्री' लिख दिया करता तो 'दारोगा दस्तरी' उसे काट देता था। कोई भी सम्मान सूचक शब्द जैसे 'पधारे' का उपयोग पटायतों एवं मुत्सदियों के लिए नहीं होता था।

उदाहरणः- 'भादराजण रो पटायत राजा देवीसिंघ इग्यारा बजीयां रा पछे छीतर रे बंगले श्री हजुर में हाजर हुआ।' यहां 'हाजर हुआ' शब्द लिखा गया न कि 'पधारे'।

उदाहरणः- श्री जी साहबा री सवारी ने श्री महाराणी सायबा री सवारी रो पधारणो सुद 9 ने महाराज प्रेमसिंह जी रे बंगले जणारे भाइ सजनसिंघ रे ब्याव रे मोके हुवो थो सो उठे इण मुजब दीराया था-

कलस में	41
पूजा कलस	5
गीतेरणीया ने	2
सज्जनसिंह रे हाथ में	101
हाचल दस्तूर	51

नछरावल कराया महाराणी सा 5) ने श्री बाईजी लाल सायबा 9) उपरोक्त विवरण से विवाह सम्बन्धी रस्मों व दस्तूरों की जानकारी होती है।

उदाहरणः- महाराजा उम्मेदसिंह जी के देवलोक होने पर जो क्रिया कलाप हुए उसका विवरण इस प्रकार दर्ज है- 'श्री बड़ा महाराज साहब संपाड़ो करेन वस्तर.....कपड़ा पेरीया नारेळ हाथ लगाय दस्तूर कीवी......पीड दियो धरमडाड दीदी..... पेटी हमके श्री बड़े ने छोटा महाराजकुमार ने माराजावा मायलासीरदारा हीज उंचाई.......सायजादा री हवेली कने हुय.......पीपल है जठे बीचलो वासो करायो...... ।'

'दारोगा दस्तरी बही' में पाटवी 'महाराज' के नाम के आगे 'श्री' लिखा जाता था परन्तु उनके छोटे भाई के नाम के पीछे 'जी' लिखा जाता था एवं 'श्री' नहीं प्रयुक्त होता था। 'महाराज' के पुत्रों के लिए बही में कुंवर लिखा जाता था।

उदाहरणः- 'रावटी महाराज श्री अमरसिंह जी रे कंवर गुमानसिंघ रो ब्याव है सो वाने आज पाट बैठाणिया था सो श्रीजीसाहबां री सवारी पधारणो होयो...'

उपरोक्त उदाहरण 'दारोगा दस्तरी' पुस्तक से लिये गये हैं।

दारोगा दस्तरी बही में महाराज, पटायतों, रावराजाओं के जनानों के लिए कहीं पर भी पदवियों का लिखा जाना नहीं मिलता है बल्कि उसे उनके खांप से सम्बोधन मिलता है, जैसे जाडेचीजी, सोढीजी, या भटीयानी जी। कहीं पर 'रानी' या पटायत के जनाना के लिए ठकुरानी नहीं लिखा गया है।

'दारोगा दस्तरी बहियां' तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक जीवन एवं गतिविधियों पर प्रमाणिक प्रकाश डालती हैं। इनके अध्ययन के बिना मारवाड़ के सांस्कृतिक शोध को सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता है। ये अप्रकाशित दस्तावेज हैं। ये वास्तविक सच्चाई से साक्षात्कार कराने वाले हैं। कोई भी विद्वान् यह न समझे कि यह बहियां सिर्फ राजपरिवार के सदस्यों की गतिविधियों का लेखा जोखा ही है बल्कि राज परिवार उस समय सत्ता का केन्द्र होता था, इसलिये। प्रत्येक तबके, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, व्यवसाय के लोगों का जुड़ाव उनसे रहता था प्रत्येक विवरण में कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ इन बहियों से उपलब्ध होती हैं।

इसके विस्तार के विवरण में नौकर-चाकर, खवास, साईकिल सवार, क्लर्क, मोरछल बरदार, छड़ी बरदार, रंगरेज, नगारची, ढोली, तम्बोली, कुम्हार, ठठेरा, तोपची, पंचोली, गवैया, मीर, नट, बहुरूपिये, नाजर, डाकोत, देसान्तरी, इत्यादि का भी यथासंभव प्रसंगवश उल्लेख मिलता है।

उस समय के भाव, तोल, जोख, कीमत, मुद्रा, सिक्को, गिन्नियों के सम्बन्ध में भी जानकारी हमे उपलब्ध होती है।

इन बहियों में राजकीय शिष्टाचार व परम्पराओं में समय-समय पर जो परिवर्तन, बदलाव आते उनका क्रमबद्ध लेखा जोखा देखा जा सकता है। राज दरबार में महाराजा के कुटम्बियों-सिरायतों के बैठने की व्यवस्था, नजर-निछरावल में प्राथमिकता, शासकों के आने पर स्वागत एवं विदाई की परम्पराए, तोपों की सलामी की संख्या में घटत बढ़त, राज शोक पर निभाई जाने वाली रस्में, इत्यादि का विस्तृत विवरण वास्तविकता के साथ इन बहियों में दर्ज है।

इसके अलावा जब समय बदला, राजतंत्र जब अपने अन्तिम पड़ाव पर पहुंच गया और नये जमाने के उत्सव जैसे - बैंक उद्‌घाटन पर ताला खोलना, जुबली समारोह,

रजत जयंती समारोह, सिनेमा की नींव रखने का आयोजन, तोप का नजराना, इत्यादि आधुनिक समारोह का अंकन भी इन बहियों में मिलता है। मुख्य रूप से पुखाराम, रिखबदास, कायस्थ कन्यालाल, माहेश्वरी माधोलाल एवं अन्त में सन् 1950 तक रामलाल क्लर्क इन बहियों के लेखक रहे तथा अन्तिम' दारोगा' श्री पासगणशाह रहे थे।

धार्मिक उत्सवों का भी बड़ा रोचक वर्णन 'दारोगा दस्तरी बहियों' में मिलता है, मानो वह समारोह आँखों के सामने हो रहा हैं।

उदाहरणः- विजय दशमी को उछब आज वासा ठाकुरजी श्रीरामचन्द्र जी री सवारी मुरलीमनोहर जी रे मंदर मांयसू छीत्र (चित्र) नीचे दौलतखाना रा चौक में जाजम चाननी री बिछायत उपर बाजोटां रथो तिण में छितर पदरायो छत्र व्यास देवराज रो बेटो राजनारायण मुरती किरणी पावा तो नेछावर करता ने गवइया हाजर.......सवारी धूमधाम रे साथे गढ़ ऊपर सूं चार बजियां गई सोताजी री पोल-सूरज पोल- लोहा पोल......श्री रामचन्द्र जी री सवारी साथ लवाजमो नगारो, निसाण, पलटण, पुलिस री पलटण, बाजो पुलिस रो ने बेंडबाजो कोतल घोड़ा 8, सोना री सांगत 4 ने रूपा री सांगत 4, हाथी, डोडी रा लोग, सोना री छड़ी वाला, सोना रो गोटा वाला, सोना री चपड़ास वालो, चांदी री छड़ीयों वाला, पानरियां कोटवाली सूं छड़ी 'रण सिगो खांडा वालो.....' इस विवरण से विस्तार से लवाजमें के श्रम का पता चलता है।

इस बही के लेखक पर यह पाबन्दी होती थी कि वह जो देखे वह तो अवश्य लिखे परन्तु बातचीत क्या हुई ? उसका ब्यौरा वह नहीं लिख सकता था।

दस्तरी बहियों में निहित सूचनाएं एक और विभिन्न ऐतिहासिक पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं, वहां दूसरी ओर सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर भी प्रकाश डालती हैं। परम्पराओं पर आधारित होने के कारण काल इसे परिवर्तित करने में समर्थ नहीं हो सका। धार्मिक उत्सव, त्यौहार आज भी प्राचीनता के लिए हुए है अत: इन बहियों में वर्णित सूचनाएं एवं विवरण सभी शासकों के काल के रीति रिवाजों का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है।

इन बहियों के महत्व को आज समझना होगा और शोध में इनकी भूमिका को रेखांकित करने की आवश्यकता है। दस्तरी महकमें की बहियों पर यद्यपि ज्यादा शोध नहीं हुआ हैं परन्तु एक बही का सम्पादन मैंने किया है जो शायद प्रथम प्रयास है। मैं इन बहियों को जानकारी का समुद्र मानता हूं क्योंकि ये शोध में नया प्रकाश देने में सक्षम हैं। यह भी अप्रकाशित सामग्री है।

विद्वानों को सूचित करना चाहता हूं कि जोधपुर में श्री पारसमलजी खींवसरा ने दस्तरी लिखने की परम्परा को निरन्तरता से कायम रखा है और उन्होंने व्यक्तिगत दायरे में देश में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं, राजनैतिक परिवर्तन का विवरण अति विस्तार से दर्ज किया है। इसके अलावा जोधपुर में घटित घटनाओं, राजपरिवार से संबंधित छोटी-बडी घटनाओं, जन्मोत्सवों, विवाह, मृत्यु, ताजिम, जागीर, इत्यादि का आश्चर्यजनक विवरण मैने हाल ही में देखा है।

श्री पारसमलजी खींवसराजी ने जो कार्य किया है वह एक महत्वपूर्ण अनोखा एवं सराहनीय प्रयास है। इन्होंने जीवन का अमूल्य समय इतिहास की घटनाओं को भविष्य की पीढियों के लिए सहेजने में लगा रखा है। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि श्री खींवसराजी ने मारवाड़ रियासत की अप्रत्यक्ष रूप से सेवा की है और सिलसिलेवार घटनाओं का लेखन करके महत्वपूर्ण कार्य किया है।

उपनिदेशक
मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट,
जोधपुर

सन्दर्भ संख्या—

1. 'दारोगा दस्तरी बही' जो (17 जुलाई 1944 से 24 जुलाई 1946) सम्पादित की गई है, जिसका विमोचन 10 जनवरी 1997 को जोधपुर नरेश ने किया।
2. मारवाड़ कानून नियम सन् 1883-84 महाराजा जसवन्तसिंहजी, सर प्रताप सिंहजी पृष्ठ संख्या 737, पाठ पैंतीसवा, दफ्तर दस्तरी : अध्याय, जिसमें दफा 418, 419, 420, 421.

नागोर किलारी विगत

रामनिवास शर्मा

विगत के इस अभिलेख से दो तात्पर्य मिल जाते हैं। प्रत्यक्षतः इसमें इतिहास प्रसिद्ध नागौर के प्राचीन किले की संरचना का विवरण है, वहीं दूसरी ओर इस किले की आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व अतीत की स्थिति का चित्रांकन उपस्थित हो जाता है।

इस समय जब कि 'राजस्थान के ऐतिहासिक गद्य साहित्य' पर चर्चा की जा रही है तो इस अवसर पर इस अभिलेख की प्रस्तुति प्रासंगिक ही होगी।

पुस्तक के संपादक ने भूमिका में मुंहतानैणसी के संदर्भ से बताया है कि नागौर शहर को बसाने का श्रेय दायमा 'मतकेवास' का माना गया है। यह केवास दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान के प्रधान सामन्त बताये जाते हैं। यहीं पर यह भी बताया गया है कि संवत् (1111) में इस इतिहास प्रसिद्ध किले की नींव रखी गई। इससे प्रगट है कि यह किला 12वीं सदी में निर्मित हुआ। सदियों तक वक्त के थपेड़े और आक्रमण-कर्त्ताओं के आघातों को झेलते-झेलते लगभग 800 वर्षों के बाद तक इस किले की क्या दशा रही, यह इस विगत से प्रगट है। (एक अन्य मत से सन् 1119 ई. में मोह. बहलीम द्वारा इस किले के निर्माण का उल्लेख भी किया गया है)।

इस ग्रंथ (बही) के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में किले की संरचना का विवरण है जो संवत् 1904 में लिखा गया तथा दूसरे भाग में किले के परकोटे तथा तीसरे में (सहरपनाह) शहर के परकोटे का विवरण है, जो संवत् 1909 में लिखा गया। यद्यपि लेखक के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु लेखक ने तत्कालीन उस सुयोग्य शिल्पी नूरबक्स का नामोल्लेख यथास्थान किया है जिसने इस किले के कंगूरों सहित हर भाग का विवरण सही नाप के अनुसार लिखवाया। बही का लेखन संवत् 1904 में कार्त्तिक शुल्क चतुर्थी को करने का उल्लेख ग्रंथ के प्रारंभ में ही दिया गया है।

किले की संरचना, पोलों, बुरजों का नाप, उनके साथ बनी दलीचियाँ, उनकी बनावट,

कंगूरों की गिनती तथा उनकी तत्कालीन दशा का विवरण अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से दिया गया है, जिसे पढते समय एक चित्र सा सामने उपस्थित होने लगता है। उदाहरण के तौर पर प्रारंभ की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत की जा रही हैं। "पोल 1 सीरारी ऊंची, डाळारां बीचतांई लांबी गज 7, पकी चौड़ी गज 3 ।॥≡ कंवळा गज $1\frac{1}{2}$ आसार गज 6 ॥= दुगै पोल मैं दलेचीयां 2, एक चसमी, तिण उप्र दलेचियां फेर सरजन नै पोल उप्र रावटी चसमा 3 री गेह एक उप्र बुरजां 2'

पोल मैं पेसतां बाजु जीवणी बुरज नीकासु गज $2\frac{1}{4}$ चवड़ी गज 5, बुरजमें बारी 1 खुली,कांगरा 5 तो साबत ने आधा 2 जुमले 7, बुरज एक डावी नीकासु गज 2-1/4 चवड़ी गज 5, बुरजमें बारी 1 खुली, कांगरा 5 तो साबत ने आधा 2, जुमले 7, "

मुख्य पोल की बनावट का विवरण देकर अन्दर प्रवेश से पूर्व ही उसके बाहर की ओर की स्थिति का विवरण दिया है। पोल के बाहर की दलीचियाँ तथा किले के सामने के चांदनी चौक का वर्णन भी नाम सहित है। पोल के बाहर की तरफ ही बायीं ओर सात चश्मे की कचहरी का उल्लेख है तथा दाई ओर टकसाल, चबूतरे तथा टकसाल के साथ जुड़े त्रिपोलिये का उल्लेख है और त्रिपोलिये का नाम भी दिया गया है। त्रिपोलिया वर्तमान में है। इसके आधार पर अन्य इमारतों को चिह्नित किया जा सकता है।

इस प्रकार मुख्य पोल व उसके साथ लगी बाहरी इमारतों का विवरण देकर अन्दर दाईं बाईं ओर बनी इमारतों का क्रमशः विवरण दिया गया हैं।

अन्दर की ओर की इमारतों में प्रमुख तीन पोलों का विवरण है तथा नायकों की साल, पीर कवासंखां की दरगाह, घड़ियाल खाना, नगार खाना, मेहताजी का डेरा, बखतसिंह का महल, शिव बुर्ज, तबेला साल, बावड़ी, किलेदार का डेरा आदि 18 इमारतों का विवरण है।

ग्रंथ के दूसरे भाग में किले के परकोटे का विवरण है, तदनुसार कुल 30 बुरजे हैं जिनका पूरा नाप कंगूरों की संख्या सहित दिया है। इन बुरजों के साथ बनी मंडी व बावड़ी (वापिका) का भी उल्लेख किया है। पुस्तिका के साथ संलग्न किये नक्शे के अनुसार किले की बनावट अण्डाकार है। पीछे की ओर एक बंद पोल बताई गई है जो अभी भी बंद है। पीछे की ओर ही शिव, देवी तथा भैरूं के मंदिर बने हैं।

ग्रंथ के तीसरे भाग में शहरपनाह अर्थात् नगर के परकोटे का विवरण दिया है। इसके अनुसार शहर के कुल 6 दरवाजों का उल्लेख है। शिल्पी नूरबक्स ने इन दरवाजों का पूरा नाप तथा इनके साथ बनी दलीचियोंका विवरण लिखवाया है। शिल्पी नूरबक्स, वास्तुशिल्प के बारे में कितना ज्ञान रखता था यह इस विवरण से स्वतः ही प्रगट है।

दरवाजों का विवरण लिखवाते समय नूरबक्स ने शहर के मुख्य मुख्य स्थानों के नाम यथा, जटिया कुम्हारों की बस्ती, कांणिया कूआं, कूआं मैदान, मसीत का कोठार, गुजरातियों की पोल, तारकीन की दरगाह खतरी-पुरा, ठाकुरों की हवेलियों, मुख्य तालाबों आदि का विवरण लिखवाकर नागौर शहर की 150 वर्ष पूर्व की बसावट का चित्रांकन भी करवा दिया था।

भारत वर्ष में जहां पर और जितने किले हैं उनमें से इस प्रकार का विवरण अब तक केवल यही उपलब्ध हुआ है। राजस्थान के किलों पर लिखने वाले विद्वानों को शायद यह विवरण उपलब्ध नहीं हुआ हो। पर ऐसे विवरणों को ढूंढ कर उनके आधार पर किया जाने वाला अध्ययन वास्तुकला के क्षेत्र में विशेषतः किलों की बनावट की प्रक्रिया और उसके विकास के इतिहास, का सुहास होगा।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ख्यात ठिकांणा झींथड़ा

डॉ. भगवतीलाल शर्मा

मारवाड़ के सुव्यवस्थित इतिहास-लेखन के उद्देश्य से 20 जनवरी, 1880 को 'महकमा तवारीख' या 'इतिहास कार्यालय' की राजकीय व्यवस्था यहाँ प्रारंभ हुई। तत्कालीन प्रकाण्ड इतिहासविद् पं. रामकर्ण आसोपा के सुयोग्य निर्देशन में यह वृहद् कार्य प्रारंभ हुआ। इस हेतु मारवाड़ के प्रत्येक गाँव के ठिकानेदार को अपने ठिकाने की ख्यात प्रेषित करने का राजकीय आदेश प्रसारित हुआ।

इसी की अनुपालना में रामानन्द सम्प्रदाय के साँसण गाँव झींथड़ा, तत्कालीन परगना सोझत की यह ख्यात तैयार हुई और 'महकमा तवारीख' को प्रस्तुत की गई। तत्समय के महंत श्री भागवतदासजी के शिष्य नरसिंहदास ने सम्प्रदाय के ग्रंथों तथा ठिकाने में उपलब्ध प्राचीन कागजों से, बोड़ा आसकरण के सहयोग से इसे तैयार किया। इस ख्यात के पत्र सं. 117 हैं, लिपिकाल संवत् 1954, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा है और यह खड़ी बोली प्रधान ब्रज-मारवाड़ी का मिश्रण लिये हुए है। सुवाच्य लिपि में लिखित यह ख्यात यहाँ प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर संग्रह में प्राप्त है, जिसका ग्रंथ क्रमांक 15643 है।[1] ख्यात के प्रारंभ से पूर्व इसे 'मूल प्रति' लिखा गया है और फिर कर्त्ता का नाम है। यह सूचना अन्य हस्तलेख में है।

ख्यातकर्त्ता श्रीनरसिंहदास ने इस ख्यात को विभिन्न शीर्षकों में विभाजित कर लिखा है, जो इस प्रकार है—

1. जुगराफिया : प 1-2 इसमें झींथड़ा की स्थिति, जोधपुर तथा सोझत से दूरी, गाँव के घरों की संख्या, नदी, गांव के 'गोमती तालाब', फसलें और अन्य गांवों से लगने वाली सीमा-सूचना हैं।

2. अथ गाँव झींलड़ा वश कर स्थापित हुवा उसका वरणन: प. 3-4 : इसमें जालोर के शासक कान्हड़दे के शूरवीर पुत्र वीमदे तथा पंजू पहलवान की अलाउद्दीन के समक्ष कुश्ती का वर्णन है। वीरमदे की विजय पर बादशाह की पुत्री का उसके प्रति प्रेम-प्रदर्शन, वीरमदे का बहाना बनाकर वहाँ से जालोर-प्रस्थान, राणगदे को एवज में

रखने का बादशाह का प्रयास, राणगदे का बादशाह के कोतवाल का वध, अपने घोड़े, झींपा या झींथा पर बैठकर दिल्ली से राणगदे का निकलना, इस घोड़े का वर्तमान झीथड़ा गाँव के स्थान पर आकर मरना और उसी के नाम पर गाँव का नामकरण होना इसमें वर्णित है।

3. ख्यात ठीकांणा झींथड़ा, परगने सोझत, सम्प्रदाय रामानन्द श्री रामचन्द्राय नमः श्री जानरायाय नमः श्रीमतेरामानुजाय नमः श्रीमते रामानंदाय नमः अल गादी श्री स्वामी कूबाजी महाराज, हमार गादीनसीन महन्तजी श्री स्वामी भागवतदासजी महाराज। यहाँ चार नमस्कारात्मक श्लोक कूबाजी और भागवतदासजी के हैं।

4. भगवत् भक्ति की महिमा

5. आगे लेखक का शीर्षक है- जो भगवत् भक्त हैं उनको दंडवत् प्रणाम करके जो ठिकांणे झींथड़ा में भगवत् भक्त महन्त और पूर्वाचार्य हुवे उनकी ख्यात का बुद्धिमाफक प्रारंभ करता हूँ। यहाँ लेखक ने बताया है कि श्रीमन्नारायण ने सर्वप्रथम लक्ष्मी को राम तारक मंत्र सुनाया और फिर लक्ष्मी ने विश्वसेन को। यह मंत्र आगे से आगे रामानुज स्वामी तक पहुँचा। यहाँ कुर्सीनामा दिया गया है-

i. श्रीमन्नारायण

ii. श्री लक्ष्मीजी

iii. श्री विश्वसेनजी

iv. श्री शठकोप मुनि

v. श्रीनाथ मुनि

vi. श्री पुण्डरीकाक्ष मुनि

vii. श्री राममिश्राचार्य

viii. श्री यामुनाचार्य

ix. श्री पूर्णाचार्य

x. श्री रामानुज स्वामी

6. रामानुज स्वामी का वर्णन—जिन्होंने कलियुग में चार अवतार धारण कर चार सम्प्रदाय चलाये—

i. श्री संप्रदाय—प्रचारक रामानुज स्वयं

ii. शिव सम्प्रदाय—प्रचारक विष्णु स्वामी

iii. बह्म सम्प्रदाय—प्रचारक माधवाचार्य स्वामी

vi. निम्बार्क सम्प्रदाय—प्रचारक निम्बार्क स्वामी

7.रामानुज स्वामी से परम्परा—इस श्री सम्प्रदाय के प्रचारार्थ रामानुज स्वामी ने और उनके बाद अन्य आचार्यों ने प्रचार किया। यहाँ भी लेखक ने कुर्सीनामा दिया है—

i. श्री रामानुजाचार्य

ii. कुरेश स्वामी

iii. पराशर स्वामी

iv. लोकाचार्य

v. देवाधिपाचार्य vi. शैलेश स्वामी

vii. वरवर मुनि

viii. पुरुषोत्तमाचार्य

ix. गंगाधराचार्य

x. सदाचार्य

xi. रामेश्वराचार्य

xii. द्वारानंद स्वामी

xiii. देवानंद स्वामी

xiv. श्यामानंद स्वामी

xv. श्रुतानंद स्वामी

xvi. नित्यानंद स्वामी

xvii. पूर्णानंद स्वामी

xviii. श्रीयानंद स्वामी

xix. हरियानंद स्वामी

xx. रामानंद स्वामी

8. रामानंद स्वामी का वर्णन—अगस्त्य संहिता से

9. रामानंद जी के द्वादश शिष्य हुवे उनका वर्णन—

i. ब्रह्माजी का अवतार - अनंतानंद

ii. नारदजी का अवतार - सुरसुरानंद

iii. शिवजी का अवतार - सुखानंद

iv. सनत्कुमार जी का अवतार - नरहरियानंद

v. मनुजी का अवतार - पीपा

vi. प्रह्लाद जी का अवतार - कबीर

vii. जनकजी का अवतार - भावानंद

viii. भीष्मजी का अवतार - युक्तसेन

ix. कपिलदेवजी का अवतार - योगानंद

x. वलिराजाजी का अवतार - धना

xi. सुखदेवजी का अवतार - गालवानंद

xii. यमराजजी का अवतार - रमादास

xiii. लक्ष्मीजी का अवतार - पद्मावती

(10) रामानंद संप्रदाय की रीति और मर्यादा का वर्णन—श्री रघुनाथजी की उपासना

ऊर्ध्व पुंड्रतिलक

जाति भेद में अविश्वास

(11) रामानन्द स्वामी का दिग्विजय और वैभव का वर्णन

(12) सुरसुरानंद स्वामी का वर्णन—ये पुष्कर आये और गरीबानंद को मंत्रोपदेश देकर मारवाड़ की ओर इस सम्प्रदाय का विस्तार करने को कहा।

यहाँ स्वामी कूबाजी तक का कुर्सीनामा दिया गया है।

i. श्री स्वामी रामानंद

ii. श्री स्वामी सुरसुरानंद

iii. श्री स्वामी माधवानंद

iv. श्री स्वामी गरीबानंद

v. श्री स्वामी लक्ष्मीदासजी

vi. श्री स्वामी गोपालदासजी

vii. श्री स्वामी नरहरिदासजी

viii. श्री स्वामी कूबाजी

(13) श्री स्वामी कूबाजी का वर्णन—इसके आगे उपशीर्षक हैं-

i श्री स्वामी केवल कूबाजी की जन्मभूमि और मोह वैराग्य का वर्णन

ii श्री स्वामी कूबाजी की भक्ति और चमत्कार तथा परचों का वर्णन

iii श्री कूबाजी महाराज झींथड़ा में आकर स्थान बांधा, उसका वर्णन

iv श्री वृदांवन से श्रीकृष्ण महारांज पधारकर झींथडा में विराजमान हुए, उनका वर्णन हैदराबाद के गोविंददेव भक्त को वृंदावन जाकर मूर्त्तियों लाने हेतु स्वप्नादेश।

(14) कूबाजी महाराज के चाँपावत आईदांनसिंघजी शिष्य होकर अपना गुरुद्वारा मुकरिर झींथडा में किया, के वर्णन।

(15) कूबाजी महाराज समाधि के साथ अपने शरीर कु त्याग करके भगवत धांम कूं प्राप्त हुवे उसका वर्णन।

(16) स्वामी कूबाजी से स्वामी भागवतदासजी (वर्त्तमान) तक का कुर्सीनामा.

i. स्वामी कूबाजी

ii. स्वामी दामोदरदासजी

iii. स्वामी हृदेरामजी

iv. स्वामी हरभक्तजी

v. स्वामी प्रह्लाददासजी

vi. स्वामी कनीरामजी

vii. स्वामी पीताबरदासजी

viii. स्वामी भागवतदासजी

(17) श्री स्वामी हरभक्तदास जी का वर्णन : रोहिट के ठाकुर भगवतसिंहजी के निवेदन पर महाराजा विजयसिंहजी ने पुष्कर में यह झींथड़ा गाँव इस गुरुद्वारे को भेंट किया। इसका पट्टा सं. 1816 चैत्र वदि 2 का है जिसकी परिशिष्ट में नकल है।

तांबापत्र महात्मा आत्मारामजी की बरसी पर संवत् 1817, माह वदि 1 को प्रदान किया गया। इसकी भी नकल दी गई है।

(18) महंत श्री स्वामी प्रह्लाददासजी महाराज का वर्णन—स्वामी हरभक्तदासजी

की मृत्यु पर ये जोधपुर गये, तब मातमपुर्सी हेतु सं. 1842 माह सुद 6 को महाराजा श्री विजयसिंहजी इनके डेरे पर पधारे।

(19) महंतजी श्री स्वामी कनीरामजी महाराज का वर्णन—ख्यात के पत्र 105 पर वर्णन है कि म. मानसिंह जालोर थे और श्री कनीरामजी से मदद का कहलाया, तब 'महंतजी ने रुपैया 2000 दोय हजार के करीब भेजा।' फिर सं. 1960 में राजतिलक के अवसर पर इन्हें (श्री कनीरांमजी) जोधपुर बुला कर आदर दिया पोष वदि 14, भोमवार।

(20) फिर स्वामी पीतांबरदासजी का वर्णन है।

(21) इसके बाद वर्तमान स्वामी भगवातदासजी का वर्णन है। पत्र 110 पर इनकी महाराजा बखतसिंह जी से भेंट का जिक्र है।

(22) इस ठींकांणा में जो रीत-भांत रो चाल चलन जो कायदा वगैरे हैं उसका वर्णन—इसमें बताया गया है कि यह गादी निहंग (स्त्री रहित) है, पंच-संस्कार पश्चात् चेला करते हैं, मर्यादा-बाहर काम करने पर पंक्ति से बाहर कर देते हैं। फिर 10 नियम दिये हैं-

i. भद्ररूप रहणा

ii. गोपीचंदन का तिलक करणा

iii. यज्ञोपवीत रखणा

iv. गुरु के वाक्य का पालन करणा

v. तप्त-मुद्रा धारण करणा

vi. राम-मंत्र का जप करणा

vii. कमंडल का जल-पात्र रखणा

viii. तुलसी की माला पहरणी

ix. चोटी रखणा

x. धोये हुवे सफेद वस्त्र पहरणा

जब महाराज धांम पधारते हैं (दिवंगत होते है) तब सतरमी तक क्रियाकर्म होते हैं और उस दिन मेला भंडारा होता है और उसी दिन योग्य शिष्य को गादी पर बैठाते है तथा महंताई की चादर ओढ़ाते हैं।

(23) जो सती सेवक इस टीकांणे के आईदानोत चाँपावत वगेरे है उनके टीकांणा के रेवाज का वर्णन—ठिकाने में विवाह के अवसर पर कुंकुम पत्रिका भेजकर महंतजी को बुलाया जाता है। गाँव के बाहर आकर ठाकुर गाजे-बाजे से स्वागत कर 'सामेळा' करते हैं। फिर पालकी में बैठाकर ठिकांणे में ले जाकर 'पगमंडाई' करते है, कंठी बंधवाते हैं, भेटपूजा करते हैं।

गमी पर महंत्तजी आकर कंठी बांधते हैं, दुपट्टा ओढ़ाते हैं। इसके बाद पाग वगैरह का दस्तूर होता है। दूसरे दिन नये ठाकुर महंतजी के पास जाते हैं और भेंट चढ़ाते हैं।

यह वर्णन सांस्कृतिक महत्त्व का है।

(24) तत्पश्चात् लेखक की पुष्पिका है—इति श्री ख्यात सम्पूर्णम् संवत् 1954 चैत्र शुक्ल पक्ष1

(25) पुष्पिका के पश्चात् लेखक नरसिंहदास ने तत्समय के महंत भागवतदास के प्रति आभार प्रकट किया है।

(26) फिर लेखक ने

i. पट्टा री नकल : सं. 1816 चेत वद 2

ii अगले जागीरदारों को निकालने के आदेश की नकल- सं. 1817

आसाढ वद 5

iii तांबा पत्र री नकल- सं. 1817 माह वद 1

iv गांव के वेतलबी है, सोझत कचेड़ी के नांव कागद री नकल : सं.

v स्वामी पीताम्बरदासजी को महंताई का दुसाला वास्ते रुको खजांने ऊपर हुवो तिणरी नकल।

(27) फिर शीर्षक है—जो-जो ठीकांणा वो गांव वगेरा में ठाकुरजी रे जमीन भेंट हुई तिण रो नकसो।

ह. वैष्णव नरसिंहदास

पर यह नक्शा इस ख्यात में नहीं है।

इस ख्यात का शीर्षकानुसार वर्णन यहाँ समाप्त होता है।

प्रस्तुत ख्यात का प्रदेय—

इस ख्यात का सूक्ष्म अध्ययन निम्नलिखित क्षेत्रों में उपादेय हो सकता है-

(1) रामानन्दी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय का इस स्थान विशेष से सम्बन्धित सम्पूर्ण वृत्तान्त इस ख्यात से प्राप्त होगा। यह वृत्तान्त अद्यावधि प्रकाश की प्रतीक्षा में है। रामानन्दी सम्प्रदाय का राजस्थान में अपूर्व प्रचार-प्रसार रहा है। इसकी मुख्य गद्दियों और महन्तों पर साहित्य प्रकाशित हुआ है, परन्तु राजस्थान में रामानन्दी सम्प्रदाय का प्रवेश और विस्तार तथा साहित्यिक अवदान जैसे विषयों पर विस्तृत अध्ययन की भी अपेक्षा है। इस तरह यह ख्यात और सर्वेक्षण करने पर ऐसी अन्य ख्यातें इस सम्प्रदाय विशेष की जानकारी में अभिवृद्धि कर सकती हैं।

(2) इतिहास—झींथडा के इस स्थान के महंत केवल कूबा का जीवन-वृत्तान्त प्रायः अज्ञात है। इस ख्यात में उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक वृत्तान्त दिये गये हैं। जोधपुर नरेश सूरसिंह (राज्यकाल वि.सं. 1652 से 1676) के समय में कूबाजी का यहाँ विद्यमान होना महत्वपूर्ण सूचना है।

इसके अतिरिक्त म. विजयसिंह द्वारा प्रदत्त इस गांव के पट्टे एवं ताम्रपत्र की नकल, अगले जागीरदारों को गाँव से निकालने के हुक्मनामें की नकल, महंत पीताम्बरदास जी को महंताई के दुसाले बाबत खजाने पर लिखे गये रुक्के की नकल जैसी सामग्री भी इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहाँ के महन्त कनीरामजी ने जालोर के घेरे में समय मानसिंह को दो हजार रुपयों की सहायता दी, जिसके प्रतिदान में अपनी गद्दीनसीनी के समय महा. मानसिंह ने उन्हें जोधपुर बुलाकर सम्मानित किया। इसी तरह यहाँ के गादी-पतियों को समय-समय पर जोधपुर के नरेशों द्वारा प्रदत्त मान-सम्मान इत्यादि का भी इसमें जिक्र है। इनका महा. विजय सिंह की ख्यात, महा. मानसिंह की ख्यात और म. तखतसिंह की ख्यात जो प्रकाशित हैं, में तनिक भी उल्लेख नहीं है। राठौडों की एक शाखा है चांपावत राठोड, जिनमें उपशाखा है मारवाड़ के कांकांडी के जागीरदार की "आइदानोत" इस शाखा की मोतनसिंह विरचित चांपावतों के इतिहास में उल्लेख नहीं है। इस ख्यात के प्रकाशन से इतिहास विषयक ऐसी छोटी-छोटी जानकारियाँ प्राप्त होंगी।

(3) साहित्य—यह ख्यात खड़ी बोली में है, जिसमें मारवाड़ी और ब्रज भाषा का मिश्रण है। मारवाड़ में खड़ी बोली के प्रवेश एवं प्रयोग जैसे भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह उपयुक्त सामग्री है। ऐसे अध्ययन हुए भी नहीं हैं।

संत केवल कूबा की वाणी भी जन-जिह्वा द्वारा समादृत है। इनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित सामग्री तो इस ख्यात में पर्याप्त है और शोध कर इनका कृतित्व हाथ लगे, तो राजस्थान के संत-साहित्य में अभिवृद्धि हो सकती है।

निष्कर्षत—कहा जा सकता है कि एक गाँव विशेष का यह विस्तृत और व्यापक ऐतिहासिक अनुशीलन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है और सूक्ष्मेतिहास अथवा अणुवीक्षणेतिहास (Micro-History) का एक अध्ययन योग्य उदाहरण है। राज्य-अभिलेखागार, हस्तलिखित- ग्रंथागारों एवं व्यक्तिगत-संग्रहालयों आदि से ऐसी सामग्री का संकलन-शोधन किया जाय, तो अनेक नवीन तथ्य हाथ लगेंगे। इस नवीन शोधपरक सामग्री का सन्निवेश हमारे ज्ञात-अल्पज्ञात तथ्यों को समृद्धता प्रदान करेगा और हमारा इतिहास-लेखन नये आयामं प्राप्त करेगा। सत्ता-केन्द्रों के गजेटियर तो प्रकाश में आये हैं, अब गाँवों के गजेटियर तैयार करने की महती आवश्यकता है।

शांति-निकेतन
78, सरदार क्लब योजना
जोधपुर-342011

संदर्भ संख्या–

1. ग्रं. 15643 : ठिकांणा झीथड़ा, परगना सोजत री ख्यात: कर्त्ता नरसिंहदास शिष्य भागवतदास : प. 1-117 : पूर्ण : लि. का. सं. 1954, चैत्र शुक्ला प्रथमा : बोड़ा आसकरण की सहायता से निर्मित : सुवाच्य : ब्रज-मारवाड़ी मिश्रित खड़ी बोली
2. मारवाड़ रा परगना री विगत : भाग 1 एवं 3: मुंहता नैणसी ; संपा. डॉ. नारायणसिंह भाटी
3. मुंहता नैणसी री ख्यात : भाग 1 एवं 4 : संपा, वदरी प्रसाद साकरिया
4. राजस्थानी सबदकोस : द्वितीय खण्ड : प्रथम जिल्द : कर्त्ता : सीताराम लालस एव उदयराज उज्जवल
5. राजस्थानी साहित्य संग्रह : भाग 2 : डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
6. राजस्थानी-हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची : भाग 4 : ओंकारलाल मेनारिया
7. राजस्थानी-हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची : भाग 4 : ओंकारलाल मेनारिया
8. सोनगरा व साँचोरा चौहानों का इतिहास : डॉ. हुकमसिंह भाटी

बेदला की तवारीख—एक अध्ययन

डॉ. के. एस. गुप्ता

बेदला पूर्व मेवाड़ राज्य का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था। यहाँ के सामन्त चौहान-वंशीय थे तथा उनका विरुद राव का था। राव करणसिंह ने अपने वंश का इतिहास लिखाने के उद्देश्य से तवारीख के लेखक बहाबुद्दीन मुफ्ती को दादरी (जिन्द) से बुलाया।[1] लेखक के बारे में अधिक ज्ञात नहीं होता, परन्तु यह निश्चित है कि इतिहास लेखक के रूप में उसने अपनी पहचान बना ली थी। उसने ग्रन्थ को चार भागों में बांटा है। प्रथम भाग में मेवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग में बेदला का इतिहास तथा तीसरे एवं चतुर्थ भाग में क्रमश: कोठारिया एवं पारसोली का इतिहास है। इस प्रकार मेवाड़ के तीनों ही प्रथम श्रेणी के अथवा सोलहा के चौहान ठिकानों का इतिहास लिखा है। लेखक ने सम्पूर्ण ग्रन्थ का नाम 'जीयाएँ चौहान' अथवा 'चहुवान प्रकाश' रखा[2] परन्तु अलग ठिकानों के इतिहास को सम्बन्धित ठिकाने के नाम से तवारीख लिखा है। प्रस्तुत पत्र को बेदला की तवारीख तक ही सीमित रखा। ग्रन्थ की प्रतिलिपि की जिरोक्स प्रति प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर में उपलब्ध है। जिसे प्रस्तुत आलेख का आधार बनाया है।

इतिहास के प्रति दृष्टिकोण—ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लेखक ने स्पष्ट कर दिया कि उसने जो भी लिखा अपनी बुद्धि से लिखा है तथा उसने जो लिखा है वह सत्य है एवं कोई गलत उल्लेख नहीं है। यद्यपि उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसने मृत व्यक्तियों की बुराई नहीं लिखी। वैसे मुफ्ती इतिहास विषय को बहुत महत्वपूर्ण मानता है। उसने इतिहास की महत्ता बताते हुए लिखा कि जिस प्रकार शरीर के निर्वाह के लिए बोली एवं स्मरण शक्ति की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मनुष्य जाति की उन्नति के लिए इतिहास विद्या का पढ़ना आवश्यक है। इसके अध्ययन से अपने बड़े पुरखों के मजहब और आचार-विचार, देश-काल को जान सकता है।[3] ग्रन्थ का प्रारंभ गणपति तथा श्री सरस्वती को नमन करते हुए किया तथा खुदा की प्रशंसा पैगम्बर एवं उसके साथियों की कृपा का फल माना है। लेखक ने आधार ग्रन्थों का भी विवरण दिया है जिनमें प्रमुख अकबरनामा, बाबरनामा तारीखे फरिस्ता, कर्नल टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, वंशभास्कर, दुररे नादरी, खुलासुत्त तवारीख, इतिहास तिमिरनासक, पृथ्वीराज रासो आदि।[4]

मेवाड़ का विवरण—मेवाड़ के गुहलोत राजवंश को रघुवंशी मान लव से विवरण प्रारम्भ किया है, जिसने वर्तमान लाहौर को बसाया था। बाद में उसके वंशज बल्लभीपुर रहे तथा वहीं से मेवाड़ आना बताया। उसका मानना है कि नागदित्य का पुत्र बप्पा रावल चित्तौड़ में अपने मामा मानमोरी के पास आया तथा मामा के पुत्र न होने से उसने बप्पा को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। इस प्रकार मानमोरी की मृत्यु के बाद करीब 770 ई. में वह चित्तौड़ का शासक हो गया। बाप्पा का उत्तराधिकारी गुहिल होने से नाम से उसी के नाम से यह गहलोत वंश कहलाया। ग्रन्थ में बाप्पा से लेकर समरसिंह तक के बाईस शासकों का विवरण नहीं दिया है। परन्तु खेता से लेकर महाराणा फतहसिह तक के समस्त शासकों की गद्दी पर बैठने की तिथियाँ दी हैं। फतहसिंह को लेखक ने इस राजवंश का 73 वाँ शासक बताया।[5] ग्रन्थ में मेवाड़ इतिहास की दृष्टि से विशेष नवीन जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड़-मुगल संघर्ष के विवरण का आधार लेखक ने कर्नल टॉड की कृति को बनाया, परन्तु महाराणा उदयसिंह के चरित्र के बारे में टॉड के मत को स्वीकार नहीं किया। टॉड ने उदयसिंह को कायर बताया, परन्तु तवारीख लेखक ने इस मत से असहमति बताई नथा लिखा कि, "राणा उदयसिंह ऐसा पाबंद अपनी वजे का था कि उसने बावजूद इस कदर नुकसान कसीर के ताबेदार होना मंजूर नहीं किया।"[6]

यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बाद के लेखकों ने समकालीन व अन्य स्रोतों के आधार पर उदयसिंह पर टॉड द्वारा लगाये गये लांछन को अस्वीकार कर दिया। वरना अन्य स्थलों पर लेखक ने टॉड को आधार बनाया। इससे टॉड द्वारा की गई भूलों को इस ग्रन्थ में भी स्थान मिल गया। जैसे हल्दीघाटी के युद्ध में मुगल सेना का नेतृत्व जहाँगीर के पास होना एवं शक्तिसिंह प्रकरण आदि। हल्दीघाटी के युद्ध का समय तीन प्रहर रात्रि से दोपहर दिन तक तथा बन्दूकों का प्रयोग का उल्लेख किया।[7] कतिपय स्थानों पर लेखक ने ऐसे विवरण दिये, उनको इतिहास सम्मत नहीं माना जा सकता। उसने किन साधनों के आधार पर लिखा इसका जिक्र ग्रन्थ में नहीं किया। जैसे अकबर एवं उसके राजपूत मित्रों के मध्य सन्देह उत्पन्न करने के कारण का विवरण देते हुए लिखा कि औरंगजेब ने ऐसा जाली पत्र तैयार कर अकबर के पास पहुँचा दिया जिसमें राजपूत सरदारों की यह योजना बताई कि युद्ध में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् अकबर को मार कर महाराणा राजसिंह को दिल्ली की गद्दी पर बिठा देंगे। पत्र को पढ़कर अकबर घबराया और भाग कर औरंगजेब के पास चला गया। औरंगजेब ने अकबर को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कमजोर किया तथा बादशाहत के लिए अयोग्य करार दिया। भयभीत होकर वह ईरान चला गया। परन्तु वास्तविक स्थिति इससे भिन्न है। पत्र राजपूत सरदारों के नाम न होकर औरंगजेब का अकबर को पत्र

था। अकबर नहीं भागा अपितु राजपूत सरदार अपनी सेना सहित युद्ध क्षेत्र से रवाना हो गये। अकबर को जब सुबह उठने पर पता लगा तो वह स्वयं राजपूत सेना से जा मिला; अतः अकबर का औरंगजेब के पास चला जाना एकदम निर्मूल है।[8]

इसी प्रकार अन्य कथन भी सत्यता से परे हैं। जब लेखक लिखता है कि अपने पिता महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् जगत्सिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठते ही इस प्रयास में लग गया कि राजपूत शासक अपनी रिश्तेदारी मुगल बादशाह से समाप्त कर दें। राजपूत शासकों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उपरोक्त कथन का भी कोई आधार नहीं है। अगर लेखक 1734 के हुरड़ा सम्मेलन के सन्दर्भ में लिख रहा है तो यह उपयुक्त नहीं लगता। यह सम्मेलन मुगलों के नहीं अपितु मराठों के विरुद्ध था। बिना अपवाद के मेवाड़ सहित सभी राजपूत शासक मराठा विरोधी अभियान में मुगल सम्राट् की सहायता चाह रहे थे। इसके लिए निरन्तर सन्देश भी भेजे जा रहे थे।इसी प्रकार जगत्सिंह के सन्दर्भ में यह लिखना कि महाराणा ने मेवाड़ राजकुमारियों की शादियाँ राजपूत रईसों से करने के लिए यह शर्त रखी कि ऐसी शादी से उत्पन्न पुत्र छोटा होने पर भी राज्य का उत्तराधिकारी होगा, इतिहाससम्मत नहीं है,, क्योंकि यह घटना जगत्सिंह के काल की न होकर अमरसिंह द्वितीय के काल की है। उस समय भी केवल आमेर के सवाई जयसिंह से अपनी लड़की की शादी करते समय यह शर्त रखी थी।[9] वैसे अधिकांश विवरणों में न तो कोई नवीनता न विश्लेषणात्मक ही दृष्टिगोचर होती है। बेदला सामन्तों के योगदान को विस्तृत रूप से दिया गया है, परन्तु उन सब कथनों की पुनरावृत्ति बेदला के विवरण में आती है।

बेदला का इतिवृत्त—ग्रन्थ में बेदला सम्बन्धी विवरण विशेष महत्व का है। इतिवृत्त दो सौ से अधिक पृष्ठों में लिपिबद्ध है। इसके प्रारम्भ में बेदला व ठिकाने के सम्बन्ध में अनेक जानकारियाँ दी गई हैं। जैसे बेदला से उदयपुर की दूरी, उसकी भौगोलिक स्थिति, क्षेत्रफल, फैलाव, यहां बहुतायत में पाये जाने वाले पेड़, पौधे, हिंसक एवं पालतू जानवर, मुक्त भवन एवं धार्मिक स्थल, बाग-बगीचे, तालाब, खनिज उद्योग आदि। जैसे डागल पहाड़ का घास प्रसिद्ध है तो प्रमुख शिकारगाह अंबा मगरा पर स्थित है। मन्दिरों का विवरण देते हुए लिखता है कि अंबा पहाड़ पर कार्तिकस्वामी का मन्दिर तथा हरिहर की मूर्त्ति है। यहाँ फाल्गुन वदि 11 को मेला भरता है । मेले का प्रमुख आकर्षण गेर खेल होता था। लेखक ने गेर खेल का विस्तृत विवरण ग्रन्थ में दिया है। करणसिंह ने दुर्ग में गोविन्दरायज़्ी के मन्दिर का निर्माण किया। माना जाता है कि इसमें रखी हुई मूर्त्ति पृथ्वीराज की है। किले के बाहर एक और सुन्दर मन्दिर है, इसमें बलदेवजी की मूर्त्ति स्थापित की गई है।यह मन्दिर शिखर बन्द है।

कस्बे के बाहर रघुनाथजी का मन्दिर है। इसके बारे में लेखक के अनुसार यह माना जाता है कि तुलसीदास के अनुयायी ने इसका निर्माण कराया। यह मन्दिर शिखर बन्द नहीं है। एक और मन्दिर सीताराम का है, वह भी कस्वे के बाहर किले के बाहर दो जैन शिखर बन्द मन्दिर भी बने हुए हैं। किले के बाहर दो मस्जिदें भी बनी हुई हैं। इस वर्णन से बेदला के सामन्तों की धर्मसहिष्णुता सिद्ध होती है। सामन्त स्वयं विष्णु, शिव, शक्ति के उपासक थे। आसपुरा, काली उनकी प्रमुख देवी थी।[10] परन्तु विभिन्न धर्मावलम्बियों को अपना-अपना धर्म एवं पूजा पद्धति मानने में कोई व्यवधान नहीं था।

मन्दिरों के अतिरिक्त अन्य भवनों का भी ग्रन्थ में उल्लेख किया गया है। उसका मानना है कि बेदला के महलों की नींव राव बलभद्र ने ठीक उसी दिन और उसी समय रखी जब उदयपुर में महलों की नींव महाराणा उदयसिंह द्वारा रखी जा रही थी। परन्तु इतिहास लेखक इसकी तिथि नहीं देता। अंबा पहाड़ पर शिकारगाह तथा कीर्त्तिस्वामी के पास छत्री, दरीखाना आदि का निर्माण, राव बख्तसिंह के समय महल, बाग आदि का निर्माण। जनहित निर्माण कार्यों का भी उल्लेख ग्रन्थ से प्राप्त होता है। जैसे माजी जोधपुरी ने बेदला कस्बे के बाहर धर्मशाला बनायी। राव सुल्तानसिहं ने बावड़ी का निर्माण कराया। इस अवसर पर महाराणा संग्रामसिंह बेदला आया और कार्यक्रम को एक अच्छे उत्सव का रूप दिया। इस पर करीब दो लाख रुपया व्यय हुआ। राव बख्तसिंह के काल में एक तालाब का भी निर्माण कराया। ठिकाने का एक और बड़ा कस्बा गंगरार था। यह वर्तमान में चित्तौड़गढ़ जिले में स्थित है। यहाँ भी राव बख्तावरसिंह ने एक तालाब की नींव रखी जिसके निर्माण में 25 हजार रुपये खर्च हुए। यहाँ सारणेश्वर मन्दिर के पास फाल्गुन में भरे जाने वाले मेले का भी विवरण दिया हुआ है।[11]

ग्रन्थ में ठिकाने की आबादी जातिवार दी हुई है। 1875 में चौहान 1600, जैन 250, मुसलमान 250, ब्राह्मण, राजपूत, तेली, आदि की संख्या 8950 थी। इस प्रकार कुल जनसंख्या 11050 थी जो 1891 में बढ़कर 31 हजार हो गई, परन्तु 15 वर्ष में जनसंख्या में 280 प्रतिशत से अधिक वृद्धि अविश्वसनीय प्रतीत होती है। इसके अनुसार 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष जनसंख्या में वृद्धि हुई।संम्भवतः जागीर क्षेत्र में वृद्धि होने से यह सम्भव हुआ होगा। मुसलमानों में शिया एवं सुन्नी दोनों थे और उनमें अधिकांश नौंकरी करते थे और शेष बन्दूक, साज, शोर एवं सिलावट के कार्य में लगे हुए थे।[12]

ग्रन्थ में ठिकाने में मनाये जाने वाले त्यौहारों की सूची दी है तथा उन्हें मनाने का भी वर्णन किया है। त्यौहारों की संख्या चालीस के करीब है। नवरात्रि स्थापना तथा इसके नौवें दिन कहाँ बकरे की और कहाँ भैंसे की बलि दी जाती थी उसका भी

विवरण है। परन्तु ग्रन्थ की महत्वपूर्ण सूचना सामन्ती शिष्टाचार सम्बन्धी है। राव का किन अवसरों पर उदयपुर आना होता था उसी के अनुसार शिष्टाचार निभाया जाता था। दरबार में उपस्थित होने पर उसकी बैठक का स्थान, महाराणा एवं सामन्त का एक दूसरे को अभिवादन का ढंग क्या होता था इसका विवरण है। इसी क्रम में ग्रन्थ में लिखा है कि अगर बेदला के राव को उदयपुर आने का आदेश दिया जाता था तो ऐसे समय उसके उदयपुर प्रवास में खाना बाईजी राज की जनानी ड्योढ़ी से चाँदी की ताशक में आयेगा। बाहर जाना हो तो सीख का फेरा बेदला भेजा जाता था। बैठक में राव के साथ उसके कौन से अधीनस्थ जागीरदार तथा ठिकाने के पदाधिकारी जा सकते थे, कहाँ-कहाँ बेदला का सामन्त शिकार कर सकता था, सामन्त के जनाने के साथ जाने वाले लवाजमा आदि के बारे में प्रकाश पड़ता है।[13] महाराणा की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी को तत्काल गद्दीनशीन कराने में बेदला के विशेषाधिकार का भी उल्लेख ग्रन्थ में विस्तार से है।

चौहान इतिहास—ग्रन्थ में चौहानों की उत्पत्ति से प्रारम्भ किया गया है। लेखक ने अग्निकुंड सिद्धान्त को स्वीकारा है और माना है कि अनहलराय प्रथम चौहान पुरुष था। इसी वंश का पचासवाँ शासक अजयपाल था। तवारीख में पृथ्वीराज-गोरी युद्ध, द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज के हार के कारण, साथ ही चौहानों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनायें जैस—अलाउद्दीन का रणथम्भौर पर आक्रमण, इसके पूर्व कुतुबुद्दीन द्वारा तेजराय चौहान को चन्द्रखार इटावा, मैनपुरी, राजोर प्रदान करना, भीम चौहान से माणकचन्द तक उपरोक्त पूर्वी क्षेत्र में चौहान राजाओं के शासनकाल का विवरण है। ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि माणकचन्द अन्तरवेद (चन्द्रखार) की गद्दी पर सं. 1550 में बैठा और 34 वर्ष तक राज्य किया। इसका सीधा सम्बन्ध मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा संग्रामसिंह के साथ हुआ जिसकी मदद के लिए अपने 52 हाथी और आठ हजार सवार सहित बाबर से लड़ने के लिए बयाना पहुंचा।[14] मुफ्ती ने माणकचन्द का महाराणा की सहायता के लिए आने का मुख्य कारण पृथ्वीराज चौहान द्वारा अन्तिम लड़ाई में प्रकट की गई इच्छा की पूर्त्ति को माना है। पृथ्वीराज ने अपने अन्तिम युद्ध के समय यह कहा कि जब-जब महाराणा मुस्लिम शासकों से लड़ाई करे उस समय चौहान महाराणा की सहायता करें।[15] बयाना युद्ध में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। तवारीख के अनुसार बयाना युद्ध में माणकचन्द की मृत्यु हो गई परन्तु यह कथन उपयुक्त नहीं है। प्रमुख इतिहासकारों के विवरणों से स्पष्ट है कि उसकी मृत्यु खानवा के युद्ध में हुई, बयाना के युद्ध में नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने दो युद्धों में अन्तर ही नहीं किया क्योंकि वह केवल बयाना के युद्ध का उल्लेख करता है, खानवा युद्ध का तो नाम तक नहीं लिखा।[16] माणकचन्द का उत्तराधिकारी पुत्र दलपत अन्तरवेद को सुरक्षित न पाकर चित्तौड़ चला

आया। लेखक ने बताया कि महाराणा सांगा उसे सरहद तक लेने आया।[17] परन्तु यह मत भी विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता क्योंकि बयाना से सांगा ससैन्य खानवा की ओर गया और वहाँ युद्ध भूमि से उसे मूर्च्छित अवस्था से हटाया गया। हटाकर कहाँ ले जाया गया, इसमें तो मत विभिन्नता है परन्तु यह निश्चित है कि चित्तौड़ नहीं लाया गया। परन्तु उसका यह कथन तो विश्वसनीय है कि महाराणा को जहर दे देने से उसकी मृत्यु हो गई।[18] सांगा की मृत्यु व उसके उपरान्त राजनैतिक घटनाक्रम ने दलपत की स्थिति अस्पष्ट कर दी; अत: वह हलवद की ओर गया। वहाँ झाला सामन्त को युद्ध में हराया तथा इस क्षेत्र को अपने पुत्र संग्रामसिंह को सौंप कर स्वयं द्वारिका गया। कुछ समय ठहर कर वह बांसवाड़ा होता हुआ डूँगरपुर आया जहाँ परिस्थितियों का ऐसा निर्माण हुआ कि वहाँ के शासक ने उसे समाप्त कर दिया। पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए संग्रामसिंह डूँगरपुर पहुँचा। महाराणा रतनसिंह की मध्यस्थता के कारण दोनों के मध्य समझौता हो गया तथा संग्राम चित्तौड़ आ गया। वहाँ महाराणा ने अपनी पुत्री की शादी उससे कर दी। दलपत महाराणा की सेवा में रहता हुआ रणथम्भौर को मेवाड़ के आधिपत्य में लाया और वि. सं. 1592 में वह बहादुरशाह के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया।[19] उसका उत्तराधिकारी राव प्रताप हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के चित्तौड़ आक्रमण करते समय महाराणा दुर्ग में उपस्थित था। यद्यपि उसका पुत्र बलभद्र उदयसिह के साथ दुर्ग से निकल पहाड़ों में जाने वालो में था। चित्तौड़ दुर्ग पर अकबर का अधिकार, प्रताप की युद्ध में मृत्यु तथा ईसरदास का युद्ध में योगदान तथा जौहर सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनायें ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। जौहर करने वाली स्त्रियों की संख्या 2700 बताई और यह जौहर तीन स्थानों पर हुआ। सीसोदिया कौम की 1400 महिलाओं ने सज्जन किले में, राव प्रताप व ईसरदास के निवास स्थान पर 300 महिलाओं ने तथा रामदास राठौड़ के यहाँ विभिन्न राजपूत कोम की 1000 नारियों ने अग्नि में प्रवेश किया। परन्तु इसके साथ ही जब उदयसिंह ने बलभद्र को जागीर प्रदान कर दी तो चौहानों की अस्थिरता की स्थिति समाप्त हो गई। ठिकाने का मुख्य स्थान बेदला हो गया। जागीर प्रदान करने की वास्तविक तिथि का तो इसमें विवरण नहीं है परन्तु यह अवश्य स्पष्ट किया कि जिस दिन महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर में महलों की नींव रखी ठीक उसी दिन और उसी समय बलभद्र ने भी बेदला में महलों की नींव रखी।[20] ग्रन्थ में बेदला के विभिन्न सामन्तों का, मेवाड़ की राजनीति में भूमिका पर अच्छा प्रकाश डाला है। जैसे बलभद्र का हल्दीघाटी युद्ध में भाग लेना तथा वहाँ घायल हो जाने से कुछ समय पश्चात् बेदला में मृत्यु होना, उसके उत्तराधिकारी का भी मुगलों के विरुद्ध में मारा जाना, राव सबलसिंह का महाराणा राजसिंह के काल में सोनियाना - देवंदा युद्ध में भूमिका बख्तावर सिंह द्वितीय की 1857 में गतिविधियाँ, सज्जनसिंह एवं स्वरूपसिंह को महाराणा बनाने में योगदान। इसी प्रकार

तख्तसिंह के कार्यों का भी लेखा जोखा प्रस्तुत किया है।[21]

इस प्रकार ग्रन्थ अधिक प्राचीन नहीं है। प्रकाशित साधन ही सामान्यतः इसके आधार रहे हैं। आलोचनात्मकता एवं विश्लेषणात्मकता का अभाव इसमें पाते हैं। फिर भी ग्रन्थ बेदला सामन्तों के कार्यकलापों की महत्वपूर्ण सूचनाएँ देता है। ऐसा भी नहीं माना जा सकता है कि आश्रयदाता के वंशजों की केवल मात्र प्रशंसा ही की हो। जैसा राव रामचन्द्र द्वितीय के बारे में स्पष्ट लिखा है कि उसकी सोबत अच्छी नहीं थी। ऐश व आराम में उसका विश्वास था। इतिहासकार ने यह लिखकर अपनी बात समाप्त कर दी। उसकी चारित्रिक विशेषताओं का इतिहास से कोई सम्बन्ध न होने से लिखना ठीक नहीं समझा। ग्रन्थ का महत्व उस समय के रीति-रिवाजों, खान-पान, त्यौहारों, कपड़ों, गहनों के विवरण से है। तत्कालीन सामाजिक जीवन विशेषतः उच्च वर्ग के जीवन को जानने का अच्छा साधन है। इसी प्रकार आर्थिक स्थिति आँकने का भी माध्यम सिद्ध हो सकता है। ग्रन्थकार ने भूमि की किस्में तथा वर्षा का औसत, अच्छी फसल के लिए कितनी वर्षा की आवश्यकता आदि का दिग्दर्शन कराया है। परन्तु खेती योग्य भूमि, राजस्व व्यवस्था, प्रशासनिक स्वरूप, कृषक दशा, व्यापार, उद्योग पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। इसके अभाव में ग्रन्थ का महत्त्व कम हो गया है।

23, पद्मिनी मार्ग
रवीन्द्र नगर, उदयपुर

सन्दर्भ संख्या—

1. बहाबुद्दीन मुफ्तीं, चहुवान प्रकाश, पृ. 70 (आगे केवल प्रकाश)
2. उपरोक्त, पृ. 68, 71
3. उपरोक्त पृ. 215
4. उपरोक्त पृ. 68
5. उपरोक्त पृ. 70-71
6. उपरोक्त पृ. 29-33
7. उपरोक्त पृ. 126
   टॉड; अनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटी ऑफ राजस्थान, भाग-I पृ. 255
8. I प्रकाश; पृ. 132-136
   II जी.एन. शर्मा; मेवाड़ एण्ड दि मुगल एम्परर्स, पृ. 62
   III के.एस. गुप्ता एवं जे.के. ओझा; राजस्थान का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 145-147

9. I प्रकाश; पृ. 151
   II जी.एन. शर्मा; पृ. 155-156
   III गुप्ता एवं ओझा; पृ. 234-235
10 I प्रकाश पृ. 167
   II श्यामलदास; वीर विनोद पृ. 771
   III सूर्यमल मिश्रण, वंश भास्कर; भाग IV, पृ. 3017-18
11. प्रकाश, पृ. 217, 226, 238
12. उपरोक्त, पृ. 227-232, 383
13. उपरोक्त, पृ. 225, 237
14. उपरोक्त पृ. 246-274
15. उपरोक्त पृ. 282 से 334
    बाबरनामा के अनुसार वह चार हजार सेना सहित संग्रामसिंह की सेवा में आया।
16. प्रकाश, पृ. 332-334
17. उपरोक्त, पृ. 334-335
18. उपरोक्त, पृ. 336-338
19. उपरोक्त, पृ. 338-342
20. उपरोक्त, पृ. 342-348
21. उपरोक्त, पृ. 349
22. उपरोक्त, पृ. 349-410

कोठारिया की तवारीख का ऐतिहासिक महत्व

डॉ. गिरीशनाथ माथुर

राजस्थान में उपलब्ध गद्य साहित्य में ख्यात, वात, वंशावली, बहियाँ, पट्टे, परवानों एवं तवारीखों का प्रमुख स्थान है।

आजादी के बाद इतिहास लेखन के तरीके में विशेष परिवर्तन आए हैं। प्रचुर मात्रा में उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों का वैज्ञानिक विधि से अध्ययन कर उपयोगी निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं। राजनीतिक इतिहास के साथ ही समकालीन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का लेखन किया जा रहा है। अध्येता अब एक ही स्रोत का उपयोग उक्त सभी पक्षों का इतिहास जानने के लिए कर रहे हैं। जिन स्रोतों का अध्ययन अब से पूर्व में मात्र राजनीतिक इतिहास लेखन के लिए किया गया, उनको पुनः देखाभाला जा रहा है। उनका उपयोग इतिहास के पुनर्लेखन हेतु किया जा रहा है।

इतिहास का लेखन आज स्थानीय स्तर पर भी किया जा रहा है जिससे कि राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के इतिहास को पुष्ट किया जा सके। उसके लिए भी उपलब्ध स्रोतों का पुनः अध्ययन करना आवश्यक हो गया है।

मेवाड़ में वीरविनोद (ग्रन्थ लेखन के समय 1871-86 ई.) कविराजा श्यामलदास ने जागीरदारों से वहाँ की ऐतिहासिक जानकारी मँगवायी। तब जागीरदारों ने अपने यहाँ उपलब्ध सामग्री के आधार पर तवारीखें लिखवायीं। हाल ही में प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर में ठिकाना अभिलेखों के संग्रह में महत्वपूर्ण तवारीखें भी आ गयीं हैं। इनमें कोठारिया के अतिरिक्त बेगू, बेदला, पारसोली एवं सरदारगढ़ की तवारीखें प्रमुख हैं। ये तवारीखें वस्तुतः उपलब्ध वंशावलियों का विकसित स्वरूप हैं। इनमें ठिकाने की वंशावली के साथ-साथ थोड़ा ऐतिहासिक वर्णन एवं उसकी पुष्टि के लिए कहीं-कहीं मूल अभिलेखों एवं पट्टों की प्रतिलिपियाँ भी दे दी गयी हैं, जिससे उनका ऐतिहासिक महत्व बढ़ गया है। किन्तु कोठारिया की तवारीख में मूल अभिलेखों का अभाव है। इसके लिए ठिकाने की मूल सामग्री की सहायता लेना आवश्यक हो गया है।

कोठारिया की तवारीख का लेखक मुस्तफा अहमद है। इसकी ल.xचौ. क्रमशः 34x22 से.मी. है। इसका अन्य नाम चौहान प्रकाश है।

कोठारिया की तवारीख के आरंभ में वहाँ के जागीरदारों की जन्मपत्रियों एवं समकालीन महाराणाओं का संक्षिप्त इतिहास दिया हुआ है। कोठारिया की तवारीख की जिरोक्स प्रताप शोध प्रतिष्ठान में उपलब्ध है।[1]

कोठारिया की तवारीख के अनुसार कोठारिया के चौहान सुप्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज के चाचा कन्ह के वंशज हैं। अंग्रेज लेखक कर्नल वाल्टर ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है। किन्तु पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपना यह तर्क देकर इस तथ्य को अस्वीकार कर दिया है कि पृथ्वीराज के कन्ह नाम का कोई चाचा नहीं था। ओझा का इस बारे में यह मत है कि यहाँ के सरदार रणथम्भौर के अन्तिम राजा हमीर के वंशज हैं और रावत इनका खिताब है।[2]

चौहान परिवार के मेवाड़ आगमन के बारे में तवारीख में उल्लेख है कि वीरमदेव चौहान ईटावा से सम्वत् 1551(1494 ई.) में महाराणा रायमल (1473-1509 ई.) की सेवा में उपस्थित हुआ। रायमल ने उसे जावद व जीरण का पट्टा प्रदान किया। कुछ समय पश्चात् वह पट्टा कुंवर सारंगदेव को सौंपकर इटावा चला गया।[3] किन्तु डा. ओझा इस तथ्य को भी स्वीकार नहीं करते। वे कोठारिया के वंशक्रम का आरंभ माणकचन्द से मानते हैं जो कि बाबर-सांगा संघर्ष के दौरान मैनपुरी जिले के राजौर नामक स्थान से अपने 4000 सैनिकों सहित आकर महाराणा के पक्ष में लड़ता हुआ काम आया। बाद में उसके संबंधी तथा सैनिक महाराणा की सेवा में ही रहे।

सांगा ने उसके वंशजों को रावत का खिताब प्रदान किया।[4]

तवारीख में सारंगदेव को जावद व जीरण का पट्टाधारी बतलाया गया है। यह जानकारी दी गई है कि महाराणा रत्नसिंह को 1531 ई. में बूंदी के नैणवा भील पर शिकार के समय धोखे से मारने वाले सूरजमल का कत्ल सारंगदेव ने ही किया था।[5]

सारंगदेव का पुत्र जयपाल वि.सं. 1589 (1533ई) में ठिकाना जीरण में गद्दी पर बैठा। तवारीख से जानकारी मिलती है कि जब गुजरात के शासक बहादुरशाह ने चितौड़ पर हमला किया तब जयपाल विक्रमादित्य (1531-36 ई.) के पक्ष में लड़ता हुआ मारा गया। इसके पुत्र दलेलसिंह ने रूमीखान का कत्ल किया। इस उपलक्ष्य में

महाराणा ने उसे रावतखान की उपाधि प्रदान की।[6] 'रावतखान वि.स. 1592 (1535 ई.) में पिता की मृत्यु के बाद जीरण में गद्दी पर बैठा। उसके बाद ही विक्रमादित्य को मारकर बणवीर (1536ई.) मेवाड़ का शासक बन बैठा।

बणवीर से अप्रसन्न सरदारों ने उदयसिंह को गद्दी पर बिठाना चाहा। बणवीर ने स्वार्थवश उदयसिह का भी कत्ल करना चाहा। उस समय उदयसिंह की आयु मात्र छः वर्ष थी। उस समय खीची चौहान धाय पन्ना ने अपने बेटे की जान गंवाकर उदयसिंह की जान बचाई।

रावतखान के कहने से पन्ना उदयसिंह को लेकर प्रतापगढ़, ईड़र, धार, होती हुई कुम्भलगढ़ पहुँची, जहाँ के हाकिम आशासाह देवपुरा ने अपनी माँ की आज्ञा का पालन करते हुए उदयसिंह को संरक्षण प्रदान किया।[7] खान व बणवीर के मध्य एक दिन खाने को लेकर अनबन हुई तब खान भी उदयसिंह के पास कुंभलगढ़ चला गया तथा सरदारों की सहायता से बणवीर को मेवाड़ से निकालकर उदयसिंह को मेवाड़ का महाराणा बना दिया। उस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उसे रावत की उपाधि प्रदान की, जो महाराणा के कुटुम्बियों को मिलती थी। बेदला रावत प्रतापसिंह ने कुम्भलगढ़ किले में उदयसिंह का राजतिलक किया।[8] रावत खान के परामर्श से ही जालोर के सोनगरा चौहान की पुत्री का विवाह महाराणा उदयसिंह से हुआ। इस वैवाहिक संबंध के कारण ही बणवीर को मेवाड़ से बाहर निकालने में सोनगरा चौहानों की सैन्य सहायता प्राप्त हुई।[9] चित्तौड़ पर अकबर के आक्रमण के समय हुई लड़ाई में बेदला राव प्रतापसिह तथा रावतखान मारे गए।[10]

रावत खान का पुत्र तातारखान सं. 1614 (1557 ई.) में गद्दी पर बैठा। तवारीख के अनुसार इसके कार्यकाल में ही उदयसिंह ने उदयपुर बसाया तथा राव बल्लू ने बेदला बसाया। रावत खान ने मेवाड़-मुगल संघर्ष के दौरान महाराणा प्रताप के पक्ष में युद्ध लड़े। हल्दी घाटी युद्ध में यह काम आया। इसने 18 वर्ष शासन किया।

तातारखान का पुत्र धरमांगद सं. 1632 (1576 ई.) में गद्दी पर बैठा। तवारीख के अनुसार धरमागंद ने ही वि.सं. 1666 (1609 ई.) में कोठारिया की स्थापना की। शाहजादा परवेज के साथ महाराणा अमरसिंह के साथ हुए युद्ध में रावत धरमांगद एवं बेदला राव रामचन्द्र काम आए।

रावत धरमांगद का पुत्र खानजी वि.सं. 1666 (1609 ई.) में कोठारिया की गद्दी

पर बैठा। वह महाराणा राजसिंह (1652-80 ई.) द्वारा किए गए मालपुरा अभियान (जून,1658 ई.) में काम आया।

साहब खान का पुत्र रावत पृथ्वीराज उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह महाराणा राजसिंह एवं औरंगजेब संघर्ष के दौरान काम आया।

इसका पुत्र रूकमांगद वि.सं.1738 (1681 ई.) में कोठारिया ठिकाने का उत्तराधिकारी हुआ। तवारीख के अनुसार इसने कोठारिया में दो गाँव व एक किले का निर्माण करवाया।[11]

रूकमांगद को महाराणा जयसिंह ने अपने क्षेत्र की सुरक्षा व्यवस्था सौंपी थी।[12]

रावत रूकमांगद का पुत्र उदयभान वि.सं. 1769 में गद्दी पर बैठा। तवारीख के अनुसार महाराणा व बादशाह फर्रूखशियर के साथ किए गए समझौते में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। जयपुर मे ईश्वरीसिंह व माधोसिंह के मध्य हुए उत्तराधिकारी संघर्ष में वह माधोसिंह के पक्ष में लड़ता हुआ काम आया।[13]

रावत उदयभान का पुत्र रावत देवभान वि.सं. 1804 (1747 ई.) में कोठारिया की गद्दी पर बैठा। उसने वहाँ पाँच वर्ष तक शासन किया।

रावत देवभान का पुत्र बुधसिंह वि.सं. 1809 (1752 ई.) में गद्दी पर बैठा। यह होल्कर द्वारा मेवाड़ की सीमा पर किए गए आक्रमण के समय महाराणा की सेना में बड़ता हुआ काम आया।[14]

रावत बुद्धसिंह का पुत्र रावत फतहसिंह वि.सं. 1814 (1757 ई.) में गद्दी पर बैठा। रावत फतहसिंह ने कोठारिया में दो नए गाँव बसाए। सिंधिया द्वारा कोठारिया पर आक्रमण के समय वह मारा गया।[15]

रावत फतहसिंह का पुत्र विजयसिंह 1828 वि.सं. (1771 ई.) में गद्दी पर बैठा। जसवन्तराव ने जब नाथद्वारा लूटना चाहा तब उसकी रक्षार्थ महाराणा द्वारा होल्कर की सेना का सामना करने सेना भेजी गयी।[16]

रावत विजयसिंह का पुत्र मोहकमसिंह वि.सं. 1858 (1801 ई.) में कोठारिया की गद्दी पर बैठा। उसने मेवाड़ की सेना में रहकर अनेक युद्ध किए।[17]

रावत मोहकम का पुत्र रावत जोधसिंह वि. सं. 1893 में गद्दी पर बैठा। उसने ठिकाने का विकास किया। इसने अपने यहाँ बाईस बागियों को जिनमें आऊवा ठाकुर भी था, अपने यहां शरण दी। तवारीख का लेखक उनके बारे में इतना ही लिखता है कि वे वास्तव में बागी नहीं थे। लेखक की दृष्टि में वे अंग्रेज विरोधी राष्ट्र भक्त थे। तवारीख में ताँत्या टोपे का कोठारिया की ओर जाने का उल्लेख नहीं है। जबकि अगस्त 13, 1857 ई. को कोठारिया रावत ने ताँत्या टोपे को रसद आदि की सहायता दी थी। रावत जोधसिंह की मृत्यु वि.सं. 1926 (1869 ई.) में हुई।[18]

रावत जोधसिंह का पुत्र रावत संग्रामसिंह को कोठारिया की गद्दी पर वि.सं. 1929 में बैठा पर एक वर्ष ही जीवित रहा।1929 में ही उसका पुत्र रावत केसरीसिंह गद्दी पर बैठा।

कोठारिया की तवारीख इतिहास के पुनर्लेखन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अवश्य ही हमें इसमें दिये गए सन् संवत् की जाँच करनी चाहिए। इसके लिए ठिकाने की मूल सामग्री सहायक हो सकती है। यह तवारीख स्थानीय इतिहास लेखन के लिए महत्वपूर्ण सूचनाएँ देती है।

सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.)

सन्दर्भ संख्या—

1. भाटी हुकुम सिंह ; मेवाड़ के ऐतिहासिक ग्रन्थों का सर्वेक्षण
2. ओझा गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास भाग-2, पृ. 877
3. कोठारिया की तवारीख, पृ. 441
4. (अ) ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 877
   (ब) कोठारिया की तवारीख में माणकचन्द के स्थान पर वीरमदेव का नाम है जबकि दोनों ही स्रोतों में बतलायी गयी सैनिक संख्या में साम्य है।
5. कोठारिया की तवारीख, पृ. 443
6. कोठारिया की तवारीख, पृ. 445
7. कोठारिया की तवारीख, पृ. 448
8. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 878
9. कोठारिया की तवारीख, पृ. 449

10. (अ) कोठारिया की तवारीख, पृ. 451
    (ब) ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 451 पं. ओझा अकबर के आक्रमण के समय खान के तीसरे वंशधर साहिब खान का मारा जाना मानते हैं।
11. कोठारिया की तवारीख, पृ. 408-10
12. (अ) रावत रुकमांगद के नाम महाराणा जयसिंह का परवाना, गुरु आसोज सुदी 7, सं. 1738.
    (ब) मोखण के खेड़े के पटेल लोगों के नाम महाराणा जयसिंह का परवाना।
13. (अ) कोठारिया की तवारीख, पृ. 454
    (ब) कोठारिया का उदयभान रविवार, मार्च 2, 1747 ई. को जयपुर - जोधपुर के मध्य हुए राजमहल के युद्ध में काम आया।
14. (अ) कोठारिया की तवारीख, पृ. 454-55
    (ब) ओझा, जे.के., मेवाड़ का इतिहास, पृ. 72
15. कोठारिया की तवारीख, पृ. 456
    तवारीख में दिए गए संवत् कहीं कहीं गलत दिए गए हैं। तवारीख में रावत की गद्दीनशीनी का वि.सं. 1814 दे रखा है जबकि कोठारिया ठिकाने में उपलब्ध मूल पत्रों की प्रतिलिपि में रावत फतहसिंह के नाम का वि.सं. 1806 का पत्र उपलब्ध है।
16. कोठारिया की तवारीख, पृ. 457 होल्कर का नाथद्वारा पर आक्रमण की घटना 1802 ई. में हुयी थी।
17. कोठारिया की तवारीख, पृ. 458
18. (अ) कोठारिया की तवारीख, पृ. 460
    (ब) ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-2, पृ. 774-76
    (स) व्यास, प्रकाश, राजस्थान का स्वतन्त्रता संग्राम पृ. 155

कानोड़-ठिकाने की अप्रकाशित वंशावली

डॉ. जमनेश कुमार ओझा

इतिहास-लेखन में राजस्थान के ऐतिहासिक गद्य साहित्य का बड़ा महत्व है। इसकी विभिन्न विधाओं में वंशावलियों की उपयोगिता भी अनुपमेय रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र कानोड़-ठिकाने[1] की अप्रकाशित वंशावली के संदर्भ में है।

वंशावली अथवा पीढ़ियावाली (पीड़ियावली, पीढ़ीनामो) का अर्थ किसी वंश या कुल में किसी विशेष व्यक्ति से आरंभ करके उसमें ऊपर या नीचे के पुरुषों का गणनाक्रम से निश्चित स्थान, किसी विशेष कुल की परम्परा में किसी विशेष व्यक्ति की संतति का क्रमागत स्थान, किसी व्यक्ति से या उसकी कुल परम्परा में किसी विशेष व्यक्ति से आरंभ करके बाप, दादे, परदादे, अथवा बेटे, पोते, परपोते आदि के क्रम से पहला, दूसरा, चौथा आदि को स्थान, पुश्त। पीढ़ी का हिसाब ऊपर और नीचे दोनों ओर चलता है। किसी व्यक्ति के पिता और पितामह जिस प्रकार क्रम से उसकी पहली और दूसरी पीढ़ी में हैं, उसी प्रकार उसके पुत्र और पौत्र भी हैं परंतु अधिकतर स्थलों में अकेला पीढ़ी शब्द नीचे के क्रम का ही बोधक होता है, ऊपर के क्रम का सूचक बनाने के लिए प्राय: इसके आगे "ऊपर को" ऐसा विशेषण लगा देते हैं।[2] अंग्रेजी में इसके लिए 'जीनीयलॉजी'[3] शब्द प्रयुक्त हुआ है अर्थात् 'द स्टडी ऑफ फेमेली एनसेस्ट्री उर्दू में 'सिज़रा', कुर्सीनामा' एवं अन्य पर्याय के रूप में वंशवृक्ष, वंशतालिका आदि नामों से जाना जाता है।

यों वंशावलियों में विभिन्न वंशों के व्यक्तियों की सूचियाँ मिलती हैं। ये सूचियाँ प्राय: वंश के निवर्तमान (आदि) पुरुष से प्रारंभ होकर वर्तमान पुरुष तक वंशानुक्रम से मिलती हैं। वंशावलियाँ दो प्रकार से मिलती हैं। प्रथम वे जिनके वंश क्रम के अनुसार केवल शासकों के नाम और उनकी गद्दीनशीनी आदि के संवत् अंकित होते हैं, दूसरी जिसमें शासकों के नाम के साथ-साथ राणियों, कुंवर, कुँवरियों तथा अन्य प्रमुख उपलब्धियों का विवरण लिखा होता है। वंशावलियाँ या पीढ़ियावलियाँ यों तो बड़वा-भाटों के द्वारा ही लिखी जाती थी और प्रत्येक राज-परिवार, सामंत-सरदार के परिवार तक जनसामान्य के जातिगत परिवार के अपने बड़वा भाट होते थे जो अपनी 'पोथियों' में तत्संबंधी वंशानुक्रम का ब्यौरा रखते थे। इन्हें प्राय: 'रावजी' कहा जाता था। जिस परिवार विशेष की वंशावली रखी जाती थी वह परिवार उस बड़वा-भाट अथवा राव का यज़मान होता

था। यह कार्य पैतृक था। पिता के बाद उसका पुत्र इस शृंखला में इस कार्य का निर्वाह करते रहते थे। इनका बड़ा सम्मान किया जाता था तथा अपनी सामर्थ्य के अनुरूप समय-समय पर 'नेग' भी दिया जाता था। विशेषतया राज परिवारों द्वारा प्रदत्त 'नेग' विशेष उल्लेखनीय होते थे। बड़वाजी या रावजी प्राप्त 'नेग' का अपनी 'पोथी' में उल्लेख कर पुनः नवीन वंशधर अथवा जीवित होने पर उसी व्यक्ति से जितना उसके पूर्वज अथवा उसने पूर्व में जितना 'नेग' दिया उससे अधिक या उतना ही लेने का प्रयास करते थे। प्रायः वह उससे कम 'नेग' स्वीकार करने में बड़ी आनकानी करता था। वंशावलियों की जानकारी हमें तीर्थ-स्थल अथवा मंदिर के पंडे-पुजारियों की पोथियों से भी होती है। इतना ही नहीं मेवाड़ व मारवाड़ में तो जैन यतियों द्वारा भी राजपरिवारों की वंशावलियां रखने के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। खरतरगच्छ के जैन यति मारवाड़ राजवंश के कुल गुरु माने जाते थे। राजवंश की वंशावली तैयार करना, शासकों तथा उनके परिवारजनों के क्रिया कलापों का संक्षिप्त अथवा विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना आदि उनका प्रमुख कार्य रहा था। यों वंशावलियों अथवा पीढ़ियावलियों से हमें शासकों, सामन्तों, महारानियों, रानियों, पासवानियों, खवासनियों, ढ़ोलनियों, पड़दायतों, बडारणों, राजकुमारों, राजकुमारियों, मंत्रियों, नायकों आदि की जानकारी के साथ-साथ, कहीं-कही हमें उनके कतिपय प्रमुख कार्यों एवं घटनाओं का ब्यौरा भी मिलता है। इनसे हमें इनके वैवाहिक सम्बन्धों का पता लगता है तथा कौन कहाँ से गोद आया अथवा कहाँ गोद गया, किन कारणों से कब कौनसी जगह छोड़कर अन्यत्र बसे आदि के लिए भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यों इतिहास-लेखन में क्रमबद्धता बनाये रखने में ये काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। श्री अगरचंद नाहटा की मान्यता है कि वंशावलियां प्राचीन काल से लिखी जाती रही हैं किन्तु डॉ. रघुवीरसिंह का मानना है कि वंशावलियाँ अकबर के काल से लिखी जाने लगी थी। निःसंदेह वंशवलियाँ लिखने का क्रम तो प्राचीनकाल से चला आ रहा है किन्तु 16 वीं शताब्दी से ही राजपरिवारों में बड़वाजी की पोथियों अथवा अन्यत्र से वंशावलियाँ लिपिबद्ध कराना प्रारंभ किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं और तब से इन्हें अलग-अलग शासकों ने अपने-अपने समय तक की वंशावलियाँ तैयार कराना प्रारंभ किया। राज्यों में वंशावलियाँ जब तैयार कराई जा रही थी तो इसका प्रभाव उन राज्यों से संबंधित ठिकानों पर भी पड़ा और वहाँ के सामंत-सरदारों ने अपने-अपने ठिकाने की वंशावलियाँ तैयार कराना प्रारंभ किया।

यों भी देखा जाय तो ठिकाने के सामंत को अपने स्वयं के अथवा अपने पुत्रों के विवाह से पूर्व प्रायः ऊपर से तीन अथवा सात पीढ़ी का 'नक्शा' महाराणा को पेश करना पड़ता था। तब जाँच-पड़ताल के पश्चात् उसे विवाह करने की औपचारिक अनुमति प्रदान की जाती थी, किन्तु जाँच-पड़ताल के दौरान यदि कहीं पर भी कोई संदेह होता

तो मनाही अथवा अस्वीकृति भी मिलती थी। वास्तविक जाँच तो ठिकाने में ही जब कन्यापक्ष को ओर से संबंधित कन्या की कुंडली एवं वंश का नक्शा आता तब ही कर ली जाती थी। इसी भाँति जागीदार ठिकाने में नक्शा प्रस्तुत करते थे और इन्हें ठिकानेदार विवाह की स्वीकृति प्रदान करता था। अत: वंशावलियाँ बनवाने एवं सुरक्षित रखने की एक आवश्यक परम्परा सी हो गई थी।

वंशावलियों में राज्य अथवा ठिकानों के संस्थापक पुरुष, वीर एवं प्रजा प्रसिद्ध शासक आदि की नामवली सामान्यता विश्वसनीय होती है। किन्तु इनमें दिये गये तिथि क्रम तथा सैनिक संख्या आदि पर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सकता है। प्रारंभिक शासकों का तिथिक्रम एवं वंशक्रम तो बिल्कुल ही सही नहीं बैठता है क्योंकि ईश्वर से वंशवृक्ष प्रारंभ कर क्रमानुरूप मूल पुरुष तक पहुंचाने के प्रयास में तिथिक्रम एवं प्रारंभिक नामावली की क्रमबद्धता अथवा नामों की विशुद्धता बनी रहने में पूर्ण शंका रहती है। कानोड़-ठिकाने की वंशावली लाखा के पुत्र एवं चूड़ा के भाई अज्जा से प्रारंभ होती है परन्तु इससे पूर्व मेवाड़-शासकों की वंशावली में फिर भी गलतियां रह गई है, जैसे—'सिसोदवंशावली' में कर्णसिंह (रणसिंह 25) तक के नाम अशुद्ध दिये हैं और आगे चित्तौड़ के शासकों के नाम नहीं लिखकर हम्मीर के साथ वंशक्रम जोड़ने के लिये सिसोदे की नामावली राहप से अजयसिंह तक मिला दी है और कल्पना के आधार पर इनकी गद्दीनशीनी के संवत् भी लिख दिये हैं। इस भांति महाराणा हम्मीर तक की सही वंशावली देने में लेखक असफल ही रहा।[4] इतने पर भी इतिहास-लेखन की प्रक्रिया में इनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

सोमवार, अप्रेल 26, 1852 ई. (वैशाख सुदी6,वि.स.1908) को रावत उम्मेदसिंह ने टोकरा गाँव के बड़वाजी की 'पोथी' (पुस्तक) से कानोड़-ठिकाने की पीड्यावली जिस चोपन्या में लिखवाई उस की लम्बाई 21" तथा चौड़ाई 7" है। खोलने पर इसकी लम्बाई 42" हो जाती है। इसमें कुल 86 पृष्ठ हैं किन्तु पृष्ठांक अंकित नहीं है। प्रारंभ में "श्रीरामजी" एवं 'श्री' के बाद टोकरा के बड़वा हमेरसिंहजी की पीढ़ियावली दी गई है। इसके पश्चात् कानोड़ में आकर जिन-जिन लोगों (इस वंश के) सारंगदेवोतों के वंशजों के नाम लिखे, उनके नाम एवं आगमन के वर्ष लिखे हैं। जैसे कसोरजी ने संवत् 1903 (1846 ई.) में, वेणीरामजी का बेटा जवानजीनामा माडा सं. 1916 के वरस, मोतीजी नामा माडा सं. 1921 के वरस आदि आठ बड़वाओं के नाम की सूची दी गई है। इसी चोपन्या में भीण्डर के राणी मंगा[5] गुमानजी के पुत्र खेमराजजी की पोथी में इस भांति लिखा है—सो सं.1937 जेठ सुद 8 पोती बांची सो राणा लाषाजी रे राज लोक षीचणजी पदमकुंवर बाई जा रा कुअर 1 चुडोजी बडा 2 चोटा अजोजी साथ ही

रावत अजीतसिंह 1858 ई. में गद्दी पर बैठा तब तक का संक्षिप्त वर्णन दिया हुआ है। सोमवार, जून 6, 1881ई. (ज्येष्ठ सुदि 9,वि.सं. 1937) के दिन रावत उम्मेदसिंह ने राणी मंगा की पोथी में अपना नामा लिखवाया, उसमें लिखा "श्री हजुर ऊमेदसींघजी रो नाम" उम्मेदसिंह सादड़ी झालीजी रूपकुँवर राज कीरतसिंह की बेटी, चनणसिंह की पोती तथा सुरताणसिंह की पड़पोती से वि.सं. 1909 के बरस शादी की। रावतजी उम्मेदसिंह की रानी झालीजी की पुत्री सोभाग कुँवर का विवाह उणियारा रावराजाजी संग्रामसिंहजी के साथ हुआ। तब रावतजी की ओर से त्याग नुद सरपाव गोड चडी, हाथी 17 लाख पसाव बक्षे। इस विवाह में सादड़ी, राज शिवसिंहजी कुँवरों, भाईयों सहित, बाईजी रूपजी सहित देलवाडा कुँवरजी, बाठरड़ा रावजी सकुटुम्ब, ताणेराज, मोही ठाकर, लूणदा, घाणेराव से दोनों जीजा भान्जों सहित, अठाणे रावजी और भाणेजी बाई सहित पधारे और 10-12 दिन तक मेहमान रहे। तब पकवानों के जीमण होते और मांडा पर ढ़ाई लाख रूपये खर्च हुये। कुँवर नाहरसिंह की "ढूंढ" के उत्सव पर 10-12 हजार रूपये खर्च हुये। इस उत्सव में सम्मिलित होने वाले विभिन्न ठिकानों से आये रिश्तेदारों की नामावली भी दर्शायी गई है। उम्मेदसिंह के समय की स्थापत्यकला की जानकारी का भी यह एक अच्छ सोत है जैसे बड़े महलों में कांच की ओवरी, महलों पर हवा महल, रनिवास में बूझी मांसाहब के तथा बहुजी झालीजी के महल तैयार करवाये। वि.सं. 1915 में बाजार में ठाकुरजी श्री उम्मेदबिहारीजी का मंदिर बनवाया और वैशाख सुदि 5, वि.सं. 1923 (बुध, मई8,1867ई.) के दिन मुरलीधरजी की प्रतिष्ठा कराई। इसी दिन 'इन्द्रबाव' बावड़ी पर माजी भट्याणीजी ने श्री अजीत अजबचन्द्रजी के मंदिर में रामचन्द्र की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा कराई, आदि के साथ-साथ तीर्थ यात्राओं के विवरण, गोठ, आणा तथा महाराणा सज्जनसिंह के कानोड़ आगमन आदि के बारे में सूचना मिलती है। इसी चोपन्या में राणा लाखा से रावत उम्मेदसिंह तक की 16 पीढ़ियावली दी गई है। यह पीढ़ियावली राणी मंगा एवं टोकरा के बड़वा की पोथियों के आधार पर लिखी हुई है। रावत जगतसिंह, रावत जालमसिंह एवं रावत अजीतसिंह के परवानों की नकल से यह स्पष्ट होता है कि बड़वाओं पर पूर्ण विश्वास किया जाता था। जैसे शुक्रवार, दिसम्बर 2, 1763 ई. (मगसर बदी 12, वि.सं. 1820) को रावत जगत्सिंह ने लिखा कि बड़वा भेरुदास की पोथी में नामा लिखवाकर उसका नेग देदें। इसी तरह रावत जालमसिंह ने सोमवार, दिसम्बर9,1793 ई. (मगसर सुदि 7, वि.सं. 1850) को लिखा, ऊचोल बागली रा प्रगणा सुथाने समसत सारंगदेओत भाय्या जोग्य जुहार वाचजो . . . . . अप्रंच।। बड्वा भेरुदास जी रा बेटो ऊदेरामजी ऊठे आवे तो अणा ने मानज्यो ही आपणा कदीमी से ने आपणे बडे बुडे मान्या से सो आपाने ड़ी मानणा ओर को प्रे लुङ बुङ दुजो आवे तो मानो मती। महाराणा भूपालसिंह ने कानोड़ रावत के माध्यम से अपने पुरखाओं द्वारा दक्षिण-अभियान की जानकारी चाही थीं, इस पर रावत केसरसिंह ने कविराज

नवलसिंह को टोकरा गाँव भेजकर बड़वाजी से मालूम किया। तब टोकरा निवासी बड़वा दलपतसिंह ने रविवार,दिसम्बर6, 1931 ई. (मगसर कृष्णा 12, वि.सं. 1988) को जो पत्र लिखा उससे इनकी वंशावलियों पर विश्वास करने की पुष्टि होती है कि, "श्रीजी के हुकम से कविराज नवलसिंह जी मेरे मुकाम पर आये और श्रीजी का मेवाड़ से दक्षण फते करणें पधारणा हुआ जीस्का हालात पुराणी बही में देखणे के लिये जाहीर किया सो मेने तीन दिन तक महिनत करके पुराणी बहीयें देखी उसमें श्री जी हजूर महाराणा राहपजी के पुत्र नरपतजी उनके पुत्र दनकरणजी उनके पुत्र जसकरणजी, उनके नागपालजी, उनके पुत्र पुरणपाल उनके पुत्र प्रथवीपालजी उनके भुंनसीजी, उनके भीमसिंहजी उनके पुत्र जयसिंह और रामसाहजी हुये वो हमारी पुराणी बहियों में लिखा है के राणाराम साहजी याहां से बिसाल सेना लेकर गुजरात की ओर दिगवीजे करणें को विक्रमी समत् 1311 में जांणा दरज है . . . . . हम लोग सिसोदिया बंस के आद बिनाद से बही बंचे है, बही लेकर धर्मपुर में हाजीर होंवेगे ओर श्री जी के हजूर में बही मालम करेंगे वो दीन बड़ा प्रसंसनीय होवेगा, ये ही हाल राणी मंगा की बही में मिल गया है। रवावन्दी रहे- चाकर को बन्दगी में याद फरमाते रहें। श्रीजी का उदयपुर पदाराणा जलदी होवै ऊस मोके कविराज नवलसिंहजी को कहे दिया है सो मुजे भी ईतला देवेंगे तो में बही लेकर उदयपुर हसाजर हो जाउँगा।"[7]

डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा[8] द्वारा दी गई वंश तालिका (देखें परिशिष्ट सं. 1) से यदि उपर्युक्त पत्र में आये नामों का मिलान किया जाय तो राहप (क्र.सं. 2) से दिन-करण (क्र.सं.5) तक की वंशावली मिलती है, क्. सं.6 से 7 नाम नहीं मिलते हैं। पुनः क्र.सं. 8 से 12 तक के नाम मिलते हैं किन्तु राणा रामसाहजी के नाम का कहीं उल्लेख नहीं आया है।

'सिसोदवंशावली'[9] में क्रम संख्या 32 से 34 तक राहप से दिनकर के नाम तो मिलते हैं किन्तु क्र.सं. 35-36 जसकरण व नागपाल के नाम नहीं मिलते हैं। पुनः क्र.सं. 37 से 41 तक की वंशालवली के नाम अवश्य मिलते हैं। परंतु राणा रामसाहजी का नाम इसमें भी नहीं मिलता है। सिसोदवंशावली एवं ओझा की तालिका इस पत्र के नामों की तुलना में अधिक विश्वसनीय लगती है।

गुरुवार मार्च 8, 1877 ई. को रावत उम्मेदसिंह ने टोकरा गाँव के बड़वा हमीरजी की 'पोथी' से कानोड़-ठिकाने की पीड्यावली शाह हीरालाल मोदी से लिखवाई। चमड़े की जिल्द बँधी इस वंशावली की लम्बाई 11" तथा चौड़ाई 13.8" है, जो खुलने पर 22" लम्बी हो जाती है। इसमें कुल 112 पृष्ठ है किन्तु पृष्ठांकन नहीं है। महाराणा

लाखा से 17 वीं पीढ़ी रे रावत नाहरसिंह तक की वंशावली के साथ-साथ तिथिक्रम, संवत् सैनिक संख्या, रानियों खवासनियों, पुत्र-पुत्र, सती होने वाली रानियों एवं खवासनियों आदि के उल्लेख के साथ-साथ इस वंशावली की सबसे बड़ी विशेषता एवं उपयोगिता इस रूप में नजर आती है कि इसमें भाइयों की पीढ़ियावली जैसे कछेर, बाठरड़ा, गड़ा, भूरक्या, भाणपा, सोबजीरा गड़ा, गुरजण्या, जवानसिंह का खेड़ा आदि की वंशावली भी दीं हुई है। साथ ही रावत सारंगदेव के कुँवरों की याद में उसके 10 कुँवरों का नाम लिखा हुआ है। सातवें पुत्र जयमलजी से वागड़ क्षेत्र का ठाकरड़ा गाँव वर्तमान तक इसी के वंशजों की जागीर रहा था। सारंगदेव के पाँचवे पुत्र पत्तोजी के आठवें बेटे जोगाजी का वंश सादड़ी (भोमट क्षेत्र का) नेणवा में विद्यमान है, उसकी वंश तालिका दी हुई है। जोगा का पाटवी रायसिंह का वंश देवमूँगा में है तथा रावत जोगा के तीसरे बेटे बणवीर का वंश बणवीरोत कहलाता है और इसकी पीढ़ियाँ गाँव जतार्या में हैं। महारावत नरबदजी के 9 पुत्रों में से ज्येष्ट पुत्र नेतसिंह तो गद्दी पर बैठा और शेष आठ का वंश चला, उसमें तीसरे कुँवर राणजी के पुत्र लीबजी के वंश में 'पराणा' की जागीर थी। पराणा में ही सातवीं पीढ़ी में नेतसिंह के तीसरे बेटे गुमानसिंह का वंश 'कराणा' में हैं। इसी भांति पराणा के कुँवर भाणजी की पांचवी पीढी में कुशलसिंह के दूसरे पुत्र कीरतसिंह का वंश जालमपुरा गांव में है। इस प्रकार कानोड़-ठिकाना के सारंगदेवोत जागीरदारों एवं तत्संबंधी जागीरों की जानकारी के लिए यह वंशावली काफी महत्वपूर्ण है।[10]

वंशावली से पता चलता है कि महाराणा लाखा वि.सं. 1439 में गद्दी पर बैठा, और 15 वर्ष, 4 माह 17 दिन राज्य किया किन्तु इसमें दी गई सैनिक संख्या में नौ हजार पैदल को छोड़ शेष में अतिशयोक्ति नजर आती है। जैसे 95 हजार घोड़े एवं एक हजार एक सौ हाथी थे। डॉ. गौ.ही. ओझा ने महाराणा लाखा का देहान्त वि.सं. या 1476 के बीच किसी वर्ष हुआ होगा लिखा है[11] किन्तु इस वंशावली में स्पष्टतया वि.सं. 1454 में देहान्त होना लिखा है। साथ ही किस रानी से कौन पुत्र व पुत्रियाँ हुई, इसकी जानकारी भी उपलब्ध होती है, जैसे पाटवी खीचणजी वीरमदेजी की लखमा बाई जिनके बेटे-चूंडाजी, अजाजी, राघोदेजी। दूसरी चौहानजी भीमजी की पुत्री दानकुँवर जिसके बेटे दुलोजी, डूंगरसिंहजी। तीसरी देवड़ीजी राव डूँगरसिंहजी की राजकुँवर जिसके बेटे ,दूदाजी, भीमजी नीअयोजी। चौथी रानी राठोड़जी लालकुँवर बाई राव रणमलजी की पुत्री जिसका बेटा-राणाजी श्री मोकलजी। "सो बडा तो चूडाजी अजाजी हा प्रंत वचन देवा का सबब सु गादी छोटा भाई मोकलजी ने बेठाआ" इसके पश्चात् नौ पुत्रों से निकले वंशों का वर्णन इस प्रकार है—

1. रावत चूंडाजी सलुम्बर जिनके वंशज चूण्डावत हैं।

2. रावत अज्जाजी जिनके कानोड़ सारंगदेवोत हैं।

3. रावत राघोदेवजी केलवाड़ा में काम आये, सिर तो केलवाड़ा में रहा और धड़ कुँआरिया में और पूर्वज (पूरबज) हुए।

4. दुलोजी के वंशज दूल्हावत सीसोदिया जिनके गाँव कुंभलगढ़ के पास हैं।

5. भीमजी के वंशज भीमोत सीसोदिया जिनका आजणी खेडा है।

6. डूंगरसिंहजी के वंशज भांडावत सीसोदिया जो पीराणे (नेतावल?) हैं।

7. रूदाजी के वंशज रुदावत सीसोदिया जो सूरज का गड़ा व सगताजी का गड़ा में हैं। डॉ. ओझा ने इसे 'लूणा के वंशज लूणावत' लिखा है।

8. नीअयोजी का वंश समाप्त हो गया।

9. राणा मोकलजी चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा।

सारिणी सं.1 से सारंगदेवोत राजपूतों में प्रचलित बहु विवाह, सतीप्रथा एवं उनके पुत्र-पुत्रियों की संख्या के साथ-साथ यह जानने में विशेष सहयोग मिलता है कि किस खांप अथवा वंश की लड़कियाँ यहाँ की बहु बन कर आई थी। जैसे कुल 17 वंश क्रम के पुरुषों के 98 रानियाँ एवं सात खवासनें थी। उनमें से 42 राठौड़नीजी, 35 चौहान जी, सात सोलंकणीजी, 5 झालीणीजी, 2 भट्याजी एवं शेष एक-एक थी। यों राठौड़ वंश की रानियाँ 42.85% थी तो 35.71% रानियाँ चौहान वंश की थी और सोलंकणीजी, झालाजी एवं भट्यानीजी क्रमश: 7.14%, 5.10%, 2.04%, थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मारवाड़ क्षेत्र के राठौड़ एवं चौहान परिवार से वैवाहिक संबंधों की अधिकसता के कारण ही कानोड़ में जैन-ओसवाल जाति की अधिकता देखी जा सकती है। जैसे जारोली, नागोरी, पोखरना, बाबेल, नलवाया आदि। रावत जगतसिंह गुरुवार, मई 3,1759ई. (वैशाख सुदि 7, वि.सं. 1815) को गद्दी पर बैठा था। इसकी एक रानी कछवाहा राजावत जी थी। कछवाहा वंश के साथ वैवाहिक संबंध बहुत ही कम होने

के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं—

1. कानोड़ बाटरड़ा एवं बंबोरा से कछवाहा ठिकानों अथवा आमेर-जयपुर की दूरी।

2. 1562 ई, के बाद मेवाड़-आमेर घराने के संबंधों में तनाव।

इतने पर भी रानी तख्तकुँवर बाई (रतनसिंह राजावत की पुत्री) से उत्पन्न पुत्र जालमसिंह ही (ज्येष्ठ पुत्र नहीं था) कानोड़ की गद्दी पर बैठा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह रानी अपने साथ मायके से राजावत परिवार कानोड़ लेकर आई थी। तब से अब तक राजावत-राजपूतों का एक परिवार कानोड़ में विद्यमान है। इस परिवार को ठिकाने की ओर से सालरमारा की जागीर मिली हुई थी। दसवें वंशक्रम के महासिंह ने बांदनवाड़ा में अप्रेल 14,1711ई. को मुगलों के साथ मेवाड़ का अंतिम युद्ध किया जिसमें महासिंह एवं रणबाजखां दोनों ही परस्पर लड़ते हुए खेत रहे। इस सूचना के साथा-साथ इस युद्ध में काम आने वाले सरदारों की सूची भी दी हुई है।[12]

ग्याहरवें बंशधर सारंगदेव (द्वि.) को शुक्रवार, अगस्त 31, 1711ई. को महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने कानोड़-जागीर का पट्टा देते हुए प्रथम श्रेणी का उमराव बनाया। श्री जगदीशसिंह गहलोत एवं म.कु.डॉ. रघुबीरसिंह ने क्रमश: अपनी पुस्तक दुर्गादास राठौड़ में लिखा है कि दुर्गादास राठौड़ का विवाह कानोड़ ठिकाना के सारंगदेव की पुत्री से हुआ तथा उससे तेजकरण और महेशकरण पुत्र पैदा हुए।[13] किन्तु दोनों ही विद्वानों ने इस विवाह का कोई आधारभूत संदर्भ नहीं दिया है। किन्तु इस वंशावली से ज्ञात होता है कि रावत सारंगदेव के ग्यारह रानियां की पुत्री थी। उसमें सातवीं रानी राठोड़ जी ब्रजकुँवर बाई दुर्गादास राठोड़ की पुत्री थी।राठोड़जी करणोत दुर्गादासजी रा बरजकुँवर बाई आसक्रजजी री पोती" सुस्पष्ट लिखा हुआ है। मेरे संग्रह (स्व. श्रीमती मांगबाई ओझा) में उपलब्ध अन्य वंशावलियों से भी मैंने इसका मिलान किया है। रावत सारंगदेव के एक पुत्री बाई उम्मेदकुँअर थी जिसका विवाह उणियारा के भीमसिंह के साथ हुआ था।[14]

वंश क्रम सं.12 से गद्दी पर बैठने की तिथियाँ सुस्पष्ट लिखी हुई मिलती हैं। नि:संदेह ठिकानों के सामन्त-सरदारों की तिथियों की विस्तृत जानकारी के एक मात्र स्त्रोत ये वंशावलियाँ ही हो सकती हैं। साथ ही तलवार बंधाई पर प्रदत्त सामग्री, हाथी, तलवार आदि की जानकारी भी मिलती है।

क्र.सं. 12 रावत पृथ्वीसिंह के एक ही पुत्र उदयसिंह की मृत्यु हो जाने पर रावत महासिंह के छोटे पुत्र नाहरसिंह के द्वितीय पुत्र सामंतसिंह के बेटे जगत्‌सिंह को गोद रखा और वह कानोड़-गद्दी पर बैठा। वंश क्रम 15 से ज्ञात होता है कि रावत अजीतसिंह ने सालमसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह को गोद लिया था। इससे रक्त संबंधों की निकटता का पता लगता है।

सारणी सं. 1 से स्पष्ट है कि सामंतों में प्रायः बहुविवाह की प्रथा प्रसारित थी। विशेषतया क्र.सं. 8 व 11 के क्रमशः 11 व 13 स्त्रियाँ थी एवं अन्यों के भी दो अथवा इससे अधिक ही थी। फिर भी रावत उम्मेदसिंह के केवल एक रानी थी। बहुविवाह के उपरान्त भी संतानोत्पत्ति के प्रतिशत में अधिकता दिखाई नहीं देती है, 66.32% पुरुष वर्ग तथा 28.57% स्त्री वर्ग का था। ऐसी स्थिति में सारंगदेवोत शाखा में पुत्रों की कमी के कारण यह शाखा मेवाड़ अथवा मेवाड़ से बाहर बहुत अधिक विस्तृत नहीं हो सकी है।

वंशावली से हमें सती-प्रथा की जानकारी भी मिलती है 16.32% रानियों के अतिरिक्त 4.08% खवासनियाँ सती हुई थी। कुल 17 वंशधरों में से केवल आठ के साथ ही सती होने की जानकारी मिलती है, इससे यह तो स्पष्ट है कि यह कोई स्थायी परम्परा अथरा प्रथा नहीं थी। क्र.सं. 11 के साथ चार रानियों के सती होने का उल्लेख मिलता है किन्तु कानोड़ मे सारंगदेव की टूटी हुई छतरी पर लगी मूर्त्ति से स्पष्ट होता है कि सारंगदेव के साथ सात रानियाँ सती हुई थी। मूर्त्ति में सारंगदेव के दाहिनी ओर चार तथा बाई ओर तीन स्त्रियाँ उत्कीर्ण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वंशावली की नकल करते समय यह गलती रह गई हो। निःसंदेह सती-प्रथा एक सामाजिक बुराई थी और तत्कालीन परिस्थियों में स्त्रियों की हीन दशा का बोध होता है। रावत उम्मेदसिंह (1850 ई.) के युग तक बहुविवाह में कमी एवं सती प्रथा बंद सी हो गई जिसका कारण राजपूतों का अपने हितों के प्रति जागृत होना तथा अंग्रेजों का प्रभाव माना जा सकता है।

इतना ही नहीं वंशावलियों से हमें स्त्रियों द्वारा निर्माण कार्य में अभिरूचि लेने के उदाहरण भी पर्याप्त मिलते हैं जैसे रावत पृथ्वीसिंह की रानी इन्द्रकुवँरबाई चौहानजी ने वि.सं. 1817 में इन्द्रबाव बनवाई जिसकी पुष्टि बावड़ी पर लगे शिलालेख से भी होती है।[15] रावत अजीतसिंह की मोही गाँव की भट्‌यानी रानी अबजकुँवरबाई ने इन्द्रबाव पर मंदिर बनवाया जिसका नाम अजीत अजबचंद जी का मंदिर रखा तथा महासतियों की छतरी बनवाई। मंदिर के गर्भगृह के द्वार पर शिलालेख लगा हुआ है किन्तु चूने का प्लास्टर लगा होने से स्पष्टतया पढ़ने में नहीं आया है। क्र.सं. 17 के रावत नाहरसिंह

का राठौड़ चांपावतजी जसवंतसिंह की पुत्री रतनकुँवर बाई के साथ मंगलवार, नवम्बर 16, 1875 ई. (मगसर बदी 3, वि.सं. 1933) को विवाह हुआ तब घोड़े पर चढ़ते समय आवोर की ओर से 5000/- रूपया 'त्याग' में बाँटा गया तथा केलवा के राठौड़ जेतमालोत ओनाड़सिंह की पुत्री नवलकुँवर बाई के साथ रावत नाहरसिंह का गुरुवार, दिसम्बर 6, 1877ई. (मगसर सुदी 2, वि.सं. 1934) को विवाह हुआ तब केलवा ठाकुर की ओर से घोड़ चढ़ी में चार हजार रूपया 'त्याग' में बाँटा गया था। यों तत्कालीन राजपूत समाज में व्याप्त 'त्याग-प्रथा' की जानकारी होती है।"[16]

यों राजस्थान-इतिहास लेखन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए वंशावलियाँ एक महत्वपूर्ण प्रामणिक मूल स्रोत हैं किन्तु हमें इनका उपयोग काफी सावधानीपूर्वक करना चाहिए। वास्तव में वंशावलियाँ कई अछूते, अनिर्णीत निष्कर्षों पर पहुंचाने एवं सुलझाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

नोटः- तुलनात्मक अध्ययन इस पेज के पीछे है—

संख्या	रणकपुर का लेख वि.सं. 1496	राणा कुंभाकालीन एकलिंगमाहात्म्य	कुंभलगढ़ का लेख वि.सं. 1517	जगदीश मंदिर का लेख वि.सं. 1708	एकलिंगजी का लेख वि.सं. 1709
	1	2	3	4	5
1.	—	माहप	—	—	—
2.	—	राहप	—	राहप	राहप
3.	—	—	—	—	—
4.	—	हरसू	—	नरपति	नरपति
5.	—	बबरू	—	दिनकर्ण	दिनकर
6.	—	यशकरण	—	जसकर्ण	जसकर्ण
7.	—	नागपाल	—	नागपाल	नागपाल
8.	—	पूर्णपाल	—	पूर्णपाल	कर्णपाल
9.	—	फेखर	—	पृथ्वीमल्ल	—
10.	भुवनसिंह	भुवनसिंह	—	भुवनसिंह	भुवनसिंह
11.	—	भीमसिंह	—	भीमसिंह	भीमसिंह
12.	जयसिंह	जयसिंह	—	जयसिंह	जयसिंह
13.	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह
14.	अजयसिंह	—	—	—	—
15.	अरिसिंह	अरसी	अरिसिंह	अरिसिंह	अरसी
16.	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर	हम्मीर

क्र.सं. 1 से 9 तक डॉ. गो.ही. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जि. 1, पृ. 203

क्र.सं. 9 सिसोदवंशावली, प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान उदयपुर की नकल मेरे निजी संग्रह में सुरक्षित संपादित सिसोद वंशावली पृ. 33-40 (सं. डॉ. हुकमसिंह भाटी)

क्र.सं. 10 पत्र टोकरा से दलपतसिंह का दि. मगसर, कृष्णा 12, वि.सं. 1988 (रवि., दिसम्बर 6, 1931 ई.)

राजप्रशस्ति महाकाव्य वि.सं. 1732	मुहणोत नैणसी की ख्यात	वीर विनोद	सिसोद वंशावली	बड़वा के पत्र में लिखे नाम
6	7	8	9	10
माहप	माहप	—	25 कर्णसिंह	—
राहप	राहप	राहप	26 राहप	राहप
—	देदू	—		
नरपति	नरू	नरपति	27 नरपति	नरपत
—	हरसू	दिनकरण	28 दिनकरण	दनकरण
जसकर्ण	जसकरण	जशकरण	29 जसकरण	जसकरण
नागपाल	नागपाल	नागपाल	30 नागपाल	नागपाल
पुण्यपाल	पुणपाल	पूर्णपाल	31 पूर्णपाल	पूरणपाल
पृथ्वीमल्ल	पेथड़	पृथ्वीपाल	32 पृथ्वीपाल	पृथ्वीपाल
भुवनसिंह	भवणी	भुवनसिंह	33 भूणसिंह	भुनसिंह
भीमसिंह	भीमसी	भीमसिंह	34 भीमसिंह	भीमसिंह
जयसिंह	अजयसी	जयसिंह	35 जयसिंह	जयसिंह
लक्ष्मसिंह	भड़ लखमसी	लक्ष्मणसिंह	36 गढ़ लक्ष्मणसिंह	रामसाह
अजेसी	—	अजयसिंह	37 अरिसिंह	
अरसी	अड़सी	अरिसिंह	38 अजयसिंह	
हम्मीर	हम्मीर	हमीरसिंह	39 हम्मीरसिंह	

क्र.सं.	वंश प्रधान का नाम	गद्दी नशीनी की तारीख	रानियों की संख्या	पुत्रों की संख्या
1.	लाखा	1439 वि.सं.	04	09
2.	अज्जा		03	05
3.	सारंगदेव	1465 वि.सं.	04	08
4.	जोगा	1492 वि.सं.	03	03
5.	नरबद		07	09
6.	नेतसिंह	1545 वि.सं.	10	(06 + 02) पुत्र खवासण से
7.	भाण	1582 वि.सं.	08	04
8.	जगनाथसिंह	1611 वि.सं.	11	01
9.	मानसिंह		06	06

पुत्रियों की संख्या	अन्य स्त्रियाँ	सती होने वाली स्त्रियों की संख्या	रानियों की खांप/वंश विशेष
—	—	—	1 खीचणजी, 1 चौहानजी, 1 देवड़ीजी, 1 राठोड़जी
—	—	—	1 राठोड़, 1 देवड़ी, 1 चौहान
—	—	—	1 सोलंकी, 2 हाड़ी, 1 सोनगरीजी
02	–	–	1 राठोड़, 1 सोलंकणी, 1 चौहान
02	–	–	1 सोलंकणी, 1 हाड़ी, 1 चौहान, 1 झाली, 2 सोनगरीजी, 1 राठौड़
01	01 (खवासन, बडगूजर करमेता)	01	4 राठोड़, 1 सोनगरीजी, 1 देवड़ी, 1 चौहान, 2 सोलंकणी, 1 खेराड़ी (सती)
03	–	01	3 राठोड़, 2 सोनगरीजी, 1 देवड़ीजी, 1 चौहान (सती), 1 बेलीमालजी की राजकुंवरबाई
01	02 (खवासनें)	05 + 02 रानियाँ खवासनियां = 07,	1 बहेलीजी, 1 सोलंकणी, 3 राठोड़, 2 चौहान
05	–	02	3 राठोड़, 1 झाली, 1 बहेलीजी, 1 चौहान

10.	महासिंह		09	04
11.	सारंगदेव		11	05
12.	पृथ्वीसिंह	फाल्गुन बदी 14, वि.सं. 1797	05	02 (एक की मृत्यु) 1 गोद लिया
13.	जगत्सिंह	वैशाख सुदी 7 वि.सं. 1815	07	(04 + 02) पुत्र खवासण से
14.	जालमसिंह	आसोज बदी 7, वि.सं. 1844	04	04
15.	अजीतसिंह	वैशाख बदी 9, 1858 वि.सं.	03	02 (एक की मृत्यु) 1 गोद
16.	उम्मेदसिंह	श्रावण बदी 12, 1907 वि.सं.	01	02
17.	नाहरसिंह	पोस सुदी 2, 1940 वि.सं.	02	–
			98	65

03	02	02 (खवासने)	5 राठोड़, 1 झाली, 1 साकलीजी, 1 चौहान, 1 खीचण
01	—	04	1 चौहान, 1 झाली, 6 राठोड़जी, 1 भट्यानी, 1 सोलंकणी, 1 बाघेली
02	—	—	4 राठोड़, 1 चौहान
01	02	02	3 राठोड़, 1 कछवाहा राजावतजी, 1 मेरतणीजी, 1 चौहान, 1 भट्यानी
03	—	01	2 चौहान, 2 राठोड़
02	—	—	2 राठोड़, 1 भट्याणी
02	—	—	1 झाली (बड़ी सादड़ी)
—	—	—	2 राठोड़
28	07	20	

संदर्भ संख्या—

1. मेवाड़ के प्रथम श्रेणी के ठिकानों में कानोड़ विशेष महत्व रखता है। यहां के उमराव महाराणा लाखा के छोटे पुत्र अज्जा के बेटे सारंगदेव के वंशज हैं। अज्जा अपने अग्रज चूंडा की भांति मेवाड़ के प्रति स्वामिभक्त रहा। सारंगदेव द्वारा संग्रामसिंह का पक्ष लिये जाने पर वह संग्रामसिंह के भाई पृथ्वीराज के हाथों मारा गया। संग्रामसिंह जब मेवाड़ का स्वामी बना, तब सारंगदेव की सेवा का स्मरण कर उसके पुत्र जोगा को मेवल प्रदेश में जागीर दी और उसका नाम अमर करने के लिये यह आज्ञा दी कि उसके वंशज सारंगदेवोत कहलायेंगे। सारंगदेव का उत्तराधिकारी जोगा खानवा-युद्ध में काम आया, उसका पुत्र नरबद अकबर की चित्तौड़-चढ़ाई के समय मारा गया। नरबद का पुत्र नेतसिंह हल्दीघाटी के युद्ध में खेत रहा। तब उसके पुत्र भाण ने महाराणा प्रताप एवं अमरसिंह के साथ कई लड़ाइयाँ लड़ी। तदनन्तर जगन्नाथ ने मेवाड़ की सेवा की। अत: उसे कानोड़ की जागीर मिली। इसके बाद उसके उत्तराधिकारी मानसिंह को कानोड़ के बदले लूणदा की जागीर दी गई। महासिंह और रणबाजखां बांदनवाड़ा के युद्ध में लड़कर परस्पर खेत रहे, अत: महाराणा संग्रामसिंह द्वि. ने उसके ज्येष्ठ पुत्र सारंगदेव द्वि. को शुक्रवार, अगस्त 31, 1711ई. को कानोड़ की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का उमराव बनाया।
2. दी एन्साइक्लोपीडिया इंडिका (सं. नगेन्द्रनाथ वसु), जि.13, पृ.659. यह शब्द मनुष्यों ही के लिए नहीं अन्य सब पिण्डज तथा अण्डज प्राणियों के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। **राजस्थानी शब्द कोष** 9सं. बदरी प्रसाद साकरिया, भूपति. साकरिया) जि. 2, पृ. 774 पीढियावली (ना.) वंशावली, पीढ़ियों का ग्रन्थ (पीठी नामो, पीढ़ी (ना.)1 विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ दिये हुए वंशानुक्रम की पुस्तक। पीढ़ियावली। 2 वंशानुक्रम।वंश परम्परा 3 बैठने की चौकी, जि.3, पृ.स 1272, वंशावली (ना.) वंश के पुरुषों की जन्मानुक्रम से लिखी गई नामावली, वंश तालिका, पीढ़ीनाम, पीढ़ियावली.
3. न्यू स्टेण्डर्ड एन्साईक्लोपीडिया, जि.VI, पृ.जी. 69
4. जे.के. ओझा, इतिहास लेखन में राजस्थानी सम्पादित ग्रन्थों की उपयोगिता (द्रष्टव्य-अप्रकाशित शोध निबंध)
5. सिसोद वंशावली एवं राजस्थान के रजवाड़ों की वंशावलियें (सं.डॉ.हुकमसिंह भाटी) पृ. 7-9
6. केवल रानियों की नामावली लिखने वाले भाट, भाटों की एक शाखा, देखें-राजस्थानी हिन्दी संक्षिप्त शब्द कोश (सं. सीताराम लालस) जि.2, पृ.467
7. स्व. श्रीमती मांगबाई ओझा संग्रह में सुरक्षित बस्ता नं.1, चोपन्या नं.13

8. वही, पत्र-टोकरा से दलपतसिंह का महाराणा भूपालसिंह को दि. मगसर कृष्णा 12, वि.सं. 1988 (रविवार, दिसम्बर6, 1931ई.)
9. डॉ. गौ.ही ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जि. 1, पृ.23
10. सिसोदवंशावली, पृ.33-40
11. स्व. श्रीमती मांगबाई ओझा संग्रह में सुरक्षित, कनोड़ की पीड़ियावली (कानोड़-ठिकाने की वंशावली, अप्रकाशित)
12. ओझा, उदयपुर, जि.1, पृ. 270
13. कानोड़ की पीडियावली (कानोड़-ठिकाने की वंशावली)
14. जगदीशसिंह गहलोत, दुर्गादास राठौड़, पृ.100, कानोड़ के सारंगदेवोत सिसोदिया रावत की पुत्री से दो पुत्र-तेजकरण और मेहशकरण (महेशकरण)। डॉ. रघुवीरसिंह, दुर्गादास राठौड़, पृ. 175
15. कानोड़-संग्रह (श्रीमती मांगबाई ओझा-संग्रह में सुरक्षित) बस्ता नं.1 चोपन्या नं.13, कानोड़ की पीडियावंली (अप्रकाशित), तेवारीक हालात महारावतजी अजाजी सु महारावत अजीतसिंह तक (अप्रकाशित)
16. इन्द्रबाव-शिलालेख, आसोज सुदी15, वि.सं. 1823 (शानि., अक्टू18, 1766ई.)
17. द्रष्टव्य-कानोड़ की पीडियावली (वंशावली)

गोगूंदा की ख्यात

विक्रमसिंह भाटी

इतिहास जानने के साधनों में ख्यात ग्रन्थों का विशेष महत्व रहा है ।क्योकि ख्यात में जीवन-घटनाओं व युद्ध अभियानों का ही नहीं अपितु सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं का विस्तार से विवरण मिलता है। इसलिए इतिहास लेखन में श्यामलदास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा आदि इतिहासकारों ने ख्यातों का उपयोग एक आधारभूत स्रोत के रूप में किया है।

17वीं शताब्दी से ख्यात लेखन परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ और यहां मारवाड़ में अनेक ख्यातें लिखी गईं, जैसे—मुहणोत नैणसी री ख्यात, जोधपुर राज्य री ख्यात, महाराजा मानसिंह री ख्यात, मूंदियाड़ री ख्यात; परन्तु मेवाड़ में ख्यात लेखन की परम्परा 19वीं शताब्दी के अन्त में प्रारंभ हुई।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब मेवाड़ व मारवाड़ आदि राज्यों के इतिहास लेखन का कार्य प्रारंभ किया गया उस समय राज्य के निर्देशानुसार ठिकानेदारों ने अपने-अपने ठिकाने का इतिहास प्रेषित किया जो कि ख्यात व तवारीख के नाम से जाना गया। इसमें गोगूंदा की ख्यात महत्वपूर्ण है।

यह ख्यात गोगूंदा ठिकाने के संग्रह में संगृहीत है। इसमें कुल 500 पृष्ठ हैं। इस ख्यात की लिपि देवनागरी व भाषा राजस्थानी (मेवाड़ी) है तथा लिपिकाल 1884 ई. है।

प्रस्तुत ख्यात में न केवल गोगून्दा के झाला राज-राणाओं की मुख्य उपलब्धियों, राजनैतिक गतिविधियों और उनकी संतति का वर्णन दिया है बल्कि भौगोलिक स्थिति, भवन निर्माण कार्य, सामाजिक मान्यताएं और जन कल्याण सम्बन्धी कार्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अनेक घटनाओं की पुष्टि हेतु पट्टे-परवानों की प्रतिलिपियाँ दर्ज की हैं। मेवाड़ में झालों का प्रवेश 16वीं शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। हलवद के राणा राजसिंह के दो पुत्र अज्जा व सज्जा मेवाड़ के महाराणा रायमल के पास आकर रहे। इन्हें क्रमशः बड़ी-सादड़ी व देलवाड़ा के उमराव होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

देलवाड़ा के राजराणा मानसिंह के पौत्र कान्हसिंह को गोगून्दा की जागीर मिली। इस प्रकार झालों के ये तीन ठिकाने प्रथम श्रेणी के रहे।

ख्यात के अनुसार महाराणा कर्णसिंह की ओर से संवत् 1676 में तापा, रोहड़ो आदि 24 गाँव कान्हसिंह को मिले। पट्टे की प्रतिलिपि ख्यात में दी है। गोगूंदा पर इडरिया राठौड़ों का अधिकार था। कान्हसिंह ने संवत् 1685 में राठौड़ों पर आक्रमण कर गोगूंदा हस्तगत किया। इस पर महाराणा जगत्सिंह ने गोगूंदा का पट्टा कान्हसिंह के नाम कर दिया। इस पट्टे की प्रतिलिपि ख्यात में दी है।

कान्हसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जसवन्तसिंह संवत् 1725 में गद्दी पर बैठा। महाराणा राजसिंह व जयसिंह की ओर से जसवन्तसिंह के नाम लिखे गये परवानों से औरंगजेब की सेना की हलचलों व उसकी प्रतिक्रियाओं का विवरण ख्यात में प्रामाणिक रूप से उपलब्ध होता हैं। मुगलों से हुई मुठभेड़ में जसवन्तसिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी रामसिंह को जयसमन्द की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया। उसने वहां पर अपनी चौकी स्थापित की और वहां के उपद्रवी भीलों का दमन करने में अपना योगदान दिया। उसका अनुज प्रतापसिंह इस लड़ाई में मारा गया।

रामसिंह के उत्तराधिकारी अजयसिंह ने महाराणा संग्रामसिंह (द्वि.) की सेवा में रहकर विभिन्न लड़ाइयों में अच्छा पराक्रम दिखाया। फलस्वरूप 65 गांव वृद्धि के रूप में दिये और गादोटा के घाटे में गढ़ी बनाने का निर्देश दिया। इसके बाद कान्हसिंह (द्वि.) ने गोगून्दा की बागडोर सम्भाली। उसने उपद्रवी भीलों का दमन कर अपनी योग्यता का परिचय दिया। तत्पश्चात् जसवन्तसिंह (द्वि.) गोगूंदा की गद्दी पर बैठा। उसके समय में महाराणा राजसिंह के बाद अरिसिंह उदयपुर का महाराणा बना। तब राजसिंह की झाली राणी (गोगूंदा) से पैदा हुए रतनसिंह का पक्ष जसवन्तसिंह झाला ने लिया और उक्त महाराणा के विरुद्ध लड़ाइयाँ लड़ी जिससे गोगूंदा ठिकाने और महाराणा के सम्बन्ध बिगड़ गये और जसवन्तसिंह को गोगूंदा छोड़कर चुली के ढाने में जाना पड़ा, लेकिन झाला शत्रुशाल (द्वि.) के समय में इस कटुता का अन्त हो गया तथा वृद्धि में अनेक गाँव इसे प्राप्त हुए। महाराणा भीमसिंह के समय मराठों के आक्रमण की गतिविधियाँ जब बढ़ गईं तब मेवाड़ की सेना ने धन हस्तगत करने के लिए संवत् 1869 में आक्रमण किया। लेकिन गोगूंदा के राजराणा द्वारा मोर्चाबन्दी किये जाने पर उनकी योजना फलीभूत नहीं हुई। इस प्रकार राजराणा लालसिंह, मानसिंह की राजनैतिक घटनाओं और सामरिक

उपलब्धियों का वर्णन ख्यात में लिपिबद्ध है।

कुरूब-कायदे—

ख्यात में गोगूंदा के राजराणा, कुंवर, भंवर व छोटे कुंवर के कुरब कायदों अर्थात् मर्यादा सम्बन्धी एक लम्बी सूची दी है। इससे शिष्टाचार सम्बन्धी नियमों का पता चलता है वहीं ठिकाने के वैभव और उसके स्तर का भी बोध होता है। इसकी तुलना हम प्रथम श्रेणी के अन्य ठिकानेदारों से कर सकते हैं।

आतिथ्य सत्कार व समारोह—

गोगूंदा में महाराणा के अतिरिक्त दूसरे जागीरदार और उनके रिश्तेदार जब आते थे तब उनका आतिथ्य-सत्कार बड़े भव्य समारोह के साथ किया जाता था। संवत् 1895 में महाराणा जवानसिंह गोगूंदा आए तब राजा राणा शत्रुशाल ने अम्बामाता की घाटी तक जाकर उनका स्वागत किया और गोगूंदा में प्रवेश करते समय नज़र-नछरावल की। साथ में आए 2500 आदमी, 3 हाथी, 700 घोड़े, 200 ऊंट व बैलों के लिए खाद्य सामग्री व चारे-पानी की व्यवस्था की गई। महाराणा की ओर से शिकार करने का विशद वर्णन ख्यात में हुआ है। महाराणा के सम्मान में दिये गये भोज-सम्बन्धी विवरण से ठिकाने के ठाठ-बाट और रीति-रिवाजों का बोध होता है।

संवत् 1942 में महाराणा फतेहसिंह शिकार करने के लिए गोगून्दा गये उस समय महाराणा को नजराना किया गया और बड़े भोज की व्यवस्था की गई। महाराणा के साथ आये मेवाड़ के सरदार और छड़ीदार, हलकारा आदि की सूची दी है। भोज इत्यादि की सारी व्यवस्था किस प्रकार की गई इसका विस्तृत वर्णन ख्यात में मिलता है। इसी प्रकार खेरवा ठाकुर गोगूंदा आए तब उनका नजर-नछरावल कर आतिथ्य सत्कार किया गया और उनके सम्मान में भोज रखा गया। ख्यात में इसका सटीक वर्णन हुआ है।

तीर्थ यात्रा—

गोगूंदा के राज-राणाओं का तीर्थ यात्रा करने में बड़ा विश्वास था। झाला अजयसिंह व मानसिंह ने मथुरा, गया, बनारस, काशी अयोध्या, हरिद्वार, वृंदावन और पुष्कर की यात्रा की। उस समय उसके साथ चले सरदारों और कर्मचारियों के नाम दिये गए हैं। मानसिंह द्वारा तीर्थ-स्थलों के पण्डों को भूमि देने व पुण्य करने का उल्लेख हुआ है।

मन्दिरों का निर्माण व जीर्णोद्धार—

गोगूंदा व उसके आस-पास के गाँवों में स्थित सूरज नारायण, शीतलामाता, चतुरभुज, लक्ष्मीनारायण, आदमाता, मुरलीधर, जोत श्याम, महादेव, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव ठाकुरजी

आदि मन्दिरों का उल्लेख करते हुए बतलाया गया हैं कि यह मन्दिर कब और किसने बनाये तथा इनका जीर्णोद्धार किसने करवाया।

इमारतें व घाटियों का वर्णन–

ख्यातकार ने गोगूंदा में भवन निर्माण कार्यों की जानकारी कराते हुए यहाँ की घाटियों व पहाड़ों का वर्णन किया है। गोगूंदा के पश्चिम में स्थित जसवन्तगढ़ का निर्माण संवत् 1833 में जसवन्तसिंह ने कराया। इतना ही नहीं घाटियों में पनपने वाले पेड़-पौधों और प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलों के बारे में जानकारी दी है। इससे यहाँ की भौगोलिक स्थिति और स्थापत्य कला के प्रति झालाओं के अनुराग का पता चलता है।

ठिकाने में राज-राणाओं व उनकी ठकुरानियों की स्मृति में छतरियों का निर्माण करवाया गया। छतरियों का निर्माण कब और किसने करवाया इसका उल्लेख हुआ है। जलपूर्ति के लिये गोगूंदा व उसके आस-पास कुएं, बावड़ियों का निर्माण करवाने और अनेक बगीचे लगाने का भी उल्लेख हुआ है।

हासल व बराड़–

साधारणत: कृषकों से उपज का चौथा हिस्सा लिया जाता था। बराड़-कर, वर्षा, सर्दी, गर्मी के मौसम के अनुसार लिया जाता था और जहाँ बराड़ नहीं लिया जाता था, वहां उपज का आधा हिस्सा लिये जाने का प्रावधान था। युद्ध के समय तीसरा हिस्सा लिया जाता था। महाजन लोगों से तीनों मौसम (वर्षा, सर्दी, गर्मी) में झूंपी-बराड़ वसूल की जाती थी। चंवरी (विवाह-कर) पांच रुपए लगता था। तेलियों से एक घाणी पर पाव तेल लिया जाता था। इसके अतिरिक्त नाई, खाती, लोहार, धोबी और भील इत्यादि जातियों से ली जाने वाली नि:शुल्क सेवाओं का उल्लेख हुआ है।

ख्यात में विविध प्रकार की सामग्री का वर्णन मिलता है। जैसे भारत के प्रमुख रियासतों को कितनी तोपों की सलामी दी जाती थी इसकी एक लम्बी सूची अंकित है। मेवाड़ के प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी के ठिकानेदारों की सूची में उनकी बैठक छटून्द व चाकरी का अंकन है। जयसमुद्र की बनावट और इसके ऊपर निर्मित भवनों का विवरण दिया है। एक जगह राजपूतों की शाखाओं का नामोल्लेख है जो नैणसी की ख्यात से मिलता जुलता है।

सीमा-विवादों को लेकर झगड़े होते थे। इनका निपटारा किस प्रकार किया जाता था, इसके कई उदाहरण ख्यात में मिलते हैं। सीमा-निर्धारित करने के लिए मीनारें गाड़ी जाती थीं और उसका खर्चा स्थानीय जागीरदारों से वसूल किया जाता था।

अपराधी भोमियों को दण्ड दिये जाने का उल्लेख भी ख्यात में है। अतः उस समय की न्याय-व्यवस्था को समझने में यह ख्यात महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार ख्यातकार का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक रहा है। वह केवल गोगून्दा के झालाओं का राजनैतिक इतिहास ही नहीं बल्कि उनकी मुख्य उपलब्धियों, भवन-निर्माण कार्य, तीर्थ-यात्राओं आतिथ्य सत्कार, गोगुंदा की भौगोलिक स्थिति तथा मेवाड़ के दूसरे उमरावों के बारे में भी समुचित जानकारी कराता है जो उस समय के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास जानने में सहायक हैं।

भूपाल नोबल्स संस्थान परिसर
उदयपुर

मेवाड़ की हकीकत बहियाँ

डॉ. द्वारका लाल माथुर

मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा लिखवाई गई हकीकत बहियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण हैं। वैसे तो हकीकत का अर्थ वास्तविकता से है। राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर में बख्शीखाना अनुभाग में महाराणा स्वरूपसिंह, शम्भूसिंह और सज्जनसिंह के काल की अनेक हकीकत बहियाँ उपलब्ध हैं।

महाराणा शम्भूसिंहकालीन वि.सं. 1923 की बही संख्या 36 अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस बही का आकार 6"x24" है जिसमें कुल 76 फोलिओ है। यह बही सावण वदी एकम, जबकि मेवाड़ में नया वर्ष प्रारम्भ होता था, से चालू होती है। इस बही को लिखने वाला बख्शी रधीराम राजारामोत था।

बही में सावण वदी एकम की महाराणा की दिनचर्या और घटनाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'श्री हजूर नाम अखाड़े लीदा, तुला रु. 8000 कीदी, पछे जगमन्दर पदारा, पछे घड़ी 6 दीन पाछला थी मेला पदारा, जनानों कुसमेला हो सो उठे पदारा, पाछा पदार चन्द्र मेला में पोसाक कर आए-आंगण री हतणी बीराज जीमण अरोग्या, गोठ हुई, पछे छोटी चत्रसाली में भगतणीया री नाच हुओ, पछे बड़ी चत्रसाली पदारा-पोढया।'

इसी प्रकार से तीज के त्यौहार का वर्णन करते हुए भादवा वदी 2 का वर्णन मिलता है कि, 'तीज रो त्यौहार हुवो, श्रीजी जगनीवास पदारा, सारो दीन रेवास हुवो, तीजा पोरा पछे दो घड़ी दीन सु नाव असवार हुवा, मेलो त्रपोल्या गाट पर भरयो-ख्याल छुटा। आगा सूं दली दरवाजा दोई असवारी वेती, मेलो भरतो सो माफ, मेलो गाट पर ढेरयो त्रपोलिया भंगतणा री घूमर लीदो, दोई तीजा नवेसर गाट पर मेलो हुवो।' इस में प्रमुख तथ्य यह है कि महाराणा शम्भुसिंह से पूर्व तीज के दिन समस्त उत्सव और मेले से सम्बन्धित आयोजन दिल्ली दरवाजा के बाहर स्थित मैदान में होता था। महाराणा की सवारी भी महलों से आरम्भ होकर मुख्य बाजार से होकर उस मैदान में पहुंचती थी। परन्तु महाराणा शम्भुसिंह ने इस मेले के स्थान में परिवर्तन करके बागोर की हवेली स्थित त्रिपोलिया के घाट पर इसे प्रारम्भ करवाया।

बही के फोलियो 6 पर दशहरा के अवसर पर समस्त मेवाड़ के शक्तिपीठ के आयस और वहाँ के जागीरदारों को भेजे गए परवानों की सूची दी हुई है।

फोलियों 12 पर 14 दिसम्बर 1866 का मेजर इड़न से पत्र व्यवहार है। उस अवसर पर भारत के गवर्नर जनरल द्वारा आगरा में भारत के समस्त राजा महाराजाओं के सम्मेलन का आयोजन किया गया था परन्तु महाराणा ने उसी वर्ष राज्याधिकार प्राप्त होने के कारण, कार्य की अधिकता का बहाना बना कर आगरा सम्मेलन में पहुँचने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

ज्ञातव्य है कि जिस समय अर्थात् 17 नवम्बर 1861 ई. को महाराणा शंभुसिंह गद्दी पर बैठा उस समय वह नाबालिग था। उस समय राजपूताना का एजेन्ट टू गर्वनर जनरल कर्नल जार्ज लारेन्स और मेवाड़ का पॉलिटिकल ऐजेन्ट मेजर टेलर था। महाराणा की नाबालिगी के परिणामस्वरूप मेवाड़ का प्रशासन पंच सरदारी अथवा रीजेन्सी कौन्सिल द्वारा संचालित हो रहा था। इस पंच सरदारी में प्रमुख रूप से बेदला का राव बख्तसिंह, गोगुन्दा का राजराणा लालसिंह, भैंसरोडगढ़ का रावत अमरसिंह, देवगढ़ का रावत रणजीत सिंह, भीन्डर का महाराज हमीरसिंह तथा महता शेरसिंह, कोठारी केसरीसिंह तथा पुरोहित श्यामनाथ सदस्य थे जबकि स्वयं टेलर इसका अध्यक्ष था।

इसके अतिरिक्त फोलियो 27 पर महाराणा द्वारा सेठ फूलचन्द विराणी और सेठ रघुनाथसिंह विराणी को पत्र लिख कर मेवाड़ में व्यापार-वाणिज्य को उन्नत करने के आदेश दिये गये हैं तथा उल्लेख किया गया है कि उनके माल की सुरक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध राज्य द्वारा किया जाएगा।

इसके साथ ही साथ बही के अगले पृष्ठों में टोंक, ग्वालियर और घाणेराव से सम्बन्धित मुकदमों का पत्र व्यवहार है।

इसी प्रकार से महाराणा फतहसिंह के काल की हकीकत बहियों में भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन मिलता हैं। महाराणा फतहसिंह के काल की 45 बहियें महाराणा मेवाड़ अनुसन्धान केन्द्र, उदयपुर में सुरक्षित हैं। महाराणा के गोद लेने का निम्न वर्णन मिलता है—

'दन गड़ी 1 रमा रजीटड वालटर साहब डाकदर मलन साहेब वनगेट साहेब दीरीखाने आया, कुरसया पे बेठा, सला करी, सरदारा जाएन डोडी अरज कराई कु.

फतेसींगजी ने लेवा ताबे दो तीन दाण साहेब तीरे वा डोडी सरदार फरमा सला ठेरी। रात गड़ी 8 गीया बाबाजी गजसीगजी रा कुंवर फतेसीगजी ने खोल्या लेवा रो करार पाई हुई। साता री पाएगा उपरला दरीखाना में सब सरदार पासवान हा, उठा सुन्धी हजूर ने पाडे री ओरी आगे पोसाक कराई दरीखानों सवो सरोवण को हुवो मातमपोसी को चोक् में इ प्रमाणे रया नोपती 2 नीला रंग रा जीण सटवणभा सु, सीरताज छव छेल, अरदली वाला, पेर पे गड़ी 4 वाजया दे मेली अजंट साहेब सबु नीवास आय़ा, कुचमा पाडे जी रो आरी मेली सारी जगा री, परबाते श्री जी ने पोसाक धारण कराई लपेटो केसरया असी साई, माजो रूपेरी, दुपटो केसरया लड़ीदार में वागो केसरया कोर रूपेरी गैणो करण रूपेरी चन्द्रमा हीरा रो सरपेच हीरा रो, कठलो रूदराछ मोतया को, पोछा मोतया की, छुरी डोर सभा ठोल सभा हेमरा फुला रा, तोडा हेमरा, तलवार हेम रा मूठ तेनाल मुनाल। पोसाक कराए न दन गड़ी 5 छड़या गुणेस डोडी रा मुड़ा आगासू ढोल में पदराय पछे तोरण पोळ में वेर बड़ी पोळ में वेर सरे बाजार वेर दली दरवाजे वेर आड़ में वेर श्री मासतमाजी पदराया आरोगी में पदराया लपो लगाय बा जसोतसींगजी। रात गड़ी 8 गीया कुवर जी फतेसीगजी ने पाडेजी री ओरी का मुड़ा आगे ले गया, पछे कुरसी पे वराज्या हात पग ऊजला कीदा पोसाक करी लपेटो सुपेत अमरसाही, माजो कपड़ो गुलाबया रो, फेटो सुपेत डोडी सुपेत पायजामो सुपेत। पोसाक करी चमरा वो पछे गुणेस डोड़ी वेर दरीखाने पदारया बेदले रावजी श्री जी रा माथा पेसु पछेवड़ी परी करी, गादी पे बराजया, नोपती 2 चोक में हाजर हा रावजी गेणा री अरज करी पचे गेणो धारण कराया मोती सुखा, मोती चोकड़ी नाद सादो, कठलो रूदराछ मोतया को पोछा रूदराछ मोतया की पग साकला हेमरा। गेणो धारण करया नोपता री अरज करी दुवो बगसया आण हटनाल दरवाजा खोलवा री अरज करी दुवो बगसया बोड़ा कपूर वेंछाणा पछे जनानी डोडी वेर श्री पीतामर राएं जी का दरसण कीदा रावला में पदारया पाछा बारणे पदारया, गुणेस डोड़ी वेर बड़ी चतरसाली पदारया गादी पे बराजया छतीस कारखाना रो कुचया बगसी। पछे उमरावा ने तो सीख बगसी पोसाक बड़ीकर सुपेत सदाचारी पोसाक करी अरोगया हात उजला कीदा तगत पदारया पोड्या।

सहायक निदेशक
रा.राज्य अभिलेखागार
जयपुर

महाराणा फतहसिंहकालीन हकीकत बही

अनुराधा पुरोहित

राजस्थान के गौरव की अभिवृद्धि में इस प्रदेश में रचित राजस्थानी साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। विधा की दृष्टि से राजस्थानी साहित्य गद्य एवं पद्य में विभक्त है; परन्तु गद्य विधा में इसकी प्रचुरता है।

गद्य साहित्य में ख्यात, वात, विगत, वंशावली, हाल, हकीकत, वचनिका तथा दुवावैत नामक रचनाएं लिखी गयी हैं। बही 45 भागों में विभक्त है जो महाराणा फतहसिंह के जीवन से जुड़े हुए वृतान्त का वर्णन करती है। नगीनावाड़ी के दरोगा जालमचन्द पंचोली दिन प्रतिदिन सुबह से शाम तक घटी घटनाएँ जो महाराणा फतहसिंह से सम्बन्धित थीं उनका ब्यौरा रखते थे। इसकी भाषा देवनागरी है।

यह हकीकत बही महाराणा फतहसिंह के ऐतिहासिक व अपरिहार्य जीवन की उपलब्धि को सिद्ध करता है। ये उनके 45 वर्षों के शासनकाल की प्रामाणिक व समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध रखती है।

एक बात अत्यधिक आश्चर्य की है कि ये सभी घटनाऐं तारीख, घण्टा, मिनट तथा सैकिण्ड की लिखी हुई हैं। उदाहरणतः—"पोस सुद 10 अने तारीख 10 दीसम्बर सं. 1941 रात गडी 2 प्रबाते अफोडी वेर श्री प्रमेसरा का चतर का दरसण कीदा, हात पग उजला कीदा, दातण कीदो, अगोलया कीदो, पोसाक करी।"

यह हकीकत बही महाराणा के जल्दी उठने का पूर्ण विवरण देती है। इसके अतिरिक्त धार्मिक पूजा, उत्सव, संस्कार तथा शोभायात्रा का हूबहू वर्णन करती है। अकाल, बाढ़, महामारी का इसमें विस्तृत वर्णन है।

यह दों राजकुमारों की शादियों, गद्दीनशीनी तथा अन्य शाही घटनाओं का वृत्तान्त करती है। इसमें दूसरी रुचिपूर्ण घटनाएँ हकीकतों के पन्नों पर वे महाराणा की शिकार के प्रति रुचि, पौराणिक कथाओं तथा मनुस्मृति सुनने के वृत्तान्तों का विशद वर्णन है।

उदाहरणतः—'जोत बदी पोसाक बड़ी करी केस अगोछो सुपेत कमरी सुपेत पोसाक करी गादी पर बिराजया मनो समरती बची रात गडी 3 गीया बैठके बराजया हात उजला कीदा ढ़ोले पदारया पोडया बारणे।'

यह बही दरबार, भवन, संग्रहालय, अस्पताल, सड़कें, झीलों का वर्णन तथा जनता के लाभ और उपयोगितापूर्ण कार्यों का वर्णन करती है। इन बहियों से हमें यह जानकारी भी मिलती है कि कुछ विशेष अधिकारी जो मेहकमा खास महद्राज सभा तथा अन्य विभागों में नजदीकी से जुड़े हुए थे उनमें मुख्य श्यामजी कृष्ण वर्मा, सुखदेवप्रसाद, त्रिभुवननाथ, गोपीनाथ, श्री बलवन्तसिंह कोठारी, पन्नालाल मेहता इत्यादि थे।

इनकी मदद से नक्शें में पहाड़ों, नदियों, सरकारी भूमि तथा जागीरदारों के गाँव के स्थानों का भी उल्लेख मिलता है तथा मेवाड़ में 20वीं शताब्दी की शैक्षिक पद्धति के उन्नयन का भी वर्णन मिलता है।

इसमें अंग्रेज अधिकारी गवर्नर जनरल के दूत, जागीरदार तथा अन्य सभासद् का महाराणा के साथ वार्तालाप, निर्णय तथा निष्कर्षों का अक्षरशः वर्णन है।

उदाहरणतः—'पोसाख कर कुरसी पे वराजया रीया पछे दन गडी 3 गीया गुणेस डोडी वेन पछे रजीटड वालटर साब अर सीकतर आया वालटर सीकतर साब रा हात पर हात देर पछे चोक में पदारया पछे दलीचा री फरस तक बराट फोरट साहेब आया सीगासण पर बराजया साहेब वी कुरसी पे बराजया सरदार कुरसया पर बराजया पछे हुकमनामो सुणाया बराट फोरट साहब पछे मुनसी इज्जत राहे खलीतो पडया।'

महाराणा के वस्त्राभूषणों के चयन पर तथा प्रतिदिन के सुबह, शाम, दोपहर के वस्त्रों पर अति विशद वर्णन है।

उदाहरणतः—

लपेटो हरया सुपेत लेरया में लाल अगरखी सुपेत

बुटी सोने री छाप अमरशाही पाएजामो सुपेत

माजो सोनेरी

दुपटो मेल को कोर पटो सोनेरी

गेणो—

पछेवड़ी सोनेरी डाक री

सरपेच हीरा को   चन्द्रमा हीरा को
पोछा मोत्या की ।   लगर हेम रा

इस हकीकत बही से पता चलता है कि महाराणा शक्तियों के केन्द्रीयकरण के पक्षधर थे । ब्रिटिश हस्तक्षेप को कम से कम षसन्द करते थे लेकिन अंग्रेज अधिकारियों का स्वागत तथा मेहमाननवाजी बेहद उत्कृष्ट स्तर पर करते थे । अंग्रेजों की मदद भी करते थे जिससे उन्हें कई बार सम्मानित भी किया गया । गुप्तरूप से राष्ट्रीय आन्दोलनकर्त्ता की सहायता करते । इसी कारण समय से पूर्व ही उनकी शक्तियों को छीनकर उन्हें निष्प्रभावी बनाकर उनके पुत्र को गद्दी पर बिठा दिया गया । अस्तु 24 मई 1930 ई. में भारतीय इतिहास का एक जाज्वल्यमान सितारा अस्त हो गया ।

सारांशत: इस हकीकत बही में महाराणा फतहसिंह के सिंहासनारोहण, मेवाड़ में ब्रिटिश हस्तक्षेप, सामन्तों से सम्बन्ध, ठिकानों के विवाद, 1903, 1911 के दिल्ली दरबार रेलवे की स्थापना, सैन्यदल का गठन, पन्नालाल की विमुक्ति, अफीम-उत्पादन, पुलिस-व्यवस्था, अभ्रक खानों की खुदाई, राजनैतिक जनजागरण, लाग, बाग, किसान आन्दोलन आदि का आद्योपान्त वर्णन है ।

—जोधपुर

'दिल्ली दरबार (1911 ई.) की हकीकत बही'

डॉ. राजेन्द्र नाथ पुरोहित

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में (1884 ई.) महाराणा फतहसिंह का मेवाड़ की गद्दी पर राज्यारोहण एक महत्त्वपूर्ण घटना है। विशेषत: ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध चलाये जा रहे स्वाधीनता संघर्ष के सन्दर्भ में भारत के देशी-राज्यों के नरेशों में यदि ब्रिटिश विरोधी रुख अख्तियार करने वाला कोई प्रबल शासक था, तो वह महाराणा फतहसिंह था, जिसने ब्रिटिश परम्पराओं तथा शासन का विरोध करते हुए सदैव मेवाड़ राजवंश के प्राचीन गौरव, परम्परा और मर्यादा की रक्षा को ही अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझा।

इसी परिप्रेक्ष्य में सन् 1903 एवं 1911 के दिल्ली दरबार में उनके समक्ष महत्त्वपूर्ण चुनौतियां थीं, जिसके अन्तर्गत महाराणा को एक अधीनस्थ शासक के रूप में ब्रिटिश-सम्राट् के समक्ष पेश होकर सलाम करना था। इसके विपरीत महाराणा फतहसिंह को मेवाड़ के प्राचीन गौरव व परम्परा की रक्षा करनी थी। 1903 ई. में दिल्ली में सम्राट् एडवर्ड सप्तम की गद्दीनशीनी के अवसर पर आयोजित दरबार मे महाराणा ने उपस्थित न होकर अपनी बुद्धिमत्ता पूर्ण युक्ति का परिचय दे दिया था। किन्तु 1911 ई. में दिल्ली में आयोजित होने वाले दरबार, जिसमें स्वयं सम्राट् जार्ज पंचम एवं ब्रिटिश साम्राज्ञी उपस्थित हुए, का परिहार महाराणा के लिये कठोर चुनौती साबित हुई, क्योंकि इस बार ब्रिटिश शासन ने भी वे समस्त तैयारियां पूर्ण कर ली, जिन्हें मुद्दा बनाकर महाराणा दिल्ली दरबार में उपस्थित होने से इन्कार करते। प्रस्तुत शोध आलेख में 'पुरोहित संग्रह' के अन्तर्गत बही 'दिल्ली दरबार (1911ई.)' के मुख्य अंशों को उद्धृत किया गया है, जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों तथा महाराणा की मन: स्थिति का सजीव वर्णन है, अर्थात् अन्य राज्यों से मेवाड़ की प्रतिष्ठा एवं स्तर को सदैव उच्च रखना तथा ब्रिटिश शासकों से केवल औपचारिक सम्बन्ध कायम रखते हुए महाराणा द्वारा अपने स्वतंत्र तथा स्वाभिमानी व्यक्तित्व को अक्षुण बनाये रखना। देश के प्रमुख क्रान्तिकारियों एवं समाज सुधारकों जैसे गोपालसिंह खरवा तथा पं. मदनमोहन मालवीय से महाराणा के घनिष्ठ सम्बन्ध देश में चल रहे स्वाधीनता संघर्ष के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है।

12 दिसम्बर 1911 ई. को सम्राट् जार्ज पंचम की तख्तनशीनी की खुशी में दिल्ली में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक दरबार का आयोजन किया गया। इस दरबार में मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह व भारत के अन्य देशी नरेश भी आमंत्रित किये गये। महाराणा

ने हैदराबाद, बडौदा तथा मैसूर के नवाबों से निम्न बैठक पर बैठना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि मुगल दरबार में भी मेवाड़ के युवराज को भारत के अन्य शासकों से उच्च बैठक प्रदान की गई थी। तदनुसार ब्रिटिश सरकार ने महाराणा के लिये 'रुलिंग चीफ इन वेटिंग' नामक पद कायम किया, जिसके अन्तर्गत महाराणा को सबसे पहले सम्राट् से मिलने का अवसर दिया गया तथा उन्हें अन्य नरेशों की तरह सिर झुकाकर सलाम करने से भी मुक्त रखा गया, क्योंकि सम्राट् का स्टाफ दरबार में सलाम के लिये पेश नहीं किया गया। अर्थात् ब्रिटिश सरकार महाराणा को हर सूरत में इस दरबार में बुलाने हेतु दृढसंकल्प थी। इसके विपरीत महाराणा किसी कीमत पर दरबार में सम्मिलित न होने का मानस बना चुके थे। तदनंतर महाराणा ने युक्ति ढूंढ निकाली। उदयपुर से प्रस्थान करने के पूर्व ही शरीर में फोड़ा (बालतोड़) पैदा किया ताकि दरबार में बैठने की असमर्थता जाहिर की जा सके। तदनुसार महाराणा ने उक्त दरबार में उपस्थित न होने की युक्ति में सफलता प्राप्त कर अपने ब्रिटिश विरोधी मानस का परिचय दिया। मूल शोध आलेख में बही से उद्धृत विवरण को प्रस्तुत किया गया है, जो महाराणा की मनः स्थिति एवं तत्कालीन परिस्थितियों का सजीव दिग्दर्शन करवाता है।

गवेषक
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
राजमहल उदयपुर

'मेवाड़ रावल राणा जी री बात'

मोहब्बतसिंह राठौड़

इतिहास जानने के साधनों में ऐतिहासिक बातों का विशेष महत्व है। मारवाड़ में ख्यातें, बातें लिखने की परम्परा रही लेकिन मेवाड़ में इस प्रकार की एक मात्र बात प्रकाश में आई है। 'मेवाड़ रावल राणा जी री बात' मेवाड़ इतिहास पर सर्वथा नया प्रकाश डालती है।[1] इस ऐतिहासिक बात में वार्ताकार ने बापा रावल से लेकर महाराणा जयसिंह तक के महाराणाओं का इतिहास संजोने का सुप्रयास किया है। महाराणा जयसिंह के काल में (१७वीं शताब्दी के अन्त) लिपिबद्ध इस बात में मेवाड़ इतिहास का क्रमबद्ध वर्णन किया है जो इतिहास और साहित्य दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। श्यामलदास और ओझाजी ने इतिहास लेखन में इसका प्रयोग किया होगा परन्तु इसका सन्दर्भ केवल यों लिखकर कि 'ख्यातों बातों मे पाया जाता है' इतना ही दिया है। अनुमान है कि इसी बात के लिये ही लिखा होगा क्योंकि इसके अलावा अब तक मेवाड़ इतिहास की कोई और 'बात' का पता नहीं लगा है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी मेवाड़ मुगल सम्बन्ध के सन्दर्भ में इसका अध्ययन किया परन्तु इसकी सम्पूर्ण जानकारी को उजागर नहीं किया।

वार्ता के वृत्तांत से पता चलता है कि मेवाड़ के शासकों का बापा रावल से रतनसिंह तक चितौड़ पर आधिपत्य रहा एवं वे 'रावल' की पदवी से विभूषित थे। तत्पश्चात् हमीर के सिसोदा ग्राम से आकर शासक के रूप में होने पर मेवाड़ के शासक सिसोदिया कहलाये और इनकी पदवी महाराणा के रूप में विख्यात हुई।[2] इसमें प्रारम्भ में पौराणिक वंशावलियों का नामोल्लेख कर बापा रावल से मेवाड़ शासकों का क्रमबद्ध इतिहास है।[3] यह बात यहां के शासकों के क्रियाकलापों के वर्णन के साथ-साथ समाज के विभिन्न वर्गों की सेवाओं का भी दिग्दर्शन कराती हैं।[4]

इसमें अलाउद्दीन खिलजी के चितौड़ आक्रमण के सजीव वर्णन के साथ ही रावल रतनसिंह के पुत्रों-सगे सम्बन्धियों का वृत्तांत मिलताहै। पद्मिनी के ऐतिहासिक जौहर एवं साके की योजनाओं की जानकारी संजोते हुए वार्ता में चित्तौड़ दुर्ग को मालदेव सोनगरे को सौंपने का वृत्तांत ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।[5] चितौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार होने पर अजयसिंह का केलवाड़ा (कुम्भलगढ़) जाना बताया है। इस पहाड़ी क्षेत्र में मूंजा बालीसा चौहान के आंतक की जानकारी भी है। अजयसिंह के दोनों पुत्रों द्वारा इसका दमन नहीं करने पर अजयसिंह के भाई के पुत्र

हमीर द्वारा मूंजा को मारने का इसमें वृत्तांत है। हमीर के इस कार्य से प्रसन्न होकर अजयसिंह ने हमीर को महाराणा घोषित कर दिया और अजयसिंह के दोनों पुत्रों का दक्षिण में चला जाना लिखा है। टॉड, श्यामलदास, ओझा आदि इतिहासकारों ने इन्हीं के वंश में शिवाजी को बतलाया है।[6] मूंजा को हमीर द्वारा मारने की घटना की पुष्टि कुम्भाकालीन साहित्य से भी होती है।[7]

हमीर का विवाह मालदेव सोनगरे की विधवा पुत्री से होने का वार्ता में वृत्तांत मिलता है।[8] इतिहासकार टॉड भी हमीर का विवाह विधवा से होना लिखता है।[9] परन्तु श्यामलदास और ओझा राजपूत समाज में विधवा विवाह का होना नहीं मानते हैं। वार्ता में हमीर द्वारा मालदेव सोनगरे से चितौड़ लेने का वृत्तांत है। इसी तरह ओझा ने मालदेव के पुत्र जेसा से हमीर द्वारा चित्तौड़ लेना बतलाया है।[10] परन्तु डॉ. हुकमसिंह भाटी ने नवीन खोज से मालदेव के पुत्र वणवीर से हमीर ने चितौड़ हस्तगत करना साबित किया है।[11]

राणा लाखा के पुत्र चूण्डा की स्वामिभक्ति और त्यागपूर्ण सेवाओं का विशद वर्णन है।[12] चूण्डा द्वारा मेवाड़ राज्य विरोधी तत्वों का सफाया करने और मण्डोर पर नौ वर्ष तक चूण्डा का अधिकार रहने का बात में वृत्तांत है। वार्तानुसार महाराणा कुम्भा की आन्तरिक स्वीकृति से जोधा ने पुनः मण्डोर पर अधिकार किया बताया है परन्तु नैणसी की ख्यात[13] और जोधपुर राज्य री ख्यात[14] में जोधा द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण कर कुम्भा का प्रतिशोध लेने का वर्णन है।

वार्ता में सांगा और उसके भाइयों की आपसी गतिविधियों के तथ्यों से ज्ञात होता है कि मेवाड़ में एक और पितृभक्त चूण्डा जैसे त्यागी पुरुष हुए वहीं राज्य प्राप्ति के लिये पिता व भाइयों को मारने के घिनौने कार्य भी हुए हैं।[15] महाराणा रतनसिंह को बूंदी के हाडा सूरजमल द्वारा छल से मारने की घटना का वर्णन हाडा सिसोदिया के प्रतिशोध को प्रकट करता है।[16] वार्तानुसार विक्रमादित्य के अशिष्ट व्यवहार के परिमाणस्वरूप यहां के सामन्तों में स्वामी के प्रति विद्रोह की भावना पनपने का पता चलता है।[17]

चित्तौड़ के दूसरे साके और उस समय सामन्तों की भूमिका का इसमें संक्षिप्त वर्णन है।[18] वणवीर द्वारा महाराणा उदयसिंह को मारने की योजना और उदयसिंह की जीवन रक्षा करने में पन्ना धाय की स्वामिभक्ति का वृत्तांत है। मेवाड़ इतिहास में चित्तौड़ पर अकबर की चढ़ाई और तीसरा साका महत्वपूर्ण स्थान रखता है परन्तु वार्ता

में नाम मात्र का वर्णन है ।[19] वार्ता में मेवाड़ के सामन्तों और अखेराज सोनगरा द्वारा जगमाल को हटाकर प्रताप को सिंहासन पर बैठाना लिखा है परन्तु इस घटना से पूर्व वि.सं. 1600 में अखेराज ने सुमेलगिररी के युद्ध में प्राणोत्सर्ग कर दिया था । उस समय अखेराज का पुत्र मानसिंह सोनगरा था ।[20]

वार्ता में एक ओर प्रताप और मानसिंह कछवाह (जयपुर) प्रकरण का विस्तार से वर्णन है किन्तु हल्दीघाटी युद्ध का केवल नामोल्लेख ही हुआ है ।[21] महाराणा अमरसिंह के समय मुगल सन्धि की शर्तों के वर्णन के साथ ही उस समय हुए ऊंटाले के युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं के नाम दिये हैं जो सगतरासो एवं अन्य स्त्रोतों में उल्लिखित नामों से ज्यादा है ।[22] जैसे सगतावत, भाण, बलु, अचलो, जोध, दलो, चत्रभुज, राजसिंह, कीतो, मालदे, मांडण, वाध, दलपत, चूंडावत, रावत जेतौ, गोविंद, खेंगार, मानसिंह ।

महाराणा राजसिंह के समय चारूमती[23] को लेकर मुगल सम्बन्धों का वर्णन हैं ।[24] परन्तु मुगलों से लड़े गये युद्ध का विवरण वार्ता में नहीं मिलता है । इसमें मुगल सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध उसके पुत्र अकबर को सम्राट् बनाने की योजना की जानकारी है ।[25] वार्ता में महाराणा जयसिंह और ज्येष्ठ कु. अमरसिंह के बीच मतभेदों के कारणों का स्पष्ट वर्णन है ।[26]

इस विद्रोह को दबाने में गोपीनाथ मेड़तिया (घाणेराव) की महत्पूर्ण भूमिका की जानकारी है और गोपीनाथ की माँ[27] द्वारा प्रदान की गई प्रेरणा के वर्णन से स्वामि-भक्ति की भावना की झलक मिलती है ।

वार्ता के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मारवाड़ राज्य द्वारा मेवाड़ राज्य की सुरक्षा हेतु सैनिक सहयोग प्रदान किया । वार्तानुसार सबसे पहले पासवानिये पुत्र चाचा व मेरा द्वारा महाराणा मोकल की हत्या किये जाने पर राव रिड़मल ने इन दोनों का वध कर कुम्भा को गद्दी पर आसीन करने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया । कुछ दशक बाद ही पुनः मेवाड़ पर ऐसी ही आपदा आई और महाराणा उदयसिंह की बाल्यावस्था में वणवीर द्वारा उदयसिंह को मारने का दुष्प्रयास किया गया । इस विपदा की घड़ी में पाली के जागीरदार अखेराज सोनगरा ने मारवाड़ के सहयोग से उदयसिंह को राजगद्दी दिलवाई । अन्त में महाराणा जयसिंह के समय कुं. अमरसिंह के विद्रोह को दबाने हेतु गोपीनाथ मेड़तिया (घाणेराव) ने मारवाड़ के सहयोग से इस विद्रोह को दबाने में मदद की थी ।

वार्ता का समसामयिक नहीं होने के कारण मेवाड़ राज्य द्वारा लड़े गये युद्धों की संक्षिप्त जानकारी दी है। इसमें युद्धों के पूर्व एवं बाद की स्थिति का वर्णन है। लड़े गये युद्धों की तिथि और व्यक्तियों की भूमिका का इसमें नाममात्र का ही वर्णन मिलता हैं। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियों का बहुत कम अंकन पाया जाता है और प्राप्त तिथियों का भी ध्यानपूर्ण अध्ययन आवश्यक है—

1. वार्ता में सर्वप्रथम महाराणा हमीर की राजगद्दी की तिथि संवत् 1393 माह वदि 10 दी गई है। इस बारे में प्रामाणिक जानकारी भी नहीं मिलती है और टॉड, श्यामलदास, ओझा आदि इतिहासकारों ने अपने लेखन में इस घटना की तिथि निश्चित नहीं की है।[28]

2. संवत् 1510 में मारवाड़ के राव जोधा द्वारा जोधपुर को बसानो बतलाया है।[29] परन्तु रेउ और ओझा ने वि.सं. 1515 में जोधपुर की स्थापना होना लिखा है।

3. वार्तानुसार महाराणा विक्रमादित्य का राज्य-तिलक संवत् 1581 में हुआ[30] परन्तु इतिहासकार श्यामलदास व ओझा ने वि.सं. 1588 को बताया है।

4. वार्ता में महाराणा अमरसिंह प्रथम का देहान्त वि.सं. 1657 को होना पाया जाता है लेकिन श्यामलदास और ओझा ने वि.सं. 1676 में महाराणा अमरसिंह का देहान्त होना माना है।

5. जगन्नाथ राय के मन्दिर की प्रतिष्ठा का संवत् वार्ता में 1708 होना लिखा है जो प्रामाणिक हैं।

6. वार्तानुसार महाराणा जयसिंह और कुं. अमरसिंह के बीच संवत् 1749 में विवाद हुआ था। वीर विनोद में इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं बतलाई गई है किन्तु उदयपुर राज्य के इतिहास में ओझा जी ने वि.सं. 1748 में इस विद्रोह का समाप्त होना लिखा है।

इस प्रकार वार्ता में वर्णित तिथियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाराणा हमीर की राज्यतिलक की तिथि सम्बन्धी सर्वथा नई जानकारी है। जगन्नाथ राय के मन्दिर की प्रतिष्ठा की तिथि प्रशस्ति में मिलने के कारण प्रामाणिक है। वार्ता की शेष तिथियों का अन्य स्त्रोतों से मिलान नहीं होने के कारण इनकी प्रामाणिकता पर और अनुसन्धान की आवश्यकता है।

वार्ता का समसामयिक नहीं होने के कारण वार्ताकार ने कई भूलें की हैं जैसे महाराणा प्रताप के राज्य-तिलक के समय अखेराज सोनगरा का होना लिखा है परन्तु डॉ. भाटी ने नई खोज द्वारा अखेराज के पुत्र मानसिंह सोनगरा का होना साबित किया है क्योंकि अखेराज तो इस घटना के पूर्व वि.सं. 1600 में सुमेलगिररी के युद्ध में प्राणोत्सर्ग कर चुका था।

इसमें मेवाड़ राजघराने में राज्य सिंहासन हेतु महाराणा मोकल से लगाकर जयसिंह तक हुए आपसी झगड़ों और हत्याओं का विस्तृत उल्लेख मिलता है जो अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी से कहीं अधिक और स्पष्ट है उदाहरणार्थ- महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच मतभेद का वर्णन करते हुए वार्ताकार ने कुं. अमरसिंह के अशिष्ट व्यवहारों के निष्पक्ष वर्णन में अमरसिंह को निकृष्ट चरित्र वाला बतलाया है।

वार्ता में उल्लिखित तथ्यों से पता चलता है कि तत्कालीन समाज के सभी वर्गों के मेवाड़ राजघराने से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। ये वर्ग राज्य की स्वामि-भक्ति और ईमानदारी से सेवा करते थे।इसके अनुसार ब्राह्मणों द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों के साथ रोग उपचार के कार्य किये जाते थे। कायस्थों एवं महाजनों द्वारा प्रशासनिक और सैनिक सेवाएं दी जाती थीं। मेवाड़ के सामन्तों और जागीरदारों की स्वामि-भक्ति, त्याग और बलिदान के वर्णन के साथ ही सामन्तों की गुट बाजी और उदासीनता सम्बन्धी जानकारी है। इस प्रकार मेवाड़ इतिहास पर प्रकाश डालने वाली अन्य ऐतिहासिक बातों का सर्वथा अभाव रहने के कारण इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

व. शोध सहायक, प्रताप शोध
प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल्स
संस्थान, उदयपुर

सन्दर्भ संख्या—

1. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में ग्रथांक नं. 2685 पर सुरक्षित है और डॉ. हुकमसिंह भाटी द्वारा सम्पादित कर वर्ष 1993 ई. में प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर से प्रकाशित किया गया।
2. वार्ता, पृ. 8
3. वार्ता, पृ. 8-9 (बाह्मणों, महाजनों, धायभाइयों, कायस्थों)
4. वही, पृ. 10-11

5. वही, पृ. 10-11, डॉ. हुकमसिंह भाटी, सोनगरा सांचोरा चौहानों का इतिहास, पृ. 78
6. वही, पृ. 11-13; वीर विनोद भाग-1 पृ. 222; उदयपुर राज्य का इतिहास पृ. 1068
7. प्रेमलता शर्मा-एकलिंग माहात्म्य, पृ. 177
8. वही, पृ. 14
9. एनाल्स एण्ड एन्टीक्वटीज ऑफ राजस्थान, भाग-1, पृ. 317
10. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, पृ. 204
11. डॉ. हुकमसिंह भाटी; सोनगरा सांचौरा चौहारों का इतिहास, पृ. 78
12. वही, पृ. 33-34
13. नैणसी री ख्यात, भाग-3, पृ. 11-12 (1984 ई.)
14. डॉ. रघुबीरसिंह; जोधपुर राज्य री ख्यात, पृ. 52-53
15. वही, पृ. 35-50
16. वही, पृ. 51
17. वही, पृ. 56
18. वही, पृ. 53-54
19. वही, पृ. 64 (संवत सोलेसे चौबीस सु उतरे ने राज पीपला मास चार रह्यापछे आवै ने उदेपुर बंसायो)
20. डॉ. हुकमसिंह भाटी; सोनगरा सांचोरा चौहानों का इतिहास, पृ. 94
21. वही, पृ. 65-67
22. वही, पृ. 68-69
23. किशनगढ़ नरेश मानसिंह की पुत्री
24. वही, पृ. 70
25. वही, पृ. 70-71
26. वही, पृ. 74-75
27. वही, पृ. 76-78 (मेवाड़ में पुठौली के जागीरदार सुजानसिंह की पुत्री)
28. वही, पृ. 13
29. वही पृ. 34
30. वही, पृ. 52

प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात में वर्णित ऐतिहासिक सत्य

डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर

राजस्थानी वातें असंख्य हैं जिनके अनेक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक वातें विविध संग्रहालयों की पोथियों में प्रतिलिपि की गयी हैं तो कई सारी वातें यहां के चारणों, कथावाचकों, भाटों, लोक कलाकारों की जिह्वा पर कैद हैं। इन वातों के अनेक विषय हैं, यथा—प्रेम, नीति, धर्म, इतिहास, वैराग्य, हास्य, आदि। इन सभी विषयों से संबंधित राजस्थानी वातों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं - 1 अर्द्ध ऐतिहासिक बातें और, 2 अनैतिहासिक या काल्पनिक वातें। पात्र और घटनाओं में से एक ऐतिहासिक हो वे वातें ऐतिहासिक हैं। राजपूती वीरत्व और नीति से संबंधित सभी वातें इस वर्ग में समाहित की जा सकती हैं। अनैतिहासिक अथवा काल्पनिक वातों में पात्र और घटनाएँ सभी काल्पनिक होती हैं। यह बात दूसरी है कि इनमें पात्रों के नाम इतिहास प्रसिद्ध ही रह जाय, जैसे—विक्रमादित्य, शालिवाहन आदि।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि इन वातों में केवल जनजीवन की झांकी मात्र ही नहीं है अपितु ये इतिहास की टूटी हुई कड़ियों को भी जोड़ती हैं। इनमें वर्णित घटनाओं अथवा किंवदन्तियों द्वारा इतिहास के लुप्तप्राय चरित्रों एवं घटनाओं की जानकारी मिलती है, जिनके आधार पर हम अपने विशृंखलित इतिहास को पूर्ण बना सकते हैं, साथ ही सांस्कृतिक वर्णनों द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास का निर्माण भी संभव है। इस प्रकार दोनों ही वर्ग की राजस्थानी वातों में प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात का राजस्थानी वात-साहित्य में विशिष्ट महत्व है। इसमें इतिहास और कल्पना का समन्वय है। प्राप्त प्रतियों में इसके लेखक का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, साथ ही लेखक के ठिकाणे और उसके कथानायक का प्रमाणित इतिहास उपलब्ध है।[1] यहाँ ख्यातों में सम्मिलित की जाने वाली वातों की भाँति इस वात के लेखक ने किसी प्रकार की कोई वंशावली या पात्रों के जीवनकाल से सम्बन्धित किसी सूचना का भी उल्लेख नहीं किया है। यह इस वात की सबसे बड़ी विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रायः राजस्थानी वातों में चाहे वे अर्द्ध ऐतिहासिक हों अथवा काल्पनिक, उनमें घटनाओं का बिखराव होने से उन्हें समन्वित करना कठिन हो जाता है। किन्तु यहाँ औरगंजेब और उसके पोते अजीमुल्लाशाह के कथा प्रसंग में ही अन्तराल अनुभव होता है। किन्तु कुछ अंश पढ़ने पर वह संदर्भ

भी पुनः मूल-कथा से जुड़ जाता हैं, साथ ही अलौकिक घटनाओं की अनुपलब्धता ने भी इसके ऐतिहासिक स्वरूप को बनाये रखा है।

प्रतापसिंह म्होकमसिंह री बात की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएं—

प्रस्तुत आलेख हेतु हमने आधार सामग्री रूप में राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा प्रकाशित एवं डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया द्वारा संपादित 'प्रतापसिंह म्होकम सिंह री बात' को ग्रहण किया है। संपादक ने आरंभ में प्राप्त प्रतियों का परिचय देते हुए उसके ऐतिहासिक संदर्भों के साथ वात का सार प्रस्तुत किया है। आलोच्य सम्पादन में संगृहीत वात का कथा सार इस प्रकार हैं।[2]

देवलिया राज्य में हरिसिंह के बेटे प्रतापसिंह का राज्य था। उसका छोटा भाई म्होकमसिंह बड़ा वीरप्रतापी और वचनों का पक्का था। अपने बाहुबल से रावत प्रतापसिंह ने मेवाड़ के राणा अमरसिंह द्वितीय से भी लोहा लिया।

एक दिन रावत प्रतापसिंह अपने सभासदों के साथ बैठा राज्य में निरन्तर बढ़ रहे भील मुखिया के उपद्रव की चर्चा कर रहा था। तभी एक सामन्त जोगीदास के बेटे जसकरण सीसोदिया ने भील-मुखिया के दमन करने का दावा किया। अपने भाई द्वारा हुई अपनी उपेक्षा से म्होकमसिंह उत्तेजित हो गया। वह स्वयं भील मुखिया के उपद्रव को समाप्त करने हेतु चुपचाप निकल गया।

अपने साथियों के साथ जंगल में भील मुखिया की अचानक मुठभेड़ हुई। म्होकमसिंह ने भील मुखिया को मारकर और उसके सैनिकों के मुण्ड रावत प्रतापसिंह द्वारा भेजे गये हांथियों के सामने डलवा दिये।

कथा के इसी भाग के साथ औरंगजेब के आतंक और उसके शहजादे मुअज्जम के पुत्र अजीमुल्ला (अजीमशाह औरंगजेब का पौत्र) की बंगाल की सूबेदारी का वर्णन किया गया है। अजीमशाह औरंगजेब का विश्वासपात्र नहीं था। अतः उसने उस पर नजर रखने हेतु एक खबरनवीस नियुक्त किया। अजीमशाह ने अपने सेवक सरबुलंद खां (शेर बुलन्द खां) द्वारा खबरनवीस को मरवा दिया और रावत प्रतापसिंह के पास शेरबुलंद खां को शरण देने का आग्रह भिजवाया। म्होकमसिंह की वीरता के साथ रावत प्रतापसिंह ने शेरबुलंद खां (सर बुलंद खां) को अपनी शरण में रखा। (पृ. 35)

इसी घटना के साथ पीपलोदा गाँव में उपद्रवी डोडियों द्वारा एक ब्राह्मण की

हत्या करने का वर्णन कथा में आया है। रावत प्रतापसिंह इसकी उन्हें चुनौती देता है। अन्ततः रावत डोडियों पर आक्रमण करता है। अपनी भयंकर युद्धकला से म्होकमसिंह दुश्मनों को मारकर उनके मुण्डों को प्रतापसिंह के समक्ष प्रस्तुत करता है। प्रतापसिंह ने अपने भाई म्होकमसिंह को अत्यन्त प्रसन्न होकर पुरस्कृत किया और उसे आश्वस्त किया कि वह सदैव उसका भला चाहता है और उसके वीरत्व का प्रशंसक है। इस कथन में भ्रातृत्व-भाव का अप्रतिम स्नेह दर्शा कर कथाकार ने क्षत्रियत्व को नयी दिशा प्रदान की है। (पृ. 64)

इस सम्पूर्ण कथा के तीन भाग कहे जा सकते हैं—

1. प्रतापसिंह के राज्य में भील मुखिया का आतंक/जसकरण सीसोदिया के बड़बोलों से म्होकमसिंह का अपमानित अनुभव करना एवं भील मुखिया को मारकर अपने वर्चस्व की स्थापना करना।

2. अजीमशाह द्वारा उसके सेवक (मंत्री) शेरबुलन्दखाँ को प्रतापगढ़ की शरण में रख कर औरंगजेब के वर्चस्व को आघात पहुँचाना।

3. डोडिया राजपूतों के आतंक को म्होकमसिंह के वीरत्व से समाप्त कर प्रतापगढ़ राज्य के वर्चस्व की स्थापना करना। यहाँ कथाकार ने राजनीतिक इतिहास के साथ पातरियों, किलेदारों, अश्वमेध आदि का वर्णन कर तद्‌युगीन सामाजिक इतिहास को भी प्रस्तुत किया है।

वात के इन प्रमुख तीन भागों में निम्नलिखित ऐतिहासिक घटनाओं से हमारा परिचय होता है-

1. देवलिया रावत हरिसिंह के दो पुत्र प्रतापसिंह और म्होकमसिंह

2. रावत हरिसिंह के पश्चात् प्रतापसिंह द्वारा प्रतापगढ़ की स्थापना

3. रावत प्रतापसिंह का मेवाड़ के राणा अमरसिंह द्वितीय के साथ संघर्ष

4. म्होकमसिंह द्वारा भील मुखिया को समाप्त करना,

5. औरंगजेब का आतंक, अजीमुल्लाशाह द्वारा बादशाह को धोखा देना तथा (बुलंद खां) शेर बुलंद खाँ) को रावत प्रतापसिंह की शरण में रखना।

6. पीपलोदा के डोडियों द्वारा गाँव के ब्राह्मण की हत्या तथा प्रतापसिंह द्वारा उन पर सशस्त्र आक्रमण करना।

7. युद्ध में डोडियो को परास्त कर म्होकमसिंह का अपने भाई रावत प्रतापसिंह से पुरस्कृत होना।

इन सभी प्रसंगों में वार्ताकार का लक्ष्य म्होकमसिंह के अकल्पनीय वीरत्व की स्थापना कर भ्रातृत्व, जिसका प्राय: सामन्तीय व्यवस्था (राजपूतों) में अभाव ही रहा है, की स्थापना करना है।

आलोच्य बात के कल्पनात्मक अंश—

आलोच्य रचना गद्य-पद्य रूप में (पाद टिप्पणी सहित) 52 पृष्ठों में प्रकाशित है। सम्पूर्ण शैली वर्णनात्मक एवं दृष्टान्तपरक है। स्थान-स्थान पर युद्धों के जीवन्त वर्णन वार्ताकार की निजी कल्पना है। अपने कौशल से वह कहीं इन्हें उपमा से मंडित करता है तो कहीं रूपकों से। म्होकमसिंह के वीरत्व की छवि का उपमा-मण्डित वर्णन प्रस्तुत है- मात्र **'म्होकमसिंह गढ़ देषता ही उड़ पड़सी। अर इणरै माथै घणो अमांमो सीरोहीयां रो फूलधारां रो बाढ़ झड़सी।......म्होकमसिंह रा मन की उमंग न मावै छै। उण बेलां रो रूप अर चोप दे देख्या ही बणि आवै छै। ज्यों छकियो छैल पर गैल रा साथियां नुं चोप चाव चितावै छै। ईण भांत हंसतो हंसावतो उमंग उफणावतो थको निपट तातां झांप बाता टापां उपर टापा देता कांछ्या पर चढ्या......चंवरी उपर बींद जाय जिण भांत बिहसतो बिळकुळतौ भंवर हुहो थको तापड़ो कंवरां रा साथ नूं ले नै तुरि तोरिया।' (पृ. 42-43)**

राजस्थानी वातें अर्द्ध ऐतिहासिक रचनाएँ होती हैं। अत: इनमें वर्णित सभी अंशों का अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाण होना आवश्यक नहीं। इसीलिये अवसर मिलते ही वार्ताकार अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगते हैं। आलोच्य रचना के पृ. सं. 49 पर रानियों, महारानियों, पातरियों का वर्णन जहाँ इतिहास की ओर संकेत करता है, वहीं साहित्यिक बौछार भी। यहाँ वर्णित होली वर्णन में भी कवि की उन्मुक्त कल्पना से हम परिचित होते हैं-

'तिका नूं होळी रा दिनां मै होळी रा ष्याल गावै छै। तिका नै पण प्याला पावै छै। अर गोळियां री लागां थका रजपूत नट कुळट पेलै छै। तिकानूं तमासा दिषावै छै। केई-केई तायफ लोग न डरै छै।....केई केई मोटियार घणां दारू रा माता। रंग मैं राता। पराछूट हुवा। (पृ. 49)

आलोच्य बात के ऐतिहासिक प्रसंगों का सत्यापन—

(अ) वात के रचयिता एवं बात के चरित नायक का संबंध—

प्राप्त विभिन्न प्रतियों के आधार पर 'प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात' के रचयिता

किशनगढ़ के महाराजाधिराज बहादुरसिंह हैं। इनमें प्राचीनतम प्रतिलिपि का लिपिकाल वि.सं. 1895 चै. व 13 है।[3] कृति के रचनाकाल का उल्लेख किसी प्रति में नहीं मिलता। किन्तु महाराज बहादुरसिंह का किशनगढ़ पर 33 वर्ष (वि.सं. 1806 से वि.सं. 1839) तक राज्य रहा।[4] इसी बीच बहादुरसिंह जी ने इस रचना का निर्माण किया हो। प्रतिष्ठान की उक्त प्रति का लिपिकाल इस रूप में कृति के रचनाकाल के निकट का ही सिद्ध होता है।

वात लेखक बहादुरसिंह द्वारा प्रस्तुत वर्णनों की निष्पक्षता से इस ऐतिहासिक सत्य की भी संभावना बनती है कि किशनगढ़ और प्रतापगढ़ के सम्बन्ध सदाशय थे किन्तु इतिहास ग्रंथ इस मान्यता के प्रति मौन हैं।

प्रतापसिंह का प्रतापगढ़ का शासनकाल वि.सं. 1730 से वि.सं. 1765 सिद्ध होता है।[5] इस प्रकार इतिहास क्रम में प्रतापसिंह और म्होकमसिंह महाराजाधिराज बहादुरसिंह से पूर्ववर्ती थे। किन्तु अपनी युवावस्था में वे उनकी वीरता के इतिवृत्त से अवश्य प्रभावित रहे होंगे। इस प्रभाव के कारण भी इस बात को निष्पक्ष भाव से उन्होंने लिखा हो।

(ब) भील मुखिया एवं म्होकमसिंह की वीरता का वृतांत—

आलोच्य रचना का आरंभ इसी घटना से होता है। जसकरण सीसोदिया के बड़-बोलों के संदर्भ में भील मुखिया के साथ हुए घमासान युद्ध में म्होकमसिंह की अप्रतिम वीरता दर्शायी गई है। डोडियों के आतंक वाले वात के अन्तिम भाग में भी म्होकमसिंह को उत्साही वीर दिखाया गया है। इस वर्णन के आधार पर इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने उसे बड़ा वीर कहा है।[6] म्होकमसिंह के साथ भील मुखिया के हुए युद्ध एवं जसकरण सीसोदिया के बड़बोलों का ऐतिहासिक प्रमाण मुंहता नैणसी री ख्यात, बांकीदास री ख्यात अथवा अन्य किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं मिलता है। किन्तु गौ. ही. ओझा ने इस बात को प्रतापगढ़ के इतिहास में ऐतिहासिक आधार के रूप में स्वीकार किया है। इसके हम दो आधार मानते हैं- प्रथम, इसके रचयिता वीर नायक महाराजाधिराज बहादुरसिंह थे, जिन्होंने उनकी वीरता से प्रभावित होकर इसका निरपेक्ष निरूपण किया। द्वितीय, डूंगरपुर बांसवाडा के सीसोदियों का प्रभाव वहाँ के भीलों पर था तथा तद्युगीन महाराणा अमरसिंह द्वितीय अपने वैमनस्य के कारण भी भील मुखिया से उपद्रव करवा सकता था। इस प्रकार इस घटना की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

(स) औरंगजेब का आतंक, अजीमशाह द्वारा सरबुलंद खां को प्रतापसिंह की शरण में भेजना—

रावत प्रतापसिंह ने प्रतापगढ़ वि.सं. 1755 के आस-पास बसाया।[7] उसी वर्ष महाराणा जयसिंह की मृत्यु के उपरान्त महाराणा अमरसिंह द्वितीय गद्दीनशीन हुए। डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के अधीश्वरों की ओर से टीका लेकर न आने की घटना से रुष्ट होकर उन्होंने तीनों जगह सेना भेजी। प्रतापगढ़ की ओर से सेना में कौन-कौन गया, इसका उल्लेख न इतिहास में है और न ही आलोच्य वार्ता में, किन्तु वात के आरंभ में ही वातकर्ता ने प्रतापसिंह की वीरता का वर्णन करते हुए अमरसिंह द्वितीय के साथ युद्ध और उसकी विजय का उल्लेख अवश्य किया है-

अडियों राणा अमर सूं. अणगंज रहियो आप।[8]
तडिता सिर त्रिजडां जड़ी, वो रावत परताप ।।2 ।।

आलोच्य वात में औरंगजेब के शासन का आतंक भारत के भू-भागों के अतिरिक्त ईरान, तूरांन, रोम, स्याम, ब्रिटेन (फिरंग), रूस, चीन, महाचीन आदि देशों तक फैले होने का वर्णन है। इसका पोता अजीमशाह (अजीमुल्लाशाह) बंगाल का दीवान था और उसके औरंगजेब के साथ ठीक संबंध नहीं थे। अत: औरंगजेब अपने कृपापात्र नाजर के मार्फत उस पर नजर रखता था। अजीमुल्ला शाह ने अपने सेवक सरबुलंद खाँ द्वारा इसे मरवा डाला। इसकी सूचना से बादशाह ने शेरबुलंद खाँ को अपने पास भिजवाने का आदेश दिया किन्तु अजीमुल्ला खाँ ने उसे प्रतापसिंह की शरण में भिजवा दिया। प्रतापसिंह ने यह कार्य अपने भाई म्होकमसिंह की सहायता से कर अजीमुल्ला को कृतार्थ किया। इस प्रसंग को इतिहासकार गौ. ही. ओझा ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया है।[9]

इतिहास के आधार पर औरंगजेब द्वारा प्रतापसिंह को मंसबदारी आदि के प्रत्यक्ष ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते। किन्तु आलोच्य वात के आधार पर यह अवश्य स्पष्ट होता है कि म्होकमसिंह किसी भी रूप में औरंगजेब के आतंक और अपने राज्य में उसके हस्तक्षेप का पक्षपाती नहीं था। संभवत: इसीलिये अजीमुल्ला के पत्र की प्राप्ति प्रतापसिंह की सूचना पर सहमति प्रदान कर स्वयं शेरबुलंदशाह को लेने गया।[10]

(द) पीपलोदा में ब्राह्मण की हत्या, प्रतापसिंह की चेतावनी एवं म्होकमसिंह द्वारा डोडियों को परास्त करना—

प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात के अन्त में (पृ. 38-64) डोडिया राजपूतों द्वारा

पीपलोदा (मालवा) के किसी पंडत (ब्राह्मण) को मार दिया। क्षत्रियत्व के विरुद्ध हुई इस घटना की खबर रावत प्रतापसिंह के पास भी आई। प्रतापसिंह का आग्रह था कि या तो डोडिये इस हत्या का प्रायश्चित करते हुए उन्हें उनका धन लौटा दें अन्यथा इसका परिणाम भुगतें। डोडियों के नकारात्मक उत्तर एवं चुनौती पर प्रतापसिंह ने उन पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी हथियारों के साथ घमासान युद्ध हुआ। म्होकमसिंह ने अपनी वीरता से उन्हें पराजित कर डोडियों के अनेक सामन्तों को रावत प्रतापसिंह के समक्ष प्रस्तुत किया जिन्हें चुनौती के साथ सादर छोड़ दिया। प्रतापसिंह ने अपने भाई को पुरस्कृत किया।

इस वर्णन में वार्ताकर्ता बहादुरसिंह ने दिन और वर्ष का कोई उल्लेख नहीं किया हैं किन्तु इतिहासकार ओझाजी ने इस युद्ध को ऐतिहासिक मानते हुए इसी वात के प्रमाण के आधार पर अपने इतिहास में इसे मान्यता दी है।

राजस्थानी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

सन्दर्भ संख्या—

1. सं. पुरुषोतमलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग 2, पृ. 10-13
2. प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात, पृ. 18 , दूहा 2.
3. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रं. 7874 ।रचना के संपादक ने भी इसी प्रति के मूल पाठ को ग्रहण किया है।
4. पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ—मारवाड़ का इतिहास, भाग 2, पृ. 686
5. गौ.ही. ओझा—प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 177-188
6. वही, पृ. 165 (पाद टिप्पणी सं. 1)
7. गौ.ही. ओझा—प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, पृ. 183
8. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग 2, पृ. 18
9. प्रतापगढ राज्य का इतिहास, पृ. 185
10. वही, पृ. 178-185

प्रतापसिंह म्होकमसिंह हरिसिंघोत री वात : ऐतिहासिक अध्ययन

मनोहर सिंह राठौड़

प्राचीन राजस्थानी साहित्य का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में यहाँ के इतिहास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। हर युग के उपलब्ध साधनों के द्वारा ही समाज के लोग अपना जीवन यापन करते आये हैं जिनमें दु:ख-सुख, मनोरंजन, शत्रुता-मित्रता, मान-मर्यादा का पालन आदि जीवन से मृत्यु तक के क्रिया-कलापों में परिलक्षित होते हैं। हर युग की अपनी एक जीवन शैली होती है। मध्यकालीन इतिहास का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट अनुभव होता है कि उस युग में युद्ध और संघर्षों का आधिक्य रहा। इसलिए उस युग में युद्ध करना या शत्रु की आवभगत की तैयारी में व्यस्त रहना अथवा युद्ध के सजीव वर्णन को घर बैठे सुन लेना ही जीवन का ध्येय बन गया था।

उस युग की प्रचलित साहित्यिक विधाओं में ख्यात, वात हाल, वचनिका, दवावैत, तवारीख, विगत, वंशावली प्रमुख हैं जो इतिहास को संजोये हुये हैं। यदि हम इनमें वर्णित अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों को छोड़ दें तो ये इतिहास के जीवन्त दस्तावेज कहे जा सकते हैं। इन सभी में 'वात' शैली प्रमुख रूप से अधिक प्रचलित हुई तथा जन-जन का कंठहार बनी। यों कहा गया है कि वात कहतां बार लागै, हुंकारा वात प्यारी। जब यह सोचा जाये कि वात का प्रारम्भ कब, कैसे, कहाँ और किस रूप में हुआ, तब समस्या और उलझ जाती है। यह मानव के साहित्यिक जीवन से जुड़ी हुई विधा है, यह जन निधि, जन कंठों पर अनुप्राणित, जन-जन के हृदय के मर्म को छू जाने वाली है।

वात का सम्बन्ध मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्ति से है। मानव जब से धरती पर अवतरित हुआ तब से वात कहने व सुनने की परम्परा चली आ रही है। जिस दिन वात कहने की कला, समाप्त हो जायेगी तो आपसी भावनाओं का संप्रेषण समाप्त होकर मानव स्वयं मानव ही नहीं रहेगा।

भारतवर्ष में वात या हिन्दी में प्रचलित कहानी किसी न किसी रूप में हर प्रांत में अपनी-अपनी लोक भाषा में प्राप्त होती है। चाहे वह उपदेश, धर्म, नैतिकता की कहानी के रूप में हो या सभ्यता व संस्कृति के रूप में हो। राजस्थान में भी यहाँ की

राजनैतिक व्यवस्था, आदर्श, धार्मिक, सामाजिक अवस्था, आचार-व्यवहार, संस्कृति सभ्यता आदि इन सभी का 'वात' विधा पर प्रभाव पड़ा व उन्हीं के बल पर आगे से आगे बढ़ी व पली। यह क्रम आज तक सतत चला आ रहा है।

हमारे यहाँ अधिकांश गाँवों में बसने वाले लोग हैं जो दिन भर अपने कृषि कार्यों या मेहनत मजदूरी से थक-हार कर घर लौटने पर भोजन के पश्चात् चौपाल में आ जुड़ते हैं। वहाँ वे दिन भर के क्रिया-कलापों का लेखा जोखा लेने व देने तथा अगले दिन का कार्यक्रम निश्चित करते हैं। वहाँ 'वात' को सुनकर मनोरंजन की मानसिक भूख भी तृप्त हो जाया करती है।

राजस्थान का वात साहित्य मुख्य रूप से दो प्रकार का प्रचलित रहा-1 प्राचीन साहित्य की लिपिबद्ध कहानियाँ 2 घर-घर प्रचलित लोक-गाथाएं।

इन वातों को सुनकर अमीर-गरीब सब आनंदित, रोमांचित होते तथा ये ही जीवन का प्रेरणा स्त्रोत बनतीं। सामन्तों द्वारा पोषित इस विधा को चारणों, मोतीसरों, बात-पोशों का विकसित करने में विशेष योगदान रहा। इन्हें सामन्तों द्वारा पूर्ण राज्य प्रश्रय मिलता था। एक आदमी वात कहते समय सभी पात्रों की भूमिका अदा करता हुआ वर्णन के अनुरूप ध्वनि के तेवर बदलता हुआ उसी भाव-भूमि पर ला उतारता जिससे अतीत के घटना-क्रम चित्रपट-से सामने आते हुये परिलक्षित होते थे। श्रोताओं के सामने दृश्य उपस्थित होकर एक शानदार समा बंध जाता था।

राजस्थानी वात साहित्य में ऐतिहासिक, धार्मिक, लौकिक, प्रेम और नीति, कहावतों व अन्य वातों का समावेश मिलता हैं। राजस्थान का वात-साहित्य बड़ा समृद्ध, सरस, सजीव व इतिहास को संजोए हुए है। इनमें अपने समय की परम्पराओं, रीति-रिवाज, एवं संस्कृति की अनुपम झाँकी वातों के द्वारा प्रस्तुत होती है। गद्य के साथ पद्य, दोहे, उप-कथाएं विस्तार अवश्य देती हैं लेकिन वे अनावश्यक नहीं हैं। वे रोचकता में वृद्धि करती हैं।

वात प्रारम्भ करने से पूर्व श्रोताओं को एक सूत्र में बाँधने हेतु वे कुछ पंक्तियाँ सुनाते हैं जो अधिकांश लोगों को कुछ-कुछ याद होती हैं, जिन्हें वे वात-पोश से सुनते हुये बीच-बीच में साथ में बोलते हुये, धीरे-धीरे एकरसता की सीमा में प्रवेश करते चले जाते हैं। वात शुरू करते-वात कैता बार लागै, हुंकारा वात प्यारी लागै। वात मैं हुंकारौ, फौज मैं नगारौ-कड़ाक धूं... कड़ाक धूं.... तो रामजी भला दिन दे और वात

आगे प्रारम्भ हो जाती। ऐसी ही प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात है जो कि प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रहांक 7874 में संगृहीत है।

यह वात वीरतापूर्ण कथानक की व वीर-चरित्रों पर आधारित एक वर्णनात्मक कथा है। वात में सर्वप्रथम राजस्थानी कथा परंपरानुसार रावत प्रतापसिंह का श्रेष्ठ क्षत्रिय शासक के रूप में चित्रण है। तदुपरान्त म्होकमसिंह के वीर-चरित्र का वर्णन हुआ है। फिर एक उपद्रवी भील के म्होकम-सिंह द्वारा मारे जाने की घटना का विस्तृत और अनूठा वर्णन है। आगे कथाकार ने औरंगजेब की शासन-नीति का वर्णन करते हुये उसके शाहजादे मुअज्जम के द्वितीय पुत्र अजीमुश्शान की बंगाल की सूबेदारी का उल्लेख किया हैं। औरंगजेब द्वारा अपने पौत्र के लिए खुफिया ख़बरनवीस का रखना, पौत्र अजीमुश्शान द्वारा अपने सेवक शेरबुलंद खां के हाथों ख़बरनवीस को मरवाना व रावत प्रतापसिंह को शेरबुलंद खां को शरण देने हेतु आग्रह तथा प्रतापसिंह द्वारा म्होकमसिंह के विशेष आग्रह से औरंगजेब के कुपित होने की चिन्ता छोड़ कर अपने आश्रय में रख लेना आदि वर्णन किया गया हैं।

इस घटना से रावत प्रतापसिंह और म्होकमसिंह को विशेष ख्याति मिली प्रतीत होती है जिसका उल्लेख पं ओझा ने अपने इतिहास में किया हैं।

कथा के अन्त में प्रतापसिंह के दरबार से धन प्राप्त कर लौटते हुये एक ब्राह्मण को डोडिया राजपूतों द्वारा मारना व पीपलोदा गाँव के इन राजपूतों के उपद्रवों से पहले से ही परेशान प्रतापसिंह और म्होकमसिंह के संघर्ष का वर्णन है। इस वर्णन में युद्ध सम्बन्धी जानकारी का विस्तृत वर्णन मिलता है तथा उस समय के कवियों की कवित्व शक्ति के दर्शन होते हैं।

यह बात छोटी-सी है मगर इसमें इतिहास के तन्तु विद्यमान हैं। यह इतिहास सम्मत है कि हरिसिंह वि.सं. 1685 से वि.सं. 1730 तक देवलिया के शासक रहे। हरिसिंह के पुत्र प्रतापसिंह व म्होकमसिंह थे। रावत प्रतापसिंह राजस्थान की एक पूर्व रियासत देवलिया प्रतापगढ़ के वि.सं. 1730 से 1765 तक शासक रहे। इन्होंने अपने नाम पर वि.सं. 1755 में प्रतापगढ़ की स्थापना की, जिससे प्रतापगढ़ देवलिया प्रताप-गढ़ रियासत की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

'रावत' अथवा 'महारावत' प्रतापगढ़ नरेशों की उपाधि है। रावत शब्द संस्कृत के 'राजपुत्र' शब्द से विकसित हुआ है। कथा में रावत प्रतापसिंह के भाई म्होकम सिंह

की वीरता का विशेष वर्णन किया गया हैं। प्रतापगढ़ का सालिमगढ़ नामक ठिकाना म्होकमसिंह और उसके वंशजों के ही अधिकार में रहा है। (प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास स्व. डॉ. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, पृ.स. 165)

इस बात से यह भी पता चलता है कि उस समय के शासक आम जनता से अलग-थलग रहकर उच्च विलासितापूर्ण जीवनयापन ही नहीं करते थे बल्कि वे जन जीवन के अभिन्न अंग थे। हस्तप्रति के अन्त में महाराजा बहादुरसिंह (किशनगढ़) के चरित्र की अनेक विशेषताएँ परमवीर, नीतिवान्, धार्मिक, विद्याव्यसनी, रण-कुशल, दानी, कला-प्रेमी, चरित्रवान्, प्रजापालक, चतुर और योग्य, कुशल शासक आदि के रूप मे प्रकट होती हैं।

उत्तर मुगलकाल में प्रचलित युद्ध प्रणाली का विशेष वर्णन किया गया है। डिंगल-पिंगल के कवियों से शासक के सम्बन्धों का पता चलता है। आतताइयों, दुष्टों को सजा देने के लिए कोई जाति-भेद न था। उस समय की युद्ध प्रणाली, युद्ध के नियम, सचेत कर शत्रु को मारना, पीछे से हमला न करना, मानवीय-गुणों का पालन किया जाना आदि का वर्णन मिलता है। युद्ध-प्रसंग में उत्तर मुगलकालीन युद्धों की प्रणाली और पतनोन्मुखी स्थिति का भी वास्तविक परिचय प्राप्त होता है। तब युद्ध क्षेत्र में सेना के साथ दास-दासियों और तवायफों की संख्या सैनिकों से भी अधिक होती थी। वार्ताकार ने वर्णन किया है कि 'एक हाथ सूं गळबांही न्हाख्यां, एक हाथ सूं ही गोळी बाहै छै।xxx बंदूकां अर प्याला एकण साथ भर रह्या छै।'

वात-साहित्य से उस समय के कवियों की कवित्व शक्ति व शरणागत रक्षा के भाव की झलक मिलती है। औरंगजेब जैसे विशाल राज्य के शासक द्वारा अपने पौत्र हेतु खुफिया खबरनवीस नियुक्त करने से, मुग़ल शासकों की राज्य लोलुपता स्पष्ट दिखायी देती है। प्रतापसिंह द्वारा औरंगजेब से डरे बिना उसके पौत्र के सेवक को शरण देकर विशाल राज्य के सामने टक्कर लेने में, पहाड़-सा हौसला दृष्टिगोचर होता है।

उस समय की शासन नीति, आचरण, व्यवहार, सामान्य जन-जीवन आदि का पता इस वात से चल जाता है।

ई-28, सीरी कॉलोनी, पिलानी

अभिलेखों के आलोक में डूंगरपुर राज्य की भूमि व उसकी सागडी प्रथा (सन् 1818 से 1947 ई. तक)

डॉ. करूणा जोशी

डूँगरपुर राज्य का प्राकृतिक स्वरूप मिश्रित प्रकृति का है। इसके पूर्वी भाग का ढलान माही नदी के तट की ओर था, इसी प्रकार से सोम, भादर, मोरन, वात्रोक, सांपण, गांगली और अन्य नदियों के आसपास का समतल भाग और उसके परिसीमा में आने वाले गाँवों का क्षेत्रफल अत्यन्त उपजाऊ था। अत: इस ओर रहने वाले कृषक सम्पन्न थे। जबकि उत्तर पूर्व के भाग ऊंची-नीची पहाडियों और जंगलों से ढके होने के कारण अपेक्षाकृत कम उपजाऊ थे।

सम्पूर्ण राज्य 7 भागों में विभाजित रहा, जो इन नामों से जाने जाते रहे- कटार [1] छाँसट[2], बारान [3], चौरासी [4], बोरल [5], काथल [6], तरपोद [7] आदि।

बाद के स्त्रोतों में तरपोद में काथल व कटार के गाँव भी सम्मिलित कर लिए गए थे।

भूमि के प्रकार:- डूँगरपुर रियासत की भूमि ऊपजाऊ तथा अनुपजाऊ भूमि का प्रमुख विभाजन लीली [8], सीरमा[9], सुखी [10] और राखड [11] के रूप में किया गया।

तालिका (भूमि की किस्म तथा प्रतिशत)

क्र.सं.	नाम किस्म जमीन	प्रतिशत (सम्पूर्ण भूमि)
(1)	लीली	20.3
(2)	सीरमा	30.5
(3)	सुखी	43.0
(4)	राखड़	6.2

खेतों के आकार—सम्पन्न कृषकों के पास 200 बीघा से भी वडे खेत थे तो साधारण कृषकों के पास 0 से 5 बीघा जोत तक के क्षेत्र थे [13]

मुख्य फसलें- यहाँ की भूमि में प्रमुख रूप से दो फसलें उन्हालू (खरीफ) व सीयालू (रबी) पैदा होती थी। खरीफ में मक्का, चावल, तिल, ज्वार, बाजरा, मूँगफली, गन्ना, दालों में उड़द, मूँग और अरहर, माल, गँवार, सनमेंडी, तम्बाकु व अरण्डी थी जबकि रबी में प्रमुख रूप से गेहूँ, जौ, चना सरसों, गन्ना, अदरक, हल्दी, जीरा, मेथी, अलसी, कपास, तम्बाकू आदि मुख्य थे। साग सब्जियाँ और फल भी प्रचुर मात्रा में होते रहे[14]।

जाति क्षेत्र:-

क्र.सं.	सन्	रबी क्षेत्र	खरीफ क्षेत्र
(1)	1909-10	68.073	87.485
(2)	1943-44	84.682	2,25,939

डूँगरपुर रियासत में कृषि व्यवस्था व कृषकों की स्थिति—

डूँगरपुर राज्य के 50% लोगों का व्यवसाय कृषि था, यहाँ मुख्य रूप से कृषकों की 5 श्रेणियाँ रही [15] जिनका आधार सम्पन्नता व साधनों की बाहुल्यता था।

प्रथम श्रेणी—वह कृषक जो धनधान्य से सम्पन्न था, जिसे आर्थिक सहायता की जरूरत नहीं थी और वे दूसरे कृषकों की सहायता भी करते थे।

द्वितीय श्रेणी—इस श्रेणी के किसानों के पास कृषि व्यवसाय से सम्बन्धित सारे साधन उपलब्ध थे। ये कर्जदार भी नहीं थे।

तृतीय श्रेणी—इनके पास कृषि सम्बन्धि सारी आवश्यकताएं होती थी परन्तु फिर भी उन्हें कृषि कार्य हेतु ऋण लेना पडता था किन्तु भुगतान समय पर करने की क्षमता रखते थे।

चतुर्थ श्रेणी—उस श्रेणी के किसानों के पास निम्न कोटि के कृषि साधन थे। हल तथा बैल का सामर्थ्य भी नही था। राजस्व भी महाजन से ऋण प्राप्त करके चुकाते थे।

पंचम श्रेणी—खेतों में मजदूरी करके अपना जीवन यापन करने वाले पंचम श्रेणी में रखे गये। इनके स्वयं का खेत, पूंजी, हल तथा बैल नहीं होते थे, खाद बीज आदि डालने की क्षमता भी नहीं थी। यही वर्ग पाट्टी काश्तकार कहलाया।

श्रेणी	संख्या	प्रतिशत
प्रथम	4,469	
द्वितीय	2,647	
तृतीय	1,228	
चतुर्थ	614	
पंचम	2,358	
कुल	11,316	

पाट्टी काश्तकार—

वे कृषक जो अन्यों के गाँवों में जाकर वहाँ अ़न्य के खेतों में मजदूरी करते थे। पाई काश्तकार कहे गए।

उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट है कि डूँगरपुर राज्य में दो प्रकार के कृषक थे-

(1) स्वयं कृषि करने वाले कृषक
(2) पई काश्तकार।

मुगलकाल में अपनी भूमि पर कृषि कार्य क़रने वाले किसानों को खुद काश्तकार कहा जाता था। राजस्थान [16] में ऐसे कृषकों के लिये 'गावेती' या 'धारूवाला' शब्द प्रयोग में लिया गया है। ये अपनी जमीन के मालिक थे एवं यह एक पीढी दर पीढी रहता था। ये अपने ही हल बैल द्वारा खेती करते थे व उपजाऊ जमीन के मालिक थे। डूँगरपुर में पटेल व राजपूत ऐसे ही कृषकों की श्रेणी मे आते थे [17]।

इस श्रेणी के कृषकों को कुछ विशेषाधिकार थे जैसे—

(अ) जंगल से लकडी लाने, गाय चराने अथवा तालाब से मछली मारने का उन्हें अधिकार था।

(ब) उनसे रियायती दर से अर्थात् प्राचीनकाल से चली आ रही दर से लगान वसूल किया जाता था जबकि दूसरे कृषकों पर लगान समय समय पर बढ़ाया जा सकता था किन्तु बन्दोबस्त के बाद सभी कृषकों को समान मान लिया गया था [18]।

पाट्टी काश्तकार:- वह कृषक जो पडोस के गाँव से या किसी दूसरे की जमीदारी से खेती करने के लिये गाँव में आता था। इसके पास अपनी जमीन नहीं होती थी। डूँगरपुर के कुल कृषक 14,604 में से 2,358 पाट्टी काश्तकार थे। शनैः शनैः पाट्टी काश्तकारों का समृद्ध किसानों ने शोषण आरम्भ कर दिया जिससे वे गरीबी की रेखा से भी निम्न स्तर का जीवन-यापन व्यतीत करने के लिये मजबूर हो गए, फलस्वरूप एक नयी प्रथा ने जन्म ले लिया, जो सागडी प्रथा कहलाई। इस प्रथा के परिणामतः कृषक मजदूर दास के स्वरूप में स्थापित हो गया। सागडी में महिला, बच्चे व पुरूष सभी सम्मिलित होते थे, उनके व मालिक के मध्य समझौते होते थे। सागडी प्रथा के अनेक उदाहरण डूँगरपुर राज्य में मिलते हैं।

कृषि मजदूर अथवा सागडी प्रथा

डूँगरपुर के खालसा व जागीर दोनों ही क्षेत्रों में हमें कृषक मजदूरों के उल्लेख मिलते हैं जिनके अपने हल-बैल भूमि आदि नहीं होते थे।

सागडी अधिकांशतः गरीब आदिवासी भील व मीणे थे जो रोटी के बदलें शासकों, ठिकानेदारों व धनी कृषकों के वहाँ काम करते थे। इनका स्वामी यदाकदा प्रसन्न होने पर सागडी के साथ सुमुचित दया का व्यवहार भी करता था।[19]

सागडी रहते समय मालिक व सागडी के मध्य समझौता होता था जिसमें दोनों के मध्य के सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख होता था। सीमलवाडा निवासी बैसाख भील उसके पुत्र भीखा तथा उसकी पत्नी भूरी ने ठिकाना सीमलवाडा से 200 थमला घाची की ऋण राशि लौटाने हेतु प्राप्त किए व बदले में (रुपयों के ब्याज के) सागडी बने [20]

सागडी कोया नाई को ठिकाने में निरन्तर और बैगार के बदले जागीर के सीथल गाँव में माफी की जमीन गुजारे के लिये ठिकाने की और से प्रदान की गई थी।[21]

निष्कर्ष—सागडी प्रथा के उदाहरण डूँगरपुर के गरीबी स्तर से भी नीचे का जीवन यापन करने वाले लोगों के जीवन यापन के तरीके को बतलाते हैं। वस्तुतः यह एक

शोषण का ही तरीका था जिससे निजात पाने के लिये तब किसी ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया था क्योंकि तब किसानों की आवश्यकता निजी स्तर पर परम्परागत हो गयी थीं जिन्हें पूरा करवाना मत्वपूर्ण था न कि ऋण चुकाकर पूरा किया जा रहा हैं यह सोचना।

किन्तु भारतीय स्वतंत्रता के बाद सागडी प्रथा को कानूनी प्रयत्नों द्वारा अवैधानिक घोषित कर इस प्रथा के दुष्परिणामों से कृषकों को बचाने का उपाय किया जा रहा हैं।

व्याख्याता इतिहास,
एस.बी.पी. राजकीय महाविद्यालय,
डूंगरपुर (राज.)

संदर्भ संख्या—

(1) यह वह भाग था जो सोम, माही और जाखम नदियों के आसपास का प्रदेश।
(2) इसमें सागवाडा के आसपास के छासट (66) गाँव थे।
(3) कुँआ और उसके आसपास के गाँवों को मिलाकर यह क्षेत्र बना।
(4) धम्बोला और इसके आसपास के 84 गाँव इस प्रदेश में थे।
(5) सोम नदी के आसपास का प्रदेश।
(6) सोम नदी के पास बोरल से जुडा प्रदेश था।
(7) आसपुर के आसपास का क्षेत्र।
(8) इसमें चाही, तालाबी, रोहन व दीगर श्रेणी की जमीन आती है। **चाही**—कुओं से सिंचित भूमि, **तालाबी**—तालाब से सिंचित भूमि, **सेहन**—तालाब के पेटे (पैंदे) में स्थित भूमि। इसमं फसल तभी होती थी, जब तालाब का पानी सूख जाता था।
दीगर—कुओं व तालाबों के अतिरिक्त अन्य साधनों से (नहरें या झरने) सिंचित की जाने वाली भूमि।
(9) अत्यन्त ऊपजाऊ तथा श्रेष्ठ भूमि जिसमें रबी तथा खरीफ दोनों फसलें प्राप्त की जाती थी और किसी सिंचाई साधन की आवश्यकता नहीं थी।
(10) मात्र खरीफ की फसल हो सके वह भूमि।
(11) वर्षा होने पर ही मात्र मक्की की फसल हो सकती थी।
(12) अ—खतौनी आसामीवार मौजा डूँगरपुर, सागवाडा, आसपूर-जिला कार्यालय, डूँगरपुर
ब—राजपूताना ऐजेन्सी पोलिटिकल ब्रॉच डूँगरपुर फाईल नं. 56-1905-07 वोल्यूम-2 रिपोर्ट ऑन द रिविजन ऑफ सैटलमेण्ट इन द डूँगरपुर 1915-16 :- रा. अ. नयी दिल्ली 1-
स—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, डूँगरपुर 1904-05 जि.सा.पु. डूँगरपुर।

(13) अ—तशखीस फाइलें।
ब—गाँवाई प्रतिवेदन, डूँगरपुर

(14) रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ डूँगरपुर स्टेट राजपूताना

(15) डूँगरपुर अभिलेख क्रम संख्या 1611 पृष्ठ 12 बस्ता संख्या-17 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।

(16) मुख्यत: राजस्थान के दक्षिणांचल प्रदेशों में वागड क्षेत्र में।

(17) डूँगरपुर अभिलेख फाईल क्रमांक 1161 पृ. 10 बस्ता-17 रा. रा. अ. बीकानेर

(18) गाँवाई प्रतिवेदन डूँगरपुर, जिलाधीश कार्यालय, डूँगरपुर

(19) ठिकाना अभिलेख से केवल इतनी जानकारी मिलती है कि वे उन्हें अपने क्षेत्र की पहाडियों पर रहने के लिये झोंपडी बनाने की ईजाजत देता था तथा प्रसन्न होने पर कई बार थोडी कृषि भूमि भी उसे आवंटित कर देता था जो माफी की जमीन होती थी।

(20) एक समझौता स्टाम्प पर दस्तखत किए जिसमें सागडी बनना मंजूर करते हुए मालिक से वादा किया कि—(1) हम उनका सभी प्रकार का कार्य जैसे—खेती-बाडी, खाण्डना, पीसना, बर्तन साफ करना (2) हमारे कार्य करने के लिए हम कभी कोई विरोध नहीं करेंगे। (3) सागडी कार्य करने के बदले में मूलधन का ब्याज नहीं देंगे। (4) अगर हमें आवश्यकता हुई तो ठिकाने से स्वीकृति लेकर एक या दो दिन नहीं भी आ सकते हैं, किन्तु उसके लिये भी यदि ठिकाना इजाजत नहीं देगा तब हम अनुपस्थित नहीं होंगे और इस पर भी यदि अनुपस्थित रहे तो ठिकाना प्रतिदिन आठ आने के हिसाब से हमारे खाते में लिख दें।

(21) जब मूल राशि हम लौटा देंगे, उस समय अनुपस्थिति दण्ड भी चुका देंगे।

(22) कुल राशि आखातीज अवसर ही चुका सकेंगे यदि न चुका सके तो उनका लेना न लेना ठिकाने की ईच्छा पर निर्भर करेगा अर्थात एक वर्ष तक सागडी का समय बढ सकता था।

(23) यदि हम सागडी कहीं भाग जावें अथवा काम करने में आनाकानी करें तो मालिक को यह अधिकार था कि वह उसकी स्थायी सम्पति का विक्रय कर मूल राशि वसूल करें।

(24) यदि कोई सागड़ी इस बीच मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसके पुत्र अथवा उसके उत्तराधिकारी को सागड़ी रहना होता था।

(25)

सागडी को या नाई को प्रदान की गयी जमीन सम्बन्धी पत्रावली सीमलवाडा जागीरदार के निजि विशाल संग्रह से उद्धृत फोटो प्रति मेरे निजि संग्रह में उपलब्ध है।

वल्ल मंडल के शिलालेखों में ऐतिहासिक गद्य

ब्रजभानु शर्मा

इतिहास एवं संस्कृति के शोधकार्य की दृष्टि से शिलालेख सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोत हैं। इनसे ऐतिहासिक घटनाओं एवम् तिथिक्रम के सम्बन्ध में तो प्रामाणिक जानकारी मिलती ही है, साथ ही उनमें उपलब्ध विवरण, भाषा-साहित्य के शोधपूर्ण अध्ययन हेतु भी महत्वपूर्ण होते हैं।

वल्ल मंडल के अन्तर्गत जैसलमेर के विशाल मरुस्थलीय भू-भाग में यत्र-तत्र उपलब्ध अनेकानेक शिलालेख भी, यद्यपि संस्कृत भाषा में ही हैं किन्तु कई शिलालेखों में उपलब्ध विवरण तत्कालीन राजस्थानी गद्य में उत्कीर्ण किया हुआ द्रष्टव्य है, जो ऐतिहासिक विवेचन के साथ ही गद्य-साहित्य के क्षेत्र में शोधकार्यों हेतु भी महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है।

(1) अमरसागर में उपलब्ध शिलालेख—

जैसलमेर-लोद्रवा सड़क मार्ग पर, नगर से उत्तर पश्चिम दिशा में ५ किलोमीटर दूर महत्वपूर्ण स्मारक 'अमरसागर' स्थित है, जहाँ उपलब्ध तड़ाग, भवन आदि का निर्माण १७वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में महारावल अमरसिंह द्वारा करवाया गया था। ऐसे विवरण यहाँ के शिलालेखों में अंकित हैं। यहाँ उपलब्ध शिलालेखों में से निम्नलिखित लेख राजस्थानी गद्य में हैं:-

(i) महल के अन्दरूनी बरामदे में उपलब्ध शिलालेख(12 पंक्ति) —

"...... महाराजाधिराज महारावलजी श्री गजसिहजी बाग 1 श्री गजरूपसागर करावीयो तिणरी रीत मर्या बाँधी तणरी बही माँही इण भांत विगत छै दाण हासल रो कंव 2 माल सकीट कपड़ो अमल तेल घृत वगैरे सरव रो ऊँट 1 रू.-) अषरे आणो एक वापार करसी सो सरव देसी धान ऊँट 1 रु.+) अषरे आणो आधो परदेस रो आसी तणरो सरव देसी वीया सादी गमी रो रयत लोक सरव इण भांत देसी विगत ओसवाल मेहेसरी इण तरे देसी वीया रो रुपयो एक वींद तथा वींदणी दोने देसी जमे रुपया दोय गमी रो परच जीमण तथा लहणगाव संवंधाई करे तणरो रु. 1) देसी षत्री सोनारो सूजी सलावट इणी तरे देसी वीया रा रु.2) अपरे दोय वींद तथा वींदणी आधो आध देसी परच गमी रो करे तण रो रू. ॥) अषरे आधो रुपीयो देसी लुहार मजूर सुतार मोची

षुवास वींया रो रू.1) वींद वींदणी देसी अषरे रुपीयो एक षरच रो रू. ॥) आधो देसी इंणे भांत बांधीयो सो सरव दीतां जासी इण में तफावद नहीं घातसी तफावद घाते जण नो इष्टदेव री आण है चौहोत रे मारीये री हत्या लागे ॥. . . "

व्याख्या—

(अ) यहीं उपलब्ध एक अन्य शिलालेख में वर्णन है जैसलमेर के महारावल गजसिंह ने वि. सं. 1897 फाल्गुन सुदि 4 गुरुवार के दिन गजरूपसागर (बाग) की प्रतिष्ठा की थी एवं बड़ा बाग (जैसलमेर) में प्रतिष्ठित स्मृति-स्तंभ के लेख के अनुसार वि.सं. 1903 आषाढ़ सुदि 5 चंद्रवार (सोमवार) के दिन गजसिंह का देहावसान हुआ था। अत: अमरसागर के ऊपर वर्णित शिलालेख का समय वि.सं. 1897 से 1903 के मध्य ही होना चाहिए, यद्यपि इसमें संवत् का उल्लेख नहीं है।

(ब) इस शिलालेख में महारावल गजसिंह द्वारा व्यापार एवं मृत्युभोज तथा विवाह की सामाजिक गतिविधियों पर कर(Tax-सरव) लगाया गया था जिसकी दरें विभिन्न जाति के प्रजाजनों के लिए अलग-अलग निर्धारित की गईं थीं। ब्राह्मण, राजपूत, हरिजन आदि कुछ प्रमुख जातियों का इसमें उल्लेख नहीं होने विषयक तथ्य भी पर्याप्त रोचक हैं एवम् अधिक शोध की अपेक्षा रखता है। कर वंचना नहीं करने के लिए इष्टदेव की कसम देते हुए चौहोत (गाय, सुअर आदि) मारने का पाप लगने का भय दिखाया गया है।

(स) इसमें प्रयुक्त राजस्थानी भाषा के शब्द अधिकांशत: आज भी इस क्षेत्र में प्रचुरता के साथ नागरिकों द्वारा बोल-चाल की भाषा में प्रयोग किए जाते हैं।

(ii) अमरसागर के महल की बाहरी दीवार में जड़ा हुआ वि.सं. 1756 वैशाख सुदि 3 गुरुवार का, महारावल अमरसिंह का शिलालेख—

". . . . षेत्र 1 माडेत नाम माल सोनारं रो अमरसागर निमित्त छै ऊदक छै रावल जी श्री अमरसिंघजी ऊदक कीयो छै ॥ जो लोपे तणेनां ओ पाप छै पुत्र पौत्रा पाट पाटान पालसै जिको न पालैं तंणे ने ओ पाप लागे ॥. . . . "

इस शिलालेख में रावल अमरसिंघ द्वारा, अमरसागर की व्याख्या हेतु एक खेत दान करने का उल्लेख है तथा अपने समस्त वंशजों को भी इसकी पालना करते रहने का निर्देश दिया जाना वर्णित है।

(iii) अमरसागर परिसर में, अमरेश्वर शिवालय के एक स्तंभ में जड़ा, वि.सं. 1897 फाल्गुन सुदि 4 गुरुवार, महारावल गजसिंह के शासनकाल का शिलालेख—

" . . . . बाग अमरसागर माँहे श्री अमरेश्वर जी रा मंदर आगै थो जण अगारी

परसाल व्यास ईसरलाल जी गिरधर कराई . . . ."

(iv) अमरसागर में उपलब्ध, वि.सं. 1897 के महारावल गजसिंह के शिलालेख का अन्तिम भाग—

अधिकांश संस्कृत भाषा के शिलालेखों में भी स्थापित सिलावट आदि के वर्णन वाला भाग राजस्थानी भाषा में है ।उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

". . . लिखितं व्यास धनीया हरिभजरायाणी ॥ गजधर मोकल तेजपालाणी गांम जाजीया रो जेतो मांकराणी गजधर विजो छताणी मूलो जालमाणी जाति यवन ऊपर ठाई गोविंदाणी सालू अजबांणी दरोगो छड़ीदार सरूपो तथा सरूपे रो बेटो रामो ।। श्रीरस्तुराम्म ॥ श्री श्री ॥"

(2) आचार्यपाड़ा में श्री सागरमल ओझा के मकान के बाहर चबूतरे पर स्थापित वि.सं. 1885 का शिलालेख—

". . . . महारावलजी श्री मूलराजजी ऊपरे राजराजेश्वर महाराजाधिराज महारावल जी श्री गजसिंहजी घर नग एक पुरोहित नवनिध नै उदक पुन्य कर्‌यो छै . . . . "

स्पष्ट ही है कि इसमें महारावल श्री मूलराज के पुण्यों की अभिवृद्धि हेतु महारावल गजसिंह ने एक घर नवनिध नामक पुरोहित को दान किया था, जिसका उल्लेख राजस्थानी गद्य में शिलांकित उपलब्ध है ।

(3) जैसलमेर दुर्ग के अन्दर अवस्थित लक्ष्मीकांतजी मंदिर के अन्दरूनी दालान की दीवार में जड़ित, वि.सं. 1844 वैशाख वदि 9 का शिलालेख—

". . . . स्वस्ति श्री संवत् 1844 वर्षे शाके 1709 मिती वैशाख वदी 9 इतरी अटक ठहराई छै ॥ श्री जैसलमेर रे पाट बेसने घांणेराव रे मेड़तिये गोपीनाथोत पराणीजै जेकानां सात तलाकां छै । चौहतरे मारीये रो पाप छै । आगे चाकर होयने । कोई हींदु तथा मुसलमांण अटक भंजावै । जिकैनां आप आप रै धरम रो सांस छै । इण बात री अरज करै जिणनां तलाक छै क़ोई सगो सैण इण बात री अरज करै जिणने सात तलाक छै चौहत रै मारीये रो पाप छै । उ जोई कोय वैष्णवमारगी तथा शिवमारगी तथा वांममारगी तथा जैनमारगी तथा कोई मुसलमांण इण बात री अरज करै जिकौ आप आप धरम सुं वेमुष हुवां रो उणनां पाप लागै ॥ . . . . ॥1 ॥ अै आषर ढोहे तथा भांजे जैनां वो तरै पाप छै ।

राजस्थानी भाषा में उत्कीर्ण यह शिलांकित लेख अपनी तरह का एकमात्र ही शिलालेख है जिसमें जैसलमेर के शासक वंश और नागरिकों को मेड़तिया गोपीनाथ

के यहाँ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करने के लिए कसम (अटक) खिलाते हुए निर्देश अंकित किए हुए हैं। गोपीनाथ के साथ ही उन व्यक्तियों एवं सगे सम्बंधियों का भी बहिष्कार करने का उसमें उल्लेख है, जो उससे वैवाहिक सम्बन्ध बनावें अथवा ऐसा करने के परामर्श देवें या प्रेरित करें। वि.सं. 1844 का यह शिलालेख. जैसलमेर के शासक मूलराज द्वितीय के शासनकाल का है जो स्वयम् भी वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत महान् भक्त नजर आते हैं। इस प्रकार यह राजस्थानी गद्य से संबंधित बहुत महत्वपूर्ण शिलालेख है।

(4) जैसलमेर दुर्ग में हवा प्रोल के बाहर स्थित गौरी जी के मंदिर में रखे मुक्त प्रस्तर फलक पर उत्कीर्ण वि.सं. 1759 माघ सुदि 2 बुधवार का लेख–

"....महाराजाधिराज महारावल श्री जसवंतसिंहजी विजय राज्ये माहाराजकुंवर जुवराज्ये श्री बाहाड़मेर मारने तलवाड़ी (तलवार) संणद्ध री मारीया राठोड़ उदेभांण री कोटड़ी ताही तगसु (?) देवी श्री गौरी जी ले आय.. ।"

इस लेख से आभास होता है कि वि.सं. 1759 में, जसवंतसिंह के शासनकाल में (जब जगतसिंह युवराज थे) बाड़मेर के इलाके पर किए गए आक्रमण के अन्तर्गत राठौड़ उदयभान की पूज्या देवी गौरी (प्रतिमा) को वहाँ से उठाकर जैसलमेर ले आया गया था।

(5) जैसलमेर किला के अन्दर छब्बा निवास के पास एक ध्वस्त मकान की दीवार में जड़ित, वि.सं. 1881 कार्तिक वदि 5 बुधवार का शिलालेख–

"....महाराजाधिराज महारावलजी श्री 108 गजसिंहजी करावितं डोढी (ड्योढ़ी) ऊपर मोहल तथा परसाल क्रपा मेरवांणी (कृपा मेहरबानी) सु आचारज ईसरलाल रै बसण रै वास्ते नाले रे ऊपर ठाई दरोगो सरूपो गजधर सेलावटो विजै। दसकत ब्यास मिठ रा छै...।

(6) मूलसागर का शिलालेख–वि.सं. 1979 वैशाख सुदि 7–

"...., मूलसागर पूर्व कृत्वा .... जणरो जीर्णोधार तथा नवी वगेची तथा जोहारसर तलो तथा बेरी तथा जोहारबंध पश्चिम रे पासे तथा सड़क जैसलमर सूं मूलसागर तक पकी तथा बाग में जनानी मोलायत तथा बारेदरी पश्चिम रे पासे तथा सिरे डोढी पर म्हेल तथा घोड़ां री पायघा तथा उठां (ऊंटाँ) रा ठाण वगेरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री श्री 108 श्री जोहारसिहंजी साहेबां बहादुर करावितं ॥संवत् 1979.. ॥षरच री विगत दफतरी बहीयां में है रु. 21000) गोदान तुलादान आदि दीना द. व्यास सगतमल"

जैसलमेर नगर से लगभग 7 किलोमीटर दूर स्थित रमणीक स्थल मूलसागर में उपलब्ध अन्य शिलालेख बताते हैं कि जैसलमेर के शासक मूलराज द्वितीय ने वि.सं. 1837 आषाढ़ सुदि 8 शुक्रवार के दिन मूलसागर की प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई थी।

प्रस्तुत शिलालेख से जानकारी प्राप्त होती है कि इस पूर्व निर्मित मूलसागर स्मारक में महारावल जवाहरसिंह ने वि.सं. 1979 वैशाख सुदि 7 बुधवार के दिन रु. 21000) मूल्य का गोदान, तुलादान आदि सम्पन्न किया, जो मूलसागर में पर्याप्त जीर्णोद्धार कार्यों के साथ ही विभिन्न महलात, बावड़ी, अस्तबल, सड़क मार्ग आदि नवीन निर्माण कार्य किए जाने के अवसर पर किया गया।

(7) गजरूपसागर का गोवर्द्धन-स्तंभ लेख—

यह स्पष्ट ही है कि कई शिलालेखों के राजस्थानी भाषा में ही विवरण अंकित किए गए हैं, किंतु उनको संस्कृत भाषा का रूप देने जैसा प्रयास किया गया है। गजरूपसागर का स्तंभ लेख द्रष्टव्य है:-

"....बड़ा हजूर श्री रणजीतसिंह जी ... महाराज श्री गजसिंहजी तथा महाराणी जी श्री राणावतजी रूपकंवरजी रे नाम सु तलाब श्री गजरूपसागर राजश्री केसरीसिंघजी करावितं ॥ संवत् 1940 ज्येष्ठ शुदि 13 . .. "

यद्यपि अन्यान्य कितने ही शिलालेखों में राजस्थानी गद्य के दर्शन सुलभ हैं, परन्तु विस्तार भय के कारण मात्र इतने शिलालेख प्रस्तुत किए गए हैं ताकि राजस्थानी भाषा के विद्वान् साहित्यकारों का ध्यान, शिलालेखों में वर्णित गद्य-साहित्य की ओर आकर्षित किया जा सके। आशा है कि विद्वज्जन राजस्थानी गद्य के शोधपूर्ण विवेचन के कार्यों में शिलालेखों का उपयोग कर सकेंगे।

संग्रहाध्यक्ष,
राजकीय संग्रहालय,
भरतपुर (राजस्थान)

वात रामदेव तंवर : ऐतिहासिक तथ्य

रतनलाल कामड़

'वात रामदेव तंवर री' नामक बात की मूल हस्तलिखित प्रति, जो कि अनूप संस्कृत ग्रंथालय, बाकीनेर में सुरक्षित है, इसकी अन्य प्रतियां श्री नरोत्तमदासजी स्वामी एवं श्री अगरचन्दजी नाहटा, (बीकानेर) के संग्रह में भी सुरक्षित है। रामदे संबधी बातें 18 वीं शदी में लिपिबद्ध हुई हैं।[1] यह वात रचना, डॉ. सोनाराम विश्नोई के ग्रंथ 'बाबा रामदेव : इतिहास और साहित्य' के पृष्ठ 538 से लेकर 542 तक मूल रूप में प्रकाशित है।[2] किन्तु इस वात-रचना का अब तक ऐतिहासिक मूल्यांकन नहीं हुआ है।

ज्ञातव्य है कि राजस्थान में वातें सुनाने की पुरानी परम्परा रही है ताकि उनसे योग्य संस्कारों को सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि जानकारियाँ उपलब्ध हो सकें। इनके विभिन्न प्रकार के अन्य उद्देश्य भी रहे हैं। तदनुसार ही उन वातों के विद्यमान वर्णनों का विस्तार पाया जाता है। प्रस्तुत "रामदेव तंवर री वात" धार्मिक वात के अंतर्गत आती है। इसकी ऐतिहासिक सामग्री भी उपलब्ध होती है, जो मूल्यवान है।

बाबा रामदेव का परिचय—

न केवल राजस्थान, अपितु पूरे भारतवर्ष में बाबा रामदेव एक प्रसिद्ध लोक देवता के रूप में विख्यात व पूजे जाते हैं। मानव चेतना की विकास यात्रा का यह क्रम रहा है, जिसमें मनुष्य नर से नारायण व भक्त से भगवान् बन जाता है। विक्रम की 15 वीं शती में क्षत्रिय तंवर कुलोत्पन्न बाबा रामदेव, ऐसे ही सिद्ध पुरुष थे। बाबा रामदेव न केवल मध्यम व निम्नवर्ग के अपितु राणा कुंभा[3] जैसे प्रसिद्ध शासक के भी इष्ट, श्रद्धा व भक्ति के आधार रहे है। आज भी वे भारतवर्ष के प्रसिद्ध लोक देवता हैं। बाबा रामदेव के संबंध में भक्तों को उनके जीवनवृत्त के आलोक में जानकारी देने वाली यह वात तर्क की कसौटी की अपेक्षा श्रद्धा व विश्वास पर अवलम्बित है।

प्रस्तुत वात (वार्ता) में निम्न छः मूल्यवान् घटनाएं उपलब्ध होती हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. सलारसी तंवर दिल्ली का पातशाह हुआ। सालरसी का बेटा रणसी, रणसी का बेटा अजैसिंह हुआ। अजैसिंह दिल्ली छोड़कर बारुछाह आया। तब पम्मे भाटी को जानकारी मिली, उसने आक्रमण की योजना बनाई। किन्तु रात्रि में सफेद ताम्बे के कोट देखकर वह घबराया और उसने अजैसिंह को अपनी बेटी ब्याह दी। अजैसिंह पोकरण के पास आ गया, वहाँ उनके वीरम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वीरमदे के नाम से वीरमदेवरा का निर्माण कराया गया।

2. पोकहरण में भैरव राक्षस का भयानक आतंक था। लोग गांव छोड़कर भाग गये थे। पोकहरण से दो कोस की दूरी पर गाढ़ाथल में श्री रामदेवजी का जन्म हुआ। उफनते दूध को रोकने की घटना प्रथम पर्चे के रूप में वर्णित है।

3. बाल्यावस्था में गेंद खेलते हुए गेंद दूर तक चली गई, उसके पीछे दौड़ते हुए, श्री रामदेवजी भेरु राक्षस के पास चले गये तथा उसकी छाती पर चढ़कर और उसे स्थान छोड़ने को विवश किया।

4. रामदेवजी ने पोकहरण गांव को पुनः बसाया और श्री बालीनाथजी को अपना गुरु बनाया और उन्होंने रावल मालै से मित्रता बनाई। वे इतने सिद्ध हो गये थे, कि वे चौपड़ खेलते हुए भी दूर समुद्र में डूबते हुए, बोयता बनिया को भी बचा लिया। इसके बाद रामदेवजी मुल्तान नगर (पाकिस्तान) चले गये।

5. श्री रामदेवजी के सुपुत्रों[4] ने, रामदेवजी की पुत्री सुगना (सुगना[5] वस्तुतः श्री धनजी की सुपुत्री थी, जो रामदेवजी के बहिन होती है) की शादी जगमाल मालावत के साथ कर दी। विवाह के समय रामदेव वहाँ पुनः उपस्थित हो गये। रामदेवजी ने रामदेसर (रामसरोवर) नामक तालाब बनवाया और वे स्वयं रामदेवरा (रुणेचा) आ गये। रामदेवजी ने स्वयं समाधि लेने का विचार किया।

6. श्री रामदेवजी की समाधि के विषय में सुनकर उनके मौसी पुत्र हड़बूजी, रामदेवरा आये, बीच में ही रामदेवजी उनसे आकर मिले। चार कोस तक बातें करते रहें फिर हड़बूजी को वे अकेला छोड़कर चले गये। हड़बूजी जब घर पहुंचे तो वहाँ स्वयं श्री रामदेवजी मौजूद मिले। उनके सुपुत्रों ने यह शंका की कि रामदेवजी समाधि से बाहर निकल गये, फिर समाधि खोदी तो वे वहां लेटे हुए थे। रात्रि को स्वप्न में आकर रामदेवजी ने उनसे कहा कि, "तुमने सिद्धि पर अविश्वास, किया है, अब तुम्हारे कुल में कोई सिद्ध पुरुष नहीं होवेगा?"

ऐतिहासिक मूल्यांकन—

घटनाक्रम (1) काशी करोत लेने की घटना—

समसू ऋषि का रणसी और खिवण दोनों को ही यह शाप था कि तुम दोनों पर एक साथ (वज्र) करौती फिरेगी। किन्तु इन दोनों ने पुनः ऋषि से अनजान हुए अपराध के लिए क्षमा मांगी तो ऋषि ने उन्हें यह आशीर्वाद प्रदान किया कि—"वैष्णव धर्म के प्रचार में ही तुम्हारा बलिदान होगा। जब तुम्हारे ऊपर करौती फिरेगी तो रक्त के स्थान पर तुम्हारे शरीर से दूध की धारा निकलेगी, तुम्हारे सिर पुष्प के रूप में परिणित होकर, ईश्वर के चरणों में चढ़ेंगे। उन्होंने जब धर्म प्रचार शुरु किया तो उनके अनुयायियों की भीड़ बढ़ने लगी। इस सन्दर्भ में जब बादशाह के धर्मगुरु अजमेर के कतीनशाह रणसी और खिवण मेघ को कैद कर लिया और बादशाह ने उन्हें हिन्दू धर्म को छोड़कर मुस्लिम धर्म स्वीकार करने को कहा था, किन्तु वे नहीं माने। अन्त में दोनों की गर्दनें करोती से काट दी गईं।

इस वार्ता में यह करोती लेने वाली घटना काशी में बताई गई जो असत्य है। क्योंकि संत वाणी के प्रमाण से यह पूर्ण निश्चय है कि यह दिल्ली में घटना घटी। यथा,

> **अर्द्ध शरीर दिल्ली से उड़कर,**
> **गिगन मार्ग हो आय।**
> **नगर नराणे राव तन पड़िया,**
> **खींवण दूदू मांय।।**[6]

कथावस्तु की ऐतिहासिकता—

प्रसिद्ध तोमर वंश का शासन दिल्ली पर रहा है। लोक परम्परा यह मानती है कि कन्नौज के प्रतिहारों के अधीन दिल्ली के तोमर वंश का शासन रहा है। तोमर अनंगपाल द्वितीय पृथ्वीराज चौहान का शासन अजमेर के साथ-साथ दिल्ली पर भी हो गया। मोहम्मद गौरी के आक्रमण के बाद दिल्ली और अजमेर पर गुलामवंश का शासन हो गया। दिल्ली से हटकर तोमर तोंरावटी (जयपुर) व ग्वालियर आ गये। उसी क्रम में रणसी भी तोंरावटी आ गये। रणसी के मन में, मोहम्मद गौरी[7] के प्रतिनिधि

स्वरूप गुलाम शासकों के प्रति विद्रोह भरा हुआ था। उन्होंने लूटमार शुरु कर दी और इसी क्रम में उनका अजमेर निवासी कतीबशाह से भी मतभेद हो गया। रणसी व खींवण वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए वीरगीत को प्राप्त हुए। इसी तथ्य को यहाँ काशी करवत (करोत) लेना कहकर बतलाया गया। यहाँ करोत लेने की सही घटना दिल्ली से संबंधित थी, न कि काशी से ?

घटनाक्रम—2

रणसी की मृत्यु के बाद, कतीबशाह (अजमेर शासक) शान्त नहीं रहा और उसने दिल्ली के बादशाह (गौरीशाह) को भड़काया, उसने नरैना (जयपुर) पर भी आक्रमण किया, जिसमें रणसी के छः पुत्र राजासी, सलारसी, गजोजी, मोटराज, केशपाल, नैणपाल तो मारे गये। उनमें शेष बचे अजैसिंह[8] और रूपजी (धनरूप) नरेना छोड़कर पश्चिमी राजस्थान के छाहणवारू की तरफ आ गये।

उपर्युक्त 'वात' में ऐतिहासिक तथ्य होते हुए भी नामों का क्रम उलट-पुलट अर्थात् सही क्रम से नहीं है। सलारसी जो रणसी का पुत्र था, उसे इस वात में रणसी का पिता बताया है और इस प्रकार सलारसी के भाई, अजमाळ (अजैसिंह) को यहां सलारसी का पौत्र बताया गया है।

घटनाक्रम—3

इस 'वात' में आई शेष प्रमुख घटनाएं इस प्रकार हैं—पमे भाटी की पुत्री का अजैसिंह से विवाह, रामदेव का जन्म (वि.सं. 1409 भादवा सुदी दूज शनिवार), भैरव राक्षस का दमन व उसका संहार करना, रामदेव जी का मुल्तान जाना, रामदेसर (रामसरोवर) तालाब का निर्माण करना, पोकरण नगर को दहेज में देना, रामदेवरा नगर का बसाना और जीवित समाधि[9] (भादों सुदी एकादशी, वि.सं. 1442) आदि घटनाएं ऐतिहासिक दृष्टि से सही व मूल्यवान् हैं।

प्रस्तुत 'वात' में आये अतिप्राकृत या अतिरंजित तत्व—रामदेवजी को ईश्वरीय अवतार सिद्ध करने के लिए उसमें कुछ अतिप्राकृत तत्वों का समावेश भी कर दिया गया है। जिनमें पालने में झूलते हुए दूध को नीचे उतारने की घटना, समाधि के पश्चात् हरबू सांखला से मिलना आदि तत्व, उनके दैविक स्वरूप प्रदान करने के लिए सम्मिलित किए गये हैं। ऐसे तत्वों को सम्मिलित करने का मात्र उद्देश्य भक्तों, श्रद्धालुओं में

उनके प्रति श्रद्धा भाव को उत्पन्न करना एवं उनकी सर्व-व्यापकता को सिद्ध करना है।

इस 'वात' में अपने मूल उद्देश्य की अनुपालना के साथ-साथ, तोमरवंश का परिचय, इसकी पूर्ववर्ती घटनाएं और श्री रामदेवजी के जीवन वृत्तों को भी सुरक्षित करते हुए, मूल्यवान् ऐतिहासिक तथ्यों को भी सम्मिलित कर, इस 'वात-रचना' को सफल बनाया गया है।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
शाखा, उदयपुर

संदर्भ संख्या—

1. बाबा रामदेव इतिहास एवं साहित्य, डॉ. सोनाराम विश्नोई, कलकता, 1989, पृ. 5-6
2. वही, पृ. 538 से 542 तक
3. मेवाड़ के महाराणा का शासन काल 1433-1468 ई.
4. रामदेवजी के सात पुत्र थे यथा, सादो जी, (ज्येष्ठ पुत्र थे, जो सादा गांव, रुणेचा के पास में रहते थे), देवराज (इनके वंशज रामदेवरा में रहते है), गरराज, महराज, भीवों जी, बांकोजी, जेतोजी।
5. सुगना, रामदेवजी की पुत्री नहीं थी, यह उनकी बहिन होती थी। इस 'वात' में यह एक ऐतिहासिक भूल अंकित हैं।
6. मेघवंश इतिहास, आर्य ब्रदर्स बुकसेलर, अजमेर, वि.सं. 2050, पृ. 166
7. (I) अलख नाम का आखा भेजो, खीवण रणसी आवो।
   गढ़ दिल्ली में जमा जगावो, साधु निवत बुलाओ॥
   —मेघवंश का इतिहास, स्वा.गोकलदास, अजमेर, पृ. 165
   (II) उस समय दिल्ली के बादशाह गौरीशाह थे।
   वही, पृ. 168
8. इनसे संबंधित कुछ अन्य 'वातों' (वार्ताओं) में अजमल के स्थान पर, अजैसी जी लिखा है। वस्तुत: अजमल, अजमाल, अजैसी, अजैसिंह एक ही नाम के ही पृथक्-पृथक् प्रयोग मात्र है।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के मतानुसर बाबा रामदेव जी के जन्म से लगभग एक वर्ष पूर्व, फिरोजशाह तुगलक दिल्ली के सिंहासन पर आरुढ़ हुआ और रामदेवजी की समाधि (वि.सं. 1442) के लगभग, एक वर्ष के बाद तक दिल्ली पर उसका साम्राज्य रहा है। अर्थात् बाबा रामदेव जी के जन्म से पूर्व प्रायः, सम्पूर्ण भारत पर मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो गया था जिसके चरमोत्कर्षकाल में रामदेवजी का आविर्भाव हुआ, उनका समकालीन दिल्ली का शासक फिरोजशाह तुगलक था।

भाटियों की ख्यात : तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. हुकमसिंह भाटी

ख्यात लेखन का प्रादुर्भाव 17वीं शताब्दी में हुआ, नैणसी की ख्यात[1] इसका एक पुष्ट प्रमाण है। नैणसी के समसामयिक मारवाड़ के राठौड़ों की ख्यात का पता लगा है जो उदयभाण चांपावत द्वारा लिखी गई है परन्तु जोधपुर कविराजा मुरारीदान के संग्रह में से प्राप्त होने के कारण यह मुरारीदान की ख्यात के नाम से सुज्ञात रही है। इसमें प्रारम्भ से लेकर महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम तक का क्रमबद्ध इतिहास लिखे जाने के साथ ही मेड़तिया व जोधा आदि राठौड़ों पर अच्छा प्रकाश पड़ा है।[2] इस क्रम में मूंदियाड़ की ख्यात भी उल्लेखनीय है जो महाराजा विजयसिंह तक राठौड़ों का सारगर्भित इतिहास संजोये हुए है।[3] बांकीदास द्वारा लिखी गई फुटकर बातें ख्यात नाम से प्रकाशित हुई हैं जो समूचे राजस्थान के इतिहास की विलुप्त कड़ियों को जोड़ने में सहायक है।[4] महाराजा मानसिंह के काल में लिखी गई जोधपुर राज्य की ख्यात न केवल मारवाड़ के इतिहास बल्कि दूसरे राज्यों तथा केन्द्रीय शक्ति के सम्बन्धों को समझने में सहायक है।[5] दयालदास की ख्यात मुख्य रूप से बीकानेर राज्य के इतिहास को जानने के लिये उपयोगी है।[6] इसके अतिरिक्त तंवरों, भाटियों, राठौड़ों की खांपों पर लिखी अनेक ख्यातें मिलती हैं।[7] जैसलमेर[8], मेवाड़ और जयपुर राज्य से सम्बन्धित कुछ ख्यातों का पता लगा है परन्तु ये ख्यातें बहुत ही संक्षेप में लिखी गई हैं और अधिक प्राचीन नहीं होने के कारण इतिहास लेखन में इतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हुई है; लेकिन शाहपुरा[9] जैसे राज्य और गोगूंदा[10] जैसे ठिकाने की ख्यातें काफी विस्तार से लिखी हुई मिलती हैं।

मारवाड़ के इतिहास लेखन हेतु 1888 ई. में इतिहास कार्यालय की स्थापना की गई और राज्य में संगृहीत सामग्री का अध्ययन करने के साथ ही मारवाड़ के ठिकानों से उनका इतिहास मंगवाकर उनकी छानबीन की गई। इतिहास कार्यालय की ओर से जब यहीं के ठिकाने वालों को अपना इतिहास प्रेषित करने के लिए कहा गया तब ठिकानेदारों ने अपने ठिकाने में संगृहीत प्राचीन पट्टे, रुक्के-परवाने, और चारणों व कुलगुरुओं की बहियों के अनुसार अपना इतिहास लिख कर प्रेषित किया। इस सामग्री को व्यवस्थित कर राठौड़ों (मेड़तिया, कूंपावत, चांपावत, महेचा आदि) चौहानों (सोनगरा. सांचोरा, खीची) और भाटियों की ख्यातें तैयार की गईं जो ठिकानों के इतिहास जानने के लिये

उपयोगी हैं।

583 पृष्ठों में लिपिबद्ध भाटियों की ख्यात, 70 ठिकानों के इतिहास को संजोये हुए है। इसमें जेसा, उरजनोत और रावलोत आदि भाटियों के ठिकानों का विवरण प्रस्तुत करते हुए जोधपुर राज्य के साथ सम्बन्ध, सैनिक व प्रशासनिक सेवाएँ युद्ध अभियानों में उनकी भूमिका, समय-समय पर पट्टे में मिले गाँव उसकी रेख, पट्टा जब्त हुआ है तो उसका कारण, जन कल्याण के कार्य आदि कितनी ही महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख हुआ है। युद्ध अभियानों में प्राणोत्सर्ग करने वाले भाटियों की जानकारी दी है जिसकी पुष्टि नैणसी की ख्यात और जोधपुर राज्य की ख्यात से होती है। इसमें निम्नलिखित ठिकानों का विवरण मिलता है।

(अ) जेसा भाटी

(1) बैरडां रो वास (2) मालूंगा (3) चांवडियो (4) बुटेची (5) नांनण (6) रायमलवाडो (7)तापू (8)खुड़ियाला (9)रिनियों (10) थलाजू (11)बेरू (12) तीतरी (13) निबाऊ (14) रूदियों (15) बुझावड़ (16) सांवडाउ (17) कपुरियो (18) लालाणो (19) थरासणी (20) सेदरियो (21) आकड़ावास (22) अणवाड़ो (23) हिंगाणियों (24) लवेरा (25) वालरवा (26) दावणी (27) बींजवाड़ियो (28) मूडवो (29) डकातरों (30) कामतरों।

(ब) उरजनोत भाटी

(1) लालियों (2) मलार (3) नांदण (4) आकथली (5) रामड़ावास (6) कापरड़ा (7) चिरडाणी (8) रामपुरो (9) खेजड़लो (10) साथीण (11) चुलेलाई (12) बुचकला (13) मेडावास (14) नांदीया (15) चिरडाणी (16) वाड़ो (17) घोड़वट (18) ओलवी (19) काष्ठी (20) कोटड़ी (21) सुरजनियावास (22) वीलवास (23) कूड़ (24) तोड़ियाणो (25) नेवरों (26) जाख (27) हेमलियावास (28) खारियो।

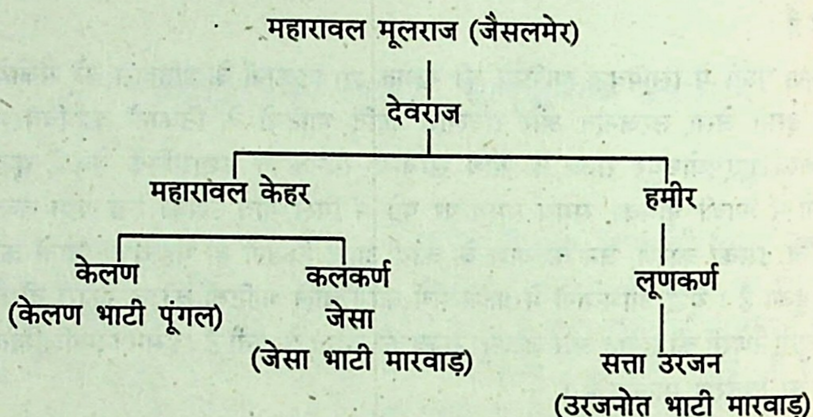
(स) रावलोत भाटी

(1) गाजुवास (2) बीकमकोर (3) भवाद (4) गोठड़ी (5) छावटो खुरद (6) ओसियां

(द) केलण, जसोड़, देरावल, खीया आदि भाटी

(1) उठवालियों (2) आसरावो (3) गोवां (4) जालोड़ा (5) नासोला (6) बावतरो (7) भदवासी (8) सांमसर (9) बालाकुवो

जैसलमेर से मारवाड़ में आने वाले केलण, जेसा और उरजनोत भाटी आपस में भाई-भतीजे के रिश्ते से बंधे हुए थे। निम्नलिखित वंशावली से यह बात स्पष्ट होती है-



जेसा भाटी जैसलमेर से मारवाड़ में कैसे आये इसका संकेत नैणसी की ख्यात में मिलता है। जेसा भाटी की माता अपने पति कलकर्ण से रूठकर अपने पिता हरभु सांखला (बेगटी) के यहां आकर रही। उसके साथ जेसा भाटी अपने नाना के पास आकर रहा। उसने नागौर के पास भाऊड़े ग्राम में कोट का निर्माण करवाया। फिर महाराणा कुम्भा के यहां चित्तौड़ चला गया। वहां उसे 140 गाँव से ताणा का ठिकाना मिला।[11] लेकिन नैणसी की ख्यात से यह पता नहीं चलता कि जेसा भाटी मारवाड़ से मेवाड़ क्यों गया। इसका उत्तर भाटियों की ख्यात में मिलता है। ख्यात के अनुसार राव जोधा को मंडोर पर अधिकार करने के लिए जेसा ने सैनिक सहायता दी, इस पर पूर्व में हुए समझौते के अनुसार जेसा को मारवाड़ का चौथा हिस्सा मिला, लेकिन जेसा की बहिन का विवाह राव जोधा के पुत्र सातल के साथ किये जाने के समय राठोड़ों ने चौथे हिस्से का पट्टा पुनः मांग लिया। इस पर जेसा कुपित होकर मेवाड़ चला गया।[12] ऐसी रिक्त कड़ियों को जोड़ने में यह ख्यात सहायक है।

मारवाड़ के इतिहास में जेसा भाटियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एक ओर जहां युद्ध अभियानों में वीरता का परिचय देते हुए उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी, दूसरी ओर प्रधान व किलेदार आदि महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए शासन प्रबन्ध में अपना योगदान दिया। जेसा भाटियों की तरह उरजनोत भाटी मारवाड़ के इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाने में सफल हुए। इनका प्रादुर्भाव जैसलमेर महारावल केहर के अनुज हमीर से हुआ। हमीर पोकरण में रहा, इसलिये इसके वंशज पोकरणा भाटी कहलाये। हमीर का पौत्र सत्ता राव रणमल के साथ चित्तौड़ में रहा और जब उरणमल मारा गया तब वह वीरतापूर्ण लड़ता हुआ काम आया।[13] उसका पुत्र उरजन मारवाड़ में आकर रहा और इसने राव जोधा को मंडोर हस्तगत करने में सहयोग दिया।[14] भाटियों की ख्यात में राव जोधा द्वारा चितौड़ पर आक्रमण करते समय उरजन का मारा

जाना लिखा है।[15] परन्तु ख्यात का यह उल्लेख गलत है क्योंकि उरजन भाटी द्रोणपुर के अभियान में मोहिल चौहानों से लड़ता हुआ काम आया।[16]

उरजन के वंशज उरजनोत भाटी कहलाये। राव मालदेव की ओर से रायपाल को खेजड़ला का ठिकाना मिला जो उरजनोत भाटियों का पाटवी ठिकाना रहा है।

जेसा भाटयों के योगदान का सूत्र जोधपुर राज्य की स्थापना के साथ जुड़ा हुआ है परन्तु उनकी सक्रिय भूमिका के सूत्र सुमेल गिररी के युद्ध (1543 ई.) में दिखाई देते हैं। मुरारीदान की ख्यात के अनुसार 9 भाटी सेनानायकों के अधीन 280 भाटी रणकुशलता का परिचय देते हुए वीरगति को प्राप्त हुये।[17]

उक्त ख्यात में इन प्रमुख भाटियों के ठिकानों के बारे में जानकारी नहीं मिलती, भाटियों की ख्यात इसका परिचय प्राप्त करवाने में सहायक है। शेरशाह शूरी की जोधपुर गढ़ पर चढ़ाई के समय जयमल व तिलोकसी भाटी ने पहले से ही मर मिटने का प्रण कर गढ़ में अपनी छतरियों का निर्माण कराया और फिर लड़ते हुए काम आये, इसका उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात में हुआ है।[18] लेकिन भाटियों री ख्यात, इस सम्बन्ध में मौन है।

हुसैन कुली खां की जोधपुर चढ़ाई के विभिन्न सोपानों का विवरण इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलता लेकिन नैणसी, मुरारीदान और जोधपुर राज्य री ख्यात में इसकी सटीक जानकारी मिलती है। हुसैन कुली खां को न केवल पांचनडा (प.सोजत) गाँव में रोकने का प्रयास किया गया बल्कि कन्सारों की पोल, रामपोल, राणीसर, चोकेलाव के मोर्चे पर क्रमशः लड़ाइयाँ लड़ी गईं और गढ़ पर अधिकार हो जाने के समय 6 भाटी काम आये। इन भाटियों के परिचय के लिये प्रस्तुत ख्यात सहायक सिद्ध हुई है। इस प्रकार कुण्डल की लड़ाई (संवत् 1627) दत्ताणी के युद्ध (सं. 1640) विद्रोही लाललिमियां से लड़ाई (सं. 1662) फलौदी में बलेचों से लड़ाई (सं. 1690) धर्मात के युद्ध, बालक अजीतसिंह के रक्षार्थ दिल्ली की लड़ाई (सं. 1736) 'अहमदाबाद' सरबुलन्द खां पर चढ़ाई, (सन् 1787), मारवाड़-मुगल संघर्ष, मराठा संघर्ष (सं. 1811) आदि युद्ध अभियानों में सक्रिय भूमिका निभाने वाले और प्राणोत्सर्ग करने वाले भाटियों के बारे में जहाँ जोधपुर राज्य की ख्यात में समुचित जानकारी मिलती है वहीं इन भाटियों के ठिकाने इत्यादि का परिचय हेतु भाटियों की ख्यात उपयोगी सिद्ध हुई है।

17 वीं शताब्दी में भाटियों को भादराजून (दयालदास) आसोप (गोयंददास) आदि बड़ी जागीरें मिलीं और गोविन्ददास प्रधान जैसे भाटियों की यहां के शासन प्रबंध में

अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही इसका विस्तार से वर्णन नैणसी व जोधपुर राज्य की ख्यात में भिलता है। लेकिन प्रस्तुत ख्यात में कुछ धुंधला प्रकाश पड़ा है। इसी प्रकार धरमात और अहमदाबाद की चढ़ाइयों में विशेषत: भाटी योद्धाओं की उपलब्धियों का उल्लेख उस समय के प्रबन्ध काव्यों में हुआ है लेकिन ठिकाने के राव भाटों की इस प्रकार की रचनाएं अब तक उपलब्ध नहीं हुई हैं।

प्रस्तुत ख्यात 19 वीं शताब्दी की घटनाओं पर विशेष प्रकाश डालती है। ठिकानेदारों ने अपनी बात की पुष्टि हेतु अनेक रुक्के परवाने व पट्टों की प्रतिलिपियाँ दर्ज की हैं। महाराजा की ओर से किलेदार नियुक्त करने[19] व ठाकुर की मृत्यु पर शोक व्यक्त करने सम्बन्धी रुक्के[20] और तख्तसिंह द्वारा अहमदनगर से लिखे खास रुक्के[21] महत्वपूर्ण हैं। इन रुक्कों से पता चलता है कि उक्त महाराणा को जोधुपर की गद्दी दिलाने में साथीण व भवाद गाँवों के भाटियों का विशेष योगदान रहा।[22] इस प्रकार के सूत्र जोधपुर राज्य के शासन प्रबन्ध और राजनैतिक गतिविधियों का बारीकी से अध्ययन करने के लिये उपयोगी हैं।

ठिकानेदारों ने अपने कुरब की जानकारी दी है, उन्हें कुरब मिला अथवा नहीं। अगर कुरब प्राप्त है तो "दोवड़ा" इसका उल्लेख हुआ है। खेजड़ला व साथीण जैसे बड़े ठिकाने वालों को सोने की छड़ी, नगारा, निसाण रखने का भी अधिकार था।[23] इस प्रकार के सूत्र भाटी ठिकानेदारों के स्तर और मारवाड़ के सामन्तों में उनका स्थान निर्धारित करने में सहायक हैं।

इसी प्रकार ठिकानेदारों ने अपने इकेवड़े व दोवड़े गिनायतों का उल्लेख किया है। राठौड़ और चौहानों आदि जिन शाखाओं में विवाह करते परन्तु उन्हें अपनी लड़की नहीं देते वे इकेबड़े गिनायत और जहां खुद विवाह करते और अपनी लड़की की शादी उनके साथ करते उनकी दौवड़े गिनायतों में (कूंपावत, चांपावत, मेड़तिया, जोधा) गणना की गई है।[24]

ख्यात के सभी पहलुओं का ध्यानपूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् मुख्यतः निम्नलिखित बिन्दु उजागर होते हैं:—

1. भाटियों को अधिकांश जागीरें जोधपुर के आस-पास मिली हुई थीं।

2. युद्ध अभियानों में भाटियों ने राठौड़ों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ाइयाँ लड़ीं और रणकुशलता का परिचय देते हुए अनेक भाटियों ने अपना बलिदान दिया।

3. भाटियों को मारवाड़ में अनेक जागीरें (गांव) प्राप्त थी परन्तु खेजडला और साथीण के अलावा दूसरे गाँव अधिक उपजाऊ नहीं थे। परिणामतः सब मिलाकर भाटियों का जीवन स्तर सामान्य ही रहा।

4. यह भी निष्कर्ष निकलता है कि युद्ध अभियानों और शासन प्रबन्ध में भाटियों ने जितना योगदान दिया उस तुलना में उन्हें बड़ी जागीरें नहीं मिलीं।

5. भाटियों की तुलना गैर राठौड़ों से करें तो इस बात का भी पता चलता है कि चौहानों की तुलना में भाटियों का विशेष योगदान रहा और उन्हें जागीरें अधिक मिलीं।

6. प्रारम्भ में जेसा भाटियों का वर्चस्व रहा फिर उरजनोत भाटी सम्बन्धों के परिणामस्वरूप रावलोत भाटी जोधपुर नरेशों के मर्जीदार रहे।

7. भाटियों ने राजघराने के साथ जुड़कर यहाँ के सामन्तों में शक्ति सन्तुलन बनाये रखने में अपना योगदान दिया।

इस प्रकार मारवाड़ के इतिहास में भाटियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है लेकिन विश्वेश्वर नाथ रेउ, गौरीशंकर हीराचंद ओझा और मांगीलाल व्यास आदि इतिहासकारों ने विशेष रूप से राठौड़ों की उपलब्धियों को उजागर करने का ही प्रयास किया। मारवाड़ के इतिहास का समग्र रूप से अध्ययन करने हेतु इस प्रकार के ख्यात ग्रन्थ सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

निदेशक,
प्रताप शोध प्रतिष्ठान,
(भूपाल नोबल्स संस्थान,) , उदयपुर

सन्दर्भ संख्या—

1. मुंहता नैणसी री ख्यात भाग-4, सं. बदरी प्रसाद साकरिया, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
2. अप्रकाशित, मूल प्रति जोधपुर कविराजा संग्रह श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में सुरक्षित।
3. अप्रकाशित प्रतिलिपि ग्रंथांक 15635, रा.प्रा.वि.प्र. जोधपुर में सुरक्षित।

4. प्रकाशित सं. नरोत्तमदास स्वामी, रा.प्रा.वि.प्र., जोधपुर
5. प्रकाशित (राज सीहा से महाराजा अजितसिंह तक) सं. रघुवीरसिंह एवं डॉ. मनोहरसिंह राणावत। महाराजा मानसिंह री ख्यात - सं. डॉ. नारायणसिंह भाटी, प्रा.वि.प्र. जोधपुर
6. प्रकाशित (राव बीका से अनूपसिंह तक) सं. डॉ. दशरथ शर्मा
7. इस प्रकार के ख्यात ग्रन्थ राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी में सुरक्षित हैं।
8. प्रकाशित सं. नारायणसिंह भाटी राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी,
9. मूल प्रति राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी में सुरक्षित।
10. जीराक्स प्रति प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर में सुरक्षित।
11. मुंहता नैणसी की ख्यात, भाग-2, पृ. 152-53
12. भाटियों की ख्यात, पृ. 7,369
13. नैणसी की ख्यात, भाग-2 पृ. 145, भाग-3, पृ.140
14. भाटियों की ख्यात, पृ. 92, 97
15. वही, पृ.98
16. नैणसी की ख्यात, भाग-2, पृ. 145
17. मुरारीदान री ख्यात, पृ. 121, 122
18. जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ. 86
19. महाराजा मानसिंह का पत्र खेजड़ला ठा. जसवंतसिंह के नाम "ठाकुरां जसवंतसिंह जी सूं मारो जुहार बांचजो तथा जालोर री किलेदारी भाटी गजा ने बखसीस कर उठे मेलियो सो थे इण ने सामल राख आछी तरे जाबतो किजो-किलो थारे भरोसे है।" 1861 रा चैत वदि 3, पृ. 109
20. महाराजा मानसिंह का पत्र खेजड़ला ठा. सादुलसिंह के नाम "ठाकुर सादुलसिंहजी सूं माहरो जुहार वांचजो तथा ठाकरां जसवंतसिंहजी रो समो हुवो सो मोकली फिकर हुई पिण श्री रघुनाथजी री माया, पण श्री जी आछा करसी....1872 चेत सुदि 15, पृ. 110
21. तखतसिंह का रुक्का साथीण ठा. लिछमणसिंह के नाम "ठाकुरां लिछमणसिंह जी सू मारो जूहार वीचजो। थे माने उठे विगत वार मालम हुई सो थांरो आछापणो ने सांमधरमी री कांई तारीफ करां थांरी बंदगी भूलसां नहीं.....श्री इष्टदेव री सौगन है 1900 रा काती वद 12" (पृ. 133)
22. भाटियों री ख्यात, पृ. 440-41, 89-90
23. भाटियों री ख्यात, पृ.112
24. वही, पृ. 215, 241, 496 आदि

जैसलमेर री ख्यात का विवेचनात्मक विश्लेषण

डॉ. एस.के. भनोत

राजस्थान के पश्चिमी छोर के सीमावर्ती मरु भूभाग में स्थित जैसलमेर राज्य का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। भूवैज्ञानिकी अनुसन्धानों[1] ने यह सिद्ध कर दिया है कि इओसिन युग में यह समग्र प्रदेश सागर के गर्भ में था।[2] इस प्रदेश के कभी जलमग्न रहने की पुष्टि इस प्रदेश से प्राप्त राख, सीपी, कौड़ी, इत्यादि फासिल्स से भी होती है।[3] शनैःशनैः होने वाले परिवर्तनों ने इस प्रदेश को शुष्क मरुस्थल में परिवर्तित कर दिया और यह थार मरुस्थल में समाहित हो गया।[4] यद्यपि इस प्रदेश में प्रागैतिहासिक सभ्यता के पुरावशेषों की खोज हेतु कोई उत्खनन अभी तक नहीं हुआ है तथापि यह प्रदेश निश्चय ही इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा होगा। चूंकि इस प्रदेश के चारों ओर मानवीय सभ्यता के अवशेष पल्लवित हो रहे थे। इसके उत्तरपूर्व में बीकानेर संभाग में कालीबंगा से पूर्व हडप्पाकालीन अवशेष मिल चुके हैं।[5] पूर्व में मारवाड़ प्रदेश में लूणी नदी के आसपास प्रागैतिहासिककालीन मानव का अस्तित्व प्रमाणित हो चुका है। पश्चिम में मोहनजोदड़ो और इससे आगे कोटदिजी में भी मानव सभ्यता के उदय के पुरातात्विक अवशेष मिल चुके हैं। जैसलमेर के चतुर्दिक् स्थित इन सभ्यता केन्द्रों में परस्पर किसी न किसी प्रकार का सम्पर्क सूत्र अवश्य रहा होगा और उसका मार्ग अवश्य ही जैसलमेर होकर ही रहा होगा।

इस प्रदेश का एक भाग सौवीर कहलाता है।[6] इस प्रदेश का साम्य सिन्ध के रोहरी-खैरपुर क्षेत्र से भी स्थापित किया जाता है, जहाँ किसी समय भाटी क्षत्रियों का शासन था।[7] कभी इसकी राजधानी रोऊआ अथवा रोरूका थी।[8] वस्तुतः प्राचीन काल में सौवीर एक जाति थी जिसे आभीरों के समकक्ष बताया गया है।[9] वर्तमान जैसलमेर के आसपास का प्रदेश माड़ प्रदेश भी कहलाता रहा है। इस प्रदेश के लिए 'माड़' शब्द का प्रयोग प्रतिहार शासक शासक कुक्कुक के घटियाला अभिलेख में त्रवणी तथा वल्ल के साथ हुआ है।[10] इस प्रदेश के लिए माड़ शब्द का प्रयोग आज भी होता है।[11] वल्ल भी माड़ का सीमान्त प्रदेश रहा होगा।[12] शुष्क पर्यावरण, प्राकृतिक प्रतिकूलताएं, जलाभाव की स्थिति, जीवन का दुरूह एंव कठिन होना इत्यादि विशेषताएं इस सम्भाग के पर्यावर्णीय वैशिष्ट्य रहे हैं। निश्चय ही इस भौगोलिक पर्यावरण ने इस सम्भाग के स्थानीय जनजीवन एवं इतिहास को भी अत्यधिक प्रभावित किया है। इन प्राकृतिक प्रतिकूलताओं ने जैसलमेर के निवासियों को जहाँ धैर्यवान्, साहसी एवं शूरवीर बनाया

वहीं यहां की प्राकृतिक प्रतिकूलताओं ने जैसलमेर प्रदेश को बाह्य आक्रमणों से बचाया। भारत और विशेषत: राजपूताना को बाह्य आक्रमणों से रक्षा प्रदान करने में भी इस प्रदेश की अद्वितीय भूमिका रही, अत: स्थानीय भाटी शासकों को "उत्तर भड़ किवाड़" की उपाधि से विभूषित किया गया। यह उपाधि भाटी शासकों के राजचिह्न में भी ढ़ाल के नीचे अंकित है।[13] राजपूत रियासतों में एक लम्बे समय तक एक ही प्रदेश पर शासन करने वाले राजवंशों में भाटी राजवंश का स्थान द्वितीय माना जाता है।[14]

उपर्युक्त तथ्य इस सम्भाग के बहुआयामी महत्व को प्रतिष्ठापित करते हैं एवं तद्विषयक इतिहास एवं इतिहास स्रोतों के अन्वेषण एवं मीमांसा पर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। सौवीर[15] एवं आभीर[16] जातियों की क्रीड़ास्थली रह चुके इस भूभाग के प्रामाणिक इतिहास की जानकारी हमें इस सम्भाग में भाटियों द्वारा अपनी सत्ता स्थापित करने से प्राप्त होती है जिन्हें इस प्रदेश में अपनी सत्ता स्थापित करने एवं तदुपरान्त अपनी सत्ता का विस्तार करने हेतु विभिन्न स्थानीय जातियों से संघर्ष करना पड़ा। भाटी राजवंश के उद्भव से लेकर इस प्रदेश पर उनके आधिपत्य की स्थापना की यात्रा बड़ी महत्वपूर्ण रही है। इस माड़धरा पर प्रभुत्व स्थापना के लिए राव केहर से लेकर महारावल जैसल के समय तक जो भी प्रयत्न किये गये वे जितने महत्वपूर्ण हैं उतनी ही महत्वपूर्ण वे समग्र घटनाएँ हैं जो संवत् 1235 के लगभग महारावल जैसल द्वारा जैसलमेर दुर्ग की स्थापना के उपरान्त की लगभग आठ शताब्दियों तक उनके वंशजों के शासनकाल में घटित हुईं। किन्तु अभाग्यवश राजस्थान प्रदेश के इतिहास लेखन के निमित्त किये गये विविध प्रयासों में अतिसमृद्ध एवं महत्वपूर्ण रह चुके जैसलमेर के इतिहास को विशिष्ट अथवा यथोचित महत्व प्रदान नहीं किया गया। राजस्थान के ऐतिहासिक गद्य-साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा-ख्यात साहित्य[17] नैणसी द्वारा प्रणीत "नैणसी री ख्यात"[18] में अवश्य जैसलमेर विषयक इतिहास को समाविष्ट करने का यथाशक्य प्रयास किया गया है किन्तु, तद्विषयक विवरण के आधार पर जैसलमेर के इतिहास की कोई क्रमबद्ध शृंखला का निर्माण सम्भव नहीं है। उल्लेखनीय है कि इस ख्यात में जैसलमेर के इतिहास से जुड़े कतिपय विशिष्टजनों एवं ठिकानेदारों से जुड़ी हुई ऐतिहासिक बातों का संकलन किया गया है। कर्नल जेम्स टॉड ने जब राजस्थान विषयक अपना वृहद् ग्रन्थ[19] लिखा तब उसमें भी जैसलमेर के इतिहास को समुचित महत्व एवं प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया। डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा जैसे इतिहासज्ञ ने भी, जिन्होंने राजस्थान का इतिहास खण्डों में लिखा, जैसलमेर के इतिहास का कोई स्वतन्त्र खण्ड लिखने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। उनके ग्रन्थों में जैसलमेर के इतिहास विषयक जो भी संदर्भ आते हैं वे बहुधा उनके जोधपुर राज्य और बीकानेर राज्य के इतिहास के संदर्भ में ही उल्लिखित दृष्टिगोचर होते हैं।[20] दीवान

नथमलकृत जैसलमेर की तवारीख[21] को अवश्य जैसलमेर के इतिहास से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र ऐतिहासिक कृति के रूप में देखा जा सकता है यद्यपि उसमें समाविष्ट सामग्री एवं तथ्यों को लेकर कई शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा भी राजस्थान के इतिहास पर जो कुछ लिखा गया है उसमें भी उत्तर मध्ययुगीन राजस्थान पर अधिक विशद लेखन कार्य किया गया है और संभवत: इसका कारण यह था कि मध्ययुग में फारसी स्रोतों एवं तवारीखों के रूप में रचित विपुल स्रोत सामग्री में समसामयिक क्रमबद्ध इतिहास लिखने का क्रम काफी विकसित रूप में विद्यमान था; जिसे इन इतिहासकारों ने भी अपने लेखन का आधार बनाया। यदि हम पूर्व-मध्ययुगीन राजस्थान एवं राजपूत-युग पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो यह अनुभव करते हैं कि इस युग के राजस्थान के इतिहास को अभी तक समुचित एवं समग्र ढंग से लिखे जाने हेतु कोई पूर्ण सार्थक प्रयास नहीं किया जा सका और यहाँ जैसलमेर के विशेष संदर्भ में यह बात अधिक आधिकारिक एवं प्रामाणिक रूप से कही जा सकती है।

जैसलमेर के इतिहास के विशेष संदर्भ में रही इस कमी की पूर्त्ति करने एवं कतिपय उल्लेखनीय महत्व के तथ्यों को उद्‌घाटित करने वाली जैसलमेर की ऐतिहासिक स्रोत सामग्री के रूप में जैसलमेर की ख्यात के महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है। राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर से प्रकाशित परम्परा के भाग संख्या 57-58 में डॉ. नारायणसिंह भाटी ने इस ख्यात का योग्यतापूर्ण संपादन कर जैसलमेर के इतिहास के एक ऐसे महत्वपूर्ण स्रोत को शोधार्थियों के समक्ष रखने का प्रयास किया है जिसके प्रकाश में समग्र जैसलमेर के इतिहास को एक नवीन दृष्टि से देखा जा सकता है। इससे तत्सम्बन्धी शोध की अनेकानेक नवीन सम्भावनाओं का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है।

ख्यात से जैसलमेर राज्य की ऐतिहासिक परम्परा एवं यहाँ के भाटियों[22] का यदुवंशी होना संकेतित होता है। मथुरा से पलायन करने के बाद यदुवंशियों ने विभिन्न स्थानों पर निवास किया और अन्त में ये लोग माड़ प्रदेश आ पहुँचे।[23] ख्यात में लाहौर[24], हिसार[25], मुमणवाह[26] (तलोट), मारोठ[27] तथा तणवट[28] को भी भाटियों की राजधानी स्वीकार किया है जिनकी सम्पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है। इस ख्यात से यह तथ्य स्थापित होता है कि यादव सत्ता का विस्तार उत्तर में निश्चित रूप से हुआ था। यादव-मुस्लिम संघर्ष भी इसी का परिणाम था। ख्यात में यदुवंश में भाटी नामक एक प्रतापी शासक के होने तथा उसी भाटी के जादम भाटी, मदु भाटी, यादव भाटी अथवा मात्र भाटी आदि वंशज होने का उल्लेख मिलता है।[29] माड़ प्रदेश में आने के उपरान्त भी भाटियों के संघर्ष का क्रम जारी रहा यद्यपि यहाँ वे निरन्तर अपनी शक्ति

एवं सत्ता वृद्धि करने में सफल रहे। माड़ प्रदेश में उन्होंने सर्वप्रथम तन्नोट पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। यहीं से जैसलमेर राज्य का शृंखलाबद्ध इतिहास आरम्भ होता है। तन्नोट में राजधानी स्थापित करने वाला तन्नू था। तन्नू के पितामह मंजमराव ने सिन्धु नदी के पश्चिमवर्ती प्रदेशों में पंथरों का कुछ भूभाग दबाकर मरोत नामक दुर्ग का निर्माण किया था। ख्यात में स्पष्ट है कि इस गढ़ का निर्माण मंजमराव के पांचवें पूर्वज मण्ड्यराव ने करवाया था।[30] तन्नू का पिता केहर भी मारोठ में ही रहा। केहर ने केहरोरगढ़ नामक नगर की स्थापना भी की। जैसलमेर री ख्यात के अनुसार तन्नोट की स्थापना भी केहर ने ही की थी।[31] यद्यपि मूल नैणसी ने तन्नोट की स्थापना का श्रेय तन्नू को दिया है।[32] तन्नू के ज्येष्ठ पुत्र विजयराज (प्रथम) के देवी भक्त होने, देवी से उसे चूड़ (चूड़ी) प्राप्त होने एवं 'चूड़ाला' कहलाये जाने का उल्लेख भी ख्यात में मिलता है।[33] देवी वरदान से उत्साहित विजयराज द्वारा अपने विजय अभियानों के परिणामस्वरूप तन्नोट, मरोठ, किरोहर, भटनेर, मुमणवाह नामक दुर्गों पर अधिपत्य स्थापना का उल्लेख भी मिलता है।[34] ख्यात में वीठोड़ (भटिण्डे) के वाराहों के साथ विजयराज के संघर्ष एवं अनेक योद्धाओं सहित मारे जाने का उल्लेख भी है।[35] ख्यात में राव विजयराज की मृत्यु के उपरान्त भाटियों की स्थिति, उसके पुत्र देवराज के संघर्षमय जीवन, देवराज द्वारा सत्ता की पुनः प्राप्ति एवं सत्ता विस्तार एवं उसके सिद्ध देवराज बनने व महारावल की उपाधि धारण करने विषयक उल्लेख भी मिलते हैं।[36] अपने राजनैतिक अस्तित्व का निर्माण करने के उपरान्त महारावल देवराज ने अपने पिता के घातक वाराहों से प्रतिशोध लेने हेतु वाराहों के राज्य विठोड़े (भटिण्ड़े ?) पर आक्रमण कर उन्हें बुरी तरह काटा और अपने पिता की हत्या का बदला लिया।[37] लुद्रवे पर अधिकार स्थापना के उपरान्त देवराज ने लुद्रवे को अपनी राजधानी बनाया।[38] ख्यात से हमें यह भी जानकारी मिलती है कि देवराज ने देरावर अपने भानजे दहियों को, जालोर सोनगरों को तथा मण्डोवर पड़िहारों (प्रतिहारों) को दिया।[39] ख्यात में देवराज का अन्त चन्ना राजपूतों के हाथों होना बताया गया है।[40] महारावल देवराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मंध (मूंध) शासक बना व उसने अपने पिता के हत्यारों चन्ना बलौचों का संहार कर उनसे प्रतिशोध लिया।[41] इसने मुंधकोट नामक दुर्ग भी बनवाया। कालान्तर में इस दुर्ग पर सिन्ध के अमीरों का अधिकार हो गया।[42] महारावल मंध की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वाछू शासक बना जिसके पुत्र दुसाज ने अपने भाईयों के साथ वीकमपुर के जैतुंगों, खोखरों व जोहियों के विरुत्र सफल अभियान कर अपनी राज्य सीमा का विस्तार किया।[43]

वाछू के बाद उसके पुत्र दुसाज एवं तदुपरान्त महारावल विजयराज लांजा शासक बने। विजयराज का विवाह पाटन के राजा जयसिंहदेव सिद्धराव (सौलंकी) की कन्या

के साथ हुआ था। सिद्धराज के यहां कर्पूरगंध युक्त जल की चर्चा होने पर विजयराज ने पाटन में उपलब्ध सारा कर्पूर खरीद कर सहस्रलिंग सरोवर में डलवा दिया व समस्त नगरवासियों को कर्पूर मिश्रित जल सुलभ कराया। इस उदार कृत्य के कारण ही उसे लांहा कहा जाने लगा। इस तथ्य का उल्लेख भी जैसलमेर की ख्यात में हुआ।[44] विजयराज लांचा की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र भोजदेव शासक बना। यही भोजदेव मो.गौरी की मुस्लिम सेना से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ और महारावल जैसल ने लुद्रवा का शासन सूत्र ग्रहण कर इस्लाम सेना से लूट का माल अपने अधिकार में कर लिया।[45] अपनी व्यवहारकुशलता के कारण वह समस्त भाटी सरदारों को अपने पक्ष में करने में सफल रहा।[46] रावल जैसल के काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना जैसलमेर दुर्ग का निर्माण तथा जैसलमरे नगर की स्थापना है। इस समय तक भाटियों की राजधानी लुद्रवा ही थी। जैसल की दृष्टि में यह स्थान राजधानी हेतु उपयुक्त नहीं था। उसने ब्राह्मण ईसा के परामर्श पर सं.1212 श्रावण बदि 12, आदित्यवार के मूल नक्षत्र में जैसलमेर दुर्ग की नांव रखी।[47] ख्यात के अनुसार जैसल के राज्य में जैसलमेर, देरावर, तणवट (तन्नोट), विकुंपर, रोहड़ी, भखर, छोटड़, फलोधी, खानड़, मारोट, सातल, नोहर, चोहटण, पुंगल, बाहड़मेर, नाचणा तथा जूनागढ़ नामक दुर्ग सम्मिलित थे।[48] लेकिन अपनी नवस्थापित राजधानी में जैसल 5 वर्ष ही शासन कर सका[49] और उसकी मृत्यु हो गई।

महारावल जैसल के उपरान्त उसके पुत्र शालिवाहन के समय में हुए काठी जाति विद्रोह दमन[50], तथा बलौचों से हुए घमासान संघर्ष एवं उसमें शालिवाहन के मारे जाने विषयक तथ्यों की जानकारी भी हमें इस ख्यात से प्राप्त होती है।[51] नैणसी के अनुसार शालिवाहन ने 22 वर्ष शासन किया।[52] इस दृष्टि से उसकी मृत्यु संवत् 1262 वि. (सन् 1205) के आसपास हुई किन्तु, जैसलमेर की ख्यात में इसकी मृत्यु तिथि संवत् 1246 भादवा सुद 5 दी है तथा शासनकाल 22 वर्ष बताया है।[53] ख्यात में शालिवाहन के परवर्ती शासक वीजल अथवा वैजल के अपने धाय भाई के हाथों धोखे से मारे जाने का भी उल्लेख मिलता है।[54] शालिवाहन एवं वैजल की मृत्यु[55] के उपरान्त सामन्तों ने शालिवाहन के अग्रज केल्हण को शासक बनाया जिसने बिलौच नेता खिदरखां को मारकर बिलौचों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की।[56] केल्हण के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र रावल चाचगदेव वि.सं. 1275 में गद्दीनशीन हुआ।[57] इसने चन्ना राजपूतों को जबर्दस्त शिकस्तं दी। परिणामत: चन्ना राजपूतों को अपना मूल प्रदेश छोड़कर जोहियों के प्रदेश में शरण लेने को विवश होना पड़ा। यह तथ्य भी हमें इस ख्यात से ज्ञात हुआ है।[58]

ख्यात से हमें यह भी ज्ञात होता है कि चन्ना राजपूतों के विरुद्ध प्राप्त सफलता

से उत्साहित होकर चाचगदेव ने सोढ़ा शासक को भी परास्त किया और उसने चाचगदेव से अपनी कन्या का विवाह कर सन्धि कर ली।[59] ख्यात से चाचगदेव एवं राठौड़ों के मध्य हुए वैवाहिक सम्बन्ध की भी जानकारी मिलती है।[60] चाचगदेव के उपरान्त क्रमशः रावलकरण, रावल जैत्रसिंह प्रथम, रावल लखनसेन, रावल पुण्यपाल इत्यादि शासकों के शासनकाल[61] की घटनाओं पर भी ख्यात यथोचित प्रकाश डालती है। ख्यात से पता चलता है कि पुण्यपाल के बाद रावल जैत्रसिंह (रावल जैतसी) द्वितीय के राज्यारोहण के साथ ही जैसलमेर राज्य का इतिहास एक नया मोड़ लेता दिखाई दिया। रावल जैत्रसिंह के समय से रावल घड़सी तक का समय भाटी-सल्तनत संघर्ष का समय रहा। जैसलमेर पर हुए तुर्क, खिलजी आक्रमणें पर यह ख्यात महत्वपूर्ण संकेत करती है।[62] जैसलमेर पर अलाउद्दीन की विजय एवं फिर उसके द्वारा दुर्ग को खाली किऐ जाने तक की विविध घटनाएं ख्यात में समाहित हैं। ख्यात में रावल घड़सी के शासनकाल के विविध क्रियाकलापों को भी यथोचित स्थान प्रदान किया गया है।[63] ख्यात जैसलमेर इतिहास के शांति एवं संकुचन काल कहे जा सकने वाले युग के शासकों-महारावल केहर, रावल लक्ष्मण, महाराव वैरसी, रावल चाचक, रावल देवीदास, रावल जैतसी, रावल लूणकर्ण, रावल मालदेव आदि शासकों के समय की विविध घटानाओं एवं क्रियाकलापों की जानकारी भी मिलती है।[64] ख्यात से यह आभास मिलता है कि रावल केहर से लेकर रावल मालदेव तक का शासनकाल प्रायः शान्ति का ही रहा था। स्वयं भाटियों ने न तो इस युग में आक्रामक नीति ही अपनाई और न ही साम्राज्य के विस्तार हेतु ही कोई यत्न किया बल्कि इस युग में जैसलमेर राज्य की सीमा का संकुचन ही हुआ। इसके पश्चात् का काल जैसलमेर राज्य का मुगल संसर्गकाल था। इस युग के शासकों यथा रावल हरराज, रावल भीम, रावल कल्याणदास, रावल मनहरदास, रावल रामचन्द्र, महारावल अमरसिंह, रावल जसवन्तसिहं, रावल बुद्धसिंह, रावल तेजसिंह, रावल सवाईसिंह, रावल अखैसिंह के समय की मुख्य बातें भी ख्यात में समाविष्ट हैं।[65] इसके उपरान्त महारावल मूलराज द्वितीय, महारावल गजसिंह, महारावल रणजीतसिंह और अन्त में महरावल बैरीसाल के पाट बैठने तक की घटनाओं को ख्यात में स्थान दिया गया है।[66]

इस ख्यात से जैसलमेर के विविध नरेशों के वैवाहिक सम्बन्धों से सम्बन्धित जिस विवरण का पता चलता है वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उन संदर्भों से हमें समसामयिक राजवंशों, शासकों एवं उनके राज्यों के नामों की जानकारी मिलती है जिससे न केवल जैसलमेर वरन् अन्य समसामयिक राज्यों का इतिहास लिखने में भी सहायता मिलती है। ख्यात में अनेकाने स्थानों पर विविध संदर्भों में मुगलों और राजपूतों की रणनीति, वीरता एवं शासकीय मान्यताओं आदि का विवरण भी मिलता है। जहाँ यह ख्यात राज्य प्राप्ति हेतु किए जाने वाले छल प्रपंचों का उल्लेख करते हुए इस क्षेत्र

के कतिपय अनुछए आयामों को स्पर्श करती है वहीं यहाँ के शासकों की देवियों में अटूट आस्था तथा उसके वरदान स्वरूप यहाँ के योद्धाओं द्वारा किए गये चमत्कारिक क्रियाकलापों से सम्बन्धित विवरण इस के इतिहास के सांस्कृतिक पक्षों को भी उजागर करते हैं। (कुलदेवियां—तणोटियांजी, सांगवियांजी, तेमड़ाराय आदि)

यद्यपि इस ख्यात में मूल रूप से ऐतिहासिक पुरुषों और प्रसिद्ध घटनाओं का संक्षिप्त विवरण मात्र समाहित किया गया है तथापि ये संदर्भ या विवरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि इन व्यक्तियों से सम्बन्धित अनेक किंवदंतियों और गाथाओं ने यहाँ के जनज़ीवन को सैकड़ों वर्षों तक प्रभावित किया है अतएव उन्हें समझने में इस ख्यात से आधारभूत सहायता मिलती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी यह ख्यात अपने आप में कतिपय महत्वपूर्ण सूचनाएं संजोए हुए है। उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में लगभग डेढ़ शताब्दी तक विविध प्रकारीय उथल-पुथल होती रही जिसके फलस्वरूप यहाँ के जनजीवन में अनेक परिवर्तन भी हुए। इस ख्यात में मुसलमानों की कई ऐसी खांपों और हिन्दु जातियों का उल्लेख है जो मूलतः भाटी जाति के राजपूतों से ही उत्पन्न हुई थी। उदाहरणार्थ जहां मंड़राव नामक भाटी जाति के मूल पुरुष से मेवाती मुसलमान[67] और मांगलियोजी से मांगलिया मुसलमान जाति[68] जैसी मुस्लिम जातियों के अभ्युदय जैसे संदर्भ उल्लेखनीय हैं वहीं सुबेसेन नामक भाटी जातिके मूल पुरुष से अहीर[69] और खड़गसी से जाट जाति[70] और कुलरियोजी से गूजर जाति[71] इत्यादि हिन्दु जातियों के अभ्युदय सम्बन्धी संदर्भ भी इस क्षेत्र के समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार भाटी जाति के विविध इतिहास पुरुषों के नाम पर भाटियों की जिन अनेकानेक शाखाओं का प्रचलन हुआ और जिन्हें हम आज भी अस्तित्वमान पाते हैं उनका भी इस ख्यात में यथास्थान प्रचुर मात्रा में उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ—सहरावसर के नाम पर सहराव भाटी[72], लधड़जी से लधड़ भाटी[73] सिधरावजी से सिधराव भाटी[74], रायधरजी से रामधर भाटी[75], दूदाजी से दूदा भाटी[76] और सगतसिंहजी से सगतसिंहोक भाटी[77] इत्यादि।

ख्यात की जो सुवाच्य प्रतिलिपि राजस्थानी शोध संस्थान में संरक्षित है उसके अन्तिम पद्यांश में मेहता अजीत क़ा नामोल्लेख है जो इस ओर संकेत करता है कि ख्यात का संकलन संभवतः मेहता अजीतसिंह द्वारा किया गया था।[78] इस ख्यात में बैरीसाल तक का विवरण संवत् 1921 तक का समाविष्ट मिलता है जो इस अनुमान को सम्पुष्ट करता है कि यह ख्यात संवत् 1921 के लगभग ही किसी समय संकलित

की गई होगी। दीवान नथमल कृत जैसलमेर की तवारीख एवं इस ख्यात में अनेक बातें मिलती जुलती होते हुए भी इस ख्यात में कतिपय भिन्न प्रकार की सूचनाएं एवं तथ्य समाहित हैं जो इस ख्यात के विशिष्ट महत्त्व को प्रतिष्ठापित करते हैं।

निष्कर्षत—यह कहा जा सकता है कि राजस्थान के इतिहास के निर्माण में राजस्थान के ऐतिहासिक गद्य साहित्य की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसकी एक महत्वपूर्ण विधा ख़्यात साहित्य है। इन ख्यातों में मात्र शासकों की प्रशंसा ही नहीं की गई है वरन् इनमें ऐसी अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध सूत्र भी जुड़े मिलते हैं जो राजस्थान के राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। जैसलमेर की ख्यात इस अवधारणा की सम्पुष्टि हेतु एक पुष्ट उदाहरण है। अन्य ख्यात साहित्य की भांति ही इस ख्यात में भी जहाँ रचनाशैली में आई अलंकारिता, संरक्षकों के यशोगान की प्रवृत्ति, तिथि-संवत् विषयक गलतियां, घटनाओं के कालानुक्रम को त्रुटिपूर्ण बना देने वाली भूलें इत्यादि विसंगतियाँ एवं त्रुटियाँ दृष्टिगोर होती हैं वहीं इस ख्यात से समाविष्ट तथ्यात्मक जानकारी का अपने आप में स्वतन्त्र महत्व है।

स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,
राज. डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर (राजस्थान)

संदर्भ संख्या—

1. भूवैज्ञानिकी दृष्टि से इस प्रदेश में उपलब्ध पैलोजाइक, मैसोजाइक एवं सोनाजाइक कालीन अवशेष इस प्रदेश की प्रागैतिहासिक कालीन स्थिति को प्रमाणित करते हैं। इस सामग्री में बाप क्षेत्र से प्राप्त संपीड़ित चट्टानों के आधार बालुआ पाषाण खण्ड इसे तालचरयुगीन धरा ठहराते हैं जो बालुआ पाषाणों पर उपलब्ध गोल पाषाण पर्तें हिमानी कार्य की साक्षी देती है। ज्यूरासिक चट्टानों के अवशेष इस प्रदेश में ज्यूरासिक सागर के अस्तित्व का संकेत देते हैं तथा साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि यह सागर जोधपुर एवं बीकानेर क्षेत्र के लगभग व्याप्त था। इसी प्रकार कच्छ, जैसलमेर तथा बीकानेर क्षेत्र में उपलब्ध चट्टानें इस क्षेत्र का सम्बन्ध इओसिन युग से स्थापित करती हैं और प्रमाणित करती हैं कि यह सम्पूर्ण प्रदेश सागर के गर्भ में रहा।
   दृष्टव्य : मांगीलाल मयंक ; जैसलमेर राज्य का इतिहास, पृ. 1, जोधपुर, 1984

2. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर : जैसलमेर, पृ. 25 ; जयपुर 1973
प्रोसिडिंग्स ऑफ दी सिम्पोजियम ऑन दी राजस्थान डेजर्ट (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली द्वारा प्रकाशित), पृ. 22-23, सित. 1952,
3. डॉ. गोरीशंकर हीराचंद ओझा : ओझा निबन्ध संग्रह, भाग I, पृ. 26, पाद टिप्पणी क्र. 4, उदयपुर
4. रामायण की आख्यायिकानुसार समुद्र सोखने के उद्देश्य से भगवान् राम ने जो बाण धनुष पर चढ़ाया था, समुद्र के अनुनय-विनय पर उसे राम ने इस भूभाग पर गिरा दिया फलतः यह भूभाग 'मरुकान्तार' कहलाया।
दृष्टव्य : रामायाण, युद्ध काण्ड, एकविंश सर्ग, श्लोकांक 31-35 एवं 40-41
5. इण्डियन आर्कियोलोजी, 1960-61, पृ. 31-32 ; 1962-63, पृ. 20-31 ;
रिसर्चर, भाग-1 पृ.37 ; भाग-2, पृ.36 ;
दशरथ शर्मा : राजस्थान थ्रू द एजेज, भाग-1, पृ. 39-40, बीकानेर
6. डी.सी. सरकार : स्टड़ीज इन द ज्याग्राफी ऑफ एनशिएण्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृ. 79
7. हेमचन्द्र रायचौधरी : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 95
8. कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वोल्युम-II, पृ. 71
9. डॉ. मांगीलाल व्यास : जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 3
10. एपीग्राफिका इण्डिका, वोल्युम IX, पृ. 279
11. ओझा निबन्ध संग्रह, भाग-I, पृ. 29
12. मेन प्राप्ता महख्यातिस्त्रवण्यो वल्लमाड़योः (कुक्कु का घटियाला लेख)
येन सीमा कृता नित्यास्त्रवणी वल्लदेशयो (बाउक जोधपुर अभिलेख)
13. जगदीश सिंह गहलोत : राजपूताने का इतिहास, भाग-I, पृ. 644-46
14. प्रथम स्थान मेवाड़ के गहलोत राजवंश का है।
15. डी.सी. सरकार : पूर्व., पृ. 79
16. रामायण, युद्ध काण्ड़, एकविंश सर्ग, श्लोकांक 31-35
17. ख्यात साहित्य के महत्व विषयक विशेष अध्ययन हेतु द्रष्टव्य :
डॉ. घनश्यामलाल देवड़ा : ख्यातकार दयालदास सिंढ़ायच, सम्पादकीय एवं पृ. 13-55, परम्परा, भाग-74-75, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, 1975, जोधपुर
18. मुंहता नैणसी री ख्यात, भाग-I सं. बद्रीप्रसाद साकरिया, जोधपुर, 1959 ;
वही, भाग-II, जोधपुर, 1961
19. कर्नल जेम्स टॉड : एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान
20. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग-1,2,
अजमेर, 1936 ; वही : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, अजमेर, 1938

21. नथमल मेहता : जैसलमेर तवारीख, अजमेर, 1891
22. प्राप्य वंशावलियों में मत मतान्तर के बावजूद यह तथ्य तो निश्चित रूप से उद्घाटित होता है कि भाटी राजपूत यदुवंशियों तथा चन्द्रवंशियों के ही वंशज हैं तथा यदुवंश प्राचीन भारत का एक प्रतिष्ठित राजवंश रहा है । द्रष्टव्य : मांगीलाल मयंक : जैसलमेर राज्य का इतिहास, पूर्व. पृ. 15
23. इनकी विभिन्न राजधानियों के विषय में एक दोहा भी प्रचलित है—
मथुरा काशी प्रागवाड़, गजनी अरु अटनेर ।
दिगम दिरावल लोद्रवों, नम्मो जैसलमेर ॥
24. ख्यात के अनुसार राजा विक्रमसेन ने पंड़ी राजपूतों से लाहौर छीन कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की । विक्रमसेन के सातवें वंशज उत्तरासेन ने गजनी को अपनी राजधानी बनाया । उत्तरसेन के पांचवे वंशज देवसराय ने पुनः मथुरा को अपनी राजधानी बनाया, लेकिन देवसराय के चौथे वंशज अवनिजित ने फिर लाहौर को राजधानी बनाया । इसके उपरान्त राजधानी कभी लाहौर तो भी मथुरा रही । डॉ. नारायणसिंह भाटी द्वारा संपादित जैसलमेर री ख्यात, पृष्ठ 24-29 परम्परा भाग 57-58, जोधपुर 1981
25. भाटी राजवंश के 136वें शासक हंसू ने हिसार नामक नगर की स्थापना कर उसे अपनी राजधानी बनाया । एक सौ चवालीसवें शासक बालद तक हिसार इनकी राजधानी रही । उपरोक्त ख्यात, पृ. 29-30
26. ख्यात के अनुसार एक सौ छप्पनवें शासक मंगलराव ने भुमणवाह नगर बसाया तथा उसे अपनी राजधानी बनाया, जो उसी के काल में मुसलमानों द्वारा छीन लिया गया ।
उपरोक्त जैसलमेर री ख्यात, ; 34
27. उक्त मंगलराव के उत्तराधिकारी मंड़यराव ने मारोठ को अपनी राजधानी बनाया जो उसके छठे वंशज केहर के समय तक राजधानी रहा ।
उपरोक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 35-36
28. जैसलमेर री ख्यात के अनुसार केहर के पुत्र तणुराव (तन्नूराव) ने तन्नोर में गढ़ का निर्माण करवा कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की ।
उपरोक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 36
29. भाटी जी गढ़ भटनेर वसायो संवृत् 342 जद सूं भाटा कहाणा आगे आदम वाजता ; उपरोक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 31 ; तवारीख, पृ. 14
30. उपरोक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 35
31. ख्यात में कहा गया है कि झाली रानीको तणुटिया देवीने स्वप्न में दर्शन दिए तथा आदेश दिया कि अपने पुत्र का नाम तणु रखना, मेरे नाम से नगर बसाना तथा

वहां मेरा मंदिर बनवाना। इससे तेरे वंश की वृद्धि होगी, यह सांगविया का वचन है। उपरोक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 36

32. मूता नैणसी री ख्यात, भाग-2 पृ. 262
33. उपर्युक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 36, 37
34. वही, पृ. 37
35. वही
36. वही, पृ. 37, 38, 39, 40
37. विठड़े को झाला वाराहां ने मारियो, बाप रो बैर लियो कतल किवी। उपर्युक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 39
38. वही, पृ. 40 (लुद्रवे राजस्थान बांध्यो)
39. वही, पृ. 40
40. वही, पृ. 41
41. वही, पृ. 42
42. तवारीख—जैसलमेर, पूर्व., पृ. 25
43. उपर्युक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 43
44. वही, पृ. 44
45. वही, पृ. 45
46. वही, पृ. 45 में भी तद्विषयक संकेत मिलता है। लुद्रवा का परगना का गांव 999, अमराकां ने रीझ मौज दीवी।
47. उपर्युक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 46-47 ;
डॉ. मांगीलाल मयंक का मत है कि दुर्ग का निर्माण वि.सं. 1235 से 1244 के बीच कभी हुआ होगा। मयंक : जैसलमेर राज्य का इतिहास, पूर्व., पृ. 40
48. उपर्युक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 47
49. वही
50. वही, पृ. 48
51. वही
52. मूता नैणसी री ख्यात, भाग-2, पृ. 280
53. जैसलमेर री ख्यात, पृ. 48
54. वही, पृ. 49
55. वही
56. वही
57. वही
58. वही, पृ. 50

59. वही
60. खेड़ के राव छाड़ा और उसके पुत्र टोड़ा ने चाचगदेव से राठौड़ राजकुमारी ब्याह कर उससे सन्धि कर ली थी;
उपर्युक्त जैसलमेर री ख्यात, पृ. 50
61. वही, पृ. 50,51,52
62. वही, पृ. 52, 53
63. वही, पृ. 56
64. वही, पृ. 59 से 68
65. वही, पृ. 68 से 81
66. वही, पृ. 81 से 87
67. वही, पृ. 23
68. वही, पृ. 44
69. वही, पृ. 24
70. वही, पृ. 27
71. वही, पृ. 36
72. वही, पृ. 31
73. वही, पृ. 31
74. वही, पृ. 43
75. वही, पृ. 64
76. वही, पृ. 67
77. वही, पृ. 71
78. डॉ. नारायणसिंह भाटी के अनुसार—"दीवान नथमल ने अपनी तवारीख में अपने सहयोगियों के रूप में जिन व्यक्तियों का उल्लेख किया है उनमें मेहता अजीत का नाम भी है और वे उस समय के एक महत्वपूर्ण राज्याधिकारी भी रहे हैं अतः बहुत सम्भव है कि मेहता अजीत ने उस समय ऐतिहासिक सामग्री का संकलन कर अपने ढ़ंग से इस ख्यात का निर्माण किया हो।" द्रष्टव्य : डॉ. नारायण सिंह भाटी द्वारा संपादित 'जैसलमेर री ख्यात', पृ. 14, परम्परा, भाग-57-58, जोधपुर, 1981

नृपवंशवर्णन और वीर विनोद का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सर्वेश कुमार शर्मा

नृपवंशवर्णन हस्तलिखित ग्रंथ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा अलवर के ह.लि. ग्रंथ संख्या 4986 पर संगृहीत है। इस ग्रंथ में जयपुर के कछवाहा राजवंश की वंशावली दी गई है। इस ग्रंथ में कहीं भी इसके लेखक या लिपिकार के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। साथ ही इसका समय भी निर्धारित नहीं है। इसमें राजा सोढा जी से प्रारम्भ कर सवाई राजा जगत्सिह जी तक के राजाओं का ही इतिहास उपलब्ध होता है। इसमें सवाई जगत्सिह के राज्यारोहण का समय संवत् 1860 उल्लिखित है। अत: निश्चितरूप से यह ग्रंथ 1860 के बाद का ही लिखा हुआ है। अलवर राजमहल के पुस्तकालय में इस ग्रंथ को संवत् 1957 में सम्मिलित किया गया था, जिसकी मोहर इस ग्रंथ पर लगी हुई है। अत: इससे यह भी सिद्ध होता है कि यह ग्रंथ संवत् 1957 से पूर्व ही लिखा जा चुका होगा। इस प्रकार यह ग्रंथ संवत् 1860 से संवत् 1957 के मध्य एक सौ वर्ष की अवधि में ही किसी समय लिखा गया होगा। इस ग्रंथ को देखने से यह भी प्रतीत होता है कि इसका लेखक अथवा लिपिकार इसे लिखते-लिखते अधूरा ही छोड़ गया तथा यह कृति ढूंढाड़ी में लिखी गई है।

कछवाहा राजवंश की वंशावली यत्र-तत्र प्रकाशित हो चुकी है। इसलिये उक्त ग्रंथ में उक्त वंशावली को ज्यों का त्यों न देकर प्रकाशित वंशावलियों से जो भिन्नता लिये हुए है उसी को मेरे द्वारा यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे जयपुर राज्य के शोधकर्त्ता इससे किञ्चित् लाभ उठा सकें।

'नृपवंशवर्णन' में प्रथम शुरुआत राजा सोढाजी से की गई है जो राजा ईशासिंह (ईशलदेव) का बेटा था। सोढाजी संवत् 987 में ग्वालियर का राज्य अपने भाणजे जयसिंजी बड़गूजर को देकर ढूंढार देश में सर्वप्रथम नारनौल आये। जबकि महाकवि श्यामलदास ने अपने 'वीरविनोद' ग्रंथ में सोढाजी के पिता राजा ईशासिंह (ईशलदेव) द्वारा ग्वालियर का राज्य अपने भाणजे को देना बताया है।

अब तक कछवाहों की प्रकाशित ग्रंथावलियों में दुल्लहराय (दुर्लभराज) पुत्र सोढदेव का दौसा में फौजकसी करना, बड़गूजरों को मारना, भाँडारेज में अमल करना, माँची पर हमला करना तथा माँची में मीणों के साथ हुई लड़ाई में जख्मी होना, अपनी कुलदेवी

के आशीर्वाद से मीणों को मारकर विजय प्राप्त करना तथा किला बनाकर उसका रामगढ़ नाम रखना एवं कुलदेवी जमुवाय माता का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। साथ ही उनका ग्वालियर की ओर लड़ाई में मारा जाना बताया गया है किन्तु 'नृपवंश वर्णन' में दुल्लहराय का ग्वालियर में तुरकों के साथ हुई लड़ाई में मारा जाना तो बताया है लेकिन उपर्युक्त घटनाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया हैं। उक्त कृति में यह तथ्य इसके ठीक विपरीत वर्णित है।

अर्थात् अब तक की प्रकाशित वंशावलियों एवं जयपुर के इतिहासों में जो कृत्य दुल्लहराय के बताये गए हैं वे कृत्य इस कृति में दुल्लहराय के पुत्र राजा काकिल के बताये गए हैं। जिनका वर्णन 'नृपवंशवर्णन' में निम्न प्रकार किया गया है—

"॥ श्री रामजी ॥ अथ नृपवंश बर्ननं ॥ प्रथम राजा सोढोजी राजा ईशलजी का बेटा ढुढाह देश में 'नारनौल' आया आप का भांणिजा जयसिंहजी बड्गूजर ने ग्वालेर कौ राज सर्बसामांन सुधां संवत् 987 कामें दे आया पाछै तुरकां की फौज ग्वालेर जाय लागी घणों दबाव दीयौ जदि राजा जयसिंहजी बडगूजर ये समांचार नारनौल कहाय भेज्या ज्यो मूनें तुरकां कौ दबाव घणों छै सो म्हारौ ऊपरि करौ आपकौ राज सम्हालि ल्यौ तीय परि सोढाजी का बेटा दूलहरायजी महापराक्रमी छा सो वो गुवालेर जाय तुरकां सूं लडाई करि तुरकां की फौज निपट मामूर पाडि दीनी पाछै आप निकलि चौडै लडाई करी तीमें आप कांम आया अर फते हुई ग्वालेर कौ राज जयसिंह बड्गूजर कै रह्यौ पाछै दूल्लहरायजी का बेटा काकिलजी नारनौल सूं मोरां चौहाणां कै परणबा गया चोरयां बैठ्या तदि चौहाणां अरज करी म्हे तौ आंसिरौ लीयौ छै म्हां कै बडगूजरां कौ वा मीणां को दंगौ सासतौ रहै छौ और म्हां कनें दरबार की निजर करबा लायक तौ क्यूं छै नहीं दरबार ईश्वर छै या बाई बंदगी करबा वास्ते निजर करी छै। ई माफिक अरज करै छा अर बाहर ढौल हुवौ मीणां कुल परगनां का ढाढ्या घेर्यां या खबरि आई सो सुणतां ही राजा काकिलजी चोर्या में सूं कांकण डोरडा सुंधा उठि सवार होय मीणां ने जाय लीया लड़ाई हुई तीमें राजा काकिलजी की फौज वा लवाजमों सारौ काम आयौ आपइकै घोडै जमुवाय कै नांके जाय निकल्यां सो माता जमुवाय बारा बरस की कन्यां का स्वरूप सूं बैठी तुल्यां का ख्याल करैं छी तदि राजा सूं पूछी तू कुण छै साँच कह तदि राजा काकिलजी ऊमें अंस प्रकाश देखि आपकौ ब्रतांत छौ सो कह्यौ तदि माता पूछी थारै किसी देबी की मांनिता छै जदि राजा कही बुढवाय देबी की मांनि छै जदि माता कही-जै तू जमुवाय देबी की मांनि राषै तौ थारी जरूर फते हो जाय अर सारा मुलक में थारौ राज हो जाय तदि राजा हाथ जोडि माता कै सन्मुष ऊभा हुवा अरज करी ज्यो म्हारै आजि सूं ही जमुवाय देबी की मांनि छै अर थारौ ही इष्ट स्मरण

छै तदि मिती कांती बुदी 10 संबत् 1007 कै दिन माता प्रसन्न होय राजा नें एक सरकनों दीयौ अर कही थारा साथ का जित्ता षेत पड्या छै ज्यांकै यौ सरकनों छिवाज्ये सो सब जी आवैला राजा सरकनों सबकै छिवायौ सो आदमी घोडा सब सरजीवत हो गया अर राजा सर्बसवार पैदल लारलेर मीणां नें जाय लीया वांनें मारि फते करि चोर्यां आया ब्याह करि देस का गढ किल्ला लीया भोम्यानें मार्यां आपका पुरुषारथ सूं भोमि पँजाई रह्या भोमियां सारा हाथ जोड आय मिल्या सारा देस ढुढाह कौ राज कीयौ।'

इस प्रकार 'नृपवंशवर्णन' का उपर्युक्त प्रारम्भ का उद्धरण प्रस्तुत करने के पश्चात् कतिपय निम्न प्रश्न उपस्थित होते हैं—

प्रथम प्रश्न, राजा सोढलजी के राज्यारोहण के समय का उपस्थित होता है। क्योंकि जयपुर की ख्यात में दिये गए संवत् के अनुसार सोढदेव कार्त्तिक कृष्णा 9 विक्रमी संवत् 1023 को गद्दी पर बैठे परन्तु नृपवंशवर्णन में तो संवत् 987 में ही सोढदेव के द्वारा अपना राज्य भाणजे जयसिंह जी को दिया जाना बताया है। इस प्रकार सोढजी का समय 36-37 वर्ष पूर्व में चला जाता है।

द्वितीय प्रश्न काकिलजी के राज्यारोहण का है जो जयपुर की ख्यात के अनुसार विक्रमी संवत् 1093 को गद्दी पर बैठे, जबकि नृपवंशवर्णन में कार्त्तिक बदी 10 संवत् 1007 के दिन काकिल पर जमुवाय माता प्रसन्न हुई, उस समय काकिल को राजा बताया गया है। इस प्रकार दोनों में 86 वर्ष का अन्तर है।

तृतीय प्रश्न प्रकाशित इतिहास वंशावलियों में दुल्लहराय के समय जमुवाय माता को कुलदेवी बताया गया है जबकि कि नृपवंशवर्णन में काकिल द्वारा जमुवाय माता के पूछने पर बुढवाय माता को कुलदेवी बताया गया है। अतः इस कृति के अनुसार काकिलजी द्वारा ही जमुवाय माता को कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है।

इस प्रकार दुल्लहराय द्वारा जमुवाय माता का मंदिर बनवाया जाना भी सन्देहास्पद प्रतीत होता है तथा इस कृति के आधार पर राजा ईशल, सोढदेव, दुल्लहराय एवं काकिल के राज्यारोहण का समय विवादास्पद हो जाता है।

'नृपवंशवर्णन' में काकिलजी के पश्चात् उनके पुत्र हणुजी, हणुजी के पुत्र जानड़देव तथा जानड़देव के पश्चात् उनके पुत्र प्रज्वनराय का विवरण प्राप्त होता है। राजा प्रज्वनराय के सम्बन्ध में यह भी बताया गया है कि वह महापराक्रमी था तथा राजा पृथ्वीराज

चौहाण का सामंत था। उसने पृथ्वीराज की बहिन से विवाह किया था, बाद में वह राजा जयचन्द के साथ हुई लड़ाई (पांगला का दल) में मारा गया तथा उसके तीन भाई भी युद्ध में मारे गए। वीरविनोद में भी प्रज्वनराय का महापराक्रमी होना एवं पृथ्वीराज का सांमत होना तथा उसकी बहिन से विवाह करने का विवरण प्राप्त होता है।

'नृपवंशवर्णन' में प्रज्वनराय के पुत्र राजा मलेशीजी के राज्यारोहण का समय चैत्र सुदी 9 संवत् 1151 बताया गया है जबकि 'वीरविनोद' में उक्त तिथि ज्येष्ठ कृष्णा 3 विक्रमी 1151 बताई है, इस प्रकार दोनों में एक माह नौ दिन का अन्तर है। साथ ही राजा बीसलदेव के पुत्र राजा राजदेव के राज्यारोहण के बाद आमेर में विक्रमी संवत् 1282 में नांगल करना बताया गया है- 'राजा राजदेव जी राज बैठ्या आमेर मे नांगल कर्‌यौ संबत् 1282 कै साल।' इसके अनुसार संवत् 1282 में राजदेव राजा था जबकि 'वीरविनोद' में राजदेव का समय विक्रमी संवत् 1236 से विक्रमी 1273 है क्योंकि इसमें विक्रमी संवत् 1273 में ही किल्हण का राजा होना बताया जाता है। किल्हण के पश्चात् कूंतल, जोणसी, उदयकरण, नरसिंह, बणवीर, उद्धरण और राजा चन्द्रसेन तक इन सात राजाओं का 'नृपवंशवर्णन' में क्रमशः नामोल्लेख एवं रानियों एवं पुत्र-पुत्रियों की संख्या, नाम आदि का विवरण प्राप्त होता है। उनके जन्म, राज्यारोहण, मृत्यु आदि का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। इसके पश्चात् राजा पृथ्वीराज से लेकर सवाई राजा जगत्सिंह तक 14 राजाओं का क्रमशः वर्णन तिथियों के साथ 'नृपवंशवर्णन' में प्राप्त होता है जिसे मैंने 'वीरविनोद' के साथ तुलना करके परिशिष्ट के रूप में प्रस्तुत किया है।

अन्ततः 'नृपवंशवर्णनम्' की उपादेयता तो इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् ही जान सकेंगे लेकिन इसमें राजा ईशल के पुत्र राजा सोढदेव से लेकर सवाई राजा जगत्सिंह तक के राजाओं का क्रमशः राजा होने का विवरण, उनकी रानियों के नाम व संख्या, उनके पुत्र-पुत्रियों के नाम व संख्या, उनके विवाह कहाँ हुए, राज्य कहाँ किया आदि घटनाओं के विवरण से युक्त, राजाओं के आपसी सम्बन्धों को स्थापित करने वाली यह कृति निश्चित रूप से कछवाहा राजवंश के शोधकर्ताओं के समक्ष किञ्चित् नवीन तथ्यों को प्रस्तुत कर लाभदायक सिद्ध होती है।

परिशिष्ट
कछवाहा वंश का तुलनात्मक विवेचन

नृपवंशवर्णनम्	वीरविनोद
राजा पृथ्वीराज	
जन्मः उल्लिखित नहीं।	उल्लिखित नहीं।
राज्यारोहणः फाल्गुन बदी 5 संवत् 1559 [राज्यकाल 25 वर्ष 3 माह लिखा है]	फाल्गुन कृष्णा 5 विक्रमी 1559 [समान] **मृत्युः** कार्तिक शुक्ला 12 विक्रमी 1584
राजा पूर्णमल्ल, भीसिंह, रत्नसिंह का इसमें कोई विवरण नहीं दिया गया है।	इसमें इनका गद्दी पर [कुछ समय] बैठे जाने का विवरण प्राप्त होता है।
राजा भारमल्लः	
जन्मः उल्लिखित नहीं।	उल्लिखित नहीं।
राज्यारोहणः आषाढ़ सुदी 9 संवत् 1604	जब आशकरण ने अपने भाई रत्नसिंह को ज्येष्ठ शुक्ला 8 विक्रमी 1604 को जहर देकर मारा उसी समय भारमल्ल द्वारा आमेर पर कब्जा कर लिये जाने का जिक्र है।
मृत्युः माह (माघ) सुदी 5 संवत् 1630	माघ शुक्ला 5 विक्रमी 1630 [समान]
राजा भगवन्तदास	
जन्मः उल्लिखित नहीं।	उल्लिखित नहीं।
राज्यारोहणः माह (माघ) सुदी 6 संवत् 1630	उल्लिखित नही।
मृत्युः कार्तिक सुदी 7 संवत् 1646, लाहौर में। साथ ही राज्यकाल 15 वर्ष 10 माह 2 दिन भी लिखा है।	मार्ग शीर्ष शुक्ला 7 विक्रमी 1646 लाहौर में। [एक माह का अन्तर]

राजा मानसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं।	पौष कृष्णा 2 विक्रमी 1607
राज्यारोहणः माह (माघ) वदी 4 संवत् 1646	मार्गशीर्ष शुक्ला 7 विक्रमी 1646
मृत्युः आषाढ वदी 10 संवत् 1671 दक्षिण में लचपुर [साथ ही राज्यकाल 25 वर्ष 5 माह 6 दिन लिखा है]	[राज्याभिपेकोत्सवः माघ कृष्णा 5] आषाढ शुक्ला 10 विक्रमी 1671 [15 दिन का अन्तर]

राजा भावसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं।	आश्विन शुक्ला 2 विक्रमी 1633
राज्यारोहणः आषाढ वदी 11 संवत् 1671	आषाढ शुक्ला 10 संवत् 1671 [14 दिन का अन्तर]
मृत्युः भादौ (भाद्रपद) सुदी 14 संवत् 1678 [साथ ही राज्यकाल 7 वर्ष 2 माह लिखा है]	पौष शुक्ला 10 संवत् 1678 [3 माह 26 दिन का अन्तर]

महासिंह

जन्मः संवत् 1642	जन्म एवं मृत्यु का विवरण नृपवंशवर्णन के समान है।
मृत्युः जेठ (ज्येष्ठ) सुदी 5 संवत् 1674 दक्षिण में बालापुर के घाट। इनको आमेर का राज्य नहीं मिला।	

राजा जयसिंह

जन्मः आषाढ वदी 1 संवत् 1668	समान है।
राज्यारोहणः संवत् 1678	पौष शुक्ला 10 विक्रमी 1678
मृत्युः आसोज (आश्विन) वदी 5 संवत् 1724, बुरहानपुर में। [बादशाह औरंगजेब के बहकावे में आकर जयसिंह	आश्विन कृष्णा 6 संवत् 1724

के छोटे कुंवर कीरतसिंह द्वारा राज्य के लोभ में खवास से मिलकर जयसिंह को जहर दिलवाये जाने का विवरण है] (साथ ही राज्यकाल 44 वर्ष 3 माह 2 दिन)

राजा रामसिंह

जन्मः भादवा (भाद्रपद) वदी 5 संवत् 1692, बुरहानपुर में।	भाद्रपद कृष्णा 5 विक्रमी 1692 [समान]
राज्यारोहणः आसोज (आश्विन) वदी 6 संवत् 1724, दिल्ली में।	आश्विन कृष्णा 6 विक्रमी 1724 [समान]
मृत्युः माह (माघ) वदी 5 संवत् 1744 (साथ ही राज्यकाल 20 वर्ष 4 माह लिखा है)	आश्विन शुक्ल 5 विक्रमी 1746 [लगभग पौने दो वर्ष का अन्तर]

राजा बिसनसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं	विक्रमी 1728
राज्यारोहणः फाल्गुन वदी 2 संवत् 1744	आश्विन शुक्ला 5 विक्रमी 1746
मृत्युः फाल्गुन वदी 2 संवत् 1756	माघ कृष्णा 5 विक्रमी 1756

सवाई राजा जयसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं	मार्ग शीर्ष कृष्णा 6 विक्रमी 1745
राज्यारोहणः फाल्गुन वदी संवत् 1756	विक्रमी 1756
मृत्युः आसोज (आश्विन) सुदी 14 संवत् 1800	आश्विन शुक्ला 14 विक्रमी 1800 [समान]

सवाई राजा ईश्वरीसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं	फाल्गुन शुक्ला 8 विक्रमी 1778
राज्यारोहणः आसोज सुदी 14 संवत् 1800 महाराजा जयसिंह की मृत्यु के	

बाद	
मृत्युः पौष वदी 12 संवत् 1807 में जहर खाकर हुई।	पौष कृष्णा 12 विक्रमी 1807

सवाई राजा माधोसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं।	पौष कृष्णा द्वादशी विक्रमी 1784
राज्यारोहणः पौष सुदी 12 संवत् 1807	पौष शुक्ला 14 संवत् 1807
मृत्युः चैत्र वदी 2 संवत् 1824	चैत्र कृष्णा 2 संवत् 1824

सवाई राजा पृथ्वीसिंह

जन्मः उल्लिखित नहीं।	माघ कृष्णा 14 विक्रमी 1819
राज्यारोहणः चैत्र वदी 2 संवत् 1824	फाल्गुन शुक्ला 15 अथवा चैत्र कृष्णा 3 विक्रमी 1824
मृत्युः उल्लिखित नहीं	वैशाख कृष्णा 3 विक्रमी 1835

सवाई राजा प्रतापसिंह

जन्मः पौषवदी 1 संवत् 1821	पौष कृष्णा 2 विक्रमी 1821
राज्यारोहणः संवत् 1834	वैशाख कृष्णा 4 विक्रमी 1835
मृत्युः श्रावण सुदी 13 संवत् 1860 की रात्रि	श्रावण शुक्ला 13 विक्रमी 1860
(दाह तिथिः- श्रावण सुदी 14)	

सवाई राजा जगतसिंह

जन्मः चैत्र वदी 11 संवत् 1842	चैत्र कृष्णा 11, संवत् 1842
राज्यारोहणः श्रावण सुदी 14 संवत् 1860	श्रावण शुक्ला 14, विक्रमी 1860
मृत्युः उल्लिखित नहीं	पौष कृष्णा 9 विक्रमी 1875

जयपुर इन्दौर खरीते, एक ऐतिहासिक अध्ययन

स्व. जीवन राम मीणा

प्राचीन अभिलेखों में खरीता राजकीय पत्र व्यवहार के अन्तर्गत माना जाता है। रियासती काल में किया गया अन्तर्राज्य-पत्र व्यवहार इसी नाम से संस्थापित किया जाता था। एक शाखा के राज्य अधिकारी द्वारा दूसरे राज्य के अधिकारी से किया गया पत्र व्यवहार खरीता है।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार में इस क्रम की एक लम्बी शृंखला अधिक मात्रा में संगृहीत है। यहां हम इस शृंखला में उपलब्ध जयपुर इन्दौर खरीता शृंखला के माध्यम से इन अभिलेखों की विवेचना करना चाहेंगे। इस श्रृंखला के अन्तर्गत इसका संवत् काल 1806 से 2002 विक्रमी तक का है। खरीतो की संख्या 365 है जो रियासत तत्कालीन (राजस्थानी) भाषा में लिखे हुये हैं। इस काल में जयपुर राजघराने के महाराजा ईश्वरीसिंह, माधवसिंह, पृथ्वीसिंह, प्रतापसिंह, जगत्सिंह, जयसिंह तृतीय, रामसिंह द्वितीय, माधवसिंह द्वितीय और मानसिंह द्वितीय हुए हैं।

यह समय जयपुर के लिये राजनैतिक रूप से बहुत अधिक परिवर्तनों का काल है जिसकी झलक हमें इन खरीतो में स्पष्टरूप से दीख पड़ती है। एक ओर मुगल प्रशासन में आ रही शिथिलता के कारण जहां जयपुर का मुगल शासको में प्रभाव घटने लगा था वहां दूसरी ओर इस शिथिलता के कारण देशी रियासतों पर मराठों की चौथ वसूली की हस्तक्षेप नीति के कारण जयपुर राज्य को यदा कदा चुकायी जा रही चौथ के कारण आर्थिक अव्यवस्थाओं का भी संकट झेलना पड रहा था। दक्षिण में नियुक्त मेजर जनरल पेरोन उर्फ पीरू फिरंगी से विशेष नाराजगी जताते हुवे उसे सवक सिखाने तक की वात कही गई है।

वैसे इन खरीतो में आपसी कुशल समाचार,[1] शादी विवाह[2] व्यक्तिगत जिक्र[3] नियुक्त व्यक्ति सुरक्षा,[4] सेवा समाप्ति,[5] पुनः राज्य सेवा,[6] माल असबाब महसूल सुरक्षा,[7] बकाया तकाजा,[8] हिन्दी भाषा हेतु,[9] भेंट नजराना,[10] मृत्यु समाचार [11] सिपाही (गार्ड) आन्दोलन तथा धार्मिक यात्रा[12] का विवरण मिलता है।

राजनैतिक ऐतिहासिक सन्दर्भों में एक विशेष संदर्भ हिन्दुत्व की रक्षा और उसके लिये किये जा रहे प्रयत्नों में आपसी वैमनस्य भुलाकर एक होकर लड़ाई लड़ने तक की भावना भी व्यक्त की गई है। इन पत्रों में हिन्दुपद पादशाही की स्थापना कर विदेशी शासन का विरोध करना संभवतया यह भाव सम्पूर्ण राजनैतिक परिवेश में बडे जोश खरोश के साथ व्याप्त था। यह बात इस शृंखला के खरीते से उजागर होती है।[13]

आपसी सौहार्दपूर्ण विवरण के अन्तर्गत कुछ ऐसे पत्र भी गिने जा सकते हैं जिनमें एक से दूसरे राज्य में राजकीय पक्ष से खरीद करने गये विभिन्न व्यक्तियों को महसूल चुकाकर उन्हें सीमापार सुरक्षित पहुंचाने के लिये नियुक्त हरकारों (कासीदों) को बिना रोक टोक के एक दूसरे राज्य में परिवेश की छूट दी जाने व उन्हें मार्ग में सुरक्षा प्रदान किये जाने का अनुरोध हैं। इस तरह का एक खरीता पुष्करस्नान व अजमेर के उर्स करने आये यात्रियों से सम्बन्धित है। मूलखरीते की भाषा इस प्रकार हैं।[14]

"सिध श्री महाराजाधिराज श्रीमहाराज श्रीराजराजेन्द्र सवाईप्रताप सींघजी योग्य लीखी तगु राजश्री अलीबहादुर जू के वांच्यै ई हा के समाचार भले छे उहा के समाचार भले चाही ऐहा श्री संतराज श्री पेसवा सहीब को वा आपके ईहा को वीव्हार एक ही चलो आयो है ऐक घर समझकर हम श्री पूखरजी (पुष्कर) के स्नान वा अजमेर के पीरो की जारते के वास्ते आये हैं अपना घर समझकर हम नहोत जरीदे है सो खवर सुनवें आई हैं के आपकी वा राज श्री लखोवा दादा की कछु अजुर्दगी आई है सवव रस्ते के बदोबस्त के वास्ते आपको पत्री लीख भेजी है सो पहुंची होयगी अब ईसी वास्ते पं. श्री ठाकुरप्रसादजी को आपके पास भेजे हैं ये रस्ते के वास्ते वोलेंगे इस माफीक मार्ग को जगा जगा की बंदोबस्त होय और तीरथ स्नान वा जारत होने में आवें मिती चैत्र सूदी 12 सम्वत् 1857"

विशिष्ट पत्रों में एक खरीता 9 में अनुरोध किया गया है कि आप जब भी पत्र लिखें तो हिन्दवी में लिखें जिससे कि हम स्वयम् पढ़ लें। यह अनुरोध संभवतया राजकाज में हिन्दी मान्यता के उल्लेख का एक महत्वपूर्ण उल्लेख है। साथ ही साथ यह भी कि यह एक अहिन्दी भाषी राज्य के राज प्रतिनिधि का अनुरोध है। इसी प्रकार एक विशेष संदर्भ 7 इन्दौर जयपुर राज्य के दो ब्राह्मण परिवारों में सगाई के मसले को लेकर हुए विवाद से सम्बन्धित है जिसमें अनुरोध किया गया है कि आप रूचि लेकर विवाद को हल किये जाने का प्रयास करावें जिससे कि दोनो पक्षों में सम्मानजनक समझौता किया जा सकें।

शादी विवाह के निमंत्रण का एक खरीता मूल भाषा में इस प्रकार है[16]

"श्री रा जी"

"सिध श्री महाराजा धीराज राज राजेन्द्र महाराज श्री सवाईप्रतापसिंह जी जोग्य श्री राव तुको जी होलकर केन्य श्री....बांच जो अटा का समाचार भला छे राज का सुख समाचार सदा आरोग्य चाहिजे जो परम आनंद होयं अप्रंच चीरंजीव मलारराव होलकर के ब्याव का नीसचय मीती माघ सुध 10 गुरूवार वाफ गांव में ठहराया है संबंध राजश्री सुलतान रावलाता ते इनसुं हुवा छे सो राज सब साथ परीवार सुधा आय शादी की शोभा करोगें कागद समाचार हमेसा लीखावते रहोगे मीती पौष बदी 10 समत् 1838 ।

अरिसिंहजी जब से मेवाड़ के महाराणा बने उस समय से ही उनके लिए संघर्ष का वातावरण बन गया था जिसका कारण था मेवाड़ में गृहयुद्ध। मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा के मृत्यु उपरान्त पुत्र हुआ जिसका नाम रतनसिंह रखा! मेवाड़ के सामन्तों में दो दल हो गये। एक अरिसिंह का पक्षपाती तथा दूसरा रतनसिंह का पक्षपाती था। देवगढ़ का जसवंतसिंह रतनसिंह का पक्षपाती था।उसका जयपुर राजपरिवार से निकट का सम्बंध था।अत: उनके सहयोग से समरू फिरंगी आदि की सेवायें वह प्राप्त कर सका और वह मेवाड़ में ससैन्य पहुंचा। अरिसिंह ने होल्कर की सहायता प्राप्त की। इसलिए उसने जयपुर के शासक को यह पत्र लिखा तथा इस बात पर जोर दिया कि वह समरू तथा सेना को वापिस वुलाले। मूल पत्र का सारग्राही अंश इस प्रकार है[17]-

......अपरंच या दिना में खबर सुनबा में आई छै का रावत जंसवतसिंह, समरू फिरंगी व केतेक पाटायत भेला कर और पोंच सीरदार उठीरा ज्यके लार मेवाड़ की तरफ बीदा हुवे सोय ह बात राज के जोग्य नही हुई व ऐ तीनो राज उदयपुर व जोधपुर व जयपुर बडे ठीकाने छै और सारी हीदोंस्तान में ऐ तीनो बडे राज नाम जादी ठेठ देवतान से हुवे आई छै सो ऐ राज के फिक्री सही वे मरजाद किये नही और योह बात आपस के व्यवहार में काई भांत चाही जे नही और आपस में ठेठ बडो से इसी भांत रीत हुई नही सो महन आपस का एक व्योहार जान लीखी छै काई बात महाराना अरसिंहजी सु बायदा होई तो म्हाने लीखो हम सारी भांत लिख फेसला कराई देवाला और रावत जंसवतसिंह तो ठेठ सू दीवान मेवाड का चाकर छै, चाकर लार भैला होवा राज के जोग्य नही सो रावत मजकुर को उठी समजाइ राखजे और फरंगी वा पाटायत को फेर राखना सलाह छै सो म्हा के वा राज के सुचताई रहे।

इसी प्रकार जब भी बादशाहका दौरा इधर होता था तथा यहां से बदोबस्त हेतु जाना पड़ता था। सम्वत् 1822 में बादशाह आगरा आये थे। दिल्ली के वकील सैफुदी महमदखां से जब इस बात की जानकारी मलारराव होल्कर को मिली तो उन्होंने जयपुर के सवाई माधोसिंहजी को एक पत्र लिखकर उनके बंदोबस्त हेतु लिखा और उसमें किसी प्रकार की ढील न बरतने को कहा गया[18]

जयपुर राज्य की ओर से हुण्डी के द्वारा भी भुगतान होता था। कई बार कारण वश भुगतान नहीं होने के कारण वहां से तकरार भी होती थी। इसी प्रकार का एक खरीता[19] तीन लाख रुपयों का है जिसका औरंगाबाद में नियमानुसार भुगतान नहीं हुआ। इसके लिये खांडेराव होल्कर ने सवाई माधवसिंह को भादो बदी 10 सम्वत् 1810 को एक उलाहना देते हुवे पत्र लिखा और तीन लाख का भुगतान शीघ्र कराने का आग्रह किया।

इन पत्रों में इन्दौर के उल्लेखनीय व्यक्तियों का जिक्र हुआ है जिनमें कुछ ये हैं पण्डित राधा गोविन्द, पंडित रणछोडदास सूबेदार, तीर्थस्वरूप नरूका, भारतसिंह, पंडित शंकराजी तथा जयपुर के कनीराम, पेमाजी, जुगलकिशोर, अमरसिंह. अनूपराम व बून्दी के किशनसिंह हाड़ा जयपुर के घोडों के व्यापारी कालूखां, खुदायारखां, दक्षिण के मेजर जनरल पेरोन उर्फ पीरू फिरंगी तथा जयपुर के ही छबीलाराम, रंगीलाराम, निधि, माहमुनि, मुरलीदास आदि हैं।

इन पत्रों में इन्दौर से पुष्कर अजमेर यात्रा, (14) इन्दौर से मथुरा (2) इन्दौर से दिल्ली यात्रा, इन्दौर से रामेश्वर तक कावड चढाने की यात्रा, (15) इन्दौर से बीकानेर तथा आगे बहावलपुर तक की यात्रा (16) का जिक्र है।

इस प्रकार इन सभी संदर्भों के अन्तर्गत इन्दौर, जयपुर, खरीता अभिलेखों की एक महत्वपूर्ण शृंखला है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व की है।

पूर्व वरिष्ठ शोधसहायक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

संदर्भ संख्या—

1. (क) ख. नं. 90 भादवा बदी 1 संवत् 1822 मल्हार राव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।
   (ख) ख. नं. 76 मगसर सुदी 7 संवत् 1815 पंडित नारोशंकर ने माधोसिंह को लिखा।

(ग) ख. पं. 184 जेठ सुदी 15 संवत् 1837 अहल्याबाई होल्कर ने प्रतापसिंह को लिखा।

(घ) ख. नं. 110 पोष सुदी 14 संवत् 1825 राव तुकोजी होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

2\. (क) ख. नं. 6 भादवा बदी 3 संवत् 1807 खाण्डेराव होल्कर नें माधोसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 21 भादवा सुदी 1 संवत् 1808 मल्हार राव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

(ग) ख. नं. 152 बैशाख सुदी 7 संवत् 1829 राव तुकोजी होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

3\. (क) ख. नं. 133 फागुण सुदी 11 संवत् 1827 रामचन्द्र गणेश बिस्जाजी कृष्ण ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

(ख) ख.नं. 135 चैत्र सुदी 1 संवत् 1828 राव तुकोजी होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

(ग) ख. नं. 161 बैशाख सुदी 7 संवत् 1830 पडित बिस्जाजी कृष्ण ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

4\. (क) ख. नं. 167 पोष सुदी 3 संवत् 1833 राव तुकोजी होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 322 आसोजन सुदी 11 संवत् 1856 यशवंत रावहोल्कर ने प्रतापसिंह को लिखा।

5\. ख. नं. 243 भादवा सुदी 8 संवत् 1848 प्रतापसिंह को लिखा।

6\. (क) ख. नं. 301 कार्त्तिक सुदी 7 संवत् 1853 राव तुकोजी ने प्रतापसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 303 चैत्र सुदी 7 संवत् 1854 राव तुकोजी ने प्रतापसिंह को लिखा।

7\. (क) ख. नं. 27 आषाढ बदी 9 संवत् 1809 मल्हारराव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 29 आषाढ सुदी 4 संवत् 1809 मल्हार राव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

(ग) ख. नं. 146 कार्तिक सुदी 5 संवत् 1828 अहल्याबाई होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

(घ) ख. नं. 149 पौष सुदी 1 संवत् 1826 माधोराव बल्लाल ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

(ड) ख. नं. 151 पौष सुदी 9 संवत् 1826 राव तुकोजी होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

8. (क) ख.नं. 30 आषाढ सुदी 4 संवत् 1809 खण्डेराव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 36 कार्तिक सुदी 1 संवत् 1809 मल्हारराव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

(ग) ख. नं. 46 भादवा बदी 14 संवत् 1810 खण्डेराव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

9. ख. नं. 281 फाल्गुन सुदी 11 संवत् 1850 काशीराज महाराज श्री चेतसिंह ने प्रतापसिंह को लिखा।

10. (क) ख. नं. 284 चैत्र सुदी 8 संवत् 1851 जीवाजी बलाल प्रतापसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 354 पौष सुदी 7 संवत् 1865 यशवंतराव होल्कर ने जगत्सिंह को लिखा।

11. (क) ख. नं. 295 कार्तिक सुदी 7 संवत् 1852 काशीराव होल्कर ने प्रतापसिंह को लिखा।

(ख) ख. नं. 332 भादवा सुदी 13 संवत् 1860 यशवंत राव होल्कर ने प्रतापसिंह को लिखा।

12. ख. नं. 164 आसोज सुदी 1 संवत् 1830 राव तुकोजी होल्कर ने पृथ्वीसिंह को लिखा।

13. ख. नं. 190 मिति पौष बदी 10 संवत् 1838 राव तुकोजी होल्कर ने प्रताप सिंह को लिखा।

14. ख. नं. 323 मिति चैत्र सुदी 12 संवत् 1857 अलीबहादुर ने प्रतापसिंह को लिखा।

15. ख. नं. 296 चैत्र बदी 9 संवत् 1852 काशीराव होल्कर ने प्रतापसिंह को लिखा।

16. ख. नं. 228 भादवा सुदी 7 संवत् 1847 राव तुकोजी होल्कर ने प्रतापसिंह को लिखा।

17. ख. नं. 139 मिति आषाढ बद 10 संवत् 1828 रा तुकोजी होल्कर ने सवाई पृथ्वीसिंह को लिखा।

18. ख. नं. 94 मिति पौष बदी 10 संवत् 1828 मलारराव होल्कर ने सवाई माधोसिंह को लिखा।

19. ख. नं. 46 भादो बद 10 संवत् 1810 खंडे राव होल्कर ने माधोसिंह को लिखा।

राजा जयसिंह की वार्ता का ऐतिहासिक विवेचन

मोतीलाल वैरवा

राजा जैस्यंध की वार्ता मिर्ज़ा राजा जयसिंह से सम्बन्धित है। राजा जयसिंह द्वारा मेवों का दमन एवं कामा शहर बसाने की घटना का सिलसिलेवार ब्यौरा दिया गया है। वार्ताकार का इतना ही उद्देश्य रहा है। हालांकि वार्ता जयसिंह के छोटे कुंवर कीर्त्तिसिंह के निधन व रानियों के सती होने तक की घटना तक है। वार्ता अधूरी है। स्वयं वार्ताकार के अपने शब्दों में-

'श्री गणेशाय: नम: श्री मुरसती माताजी नम: अथ राजा जैस्यंघ की वार्ता लीखते। अथ श्री महाराजाधीराज महाराज श्री जैस्यंघ जी बडा पहाड तोडया मेवात का मेवा में मारया। पाहट मेव पहाड मैं सू काढ दीना अमल कियो कामा बसाई तीको ब्योरो मींती आसोज वुदी 3 संवत् 1705 की साल।

महाकवि श्यामलदास ने अपने ग्रन्थ 'वीरविनोद' में एवं श्री बाबूलाल पानगडिया ने 'राजस्थान का इतिहास' में इस घटना का उल्लेख नहीं किया है। श्यामलदास ने वीरविनोद में वि.सं. 1707 में जयसिंह के छोटे कुंवर कीर्त्तिसिंह को कामा की जागीर मिलना तथा कीर्त्तिसिंह द्वारा मेवों का नियंत्रण करने का ही उल्लेख किया गया है। मेरा मुख्य उद्देश्य इस घटना का विस्तृत विवरण इतिहास के शोधकर्त्ताओं के समक्ष प्रस्तुत करने का है ताकि वे इससे लाभ उठा सकें।

घटना का ब्योरेबार विवरण देते हुए वार्ताकार कहता है कि मिर्ती आसोज वदी 3 संवत् 1705 की साल दरवार की फोज बडा पहाड ने आय घेरयो सलेमपुर, अचला, कावा, फतेहपुर, पीलवा नी डेराहुवा वारा गाँव वीलंग का बसैछा नीचे बार गाँव पहाड बड़ा में ऊपर बसेछा तीमें गाँव 24 में सार बनी छी सो बीलंग का गांव फतेहपुर लाडला का उगरै बारा तो उजड़ होर खुदणी हुई अर बनी बारा गांवा की कटा नाखी अर मेव सारा येकठा होय बडा पहाड़ में जाय बैठया बडा पहाड़ लड़बा में मजबूत हुवा।

मेवों को पहाड में से निकालने के लिए आलघसिंह चौहान के नेतृत्व में मथुरादास, गोरधनदास, कीलाणवत, भगवानदास, केसोदास, वाकावत, रूपराम, हिरदेराम, नाथावत

व जयकिशनदास खंगारवत को पहाड का घेरा डालने को तैनात किया और महाराजाधिराज महाराज जयसिंह 22000 की फौज के साथ आमेर चले गये।

अलाघसिंह चौहान ने एक बरस एक माह और चार दिन तक पहाड का घेरा डाले रखा। अलाघसिंह पहाड में से मेवों को खदेडने में नाकाम रहा। तब महाराज जयसिंह माघ शुक्ला सप्तमी वि.सं. 1706 को आमेर से आये व कोलरी के वंद पर डेरा डाला। अलाघसिंह चौहान और कीलाणवत बाकावत आदि सरदार महाराज की हजूरी में पेश हुए। महाराज जयसिंह ने पूछा।

'अलाघसिंह पहाड टूटो नही जद अलाघस्यंघ हाथ जोड अरजकरी श्री महाराज यो पहाड बडो छै और बनी भारी छै तीमें आदमी मेव हजार 10,000 दस लडबावाला इ में हाजिर छ और सीवाय को गलवो इतनो ही और छै अर राड में मेव हजार 4,000 चार सू सीवाय मारया गया अर फोज वाको आदमी हजार 3000 सू सीवाय खेत में रहया छै सो हलताई मेव दब्या नही छै हाल तो जोर में छै राड की तीयारी दिन रात रहे छ श्री हजूर अब पधारया छो सो धण्या का तपसू सारो ही होजासी व वेतो गंवार छ सो कढा ताई लडेला जणा श्री हजूर फुरमाई पहाड पहाड में जेवडीन सू नपावो पहाड का वीस्तार को ठीक पाडो सो पहाड चोगरदा जेवडी सू नापो जद मेवा सूणी सारा मील मसलत करी सो महाराजधिराज आबरी सू आया छै सो पहाड के चोगरदाही जाल पूरयो छै सारा मेवा ने जनबरया सुधा जाल में पकडल्यो सो ज्याने जाल में पडवो होय और मरनो होय सो रहो सो मेव जनबरया स्हत मनसूबो कर सारा रात ने भाज गया पहाड खाली हो गया दरबार का प्रताप सू सो सारी बनी कटा नाखी'

इस प्रकार मेवों पर नियंत्रण करके उसे स्थायी इन्तजाम देने के लिए महाराज जयसिंह ने दक्षिण दिशा में बोलखोरो बसाया और गढ बनाया व भगवानदास बाकावत को वहां तैनात किया तथा उत्तर दिशा में अलखेश्वर महादेव का मंदिर व कुआँ पहले से बना हुआ था वहाँ अजाणगढ बनाके मथुरादास कीलाणवत को तैनात किया। अलाघसिंह चौहान स्वर्गवासी हो गया। गोरधनदास किलाणवत को फौज में छोडकर महाराजधिराज जयसिंहजी पोष सुदी चतुर्दशी वि.सं. 1706 को दिल्ली गये। माघ शुक्ला पंचमी को बादशाह शाहजहाँ की हाजरी में उपस्थित हुए। नवाब दौलतखाँ पठान ने बादशाह को अरज की-

'हजरत मेवाती बडे खूनी हैं सो इनको मारने का काढ देने का काम जूरीयत राजा जैस्यंघ का ही काम था सो पातस्याह जिहांगीर राजा जैस्यंघजी सू बुहोत खुशी

हुआ अर दोलतखा पठान अरज करी खुदाबंद गनीम पहाड ने सू व बन में सू काट दिया सो भाज गये अव उधर कू एक सरदार तीस के साथ फोज राखणी सो मेवात में हाजिर रहे और कामा स्हर राजा कामसेन का खेडो राजस्थान छै सो बन बधरहया छै सो स्हर बसावणी अर मजबूत मरज उहा राखणो ज्यो फिर गनीम उहा रह सके नही सो पातस्याह हमारी सरदारी बूझी सो ऐसा राखणा जिससू भोम मुलक मेवात में बद अमली नही होय बुरीगार बापरे नही सो हमसू डरया नहीं तो ओर कोन डरेगा सो इसका काम का तजबीज जल्दी करणा।'

इस प्रकार नवाब दौलतखाँ पठान और बादशाह की मेवों पर नियंत्रण संबंधी वार्ता हुई। उस समय बादशाह की हाजरी में रहने वाला स्योपुर का राजा परसाराम गोड ने बादशाह को सलाह दी कि राजा जयसिंह से मजबूत कोई नहीं है। कामा से आगे की भूमि जयसिंह के राज्य में है सो कामा को जयसिंहजी के हवाले कर दिया जाये ताकि फिर वहाँ नालस नहीं होगी। सारी सभा ने यह मंजूर किया। बादशाह शाहजहाँ बहुत खुश होकर महाराजा जयसिंह को पाँच परगने कामा बसाने के लिए दिये तथा बादशाह ने अपनी तरफ से मनोहरदास खत्री और राजा जयसिंह की तरफ से नारायणदास इन दो सरदारों को विदाकर कामा बसाने का आदेश दिया। बादशाह ने पांच परगने (1) कामा (2) खोह (नगर) (4) खोहरा (5) पहाडी इनाम में दिये। कामा पौराणिक नगर है पर अब जो कामा शहर जिस रूप में स्थित है वह महाराजा जयसिंह का बसाया हुआ है।

मनोहरदास खत्री और नारायणदास ने कामा आकर चैत्र वदी त्रयोदशी वि.सं. 1706 को कामा शहर बसाने का मुहूर्त किया। बसावट होने लगी। आसपास जो गहरा बन था वह कटा दिया गया। पीपल की सोट और पीपल की सरदर काम में ली गई। इस प्रकार कामा शहर बसाया गया।

'जदि नीति असोज वदी 6 संवत 1708 की साल महाराज कंवर श्री कीरतस्यंघ जी के नाम कामा को मनसब हुवो जद महाराजा जी श्री जैस्यंघजी पंच हजारी को खीताब पायो सो पातशाह पाँच पारचा को खीलअत दियो समसेर। मोत्यो की माला। सीरपेच। कीलंगी। गोस्वारा। बकस्या अर साहजीहां बहुत राजी हुआ पाछे विदा होर कामा आया।'

इस प्रकार वार्ता के अनुसार आसोजद वदी 6 संवत 1708 को महाराजा जयसिंह के छोटे लडके कीरतसिंह को कामा की जागीर दी गई। श्यामलदास ने अपने वीर

विनोद-ग्रन्थ में संवत् 1707 में जागीर देना बताया है तथा मेवों के दमन का श्रेय कुंवर कीरतसिंह को ही दिया है जबकि मेवों पर नियंत्रण वारता के अनुसार महाराजा जयसिंह ने किया है। कीर्तिसिंह की वीरता का वारताकार ने कोई जिक्र नहीं किया है।

महाराजा जयसिह के कामा आने पर सुदरसण स्वामी कुंड पर तप कर रहे लाहोरी जी महाराज (कनोजिया ब्राह्मण जिसने पालकी, रथ, असवाब, सारी दौलत पुण्य कर दी थी) के दरसन किये जिन्होंने वराहपुराण एवं वीरजहुलास कंठस्थ सुनाई। (कामा) का माहात्म्य सुनाया। महाराजा जयसिंह बहुत खुश हुए। स्वयं वार्ताकार के शब्दों में-

'कामा तीरथ की जागा महाके भी आछी आई इ जागा सो महाको धरम आछा सधेलो चौरासी तीरथ कामा में छ चौरासी कुंड की जीमीं ब्राह्मण वैष्णव छा जाने उईकू दीरी चौरासी देहरा कराया चौरासी गउ पुण्य करी चोरासी महोर पुन करी खेडा ने गउ का दूध व गंगा जल सू अस्नान कराया होम करयो जग्य करायो ब्राह्मण ने व वैष्णु सारा जीमाया दछणा दीनी सो पण्डता जोतस देख कही सो वीध्र वीधान सारा कीया और सुखदेवजी कुचबीहार का राजा श्री कुंड पे तपेछा सो वडा तपसी म्हापुरस छा जी को वचन सीध छो सो राजाधिराज सुखदेव जी के द्रसण ने श्री कुंड पधारया सो सुखदेव जी का द्रसण किया राजाधिराझ हाथ जोड खडा रहया सुखदेवजी कही राजा या जागा जोगश्वर तपस्या की छ सो इहा श्री नारायण चत्रभुजजीं वीमलकुंड पे जप तप म्हारा रहेगा इहा सारा देवता तप करे छ चोरासी तीरथ कामा में छ सो किसू कू सतावणा नहीं सो दरबार सारी वात कबूल करी'

महाराजा जयसिंह ने कामा में महल बनाने के लिये 10 लाख रुपये दिये तथा और महल जल्दी वनाने का आदेश दिया। महाराज आमेर चले गये मीती कार्तिक सुदी 9 वि.सं. 1708 कीलाणसिंह नरूका व फतेहचन्द नरूका को पुरोहित अभयराम बेकूण्ठदास सहित तैनात किया। 'गोकुल उसतो चत्रो चौधरी कामा की बसायत ने भेज्यो।' जब महल बन गया कामा ठीक तरह से बस गया तो माघ सुदी 13 वि.सं. 1711 को महाराजा जयसिंह, महाराज कंवर कीरतसिंह, व रामसिंह सहित कामा आये साथ में कीरतसिंह का कबीला भी आया जो कामा में 2 महिने 5 दिन नो घडी रहे। कुंवर कीरतसिंह का रणवास कामा मे छोडा। महाराजा जयसिंह दोनों राजकुमारों को लेकर मीती वैशाख सुदी 2 वि.सं. 1712 को दिल्ली पधारे तथा कामा में कीलादार कीलाणसिंह नरूका व फतेहसिंह तथा मनोहरदास खत्री, नारायणदास कुसलसिंह को मस्तोफ ओदादार तथा पुरोहित अभयराम को रनिवास में तैनात कर दिया। तथा बादशाह के हाजरी में कार्तिक सुदी 7 वि.सं. 1712 को पहुंचे। दोनों राजकुमार बादशाह की

हाजरी में रहे और महाराजा जयसिंह पूरब में भेज दिये गये। शाहजहाँ बीमार हुए आगरा गये तब कैद कर लिए गए। दाराशिकोह को मार कर औरंगजेब बादशाह बन गये। महाराजा जयसिंह पूरब से दिल्ली पधारे। बादशाह ने माह मार्गशीर्ष वदी 8 वि.सं. 1717 को दक्षिण में शिवा राजा पर मुहीम में महाराजा जयसिंह को भेज दिया। बादशाह की तरफ से दौलतखाँ पठाण महाराजा के साथ विदा किये गये.

महाराजा जयसिंह ने शिवाजी को चतुराई से गिरफ्तार कर दिल्ली औरंगजेब के पास भेज दिया और कुंवर रामसिंह को उनके जयसीहपुरा महल में कागज लिखा कि बेटा शिवाजी को बादशाह से मिलाकर के वापिस दक्षिण भेज देना। ऐसा नहीं कि शिवाजी बंदीखाने में पडे और तू जिन्दा रहे। यदि बादशाह तुझको मार देगा तो बेर लेने वाला मैं हूं सो रजपूती को बट्टा मत लगाना।

महाराज कुंवर रामसिंहजी ने शिवाजी को लेकर बादशाह से मिलाया। बादशाह की खोटी नजर देख कुंवर रामसिंह शिवाजी को अपने डेरे (जयसिंहपुरा महल) में ले गये। डेरे के चारों तरफ बादशाह ने घेरा डलवा दिया। कुंवर रामसिंह ने चतुराई से शिवाजी को डेरे से निकाल दक्षिण को रवाना कर दिया और बादशाह रामसिंह पर बहुत नाराज हुए। तब रामसिंह ने कहा।

'हजरत आपके तो उमराव म्हासू भी बडा बडा घणाई छ सो वाने विदा करो सेवा राजा ने फेर पकड ल्यासी मोने तो द्रवार को लिखयो इतरहे आयो छ सो सेवा राजा ने पादशाहजी के कदमा नाख भेज दीज्यो सो सेवा राजा ने राखज्यो मत अब आपकी सलाह आवे सो करो ती प बादशाह रोस खोप बैठ रहया।'

कुंवर रामसिंह ने महाराजाधिराज जयसिंहजी को बादशाह की नाराजगी के बारे में पत्र लिखा। उस पत्र को जयसिंहजी ने दोलतखाँ पठान को पढाया। नवाब दोलत खाँ ने बादशाह ओरंगजेब को पत्र लिखकर इस गलतफहमी को दूर किया तब बादशाह ने रामसिंह को बुलाकर राजीनामा कर लिया तथा उसे छोटा भाई कहा। तब रामसिंह जी ने बादशाह औरंगजेब से हुये राजीनामे की सूचना महाराजा जयसिंह को भेज दी।

महाकवि श्यामलदास के वीरविनोद ग्रन्थ में उल्लेख आया है कि फारसी तवारीखों में मिरजा राजा जयसिंह बुरहानपुर में श्रावण कृष्णा चतुर्दशी वि.सं. 1724 को दक्षिण से लौटते समय बीमारी से मर गया तथा श्यामलदास ने यह भी उल्लेख किया है कि जयपुर की पोथियों में कुंवर रामसिंह द्वारा शिवाजी को निकाल देने से बादशाह औरंगजेब

नाराज हुए। महाराजा जयसिंह और बादशाह में रंज वढता गया और राजा जयसिंह खुद बादशाह के पास आने को रवाना हुआ। आलमगीर ने अंदेशा के कारण बुरहानपुर में एक खवास के हाथ से जहर दिलवाकर आश्विन कृष्णा 6 वि.सं. 1724 (8-9-1667 ई.) को मरवा डाला। जयपुर की पोथियों एवं फारसी तवारीखो में महाराज जयसिंह की मृत्यु तिथि में पोने 2 माह का अन्तर है पर जयपुर की पोथियों में उल्लिखित तिथि के हिसाब से ही जयसिंह का श्राद्ध मनाया जाता है।

महाराजा जयसिंह की वार्ता में महाराजा जयसिंह की मृत्यु बुराहनपुर में ही बीमार पडने व तेजषाँ खवास द्वारा जहर दिये जाने से हुई बताया गया है। परन्तु वार्ताकार ने एक रहस्य खोला है कि जहर महाराज जयसिंह के छोटे कुंवर कीरतीसिंह के द्वारा दिलाया गया था। स्वयं वार्ताकार के शव्दों में पूरा विवरण इस प्रकार है।

'और कुंवर कीरतसिंहजी लाहोर सूबे छा सो बादशाह औरगंजेब कीरतसिंहजी ने दिल्ली बुलाया कुंवर कीरतसिंहजी लाहोर सू दिल्ली आया और बादशाह की हजूर पहुंचया। सो बादशाह और कीरतसिंह जी के मसलहत हुई सो बादशाह कीरतसिंह जी ने यो कही के तू राजाधिराज ने मारनाषो में तूमकू आवरी का राज दयोगा और बडा करांगा सो तू राजाधिराज को मार नाषी कीरतसिंहजी या बात कबूल करी सो बादशाह कीरतसिंहजी ने दषण में वीदा किया मीती पोष सुदी 3 संवत् 1721 की साल।'

कीरतसिंहजी कामा का बहाना लेकर दिल्ली से रवाना होकर कामा आये। कामा में 8 महीना और 5 दिन रहे मिति आसोज वदी 12 वि.सं. 1722 को कामा का मुहूर्त किया। और आसोज सुदी 13 को आधीरात घडी दो ऊपर दक्षिण को कूच किया। तथा कामा की व्यवस्था के लिए कल्याणसिंह नरूका कीलादार मनोहरदास खत्री मुसाहिव गजसिंह दीवान व कुशलसिंह मस्तोफिक रहे। कुंवर कीरतसिंहजी चैत सुदी 6 संवत् 1723 को दक्षिण पहुंचे। पुलंद्रगढ में डेरा हुआ। महाराज जयसिंह से दुआ सलाम हुई। महाराज जयसिंह जी बोले।

'केता दिन तुरका ने आया हुआ सो दिल्ली आवेछो तुरक कोई की चाकरी में समझे नहीं छे याको भरोसा कीजो नही छै जद कीरतसिंहजी कही महाराज हू तो आपका मीलवा वास्ते आयो छौं सो बादशाह का खत्री संतोषदास व बलतदास महाराजा कुंवर के साथ छा सो बादशाह ने लिखी हजरत य बाप बेटा राजी हो गया छ जदि बादशाह राजाधिराज ने बुलवा भेज्यो और कीरतसिंहजी ने दषण के सूबे राखज्यो अर तुम एक बार इहा आज्यो सो महाराजा ने कूच कीया। सो आता गैला में मांदगी उपजी सो

तेजसी खवास जहर दीयो सो भुरहानपुर में देह छोडी अर दाग अचलपुर में दीयो मीती आसोजवदी 5 संवत् 1724 की साल मे बादशाह ने खबर हुई महाराजधिराज ने काल किया अर कीरतसिहजी बादशाह ने लिखी म्हाके काई हुकम छ जद बादशाह लिखी अर या कही बाप का ही सगा नही हुआ वो हमारा सगा कब्र हो गया सो कीरतसिंहजी ने लिखा पहुंचा तुमकू दषण की मुहीम की सिरदारी तालक तुम्हारा छै अर उठे रहो अर अंबरी का राजा महाराजाधिराज महाराजाश्री रामसिंहजी ने हुआ आगे सेवा राजा बावत बाह पकडी छी सो धरम पे रहयो अर कीरतसिंहजी दषण के सूबे रहया खत्री मूंढा आगे मुसाहिब रहया।'

कुंवर कीरतसिंहजी ओर खआ के बीच झगडा हुआ जिसमें ख़आ ने उत्सव की पोषाष में जहर लगा दिया जिससे कुंवर कीरतसिह जी श्रावण सुदी 4 वि.सं. 1728 को शान्त हुए। कामा खबर आई और रानी बडगूजर सती हुई। वार्ता यहाँ तक ही है। वार्ता अधूरी है। वार्ताकार अज्ञात है।

संक्षेप में वार्ता मिरजा राजा जयसिंह द्वारा मेवो पर नियंत्रण करने के साथ ही कामा के दक्षिण में बोलखोरो तथा उत्तर दिशा में अजाणगढ़ बसाने तथा वहाँ गढ बनाने की जानकारी देती है। वही बादशाह शाहजहाँ द्वारा कामा बसाने के लिए 5 परगने देने का उल्लेख किया है तथा कामा शहर चैत कृष्णा त्रयोदशी वि.सं. 1706 में बसाया गया तथा कामा में महल व चौरासी मन्दिर महाराजा जयसिंह द्वारा बनाने की जानकारी दी गई है। वही वार्ताकार ने एक रहस्यपूर्ण जानकारी दी है कि कीरतसिंह के मरने पर कामा में कीरतसिंह के शोक में प्रजा के एक घर में से एक कुल 772 व्यक्तियों को मारकर दो कुओं व एक बावडी में डालकर उसे रवेट दिया गया। स्वयं वार्ताकार के शब्दों में-

'सो हुकम कर दियो सो बस्ती में सू बूढा जवान बालक पकड लावो सो नगवार 772 मरद जूंणी मोटकीलाप लाया ज्याना मार कूवा 2 बावडी कीला पे भर रेवट देना और शहर में खतराणी बूढी जुवान बालक कुटंभ सुन्धा मार कूवा खाडा में रेवट देनी भादवा सुदी 1 ने तो सारे दिन है हैकार बस्ती हुओ।'

इस प्रकार वार्ता में दी गई उक्त जानकारी एवं उपरोक्त घटना का विवरण जयपुर एवं भरतपुर के इतिहास के शोध कर्त्ताओं के लिए निश्चय ही लाभकारी होगा।

परिशिष्ट

वार्ता में कीरतसिंहजी की सात रानियों का उल्लेख किया गया है।

(1) बहू हाडीरानी राव माधोस्यंघ की बेटी अनूपकंवर।

(2) बहू जैतराणी केसरीस्यंघ की बेटी मानकंवर

(3) बहु राठोर राव अमरसिंह की बेटी बदनकंवर।

(4) बहू चौहाण अलाघसिंहजी की बेटी रूपकंवर।

(5) बहू चन्द्रावतराव रूपस्यंघ की बेटी सदाकंवर।

(6) बहू गोड स्योपुर का राजा परसराम की बेटी किशोरकंवर

(7) बहू बडगूजर जैतस्यंघ की बेटी महाकंवर।

कीरतसिंहजी के एक पुत्र कंवर तीरथस्यंघ व दो पुत्रियों ब्रजकंवर व जसकंवर का उल्लेख किया गया है।

महाराजा जयसिंह का

जन्मः- आषाढ कृष्ण प्रतिपदा वि.सं. 1668 (29-5-1611)

राज्यारोहणः- पोष शुक्ला दशमी वि.सं. 1678 (23-12-1621)

मृत्युः- वि.सं. 1724 श्रावण शुक्ला चतुर्दशी (19-7-1667)

बीकानेर राज्य की 'कागद बही अभिलेख शृंखला' 1754 से 1900 ए.डी.

पी.सी. जोईया

कागद का अर्थ सामान्यत: पत्र (लैटर) से है जिसे खत या परवाना भी कह सकते हैं, परन्तु अभिलेखीय परिभाषा के अनुसार कागद वे प्रलेख हैं जो बीकानेर रियासतकालीन सरकार ने कानून के वशीभूत होकर अपनी प्रशासनिक व्यवस्था व कार्य व्यापार को संचालित करते समय निर्मित कर उसके महत्व को समझते हुए परिरक्षित व संगृहीत करके अभिलेखागार विभाग को सौंप कर एक राष्ट्रीय धरोहर का रूप प्रदान किया है। यह स्थाई महत्व के अप्रचलित अभिलेख उस समय के अभिलेखीय आकार 'बही' कागद बही कहलाती है।

कागद बही सन् 1754 से 1900 ए.डी. तक अभिलेखागार विभाग बीकानेर के रामपुरिया अभिलेख खण्ड के कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित हैं। प्रत्येक बही का नम्बर निर्धारित है, प्रत्येक बही सूचीबद्ध व पृष्ठांकित है। विक्रम सम्वत् के अनुसार तिथिक्रम बदी व सुदी में कागदों का इन्द्राज किया गया है। बही का आकार मध्यम है। बही की भाषा मारवाड़ी राजस्थानी लिपि देवनागरी में लिपिबद्ध है। लिखावट सुस्पष्ट है, कागद का अर्थ आसानी से समझा जा सकता है। जैसे—

'खजान्ची किसतूरचन्द[1] कामदारों री भाछ सावण भादवे रे महिने मंडी तेमे रू 1373 आया बाकी पेसकसी हुई सु माफ मिति मिगसर सुद 4 । प्रत्येक बही के शुरू में सूची दी गई है जिनमें मुख्य शीर्षक निम्न प्रकार है—

(1) हवाला सूपीया तिण रा कागद पृ. 1
(2) छूट रे कागदा री नकल पृ. 10
(3) फाड़ खता री नकल पृ. 14
(4) जमाबंधी रा कागद पृ. 16
(5) रीठ रा वा दूजा रूपीया सूंपिया तिण रा कागद पृ. 19
(6) सनदी कागदा री नकल पृ. 27
(7) तिखंत रा कागद पृ. 32

(8) घोड़ा वगसिया तिण री नकल पृ. 40

(9) जोड़ रे हवालदारा रा कागद पृ. 41[2]

इन शीर्षकों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य शीर्षक भी मिलते हैं। जैसे:- रीठ (विधवा विवाह कर) रा कागद, प्रचुण कागदा री नकल, धरती री चौथाई रा जमा रा कागद, खोले रा कागद, सिरबंधी रा कागद, वा फाड़खती रा कागद इत्यादि सीगो में कागदों का इन्द्राज किया हुआ मिलता हैं।[3]

कागद बही रामपुरिया अभिलेख का एक हिस्सा है जिनका राजकीय अभिलेख तैयार कर इन्द्राज करने का ठेका तत्कालीन महाराजा ने ठेके के आधार पर रामपुरिया सेठों को कमीशन के आधार पर दिया था जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। कागद बही अभिलेख शृंखला के अलावा सावा बहियां (लूणकरणसर, नोहर, भादरा, रीगी, रतनगढ़, हनुमानगढ़ चुरू, अनूपगढ़, मण्डी सदर, तहसील सदर, नितामत सदर आदि), जमी रे कागदा वा अमल रे चिट्ठा री बहियां, रामपुरिया अभिलेख की महत्वपूर्ण अभिलेख शृंखलाएं हैं।[4]

रामपुरिया अभिलेख शृंखला के अलावा बीकानेर बहियात की अन्य भी महत्वपूर्ण बहिया हैं जो 17वीं सदी से 20वीं सदी तक बीकानेर राज्य की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के बारे में शोध संदर्भ प्रस्तुत करती है जो इस प्रकार है:- हासल बही, जमा खरच री बही, सांसण बही, कमठाणा बही, ब्याव बही, धुंवा बही, खालसा रे गांवा री बही आदि है परन्तु यहां मैं मात्र कागद बही का ही जिक्र कर रहा हू।[5]

कागद बही बीकानेर राज्य के इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज है, ऐतिहासिक तथ्यों का मूलभूत स्रोत है और इन्हीं तथ्यों का उपयोग कर इतिहासकार इतिहास की रचना करता है। कागद बही बीकानेर राज्य के समस्त राजपूताना रियासतों के साथ व अंग्रेजों के साथ आपसी सम्बन्धों को उजागर करती है।[6]

बीकानेर राज्य की भू-राजनैतिक स्थिति, भूमि का वर्गीकरण, प्रगना, चीरा, पट्टी, खारी पट्टी में किया हुआ तथा उनके अधीनस्थ गांवों का पता चलता है।[7]

समस्त राज्य की भूमि को खालसा, जागीरी, सांसण, हजूरियान व भाई परसंगियों में बांटी हुई थी जिनमें अलग-अलग रूप से प्रशासनिक अधिकारी व उनसे दरबार द्वारा निर्धारित भू-राजस्व व अन्य करों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती हैं।[8]

बीकानेर भू-भाग की प्राकृतिक सम्पदा व पर्यावरण की सुरक्षा, जलवायु, पेड़ पौंधे पशु पक्षी का अवलोकन होता है जैसे—

'राजवी संगरामसिंह भोर्नी सिंघोत गांव भरपालसर रा चौ. जोग्य तिथा थे खोनेड़ी री मिट्टी, कांकर, भाट्टो चारणा ने पालो छो तेरो कागद एक हुवो थो सूं भाटी सेवग न दीवी सूं हमें कांकर माटी, भाट्टो मने मत करणो। चारणा री सरे में खेजड़ी आण दरावता बाढ़ लिया सूं हमें मती बाढ़जो। माटी पाली तो गुनेगारी रु. 101 लागसीः चारण तलाब रो पाणी सदामद सूं पीवे है, तो पीसी मि. जेठ सुद 15 [9]

'इतरा गांवा रा भोगता व समसुता जोग्य रोही में वा गांवा में जीनावर मारीज़े हैं, सू गांवा में तो बकरा ने रोही में हीरण व दुजा ही जीनावर मारीयो तो गुनेगारी लागसी घर खालसे हुसी' [10]

कम वर्षा के कारण राज्य में अकाल पड़ना सामान्य बात थी। अकाल 'मौत' का सूचक था राज्य की जनता खाने कमाने के लिये अपनी सम्पति छोड़कर अन्यत्र प्रस्थान कर जाती थी। दरबार द्वारा विशेष प्रबन्ध व पुनः बसाने के लिये प्रयास किये जाते थे। 'खेजड़ रे चीरे रा हुवालदार जोग्य गांव हरपालसर भाटीयां रो बीसताल है सूं रकमा री जमा इण भोत बाधं दीवी हैं, सुं हुवलदार हुवे सु पाल लेजो आबाद न हुवा सूं देख ली जसी [11]

और पर्यावरण व सामाजिक संरचना, आर्थिक जीवनयापन के साधन के अनुसार जातिगत समाज का वर्गीकरण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र-अछूत व कारीगर जातियां, वेशोचारक समाज (चारण, भाट, डूम) कृषक जातियां, नाच गाना करने वाली जातियां व घुमक्कड़ जातियां इत्यादि में बंटा हुआ मिलता हैं। सम्पूर्ण समाज का आपसी व्यवहार, ब्राह्मणों का पाण्डित्य, राजपूतों का सामन्तशाही प्रशासन, वैश्य समाज राज्य का आर्थिक स्तम्भ, उच्च समाज का शूद्र समाज पर अत्याचार, कारीगरों द्वारा राज्य की स्थापत्यकला दृष्टिगोचर होती है और दरबार का संरक्षण भी था। बैठ बैगार से परेशान होने पर रियायत दी जाती थी।

'गांव बखतावरपुर में बासी रा चण्ड रतनीया जोग्य गांव छोड़ जाय बैठा है, सूं पाछोकी उस्ते ईसे नूं चुकाय देवे आगे से पाछो गांव आय बसजो' [12]

'गांव साहवे में इतरी चण्ड ने पड़त देजी कर बैंगार भालाई सु पड़त लेसी गांव

री बैगार काढसी-चढवी भीलो, चण्ड उदीयो, चण्ड सुखियो न चण्ड मोरियो गुवाड़ी चार चाकरी अच्छी तरह करसी पड़त हुसी सूं दूजो चण्ड लेवण पावे नहीं मिति पोह बद 4। [13]

सामाजिक संस्कार, तीज त्यौहार, रीति रिवाज व धार्मिक संस्कार इस रूप में मिलते हैं-

'गांव नगासर रा पहाड़ बखता दूजा राजपूता समसुता जोग्य गांव नगासर रा चौधरी देवराज गवर काढ़े छै तेनू था मने कियो सूं आगे सदामद काढ़े था आपरे आगे सूं इतरा दिन न काढ़ी हमें जाट जाटा री गवर काढ़सी थे थाहरी गवर काढ़जो चैत सुद 4 [14]

समाज एक दूसरे से जुड़ा हुआ था। अछूतों पर कई प्रतिबन्ध थे। विवाह सगाई में खाने पीने व खर्च इत्यादि पर पाबंदिया थी। दरबार द्वारा आदेशित भी किया जाता था।

मगरे रे गांवा में ढ़ोली, ढ़ाढ़ी विवाह खर्च में छापल खोंड रो जीवण करण पावे नहीं गुड़ शक्कर रो करसी सं. 1854 माह बद 2 चीणी खॉड, छापल खोंड रो जीवण करसी तैनू गुनेहगारी लागसी। [15]

अछूत समाज पर करो में छूट के लिये भी कागद जारी किये जाते थे।

'गांव भादासर रे खेतीयाण रे चो. मेहे कमीणा नूं जगात अधकर लागसी कागद आगे सं. 1791 साबती जगात से छूट रो छैं सूं हमें अधकर ली जसी भादुवा सुद 12। [16]

कागद बही औरतों की वास्तविक स्थिति को दर्शाती है, क्रय-विक्रय दास प्रथा, व अन्य नारि अत्याचारों को उजागर करती है।

'गांव पीथासर रे चौधरी जीवराज धावल री बेटी कालो में चौरासी रो गांवो में भूखा मरती रजपूता रे गोली गांव खाटू में देहीये सुखे रे रही उण कने गांव मनोणे रे सामी जादूगीर रु. 40 में मोल लीवी अर सामी कने रुपीया 53 गांव मुकाम रे गुसाई रा वा लुगाई री मां रो बैर चाढ़योड़ो लिखाय लीयो लुगाई गुसाई खेमगीर री छै कोई

दावो झगड़ो करण पावे नही करे तो दरबार सूं मने की जसी रीठ रा रुपीया 31 लिया छै सूं खजान्वी रे जमा हुसी आसाड़ सुद 6 ।[17]

औरतों पर अत्याचार होते ही थे। यदि उसकी कोई अवैध सन्तान होती तो धार्मिक अन्धता की वजह से उसकी भी दुर्दशा होती थी।

'छोकरी एक बेटेसुधी काहर रामकिशन ने निरंकारी बिहारी सं. 1837 पोह सुद 6 मोल लीवी थीं तेरे कागद बिहारी काहर रामकिशन कने कराय लियो छै सूं छोकर कर 2 नाठी सुं तलाश कर पकड़ लाया सूं हमें छोकरी रो बैटो नीरंतकारी बिहारी री बैहन राही राजी हुय बरत रे गढ़ रे उपासरे बेड़े रे गुरूजी जैकरण रे चेले अमरचन्द ने चढ़ायो छै सूं आपरो चेलो अमरचन्द कीयो छै सूं हमें इण सूं दावो करण पावे नहीं मिगसर सुद 2 ।[18]

सगाई विवाह में रीत लेने का प्रावधान था। बचपन में सगाई कर दी जाती थी जो छूट नहीं सकती थी। विवाह एक धार्मिक बन्धन समझा जाता था। पुनर्विवाह का प्रावधान था जो पति के अथवा पत्नी के मरने के पश्चात् अथवा समाज से छुटकारा प्राप्त कर लेने के पश्चाद् धार्मिक रस्मरिवाज से ही सगाई विवाह के नियमों का पालन करते हुए एक अलग तरीके से पुनर्विवाह किया जाता था जिसे घर में घाली, पल्ले लगाई, चुड़ी पहनाई अथवा नाता करना कहा जाता था, बैर चुकारा करने के पश्चात् दरबार द्वारा एक प्रकार का कर निर्धारित था जिसे 'रीठ' कर कहा जाता था।

'गांव गन्धेली रे चन्ड गांव गुसाईसर रे चण्ड वीरमीरे री बैटी परणियो थी सुं गांव गंधेली रा चण्ड अकावा सु गांव नीडावास रे चण्ड लालीये रे पल्ले लगाई तेरी रीठ रू 2 खंजान्वी रे जमा हुसी चैत बद 13 ।[19]

सामाजिक विवाह कई प्रकार के देखने को मिलते हैं जिसमें भूमि का विवाद, सम्पति का विवाद, औरतों का विवाद, पानी का, घास चारे का, पशुओं तथा करों संबंधी विवाद देखने को मिलते हैं। न्याय में सामाजिक न्याय, न्यात बाहर करना, गुनैहगारी लगाना आदि प्रमुख है जिसे दरबार द्वारा मान्यता दी जाती थी।

'गांव भोजासर रे भाट चैंतन आपरी काकी ने मारी तेरे ईलाके रा रुपीया 75/- गुनेगारी दरबार में लिया छै हमें इलाके से नाव ले पीण पावे नहीं नात लेसी तेनु दरबार सूं मने की जसी मिति मिगसर सुद 12 ।[20]

राज्य का आर्थिक ढ़ाचा अनोखा था। कृषि व्यवसाय मुख्य था सामंत और किसानों में सीधा सम्पर्क था। प्रशासनिक पद चौधरी, कानूनगो व हलदार राज्य द्वारा निर्धारित कर भोग, धुंवा, देज, देशप्रठ, मुकता, आंगा, ठाकुरजी, गोगाजी, भुरज, जखीरा, पचोकी, कोरड़ इत्यादि लगभग 50-60 प्रकार के कर वसूल कर दरबार तक जमा कराते थे।[21]

किसान देजहाली, पसाइती, मुकाती या बोलीयारी इत्यादि प्रकार के होते थे।[22]

सभी गांव रास्तों से जुड़े थे। व्यापारिक मार्ग व जगात चौकीयां निश्चित थी। आवागमन के साधन ऊँट व बैल गाड़ियां थी, माल लाया व ले जाया जाता था, समाज में धार्मिक अन्धविश्वास व्याप्त था जादू-टोने, जन्तर-मन्तर, डाकण प्रथा इत्यादि व्याप्त थी। समाज में बिरत व्यवस्था व जजमानी प्रथा निश्चित तय की जाती थी जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती थी। यहां के लोगो का प्रमुख खाना मोठ-बाजरी था। पशु धन व पशु व्यवसाय को प्रमुखता दी जाती थी।

'गांव मालासर रे बास कुंतले रा रे चौधरियां री बिरत सारी डूम समनो गांव कालू रे चौधरियां पंचा बेस कियो छै सु हमें इण रो भाई उजर करण पावे नहीं उजर करसी तैनू श्री दरबार सूं मने की जसी'[23]

इस प्रकार बीकानेर कागद बही राष्ट्र की एक अमूल्य धरोहर है जिससे बीकानेर रियासतकालीन राज्य की भू-राजनैतिक स्थिति, सामाजिक संरचना, आपसी सम्बन्ध, विवाद, न्यायप्रक्रिया, सांस्कृतिक, धार्मिक स्थिति, नारी की स्थिति व राज्य की आर्थिक व वाणिज्य व्यापारिक स्थिति के बारे में अवलोकन होता है।

शोध अधिकारी राज. राज्य
अभिलेखागार, बीकानेर

सन्दर्भ संख्या—

1. कागद बही सन् 1790 ए.डी. पेज 59 बही नं. 9
2. कागद बही सन् 1783 ए.डी. पेज 1 बही नं. 7
3. कागद बही सन् 1797 ए.डी. पेज 81,82 बही नं. 10
4. कागद बही सन् 1754 से 1900 रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर में रामपुरिया अभिलेख कक्ष।
5. रा.रा. अभि. का प्रकाशन 'बीकानेर बहियात'- 1982
6. कागद बही सन् 1782 पेज 24 बही नं. 6
7. 'अभिलेख' वर्ष 1984 रा.रा.अभि. बीकानेर प्रकाशन पृ. 2
8. अभिलेख वर्ष 1984 पृष्ठ 3
9. कागद बही सन् 1790 पृष्ठ 13 बही नं. 9
10. कागद बही सन् 1783 पृष्ठ 49 बही नं. 7
11. कागद बही सन् 1789 पृष्ठ 10 बही नं. 8
12. कागद बही सन् 1789 पृष्ठ 2 बही नं. 8
13. कागद बही सन् 1774 पृष्ठ 39 बही नं. 4
14. कागद बही सन् 1783 पृ. 48 बही नं. 7
15. कागद बही सन् 1797 ए.डी. पृ. 239 बही नं. 10
16. कागद बही सन् 1763 ए.डी. पृष्ठ 10 बही नं. 2
17. कागद बही सन् 1769 ए.डी. पृ. 70 बही नं. 3
18. कागद बही सन् 1781 ए.डी. पृ. 38 बही नं. 5
19. कागद बही सन् 1769 ए.डी. पृ. 2 बही नं. 3
20. कागद बही सन् 1754 ए.डी. पृ. 3 बही नं. 1
21. अभिलेख पत्रिका रा.रा. अभिलेख प्रकाशन 1984 पृ. 6
22. अभिलेख पत्रिका रा.रा. अभिलेख प्रकाशन 1984 पृ. 5
23. कागद बही सन् 1769 ए.डी. पृ. 29 बही नं. 29

ख्यात देश दर्पण

डॉ. गिरजा शंकर शर्मा

सिढांयच दयालदास की प्रथम कृति 'बीकानेर रै राठोड़ों की ख्यात' का जब एक प्रमुख अंश सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ तो राजस्थान के अध्येताओं को कुछ नवीन तथ्यों की जानकारी मिली थी। यद्यपि दो खण्डों में लिखी उक्त ख्यात में अनेक घटनाओं की विस्तार से जानकारी दी गई है, प्रश्न यह है कि सन् 1871 में दयालदास को "ख्यात देशदर्पण" लिखने की आवश्यकता क्यों पड़ी? बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात और ख्यातदेशदर्पण के अध्ययन से पता चलता है कि पहले वाली राठौड़ों की ख्यात में जो बातें छूट गई थी, उनका समावेश "ख्यातदेशदर्पण" में मिलता है। महाराजा रायसिंह, महाराजा सूरतसिंह व महाराजा सरदारसिंह से सम्बन्धित बीकानेर इतिहास की कुछ घटनाओं का "ख्यातदेशदर्पण" में विशेष उल्लेख मिलता है। इस लिये "ख्यातदेशदर्पण" का महत्व अधिक माना जा सकता है।

यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि "ख्यातदेशदर्पण" सहित दयालदास के अन्य दो ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से सामान्य ख्यातों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। देश दर्पण में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि दयालदास ने जब इस ग्रन्थ को लिखना प्रारंभ किया था, उस समय उसने बीकानेर राज्य में उपलब्ध ऐतिहासिक शोध सामग्री, विशेष रूप से मुगल फरमान, शासकों के खरीते व परवाने, पट्टे आदि देखे थे। साथ ही उस समय के अंग्रेज इतिहासविदों की पुस्तकें आदि भी उसे उपलब्ध थीं। इन सबके अतिरिक्त उसने बीकानेर राज्य के तीन शासकों क्रमश: महाराजा रतनसिंह, सरदारसिंह व महाराजा डूंगरसिंह के शासन को एक राजकवि व कूटनीतिक के रूप में अपनी आंखों से देखा था। मराठा व अंग्रेजी काल की प्राय: सभी घटनाओं को उसने अपनी आंखों के सामने घटते देखा था। इसका मतलब यह तो बिल्कुल नहीं निकालना चाहिये कि दयालदास ने सभी घटनाओं का विश्लेषण भी उचित ढंग से किया था। उसने भी बीकानेर के शासकों की श्रेष्ठता का यथासंभव ध्यान रखा है।

वर्तमान में "ख्यातदेशदर्पण" की दो प्रतियां उपलब्ध होती हैं। एक प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में सुरक्षित है तो दूसरी राजस्थान राज्य अभिलेखागार में उपलब्ध है। ये दोनों प्रतिया वैदमेहता जसवन्तसिंह के आदेश से दयालदास ने रची थी। इनको लिपिबद्ध करने का कार्य रिद्धकरण नाम के व्यक्ति ने किया था। दोनों प्रतियों के अक्षर

छोटे बड़े होने के कारण पृष्ठों की संख्या में अन्तर है। दोनो ही प्रतियों में 1871 ई. में लेखन कार्य प्रारंभ होना लिखा मिलता है। दोनों प्रतियां दो भागों में विभक्त हैं तथा दोनों प्रतियों का दूसरा भाग जो जागीरदारों से सम्बन्धित है, अक्षरश: समान है तथा दोनों की भाषा भी टकसाली राजस्थानी है।

जैसा पूर्व में बतलाया जा चुका है कि दयालदास ने ख्यात देशदर्पण को दो भागों में बांटकर लिखा है। पहले भाग में राठौडों की उत्पत्ति जिसे उसने नारायण से मानी है, से लगाकर महाराजा सरदारसिंह के शासनकाल की सन् 1861 तक की मुगल, मरहठा व अंग्रेजी शासन काल की घटनाओं की विस्तृत व्याख्या की है। बीकाजी द्वारा बीकानेर राज्य की स्थापना से पूर्व उस क्षेत्र पर जाट शासकों एवं झगड़ों पर प्रकाश पड़ने के साथ बीकाजी की स्थापना पूर्व गतिविधियों पर "देशदर्पण" में अच्छी खासी सूचना उपलब्ध होती है। इस खण्ड में बीकानेर राज्य के राजनीतिक परिदृश्य के साथ तत्कालीन राज्य की सामाजिक स्थिति, विशेष रूप से राज्य की कानून व्यवस्था के साथ बाजार की स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। काना आढ़ा चारण की अफीम खाने वाली घटना जहां समाज में अफीम के अत्यधिक प्रचलन की जानकारी देती है वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि अधिक अफीम खाने वालों को घर के लोग घर से बाहर भी निकाल देते थे। खेतसी कांधलोत द्वारा भटनेर किले में रह रहे जैन धर्म के तपागच्छ के पूज्य भाव देवसूरी के अपमान करने पर, उसके द्वारा मुगल शहजादे कामरान को अपने अपमान का बदला लेने बीकानेर राज्य पर आक्रमण करना एक ऐसी घटना है जो समाज में धर्मगुरुओं के प्रभाव को दर्शाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले खण्ड में मुगल, मराठा और अंग्रेजी काल के इतिहास की अच्छी जानकारी मिलती है।

"ख्यात देशदर्पण" का दूसरा भाग तो विशेष महत्व का है। दयालदास ने इस भाग को 'बीकानेर रै पट्टा री विगत' कहा है जिसमें राजस्थान के सामन्तों के विकास की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। जैसे इसके नाम से ही लक्षित होता है, इसमें बीकानेर राज्य के उन गाँवों की विस्तृत सूची आ जाती है जो इसके जागीरी क्षेत्र में आते थे। ये गांव बीकानेर राज्य के राठौड़ शासकों के भाई-बांधवो से लेकर राज्य के सभी प्रकार के जागीरदारों को प्रदत्त थे। पट्टे के गावों की सूची में सबसे पहले उन गांवों का उल्लेख आया है जो राज्य के मन्दिरों की देखभाल एवं व्यवस्था के निमित्त दिये हुए थे। इन गांवों के साथ राज्य के ब्राह्मणों, चारणों और भाटों को दिये गये 'सांसण' के गावों का विवरण भी मिलता है। उसके बाद राज्य के जागीरदारों के दरबार में कुरब (प्रतिष्ठा) के अनुसार गाँवों की सूची है। सबसे पहले राज्य के सिरायत ठिकाने महाजन के ठाकुर रतनसिंघोत की सूची है। गावों की इस सूची का महत्व इससे और

अधिक बढ़ जाता हैं जब हम उसमें गांवो का वर्गीकरण राठौड़ों एवं अन्य राजपूत खांपों के अनुसार पाते हैं। प्रत्येक गांव के ठाकुर का नाम, उसकी जागीर में आये विभिन्न गाँवों के नाम, जागीरदारों की प्रत्येक खांप का इतिहास, गांवों की पैदावार, गांवों के घरों तथा जनसंख्या आदि की सम्यक् जानकारी इस सूची में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इस सूची में इस बात का उल्लेख मिलता है कि किस जागीरदार को, राज्य शासक[1] को रेख के रूप में कितना कर देना पड़ता था, आदि। साथ ही पट्टेदारों का तारीख के अनुसार विवरण होने के साथ सामन्तों और शासक के मध्य आपसी विवादों पर भी प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार ख्यात देश दर्पण गद्य साहित्य की एक अनुपम कृति कही जा सकती है।

पूर्व उपनिदेशक
राजस्थान राज्य अभिलेखागार

सन्दर्भ संख्या–

1. ख्यात देशदर्पण (प्रकाशित, राज. रा. अ. बीकानेर)

बीकानेर नगर के जैन मंदिरों के प्रतिष्ठा लेखों का ऐतिहासिक विवेचन

डॉ. उषा गोस्वामी

प्राचीन काल से अद्यावधि भारतीय जीवन और उसकी विचारधारा का जो अमूल्य संकलन यहां की कलापूर्ण रचनाओं में निहित है, उसके लिए विश्व भारत का ऋणी है। यहां के विविध सम्प्रदायों ने अपने इष्टदेव के मंदिरों के निर्माण में कला सौंदर्य द्वारा उच्चतर दार्शनिक तत्त्वों तथा भावमूलक विचार परम्परा का संरक्षण तो किया ही, भारतीय इतिहास के पुष्टिपरक साधनों में उल्लेखनीय वृद्धि भी की। जैन धर्मावलम्बियों द्वारा मंदिर-निर्माण की भावना का आरंभ कब हुआ, इस विषय में अनेक मत हैं, किन्तु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त वस्त्रविहीन मूर्त्तियों से यह स्पष्ट है कि सिंधु सभ्यता के लोग मात्र योग साधना न कर योगियों की प्रतिमाओं का पूजन भी करते थे। वहां से प्राप्त मुद्राओं पर बैठे हुए देवों के साथ खड़े हुए देवों के अंकित चित्रों से भी यही अनुमान है कि ये चित्र देवों की कायोत्सर्ग अवस्था को प्रतिभासित करते हैं, जो जैन योग या ध्यान की अवस्था है। खारवेल के उदयगिरि खण्डगिरि के शिलालेख में आदिनाथ की एक जैन मूर्त्ति का राजा नंद के द्वारा ले जाने और उसे खारवेल पुनः लाने का उल्लेख भी जैनों द्वारा मंदिर निर्माण की प्राचीनता को सिद्ध करता है।

बीकानेर नगर की स्थापना के साथ ही यहां भी जैनों द्वारा मंदिर निर्माण का कार्य प्रारंभ हो गया था। मंदिर के प्रतिष्ठा लेखों के अनुसार सं. 1561 में चिंतामणि मंदिर, सं. 1571 में सुमतिनाथ मंदिर भांडासर, सं. 1593 में नेमिनाथजी का मंदिर एवं इसी समय महावीर स्वामी (बैदों का चौक) के शिखरबद्ध मंदिरो का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् सं. 1639 में वासुपूज्यजी का मंदिर, सं. 1662 में ऋषभदेवजी का मंदिर, सं. 1663 में महावीर जिनालय, सं. 1670 में अजितनाथजी जिनालय की प्रतिष्ठा हुई। इस नगर में सं. 1561 से 1670 के मध्य इन आठ देवालयों का निर्माण हुआ और इस कारण यह 'आठ चैत्ये बीकानेरे' और 'बीकानेर जवंदियै चिरनंदियै रे अरिहंत देहरा' इस विरुद से प्रसिद्ध हुआ। बहुत वर्षों तक बीकानेर में ये आठ मंदिर ही रहे। लगभग 150 वर्ष तक इन मंदिरों के अतिरिक्त किसी मंदिर का उल्लेख नहीं मिलता। तत्पश्चात् 19वीं सदी में अनेक मंदिर बने और श्री अजितनाथजी आदि मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। यथा सं. 1817 में श्री शांतिनाथजी का मंदिर, सं. 1887 में सीमन्धरस्वामी का मंदिर, सं.

1871 में सुपार्श्वनाथजी का मंदिर आदि। 20वीं सदी में भी भक्त श्रेष्ठियों द्वारा मंदिर निर्माण हुए यथा सं. 1931 में श्री कुंथुनाथजी का मंदिर सं. 1964 में विमलनाथजी का मंदिर, सं. 2002 में महावीर स्वामी का मंदिर आदि। वर्तमान में मात्र बीकानेर नगर में 40 के आसपास जैन मंदिर हैं, इनमें कुछ जैन गुरू मंदिर भी है। बीकानेर राज्य में तो इनकी संख्या अधिक होगी, पर इस पत्र में बीकानेर नगर के ही जैन मंदिरों को लिया गया है। इन मंदिरों में प्रतिमाओं, परिकरों, चरणों, यंत्रों, स्तम्भों, देहरियों, सभामण्डपों, शिलाओं और दीवालों आदि पर अनेक लेख उत्कीर्ण हैं, जो अतीत के संयोजन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह हर्ष का विषय है कि श्री पूरणचन्द्र नाहर, श्री अगरचन्द्र नाहटा, श्री भंवरलाल नाहटा एवं मुनि विनयसागर आदि विद्वानों के अथक प्रयास और अद्वितीय प्रतिभा से बीकानेर नगर के इन मंदिरों के अभिलेख संगृहीत और प्रकाशित हैं, जिसके लिए इतिहास उनका सदैव ऋणी रहेगा।

जैन मंदिरों में विभिन्न स्थानों पर उत्कीर्ण प्रतिष्ठा लेखों में मंदिर प्रतिष्ठा का समय, मंदिर निर्माता का गोत्र और परिवारजन के साथ नाम, प्रतिष्ठापक आचार्य का, उसके संघ, गच्छ और गुरूजन सहित नाम, नरेशों के नाम स्थान और कहीं कहीं घटना विशेष और शिल्पकार के नाम वर्णित हैं, जो ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करने में सहायक हैं।

राव बीका द्वारा बीकानेर की स्थापना के साथ ही यहां जैन मंदिरों के निर्माण का कार्यारंभ होना तथा मंदिरों का पर्याप्त संख्या में होना यह प्रमाणित करता है कि यहां का राजवंश कला, साहित्य का संरक्षक तथा प्रोत्साहक होने के साथ सर्वधर्म समभावी था। यहां के राव बीका, राव लूणकरण, राव जैतसी, राव कल्याणमल्ल, महाराजा अनूपसिंह या महाराजा करणसिंह आदि सभी नरेशों ने धार्मिक उदारता का परिचय दिया। दूसरी ओर बीकानेर राज्य स्थापना, सीमा विस्तार, नगर व्यवस्था एवं शासन संचालन आदि में जैनों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। बोथरा वत्सराज, बैद लाखणसी, मंत्री कर्मसिंह, मंत्री वरसिंह और मंत्री कर्मचन्द्र आदि व्यक्ति अत्यन्त स्वामिभक्त और बुद्धिवैभव से युक्त थे। अत: तत्कालीन नरेशों से उन्हें पूर्ण सम्मान प्राप्त था। चूंकि इस नगर में प्रारंभ से ही धार्मिक श्रद्धा का प्रवाह था। अत: जैन श्रावकों के द्वारा मंदिरों का निर्माण स्वाभाविक ही था। कहते हैं कि सर्वाधिक प्राचीन मंदिर 'चिन्तामणि मंदिर' की नींव उसी मुहूर्त में रखी गई, जिसमें पुराने किले का शिलान्यास किया गया। इससे प्रशासन में प्रारंभ से ही जैनों के प्रभुत्व का संकेत भी मिलता हैं। बीकानेर के शासकों की सभी धर्मों के प्रति श्रद्धा तो स्पष्ट होती ही है। इसकी पुष्टि इसी मंदिर के गर्भगृहस्थ 1050 धातु प्रतिमाओं के इतिहास से भी होती है। इन मूर्त्तियों को बादशाह अकबर के सेनापति

तुरसमखान ने सं. 1633 में सिरोही के देवालयों से लूटकर अकबर के पास फतेहपुरी सीकरी भेज दिया था। वह इनसे स्वर्ण अंश निकालना चाहता था। जैन श्रावकों की इन प्रतिमाओं पर अटूट श्रद्धा थी। उनके आग्रह से मंत्रीश्वर कर्मचन्द्रजी ने महाराजा रायसिंह से इन्हें अकबर से मांगने का निवेदन किया। महाराजा रायसिंह कर्मचन्द्रजी के निवेदन से स्वयं अकबर के पास गए और उनसे वह मूर्त्तियाँ प्राप्त की। वे इन मूर्तियों को अपने साथ बीकानेर लाये और इनकी प्रतिष्ठा इस मंदिर में सं. 1639 में की गई।

इन धातु मूर्त्तियों का इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इनमें लेख उत्कीर्ण हैं। संवतोल्लेख वाली प्रतिमाओं में सर्वाधिक प्राचीन लेख सं. 1022 है- 'सं. 1022 गच्छे श्री नृर्वितकेतते संतने पारस्वदत्त सूरीणां पूज्या सरस्वत्या चतुर्विंशति पटकं मुक्त्यर्थे चकारे।'[1] इसके बाद सं. 1033, सं. 1141, सं. 1209, सं. 1227, सं. 1244 आदि का उल्लेख मिलता है[2] और यह उल्लेख लगभग 500 वर्ष तक का है। इससे एक ओर तो यह स्पष्ट होता है कि जैन-धातु-प्रतिमाओं का निर्माण अत्यंत प्राचीन काल से प्रारंभ हो गया था और भारतीय मूर्त्तिकला प्राचीन काल में ही समृद्ध हो गई थी, वहीं धातु मूर्त्तियों के इतिहास की क्रमबद्ध प्रामाणिक सामग्री एक स्थान पर मिल जाती है, जो अत्यन्त दुर्लभ है।

इसी चिंतामणि मंदिर के शिलालेख प्रशस्ति से भी कुछ ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट होते हैं। 'सं. 1561 वर्षे आषाढ़े....सं. 1380 वर्षे जिन कुशलसूरि प्रतिष्ठितं श्री मंडोवर मूलनायकस्य... सं. 1561 वर्षे श्री श्री चडवीसटइजी रो परधो महं बच्छावते भरायौ छै।'[3] सर्व प्रथम तो इसका प्रतिष्ठा संवत् लोकाप्रवाद को असत्य सिद्ध करता है। किंवदन्ती है कि सुमतिनाथ मंदिर भांडासर का निर्माण चिंतामणि मंदिर से पूर्व प्रारंभ हुआ, अतः सर्वाधिक प्राचीन मंदिर सुमतिनाथ मंदिर है। परन्तु सुमतिनाथ मंदिर के प्रतिष्ठा लेख में सं. 1571 का उल्लेख है, जबकि चिंतामणि मंदिर में सं. 1561 का उल्लेख है, अतः सर्वाधिक प्राचीन मंदिर 'चिंतामणि मंदिर' हुआ। द्वितीय, इस मंदिर की मूल प्रतिमा 1380 में जिनकुशलसूरि द्वारा मंडोवर में प्रतिष्ठित की गई थी, उसी प्रतिमा को यहां लाया गया। अतः इस मंदिर की यह प्रतिमा गुप्तकाल की है, ऐसा अनुमान होता है और प्रकारान्तर से इससे गुप्तकाल के शासकों का अन्यधर्म के प्रति आदर भाव स्पष्ट होता है, जब कि वे स्वयं वैदिक धर्मावलम्बी थे। तृतीय, इस मंदिर के परिकर का उद्धार सं. 1591 में बच्छावतों के द्वारा किया गया, इस पंक्ति से कामराँन के बीकानेर आक्रमण की सूचना मिलती है। इतिहास साक्षी है कि सं. 1591 में हुमायूं के भाई कामराँन ने बीकानेर पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का राव जैतसी ने अत्यन्त

वीरता के साथ सामना किया। इस युद्ध के समय इस मंदिर का परिकर भंग हो गया। इसका उद्धार वोहित्थरा गोत्रीय बच्छराज के पुत्रों ने सं. 1591 में कराया और जिन माणिक्यसूरि ने इसकी पुन: प्रतिष्ठा की। इस प्रकार यह प्रतिष्ठा लेख प्रमाण है कि कामरांन और राव जंतसी का युद्ध सं. 1591 में हुआ था।

बीकानेर के ये जैन मंदिर स्थापत्यकला, मूर्त्तिकला, चित्रकला या वास्तुकला के विकास की जानकारी तो देते ही हैं, लोकमानस में भक्ति के विकास का इतिहास भी प्रकट करते हैं। जैसा कि कहा जा चुका हैं कि इनमें निर्माता का गोत्र एवं वंश सहित नाम, प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम, उसके गच्छ, संघ, गुरुजनों का नाम, राजाओं के नाम, नगरों के नाम विशेषतयां वर्णित हैं, ये सभी बिन्दु इतिहास के स्रोत हैं। यथा मंदिर निर्माताओं के गोत्र और वंश-वर्णन से जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों की वृहत् सूची प्राप्त हो जाती है। चूंकि इस नगर में ओसवालों का प्रभुत्व रहा और उन्होंने मंदिर निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई, अत: ओसवाल सम्प्रदाय के साति गोत्रों का तो पूरा इतिहास इन लेखों में निहित हैं। यही नहीं वंशजों के नाम भी ज्ञात हो जाते हैं यथा 'ऊकेश वंशे थुल्ह गोत्रे साहूकार सलखा पुत्र सा कुशलाकेन भा. कुतिग दे पुत्र भोला जोखा दंपति हापादि युतेन स्वपुण्यार्थं..... ।

इसी प्रकार खरतर, आगम, अंचल, उपकेश, खसपा, कच्छोलीवाल और खीमाण आदि अनेक गच्छों का इतिहास भी प्रकट होता है। यथा किस संवत् में कितने गच्छ इस नगर में थे, किसकी प्रधानता थी, कालान्तर में किस नवीनगच्छ का उदय हुआ, किस गच्छ का लोप हुआ? आदि। इन गच्छों के आचार्यों और उनके पट्टधर शिष्यों, यति मुनियों का नाम भी उल्लखित हैं। यथा 'प्रतिष्ठित तपागच्छेश श्री आणन्दविमल सूरि तत्पट्टे श्री विजयदान सूरितत्पट्टे श्री हीरविजय सूरि शिष्य महोपाध्याय श्री कल्याणविजय गणिभि:'[4] अत: इनसे 16वीं सदी से 20वीं शदी तक के जैनाचार्यों के नाम की जानकारी, उनके संघ और गच्छ की जानकारी, उनके शिष्यों की जानकारी एवं यतियों की जानकारी तो होती ही है, एक तथ्य यह भी इंगित होता है कि इस नगर में प्रारंभ से ही जैन साधुओं का निरन्तर आवागमन था। इसीलिए यहां अनेक उपासरे भी निर्मित हुए और इन उपासरों में स्थित साहित्यिक सामग्री बीकानेर नगर की साहित्यिक अभिवृद्धि को संकेतित करती है। यहां यतियों, आचार्यों ने विशाल साहित्य का सृजन किया, यह स्पष्ट है।

इन प्रतिष्ठालेखों में राजाओं के नाम भी वर्णित हैं यथा श्री बीकाजी राज्य मध्ये, श्री लूणकरणजी विजयराज्ये आदि। इनमें बादशाह अकबर, महाराजा गजसिंह, महाराजा

जवाहरसिंह, महाराजा डूंगरसिंह, महाराज सूर्यसिंह, महाराजा कर्णसिंह, महाराजा गंगासिंह आदि अनेक राजाओं के नाम हैं। इनसे यह तो ज्ञात होता ही है कि किस राजा के समय किस मंदिर का निर्माण हुआ, प्रकारान्तर से राजा और उसके राज्यकाल की भी प्रामाणिकि सूचना मिलती हैं।

इनमें स्थान का भी उल्लेख है। अनेक स्थान पर बीकानेर को विक्रमपुर, विक्रम नगर, विक्रमपत्तन लिखा है। यह बीकानेर इस अपभ्ंश का संस्कृत नाम है। निर्माताओं के नाम भी अपभ्रंश में मिलते हैं, यथा भीमड़ सलखा, पासड़ आदि। इससे जन जीवन पर अपभ्रंश भाषा का प्रभाव स्पष्ट होता है। चूंकि इन प्रतिष्ठा लेखों की संख्या बहुत अधिक हैं, अत: इनसे अपभ्रंश भाषा का अध्ययन और समय-समय पर आए परिवर्तन का अध्ययन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में इन प्रतिष्ठा लेखों में अपभ्रंश भाषा का इतिहास समाहित है, कहना अतिशयोक्ति न होगी।

जैन मंदिरों के इन प्रतिष्ठा लेखों में स्त्रियों के नाम भी हैं। विवाहित और अविवाहित दोनों स्त्रियों ने मंदिरों का निर्माण कराया। इसी प्रकार साध्वियों के नाम भी हैं और कई मंदिरों की प्रतिष्ठापक आचार्य भी स्त्रियाँ हैं। यह उल्लेख समाज में स्त्रियों के सहभागित्व एवं सम्माननीय स्थिति को स्पष्ट करता है। कहीं कहीं शिल्पकार का नाम भी है और एक प्रतिष्ठा लेख में भूमि प्रदान करने का भी उल्लेक है।[5]

सारांशत: यह कहा जा सकता हैं कि बीकानेर नगर में धर्मानुरागी श्रावकों ने अपनी उदारता और धार्मिक भावना का पूर्ण परिचय दिया। इस नगर के मंदिर शिल्प, मूर्त्ति, स्थापत्य और चित्रकला के बेजोड़ नमूने एवं सौंदर्यपरक अन्तप्रेरणा के प्रतीक तो है ही, अपने प्रतिष्ठा लेखों से राजाओं, आचार्यों, यतियों, गच्छों, स्थानों, श्रावक-श्राविकाओं और जातियों के भूतकालीन अनेक तथ्यों को सत्य के प्रकाश में लाने का विशिष्ट मार्ग प्रशस्त करते हैं। साथ ही तत्कालीन इतिहास के अन्वेषण में महत्वपूर्ण सहाय्य भी प्रदान करते हैं।

गवेषक,
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
बीकानेर(राज.)

संदर्भ संख्या—

1. मुनि जिनविजय 'प्राचीन लेख संग्रह'
2. अगरचंद नाहटा भंवरलाल नाहटा 'बीकानेर जैन लेख संग्रह'
3. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा 'बीकानेर राज्य का इतिहास'
4. जेम्स टॉड 'बीकानेर राज्य का इतिहास
5. डॉ. दिनेश शुक्ल 'राजस्थान इतिहास गवेषणा'
6. डॉ. मारूतिनन्दन प्रसाद तिवारी 'जैन प्रतिमा विज्ञान'

उदाहरणार्थ दिये प्रतिष्ठालेखों की संख्या—

1. बीकानेर जैन लेख संग्रह प्र. ले. सं. 57
2. वही, ले.सं. 64, 68, 79 एवं 1155 तक के लेख
3. वही, ले.सं. 1
4. वही, ले.सं. 1927
5. वही, ले.सं. 15,72,73

बीकानेर बहियात अभिलेख शृंखला में उपलब्ध सम्भाला बही में बीकानेरी चित्रकला के सन्दर्भ

श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा

राजस्थान राज्य अभिलेखागार में उपलब्ध अभिलेख शृंखलाओं में बीकानेरी बहियात की उपलब्धता बहुतायत से है, शासन प्रशासन की विभिन्न मदों के अन्तर्गत सर्जित ये बहियां आज हमें तत्कालीन इतिहास के विभिन्न आयामों यथा राज-काज, समाज, धर्म और अर्थ पक्ष के साथ-साथ कला एवं संस्कृति पक्ष उजागर करने के लिए एक सशक्त ऐतिहासिक सन्दर्भ स्रोत हैं।

हासल बही, लेखा व जमाखर्च बही, जमात बही, कागद बही, जमी रै कागदा व अमल रै चिठ्यां री बही, कूचमुकाम बंही, सम्भाला बही, साहवा बही, हवूब बही, कमठाणा बही, विवाह बही, तलब तैयारा, (तलबाणा बही) चिठ्यां व खता री बही आदि आदि। इस शृंखला की भिन्न-भिन्न उनकी सर्जक इकाइयों की कार्यप्रणाली के अनुसार दिये गए कार्य विशेषण युक्त शीर्षक भी हैं जिनमें कुछ एक शीर्षकों को छोड़ कर सामान्यत: इनका सर्जना काल विक्रम संवत् 18 सौ के प्रारंभ से लेकर विक्रम संवत् 1900 के अन्त तक का है और वह भी लगभग अखण्डित रूप में है।

बीकानेर राज्य में हुए कलात्मक विकास को इस शृंखला की कमठाणा बहियां, सम्भाला बही तथा लेखा व जमा खर्च बहियां बहुत कुछ स्पष्ट करती हैं क्योंकि इनमें उल्लिखित सूचनाएं कार्य, व्यक्ति समय-काल तथा लागत राशि आदि के कारण यह बहुत महत्वपूर्ण दैनन्दिन सर्जित अभिलेख हैं।

बीकानेर बहियात की इसी शृंखला में उपलब्ध मेरा विवेच्य विषय 'सम्भाला बही' अपने सर्जना काल विक्रम संवत् 1754 से वि.सं. 1755 लगभग एक वर्ष के उल्लेख सहित उपलब्ध हैं क्योंकि इस बही की प्रारम्भिक पंक्ति ही यह उल्लेख करती है कि -

'सबै सम्भाळ नै ठीक कियो संवत् 1754 मिति भादवासुद 13 सम्भाळ ने ठीक कियो संवत् 1755 चैत सुद 1 सूधो।'

अतः यह सहज ही में समझा जा सकता हैं कि इस बही में दैनंदिन कार्य नहीं वरन् वि.सं. 1754 एवं 1755 के मध्य जो कुछ भी उपलब्ध था उसे सम्भाल कर (गणना कर) व्यवस्थित किया गया जिसका प्रमाण हमें इस बही की सर्जना प्रक्रिया से भी मिलता है कि जहां तहां हमें गणना प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुसाक्ष्य के साथ-साथ उसकी सर्जना काल की सूचना भी प्राप्त होती है जैसे-

बही के प्रथम पृष्ठ की तखतै ? माहे सबै, तैरी बिगत हिन्दुआ (वां) री राठोड़ा री की गणना में पृष्ठ की अन्तिम गणना रूप में उल्लिखित-

श्री केसरीसिंह जी री में संवत् 1753 वैसाख सुद 2 उल्लिखित भी मिलता है।

तात्पर्य यह कि संवत् 1754 से पूर्व जो कुछ भी उपलब्धता थी वह सभी कुछ इस बही में गणना करने के उपरान्त उल्लिखित किया जाकर सुनिश्चित किया गया है।

आइये, अब उपलब्ध सन्दर्भों के आधार पर यह देखने का प्रयत्न करें की यह बही एक सन्दर्भ स्रोत के रूप में क्या है ? जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया अपने सन्दर्भ स्रोत रूप में बीकानेर की ये बहियां हमें विभिन्न ऐतिहासिक पक्षों की सूचना देती हैं, इस रूप में सम्भाला बही हमें बीकानेर राज्य के अन्तर्गत कार्य सेवा में रहे चित्रकारों की सूचना, नामावली (वंशानुगत) रूप में देती है। उल्लिखित चित्र सन्दर्भों के आधार पर उपलब्ध नामावली अनुसार व्यक्ति की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करती है और अपने संख्यात्मक रूप में कुल कितने चित्र राजकीय आदेशानुसार सर्जित किये जा चुके थे संवत् 1754 तक, उनकी भी सूचना हमें देती है। इस रूप में देखा जाय तो यह सम्भाळा बही राज्याश्रित कला विकास का एक सशक्त सन्दर्भ स्रोत है और क्योंकि बीकानेर में कारखाना कलां की स्थापना भी बहुत बाद में की गई थी-

अतः सम्भाळा बही को हम बीकानेरी की कला विकास के सन्दर्भ स्रोत के रूप में कारखानाकला का पूर्व स्रोत कह सकते हैं।

एक और तथ्य जो विशेष उल्लेखनीय है वह यह कि सम्भाळा बही में उल्लिखित सभी चित्रकार मुस्लिम हैं वह भी 'उस्ता' नाम से संज्ञापित व अन्य किसी कलाकार चित्रकार का कोई संदर्भ नहीं। अतः यह सहज ही में माना जा सकता है कि एक विशेष वर्ग के कार्य उल्लेख के लिए ही इस बही का सर्जन किया गया था और क्योंकि इस बही में जहां तहां यह भी उल्लेख मिलता है कि कार्य पूर्ण होने के पश्चात् किस को

सौंपा गया (सम्भळाया)। अतः इसी आधार पर इसे सम्भाळा बही नाम भी दिया गया है। यहां यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि बीकानेर अभिलेखों में 'उस्ता' संज्ञापित चित्रकारों का यह सम्भवतः प्रथम उल्लेख ही है क्योंकि इससे पूर्व के अभिलेख बीकानेर बहियात की इस शृंखला में नहीं है।

भारतीय इतिहास के कालक्रम के परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो इस बही का काल-क्रम वि. संवत् 1754-55 मुगल काल के बादशाह औरंगजेब के शासनाधिकार प्राप्त होने के लगभग सात वर्ष पश्चात् का है और जैसा कि इस काल के लिए प्रचलित रहा है कि औरंगजेब ने अपने दरबार से सभी कला विशेषज्ञों को हतोत्साहित कर निष्कासित कर दिया था तो ऐसे में उन कलाजीवियों के लिए अपने नवीन आश्रयदाताओं की खोज आवश्यक रही होगी और दरबार से निकले इन कलाकारों ने मुगल दरबार के ही अपने परिचित सामन्तों आदि के यहाँ प्रश्रय प्राप्त किया होगा- सम्भवतः बीकानेरी बहियात में उपलब्ध सम्भाला बही के नामोल्लेख मोहम्मद उमर साह रूकनुद्दीन, नत्थू, नूरौ, हस्मूदीन, साह हासम अली तो यही प्रकट करते हैं। और इनके पश्चात् के अभिलेखों में कमठाणा, हासल व पट्टा परवाना बहियों में इनके बाद की पीढ़ियों के नामोल्लेख हैं।

एक अभिलेख या शोध-सन्दर्भ स्रोत रूप में यह बही हमें जहां उस काल के राज्याधिकारियों (स्वयं) अथवा उनके पूर्व व उत्तरवंशजों की जानकारी देती है वही बीकानेर रियासत में हुए इस चित्रकर्म क़े अन्तर्गत बने कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के सन्दर्भ भी देती हैं जैसे हिन्दुओं की चित्रावली के अन्तर्गत राठौड़, भाटी, सिसोदिया, हाड़ा, चन्दरावत, कच्छावा आदि के विशिष्ट नामोल्लेख मिलते हैं। बादशाही के अन्तर्गत तैमूर लंग से प्रारंभ होकर मुगलकालीन शासनाध्यक्षों, सामंतों, दरबरियों, कलावंतों आदि के सन्दर्भ भी मिलते हैं । इनके अतिरिक्त बीकानेर की सुप्रसिद्ध सुविख्यात बारहमासा चित्रावली के भिन्न भिन्न बारहचित्रों का सन्दर्भ भी है। इस बही के उल्लेखनीय सन्दर्भों में एक सन्दर्भ छत्रपति शिवाजी एवं उनके पुत्र सम्भाजी का भी है जिसे दक्खिणी सीवोजी कह कर सम्बोधित किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण चित्र मजलिस या मजलस शीर्षक के अन्तर्गत हैं जिनमें दरबार की महत्वपूर्ण बैठकों, किसी विशिष्ट व्यक्ति से भेंट, अन्तःपुर के क्रियाकलाप तथा विभिन्न पर्व-उत्सवों पर आयोज्य समारोहों के सन्दर्भ मिलते हैं। सम्भाळा बही में उपलब्ध ऐसे सन्दर्भों की कुल संख्या 500 से अधिक है। जब कि पृष्ठ सामग्री के अन्तर्गत यह बही 18 पूर्ण एवं 8 पृष्ठ अपूर्ण होकर यह बही कुल 21 पृष्ठों की ही जान पड़ती है।

अब तक जो विचार हमने किया वह इस बही में उपलब्ध शोध सन्दर्भो पर ही किया है। अब एक अध्ययन इस बही की सर्जना विधि पर भी कर लिया जाय तो उचित होगा। प्रथम तो यह कि बही के प्रथम पृष्ठ से लेकर अन्तिम तक की समस्त सन्दर्भ सामग्री विभिन्न शीर्षकों, उपशीर्षकों में बंटी हुई है। एक शीर्षक के लिए एक शब्द जिल्द प्रयुक्त किया गया है। जैसे-

जिल्द 1 दसावतार-री ने पाना दस. फिर वह सूची दी गई है जिनके चित्र बने, जैसे मच्छ, बाराह, नरिसिंह, बामन, राम, किसन, कछ, कल्कि आदि आदि और प्रत्येक उल्लेख के साथ साथ 1) लिखा हुआ हैं और एक शीर्षक अन्तर्गत 1), 1, की गिनती करते हुए अन्त में उन की संख्याओं का भी उल्लेख है।

कहीं-कहीं जिल्द के स्थान पर तखते का भी उल्लेख मिलता है जिससे यह निश्चित किया जा सकता हैं कि इन चित्रावलियों को सुरक्षित एवं संरक्षित किये जाने के लिए अब तक प्रचलित पारम्परिक तरीका दो तख्तों के बीच रखा जाता था।

इस प्रकार यह बही हमें तत्कालीन संरक्षा विधि की भी सूचना देती है और रख रखाव की भी जानकारी देती है।

सम्भाळा बही का मुख्यकर्त्ता सर्जक कोठारी हरिसिंह था जिसके नाम पर इस बही कि खतौनी मिलती है।

इस बही में उल्लिखित चित्र सन्दर्भों की विशेषता एक और भी है कि जिसे उस चित्रफलक की वर्णनात्मकता कही जा सके। यथा-

'तखते 1 माहे सबै तरै री विगत हिन्दुआं री राठौड़ा री-
1 महाराजा श्री रायसिंहजी री खडै ऊभांरी
पासे ढाल व तरवार कटारी बांधिया।'

इसी प्रकार बारहमासा शृंखला में-

'बारह मासा जेठ .
1 जेठ मास महाराजा श्री करणसिंहजी खड़ा छै, केसरिया बागौ पहरियां
कमर कटारी

डावें हाथ में हैं कबांण जीवणे हाथ में तीर
आगै मेहरी खड़ी छै, एक रै हाथ में फूलारी माला बीजी रै हाथ में
गुलाब री सीसी ।

सूरज री घाम री गरमी सूं पहाड़ री ओट छाया रै पगां हाथी आय ऊभौ छै, हांथी रै वासला पगां माहे बाघ आय बैठो छै, हाथी री सूंड माहै सरप छै, हाथी रै सामो महाबत आय उभौ छै' इत्यादि ।

इस प्रकार बीकानेर बहियात शृंखला की यह सम्भाळा बही जो कि अपने आकार में तो बहुत छोटी, कुल 21 पृष्ठों की है लेकिन अपने सन्दर्भ रूप में यह सशक्त एवं समर्थ है ।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार,
बीकानेर

राठौड़, सूरे, खींवरे कांधलोत री वात

स्व. डॉ. पुरूषोत्तम लाल मेनारिया
एम.ए. पी.एच.डी. (साहित्य रत्न

इतिहास ग्रंथों में अनेक ऐतिहासिक महत्व की घटनाएं कभी-कभी उपेक्षित रह जाती हैं, जिसका मुख्य कारण संबंधित आधारभूत सामग्री का अज्ञात होना है। 'चंवर-ढाल' नामक प्रसिद्ध घोड़ी के लिए मुसलमान शासक राजूखां से युद्ध और इस युद्ध में अनेक योद्धाओं का वीरगति प्राप्त करना 15वीं सदी की बीकानेर राज्य से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण घटना है, जिसका वर्णन बीकानेर संबंधी इतिहास ग्रंथों में सर्वथा उपेक्षित है। इस ऐतिहासिक घटना का विस्तृत विवरण 'राठौड़, सूरे, खींवडे़, कांधलोत री वात'[1] में उपलब्ध होता है। इस वार्ता के माध्यम से समकालीन राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का परिचय भी मिलता है। साथ ही यह समकालीन रचना है, इसलिए इसका विशेष महत्व हैं।

राव कांधलजी राठौड़, जोधपुर के राव जोधाजी के लघु भ्राता होने के नाते बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीकाजी के काका थे। बीकानेर राज्य की स्थापना एक विशेष घटना के आधार पर हुई। 'दयालदास री ख्यात' में राव जोधा के दरबार का विवरण देते हुए आगे लिखा गया हैं, 'कंवरजी बीकाजी भीतर सूं आया अरू रावजी सूं मुजरो कर काका कांधल जी रे आगे विराजिया नै कंवर जी श्री बीकाजी कांधल जी सूं कान में बतलावण करी तद रावजी जोधाजी देखने कहयो आजतो काकै भतीजै रे सला हुवै है सू इसी दीसै है काई नवी धरती खाटै। तद कांधलजी उठ मुजरो किया अरू कयो 'महरबान कांधलजी री सरम तो हमें नवी धरती खातियां ईज रैसी'[2]

इस समय जांगल प्रदेश का नापा सांखला भी दरबार में उपस्थित था। इसने बीकाजी से कहा- बिलोचों के आक्रमण से जांगल प्रदेश कमजोर हो गया है। (दयालदास री ख्यात में उल्लेख है, जांगलू रो पड़गलो वैरान है) बीकाजी, आप इस पर अधिकार कर लीजिए। तब राव बीकाजी अपने काका कांधल, रूपा, मांडण, मंडला, नाथू, भाई जोगा, बीदा, पड़िहार बेला, नापा सांखला, महता लाला, लाखण, बच्छावत, महता वरसिंह तथा अन्य राजपूतों के साथ जोधपुर से रवाना हुए।[3]

बीकाजी के साथ इस समय 300 राजपूत थे।[4]

राव बीकाजी ने जांगलू में पहुंच कर प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया तथा राज्य की सुरक्षा और विस्तार हेतु अनेक युद्ध किए। इन युद्धों में कांधलजी और इनके पुत्रों का विशेष सहयोग रहा। युद्धों में भाटियों का युद्ध, जाटों का युद्ध, जोइयों, खीचियों, सिरसा, भटिन्डा, भटनेर और सारंगखां से युद्ध आदि है। हिसार के सारंगखां से युद्ध करते हुए राव कांधल मारा गया। बीकाजी ने अजमेर और जोधपुर पर भी आक्रमण किये। हिसार युद्ध के प्रसंग में राव कांधलजी के पांच पुत्र बताए गए हैं 'बेटा तीन साथै है राजसी, नींवो, सूरो ने बड़ो बेटो वाघोजी चाचा बाद है, अर अरड़क माल बीकानेर'[5] उल्लेखनीय है कि यहाँ 'खीवाँ' का नाम नहीं मिलता है। संभवतः यह नाम छूट गया है अथवा 'खीवाँ के स्थान पर नीवा हो गया है।

राव कांधल जी विक्रमी संवत् 1546 पौष कृष्ण पंचमी को गाँव साहबे में युद्ध करते हुए मारे गए थे।[6]

'सूरे, खींवरे, कांधलोत री वात' में समकालीन विवरण इस प्रकार है-

राठौड़ सूरो और खींवों कांधलजी के बेटे, मोहिला के दोहिते, सो बडे शूरवीर राजपूत चौसठ आँखडी के निबाहने वाले, त्याग-खाग के पूरे, वाच-काछ निष्कलंक, शरणागत के आधार, इस प्रकार के दातार झुझार। सो इतने गांवों की उत्पत्ति लेते कोटडी, सत्तासर, लछडसर, कीतासर, मूमासर, लालासर, आलसर और वीनासर। इतने गाँवों का हांसिल खाते। शेष पहले की रोकी हुई धरती की आमदनी सरलता से आती-खमोलो, मनोहरपुर, काशीली, वांसोदांतो। झाडोद की पीढी का अनाज आता। पुनिया के परगने की लागत आती। डीडवाने रोसा फूंकारा का वार्षिक कर आता। हवालदार की ओर से नमक आता। सांभर का नमक प्रति वर्ष आता। परबतसर मारोठ चौरासी की दाल आती। चारों ओर का माल खाते हैं। बडे शूरवीर सो दिल्ली से बादशाहत् का घाड़ा नित्य आता। मुल्तान के मार्ग का घाडा आता है सो रात दिन सवार उधर दौड़ते हैं। रेबारियो के 200 ऊंट इसी काम पर लगे हुए हैं। मीणों के सभी ऊंट और 50 घोडे भी इसी काम के लिये रहते। चारों ओर का माल आता है सो खाते हैं और आनन्द करते हैं, 350 राजपूत, जिनमें से मुख्य-मुख्य शूरवीर पास रहते हैं, 200 घोड़े पायगों में रहते। सभी ऊंट बडे अच्छे, सो तबेले में रहते। इस प्रकार से ठकुराई चलती। बडे शूरवीर राजपूत और शूरवीर घोड़े होते सो हर तरह से अपना बनाते। अच्छा हथियार होता सो लेते। राजपूतों को बखसीसें देते। पोषाकें देते। वर्ष भर में दो पोषाकें सभी लोगों को दरबार की ओर से मिलती। होली के प्रातः काल में सरदार और राजपूत की खबर नहीं पडती, इस प्रकार मुजरा करते तब

सरदार और राजपूत जानने में आते। इस प्रकार बादशाही भी कहते हैं, पीछे से रावजी श्री बीकाजी (की सहायता रहती है) ननसाल के मोहिला से भी भारी (सम्बन्ध रहता)

राजू खाँ से सूरा और खींवरा का युद्ध चंवरढाल घोडी के लिए हुआ था। घोडी का वर्णन इस प्रकार हैं-

'खींवे के घोडी थी, वैसी ही दूसरी (देखीं), वैसा ही शरीर, वैसा ही रूप, वैसे ही बाल, वैसा ही रंग कुमेत। देणोत के मठ के जोगी के घर की घोडी देखीं थी (वैसी)। तब पीछे वहाँ से घोडी ग्याभिन आई थी। सो जोगियों से राजूखान के आदमी मोल लाए थे, रुपये 2500 वहीं देकर लाए थे। ऐसी घोडी बड़ी हुई। सो उसकी तारीफ मनुष्य कैसे कर सकते हैं?

एक मीणे को सत्तासर गाँव का लालच देकर घोड़ी को सूराजी, खींवजी ने अपने यहाँ मंगवाना निश्चित किया। मीणा साधु का वेषकर राजूखां की राजधानी डींगसर पहुंचा और धोखे से घोडी चंवर-ढाल ले आया। सूरोजी ने एक लाख रुपये न्यौछावर किये और गरीबों में बांटे। पायगा में सवा सेर घी, दो सेर चीनी खांड, सेर भर गेहूँ का आटा और चांवल की खीचड़ी की अधिक व्यवस्था की।

राजूखां ने घोड़ी को ढूँढने के लिए चारों ओर आदमी भेजे। घोडी का पता नहीं लगा। दरबारियों ने राजूखां से कहा कि घोडी मर गई है सो दूसरी मंगवाएंगे। राजूखां ने कहा, चंवरढाल जैसी दूसरी घोडी नहीं मिलती। राजूखाँ स्वयं घोडी की खोज में निकला। अजमेर में ख्वाजाजी की जात दी और डेगची चढ़ाई। फिर बीठलीगढ़ मीरांजी की जात। फिर बूंदी में छैल रतन पीरों की जात दी। हाँसी में पीरों की जात दी। नरमल, दीवान, सुल्तान के पीरों की जात देता हुआ कोटडी आया। राजूखां ने फकीर का वेष धारण कर रखा था। फकीर को यहाँ चंवरढाल घोड़ी दिखाई दी। राजूखां को कसुम्बा की मनुहार की। फकीर को भोजन कराया। राजूखां फकीर वेष में ही घोडी खोल कर ले भागा। जाते समय पुकार कर कहता गया, घोडी को फिर लेने की बात मत करना।

राजू खां के पीचे दोनों भाई अपने घोडों पर सवार होकर चले। राजूखां प्रातः काल होने से पूर्व ही डींगसर पहुंच गया। दोनों भाई एक पहर दिन चढ़े डींगसर की सीमा में पहुंचे। राजूखां को खबर मिलने पर सवारों सहित दोनों भाइयों का पीछा किया। भारी युद्ध हुआ। सूरा, खींवरा इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। इनके साथ

50 आदमी थे वे भी मारे गए। पाग बंधवाने का दस्तूर किया गया। सूराजी का बेटा 8 बरस का था, खींमाजी का बेटा वरजा 10 बरस का था।

दोनो भाई बडे हुए, शूरवीर राजपूत कहे गए। राजूखां के बेटे की बारात चढ़ी। कांधलोत डेढ़ हजार आदमियों के साथ अचानक पहुंचे। कांधलोतों और राजूखां के बीच युद्ध हुआ। राजूखां को पराजित कर सारी समग्री छीन ली। इस प्रकार राजूखां से बेर लिया।

बीकानेर में रावतसर की जागीर कांधल जी के बडे बेटे राजसिंह को प्रदान की गई थी। सुप्रसिद्ध राजस्थानी लेखिका रानी, लक्ष्मीकुमारी जी चण्डावत का विवाह सम्बन्ध तेजसिंह रावतजी से हुआ। इस प्रकार 'राठौड़ सूरे-खींवरे कांधलोत री वात' द्वारा अनेक नवीन ऐतिहासिक ज्ञातव्य उपलब्ध होते हैं।

निदेशक परियोजना, संस्कृति विभाग,
भारत सरकार, 41, रवीन्द्र नगर उदयपुर 313 001

सन्दर्भ संख्या—

1. पत्र-वाचक के निजी संग्रह में उपलब्ध
2. अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर पृष्ठ-1
3. वही पृष्ठ-2
4. डॉ. ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास (प्रथम भाग, पृष्ठ-91)
5. दयालदास की ख्यात, जि. 2, पत्र-1 मुंशी देवी प्रसाद, राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ. 1-4, वीर विनोद, भाग-2, पृ. 478, पाउलेट, गैजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृ.-1 टॉड-कृत 'राजस्थान' में बीका के साथ 300 राठौड़ों का जाना लिखा हैं। (जिल्द 2, पृ. 1123)
6. मुंहता नैणसी री ख्यात (भाग 3), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

भरतपुर के राजकुल की धार्मिक अभिरुचि एवं दानशीलता

डॉ. ओंकारनारायणसिंह

भरतपुर के राजवंश को यदुकुल से संबद्ध मानने की परम्परा प्राप्त होती है। जिसके अन्तर्गत श्रीकृष्ण की सतहत्तरवीं पीढ़ी के मदनपाल जादों के पुत्र सूये ठाकुर द्वारा 13वीं शती ई. के लगभग सिनसिनी गढ़ी की नींव डाली गई।[1] इसकी चौथी पीढ़ी के बालचंद ठाकुर की जाट पत्नी हरको[2] से उत्पन्न संतानों सूरद तथा बीरद को जादौ ठाकुरों द्वारा समानाधिकार प्रदान न किये जाने के कारण वे जाटों में मिल गए। सिनसिनी गाँव के वासी होने के कारण उनका गोत्र सिनसिनवार हुआ।[3] सूरद की सातवीं पीढ़ी के भूरीसिंह द्वारा सिनसिनी गांव का विस्तार किया गया।[4] इनकी चौथी पीढ़ी में विख्यात जाट विद्रोही गोकुला (ओला) हुआ जिसने औरंगजेब की धर्मान्धता का सशक्त प्रतिरोध करते हुए 1 जनवरी 1670 ई. में प्राणोत्सर्ग किया।[5] गोकुला के अग्रज सिंधुराज की चौथी पीढ़ी के भज्जा और व्रज के पुत्र राजाराम एवं चूड़ामन हुए जिन्होंने क्रमशः 1670-88 ई. और 1701-21 ई. तक मुगल धर्मान्धता तथा अत्याचारों के विरुद्ध जाटशक्ति को संगठित किया।[6] ठाकुर बदनसिंह चूड़ामन का भतीजा था। इस प्रकार भरतपुर राज्य की स्थापना से पहले ही कुल के पूर्व पुरुषों द्वारा युगीन परिस्थितियों के अनुरूप धर्मरक्षक योद्धाओं की भूमिका निभाई जाती रही थी। संभवतः इसी पृष्ठभूमि के फलस्वरूप भरतपुर के राजकुल में धार्मिक अभिरुचि की परम्परा अक्षुण्ण बनी रही।

स्वयं को यदुवंश की परंपरा में मानने के कारण भरतपुर के राजाओं द्वारा अपनी उपाधि 'ब्रजराज' रखी गई जो सर्वप्रथम सवाई जयसिंह द्वारा ठाकुर बदनसिंह को कुँवर ईश्वरीसिंह के युवराज पद समारोह में 13 जून 1734 ई. को प्रदान की गई।7 बदनसिंह ने बरसाना की तीर्थयात्रा की थी, जहाँ से वह रूपराम कटारा को साथ लाया।[8] लोक अनुश्रुति के अनुसार भरतपुर दुर्ग तथा नगर की स्थापना हेतु महाराजा सूरजमल द्वारा नागाजी की कुटिया (वर्तमान बिहारी जी का मंदिर) के पास शेर और गौ को एक घाट पर पानी पीते देख यहाँ की तपोभूमि का चयन किया गया था। सूरजमल के इष्ट हरिदेव जी थे। उसके अंतःपुर में श्रीकृष्ण भक्ति की भाव-सलिला अहर्निश प्रवाहित होती थी। उसने 1756 ई. में नगर के किशनगढ़वास में हरिदेवजी का मंदिर बनवाकर डीग के

हरिदेव भवन से प्रतिमा लाकर प्रतिष्ठित की।[9] समकालीन पत्रावलियों से ज्ञात होता है कि राजकीय पत्रों की मुहर में 'श्री हरिदेवजी सहाय' अंकित किया गया था।[10] पुण्यार्थ अभिलेखों के शीर्ष में 'श्रीरामजी' की मुहर प्राप्त होती है।[11]

सूरजमल की धर्मप्राणता 1750 ई. में सलावतखाँ के साथ की गई संधि के अंतर्गत जाट क्षेत्र में पीपल की कटाई पर प्रतिबंध एवं मंदिरों-मूर्त्तियों का अनादर न किये जाने की शर्तों से भी प्रकट होती है।[12] 1753 ई. के दिल्लीं के गृहयुद्ध और लूट के अंतर्गत अपनी प्रबल भूमिका के वीरतापूर्वक निर्वहन के उपरांत उसने गोवर्द्धन की यात्रा कर सेना तथा जनता के साथ मानसी गंगा के तट पर सोल्लास दीपोत्सव मनाया।[13] इसी प्रकार मार्च 1757 ई. में अहमदशाह अब्दाली की ब्रजमंडल की लूट और कत्लेआम के दौरान मथुराधीश एवं गोकुलनाथजी की प्रतिमा लेकर आये गोस्वामीजी को उसने डीग में सादर आश्रय दिया। उसकी ऐसी धर्मवीर छवि के कारण मार्च 1759 ई. में सवाई माधोसिंह द्वारा उसे 'ब्रजेंद्र बहादुर राजा' के बिरुद से सम्मानित किया जाना स्वाभाविक ही था।[14]

उसने धार्मिक आस्था को राजनैतिक तथा सामरिक क्षेत्र में लाभकारी रूप से व्यवहृत किया। उसकी सेना में नागा-साधुओं की जमात के राजेंद्रगिरि, उमरावगिरि, अनूपगिरि प्रभृति गोसाइयों ने समय-समय पर शौर्य प्रदर्शित किया। पंडित रूपराम कटारा उसका विश्वस्त वकील था जिसे जावली के गजसिंह नरूका द्वारा भी अपना तीर्थपुरोहित स्वीकार किया गया।[15] सूरजमल ने पेशवा बाजीराव प्रथम की मुस्लिम उपपत्नी मस्तानी से उत्पन्न पुत्र शमशेर बहादुर के पानीपत (तृतीय) युद्ध 1761 ई. में आहत होने के कारण भरतपुर में देहांत हो जाने पर उसकी स्मृति में 1762 ई. में मजार, मस्जिद, कुआं और सराय बनवाकर सर्वधर्म समभाव का समकालीन परिवेश में दुर्लभ उदाहरण प्रस्तुत किया। पानीपत युद्ध में पराजित तथा त्रस्त मराठा सैनिकों के विश्रामार्थ उसने दुर्ग, गढ़ियाँ, धर्मशालाएँ और ग्राम्यचौपालें खोल दीं। प्राय: दो माह तक (जनवरी-मार्च 1761 ई.) राजा एवं प्रजा द्वारा मराठा सैनिकों और परिवारों को शरण तथा सहायता दी गई।[16] रानी हंसिया ने लगभग 50000 मराठा सैनिकों को सादर एक हफ्ते का पेटिया बांटा। ब्राह्मणों को दूध, मेवा, मिष्ठान से तृप्त कर प्रचुरदान-दक्षिणा एवं एक हफ्ते का सीधा दिया गया। सदाशिव राव भाऊ की पत्नी पार्वती बाई को सादर एक लाख रु. भेंट किया गया। सूरजमल ने मराठों की सहायतार्थ लगभग दस लाख रु. व्यय किए। उसकी दानशीलता इससे भी स्पष्ट होती है कि उसने अपने संरक्षित साहित्य-सेवियों सूदन, अखैराम, मुहम्मद बख्श 'आशोब' सैयद नूरुद्दीनहसन को पर्याप्त धन -धरती प्रदान किये थे। आचार्य शिवराम को उनके काव्य 'नवधा भक्ति राग रससार'

पर छत्तीस हजार मुद्राएँ प्रदान की गई थी। प्रत्येक युद्ध से पूर्व एवं पश्चात्, दीपावली तथा अन्य त्यौहारों पर वह गोवर्धन की नियमित पूजा करता था। उसने ब्रज के पुनीत तीर्थ मथुरा, वृंदावन, गोकुल, नंदगांव, बरसाना और गोवर्धन आदि में नवीन-निर्माण और पुनरुद्धार कार्य करवाये।[17]

सूरजमल के अनुज वैर के राजा प्रतापसिंह रामभक्त थे। रामानुज सम्प्रदाय के तैलंग षढमर्षण गोत्रीय श्रीनिवासाचार्य के ठाकुर शार्दूलसिंह के आग्रह पर वैर आने पर राजा प्रतापसिंह ने उनसे गुरु दीक्षा प्राप्त की थी। विशेष आग्रह किए जाने पर वे वैर में ही बस गए। प्रतापसिंह ने फूलवाड़ी के समीप दाक्षिणात्य जाट मिश्रितशैली का भव्य और विशाल सीतारामजी का मंदिर तथा गुरु हेतु तिमंजिला आवास बनवाया। एक हाथी, एक घोड़ा एवं प्रभूत द्रव्यदान में अर्पित किया। मंदिर के भोग-राग हेतु 4298 रु. वार्षिक जमा की 4257 बीघा 9 बिसवा भूमि तथा हाथी के पालन हेतु 'जटवलाई' नामक मौंजा (गाँव) प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त जागीर कोष से नकद रु. भी दिया जाता था। प्रतापसिंह ने रामस्नेही संप्रदाय के महन्त को भी आश्रय देकर जानरायजी का दुमंजिला विशाल मंदिर बनवाया। इसके लिए भी पुण्यार्थ जागीर दी गई। उसने गढ़ में ब्रजदूल्ह, फुलबाड़ी में लालमहल के सामने मोहनजी का मंदिर बनवाया। इन मंदिरों के प्रबंध और भोग रागहेतु 1400/- वार्षिक जमा की 572 बीघा भूमि पुण्यार्थ जागीर में प्रदान की गई। अपने परम इष्ट रघुनाथजी का मंदिर लश्करी मोहनजी के मंदिर के पृष्ठभाग में बनवाया तथा इसकी व्यवस्था हेतु 2512 रु. वार्षिक जमा की 2016 बीघा भूमि पुण्यार्थ तथा खिदमत जागीर के रूप में अर्पित की थी। मुसलमानों को भी मस्जिद दरगाह बनाने हेतु भूमि और अन्य सुविधाएँ दी गई थीं।[18]

उसने ब्रज एवं संस्कृत के विद्वान्, ज्योतिष तथा वैद्यक के प्रकांड पंडित आचार्य सोमनाथ को संरक्षण प्रदान किया था। उन्होंने रामकलाधर (अध्यात्म रामायण का काव्यानुवाद) रामचरित रत्नाकर (वाल्मीकि रामायण के किष्किंधाकांड तथा सुंदरकांड का काव्यानुवाद) ब्रजेन्द्र विनोद, रासपंचाध्यायी, सुजानविलास, माधव विनोद, शशिनाथ विनोद आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों का प्रणयन किया। इसी प्रकार आचार्य श्रीकृष्णभट्ट कलानिधि ने उसके आश्रय में 'दुर्गामाहात्म्य' की 1743 ई. में रचना की एवं वाल्मीकि रामायण के बालकांड, युद्धकांड तथा उत्तरकांड का काव्यानुवाद किया। सूरजमल की भाँति प्रतापसिंह में सैनिक ध्येय भी विद्यमान था। उसकी सेना का प्रधान सेनापति विप्रहरबल था। इसके अतिरिक्त निर्मोही रामानुज संप्रदाय के महंत राघवदास के पट्ट शिष्य केशोदास की कमान में नागा सवारों का लश्कर था। इनका गुरुद्वारा रघुनाथजी लश्करी के नाम से विख्यात था। केशोदास को बारह गाँवों की खिदमत जागीर एवं वैर नगर की सुरक्षा

का भार सौंपा गया था।[19] सूरजमल का उत्तराधिकारी महाराजा जवाहरसिंह वेंकटेशजी (लक्ष्मणजी) का भक्त था। उसने राज्यारोहण से पूर्व ही शाहपुरा (डीग) में वेंकटेशजी का मंदिर बनवाया था। वेंकटेशजी मंदिर की परंपरा से प्रथम प्राचीन मंदिर ग्रामवाटी जिला मथुरा में था। उसने 1759 ई. में इन मंदिरों को 5000 रु. वार्षिक आय का ग्रामवाटी पुण्यार्थ जागीर में अर्पित कर दिया था। उसने राज्य की पताका पर 'श्री लक्ष्मण जी सदासहाय" अंकित कराया।[20] उसने सवाई माधोसिंह के साथ 19 नवम्बर 1753 को बरसाना की तीर्थयात्रा की।[21] 6 नवम्बर 1767 ई. को पुष्कर की यात्रा की।[22]

परवर्ती शासकों में महाराजा रतनसिंह (1768-69) ने जवाहर बुर्ज पर पचदरा निर्मित कराया, जिसमें रामायण तथा महाभारत की चित्रकारी की गई है।[23] महाराजा बलदेव सिंह (1823-25) ने सुजानगंगा के तट पर पक्के घाट बनवाये और नये लक्ष्मण मंदिर की नींव डाली।[24] महाराजा बलवंतसिंह (1826-53) ने 1845 ई. में गंगा मंदिर के साथ-साथ जामा मस्जिद का शिलान्यास कर धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया।[25] बलवंतसिंह से साहित्य सृजनार्थ दान प्राप्त करने के उल्लेख मिलते हैं।[26] महाराजा जसवंतसिंह (1853-93) द्वारा नये लक्ष्मण मंदिर में प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराई गई एवं ब्रजेन्द्र बिहारीजी का मंदिर बनवाया गया।[27] अंतिम महाराजा ब्रजेन्द्रसिंह (1929-48) ने विगत 90 वर्षों से बनकर पूर्ण हुए गंगामंदिर में 22 फरवरी 1937 को गंगाजी की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई।[28]

इसके अतिरिक्त साधु-संतो तथा जनसामान्य के धार्मिक एवं पारिवारिक समारोहों के अन्तर्गत राजकुल की शिरकत सहायता के उल्लेख भी उपलब्ध होते हैं। रंगा-स्वामी के पत्र से जहाँ श्री रंगनाथजी के वैकुंठोत्सव में राज परिवार की सेवा संबंधी जानकारी प्राप्त होती है[29] वहीं महारानी श्री राजकौर को भानजे के विवाह भात में न्यौतने से राजकुल की प्रजा से अंतरंगता और दानशीलता का परिचय मिलता है।[30] इसी प्रकार श्रावण के रास-हिंडोला उत्सव तथा मार्गशीर्ष के धनुषयज्ञ विवाहोत्सव के अन्तर्गत राजा की ओर से सेवा के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[31]

तत्कालीन अभिलेखों में बिहारीजी की रथयात्रा हेतु दानभोग व्यवस्था विषयक[32] एवं उत्सव रास हिंडोलाबिहारीजी मंदिर और लक्ष्मणजी मंदिर हेतु दान-भोग व्यवस्था विषयक पत्र उपलब्ध होते हैं।[33] जिनसे इन लोक-धार्मिक उत्सवों के अन्तर्गत राजवंश की सक्रिय भूमिका का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता हैं। गौशालाओं हेतु दान प्रबंध विषयक पत्रावली भी राजाओं की धार्मिक प्रवृत्ति की परिचायक है।[34] इस प्रकार अपने पूर्वजों की धर्मवीरता की पृष्ठभूमि के अनुरूप भरतपुर के राजकुल ने अपनी धार्मिक अभिरुचि

तथा दानशीलता की परम्परा को जीवंत रखा।

सारांशत: यहाँ के लोक अभिवादन 'रामराम सहाब' एवं जयघोष 'गिर्राज महाराज की जय' को धर्मप्राण राजकुल तथा प्रजा की अन्तर्भावना को सार्थक प्रतीक कहा जा सकता है।

वरिष्ठ शोध सहायक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
भरतपुर (राज.)

संदर्भ संख्या—

1. पं.बलदेवसिंह सूर्यद्विज - तवारीख भरतपुर (ह. प्रति 1855-56 ई.) पृ. 7-8, उपेन्द्र नाथ शर्मा संग्रह, भरतपुर
2. खेड़िया जागाओं की पोथी के अनुसार।
3. हंटर, डब्ल्यू. डब्ल्यू. - इंपीरियल़ गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग 8, पृ. 75, 1908 ई.
4. तवारीख भरतपुर, पृ. 14
5. सरकार, जदुनाथ - हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग 3, पृ. 335
6. कानूनगो, कालिका रंजन - हिस्ट्री ऑफ ज़ाट्स, पृ. 58, 1925 ई.
7. दस्तूर कौमवार, जिल्द 7, पृ. 390, 443 राज. राज्य अभिलेखागार बीकानेर (जयपुर संग्रह)
8. सिंह, नटवर - महाराजा, सूरजमल, पृ. 151, 1981 ई.
9. दीक्षित, गोकुलचंद - ब्रजेन्द्र वंश भास्कर, पृ. 43, 1926 ई.
10. जर्नल ऑफ दी राजस्थान इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, सं. डॉ.मथुरालाल शर्मा, खंड 11, सं. 3 (जुलाई-सितंबर, 1973), पृ. 43
11. पोथी तीर्थ पुरोहिताई, पं.रूपराम कटारा (ह. प्रति) उ.ना.श.सं. भरतपुर
12. सरकार, जदुनाथ - मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, जिल्द 1, पृ. 196, 1963 ई.
13. दस्तूर कौमवार, जिल्द 1, पृ. 887, 927, जिल्द 7, पृ. 603
14. दस्तूर कौमवार, जिल्द 7, पृ. 570
ड्राफ्ट, खरीता और परवाना, जि. 6, लेख 1127
15. पोथी तीर्थ पुरोहिताई प्रपत्र 44
16. कृष्णाजीशामराव कृत भाऊसाहेब की बखर (1754-61 ई.) अनु. 145, पृ. 161, सं. काशिराज नारायण साने, पांचवां संस्क़रण, 1932 ई.

17. शर्मा, उपेन्द्रनाथ - ब्रजेन्द्र बहादुर महाराजा सूरजमल जाट, पृ. 487, 1986 ई.
18. रजिस्टर, सूची तथा जागीर देवस्थान विभाग।
19. फाइल मुकदमा मंदिर लश्करी, वैर (भरतपुर)
20. फाइल मुकदमा मंदिर श्री लक्ष्मण जी भरतपुर
21. दस्तूर कौमवार, जि. 1, पृ.887-927
22. राणावत, मनोहरसिंह; महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ.77-78
23. ब्रजेंद्र वंश. पृ. 178
24. शर्मा, उपेंद्रनाथ; जाटों का नवीन इतिहास, पृ. 338, 1977 ई.
25. गंगा मंदिर एवं जामा मस्जिद में अंकित शिलालेख के अनुसार।
26. चिट्ठी ह.लि.ग्रं. 2680, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर
27. शर्मा, उपेन्द्र नाथ; जाटों का नवीन इतिहास, पृ. 338, 1977 ई.
28. गंगा मंदिर में अंकित शिलालेख के अनुसार।
29. चिट्ठी ह.लि.ग्रं. 6808 राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर
30. चिट्ठी ह.लि.ग्रं. 8013 राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, भरतपुर
31. अर्जी, ह.लि.ग्रं. 6786, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान भरतपुर।
32. XXXV, सदावर्त, फाईल न. 57, पृ.-4, 13, वर्ष 1935-36 ई. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, भरतपुर
33. XXXV, सदावर्त, फाईल नं. 62, पृ. 1-2, 5,9, वर्ष 1935-36 ई. रा.रा.अ. भरतपुर
34. XLE, गौशाला, फाईल नं. 6, वर्ष 1935-36 ई. रा.रा.अ., भरतपुर

अलवर राज्य में नीमूचाना, कोलानी, घमूकड़, हरसाना एवं बहादरपुर तिजारा के ऐतिहासिक काण्ड

अनिल जोशी

मई 1892 से मई सन् 1937 तक अलवर के महाराजा जयसिंह के शासनकाल में कई मुख्य घटनाएँ घटीं। प्रथम घटना 14-5-1925 में ग्रीष्मकाल में घटी जो नीमूचाना काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुई। नीमूचाना में एक आन्दोलन हुआ जो कि बिजोलिया के किसान आन्दोलन के समकक्ष ही था। देशी रियासतों में इस प्रकार की यह प्रथम घटना थी। उस समय ब्रिटिश शासन और देशी रियासतों का दमन चक्र अपने चरम बिन्दु पर था। इस दौरान शासन प्रणाली में देहाती किसानों का भयंकर रूप से शोषण हो रहा था। शासन की दोहरी प्रणाली से देहाती किसानों का भयंकर रूप से शोषण किया जिससे लोगों में तबाही मच गई।

घटना का विवरण इस प्रकार है कि सन् 1901 में जबकि मि. एम.एफ.ओ. डायर ने अलवर जिले का बन्दोबस्त (1900-1901) किया तो उस बन्दोबस्त में राजपूत बिस्वेदारों की जमा में कुछ लिहाज रखा गया था और बहाना यह बनाया गया था कि राजपूत स्त्रियाँ पर्दे में रहने के कारण खेतों के काम में हाथ नहीं बंटाती लेकिन सन् 1920 में बन्दोबस्त कमिश्नर ने मि. ओ. डायर के समान किसी जाति विशेष का विचार न करते हुए भूमि कर के सम्बन्ध में उचित प्रबन्ध किया और सन् 1923-24 में पुनः पं. एन.एल. टिक्कू द्वारा रियासत के आर्थिक हालात को सुव्यवस्थित करने के विचार से लगान में वृद्धि करदी गई जिसमें राजपूतों को कोई रियायत नहीं दी गई। इस बात पर अलवर जिले की तहसील बानसूर के शेखावत क्षत्रिय एवं ग्राम नीमूचाना के किसान व बिस्वेदार जिनके पूर्वज कभी इधर के स्वतंत्र भू-स्वामी थे, खिलाफ हो गये और जातीय संगठन करके माधोसिंह व गोविन्दसिंह के नेतृत्व में माह अक्टूबर 1924 में जगह-जगह प्रदर्शन व आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया जैसा कि अलवर की न्यायिक पत्रावली संख्या 315-ज 123 आफ 1925 आर.एस.ए.डी.ओ. अलवर में अंकित किया है। एक मीटिंग अलवर में भी की गई। इस आन्दोलन में शेखावत ठाकुर अलवेन्द्र जयसिंह के चचेरे भाई बन्धुओं में से थे। आन्दोलन के मुखिया ठाकुर माधोसिंह, गोपालसिंह, गंगूसिंह शेखावत आदि ने अन्य लोगों को एकत्रित कर योजना बनाई तथा शेखावत जमीदारों ने गांव-गांव घूमकर कहा कि हम पूर्व में किये गये बन्दोबस्त के अनुसार ही जमा देने

के सम्बन्ध में बैठकें भी की जिसमें बानसूर, थानागाजी तथा जयपुर रियासत से लगते हुए ग्रामों के राजपूतों ने भी भाग लिया। इन लोगों के द्वारा अलवर महाराजा के खिलाफ दिल्ली भी शिकायत की गई तथा महाराजा के प्रति विद्रोह करने के लिए 400-500 सिपाहियों की एक फौज बनाई गई जो हथियारों से लैस थे। इस आन्दोलन में कुछ मुखिया ऐसे भी थे जो बिना शस्त्र उठाये अपनी मांग शान्ति पूर्वक महाराजा तक पहुँचाना चाहते थे। परन्तु जातीय भावों की जागृति से यह आन्दोलन यहाँ तक बढ़ा कि स्थानीय पुलिस और प्रान्तीय न्यायाधीश भी इस आन्दोलन को नहीं दबा सके। न तो यह आन्दोलनकर्ता बुलाने पर राजधानी में आये और न ही कमीशन के सामने उपस्थित ही हुये। स्वतंत्र भाव से अपनी संगठन शक्ति बढ़ाते रहे। जब स्थिति बिगड़ने लगी तो अलवर के प्राइम मिनिस्टर द्वारा दिनांक 6-5-1925 को एक आदेश पारित किया गया कि कोई भी ग्रामवासी बानसूर, नारायणपुर, थानागाजी, राजगढ़, मालाखेड़ा एवं बहरोड़ क्षेत्र में एक माह तक तलवार, भाला, बन्दूकें आदि लेकर नहीं घूमेगा जैसा कि अलवर के प्राइम मिनिस्टर ने पत्रावली संख्या-315-जे। 123 ऑफ 1925 के द्वारा न्यायिक मंत्री अलवर को पत्र जारी किया। पत्र का क्रमांक सी-70 पी दिनांक 6-5-1925 है।

इस आन्दोलन को दबाने के लिए महाराजा जयसिंह ने ठाकुरों से पत्राचार भी किया तथा समझाने का प्रयत्न भी किया गया। लेकिन इन लोगों पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा जब स्थिति गम्भीर हो गई तो महाराजा अलवर ने जांच हेतु श्री राम भदरा ओधा की अध्यक्षता में एक कमीशन गठित किया जिसमें पुलिस अधीक्षक अलवर व तहसीलदार बानसूर सदस्य नियुक्त किये गये। यह जाँच समिति दिनांक 7-5-1925 को नीमूचाना पहुँची। उस समय काफी संख्या में राजपूतों की बैठक हो रही थी। जाँच समिति ने उनकी बातें सुनीं लेकिन उनको कोई सुविधा देने के बजाय अलवर राज्य द्वारा आन्दोलन को बलपूर्वक दबाने का प्रयास किया गया। दूसरी ओर राजपूतों ने यह निर्णय लिया कि वे सब राज्य की सेना का मुकाबला करेंगे। उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि वे किसी भी न्यायालय, पुलिस थाना व तहसील में नहीं जावेंगे। इसके पश्चात् दिनांक 13-5-1925 को इस आन्दोलन को दबाने के लिये लेफ्टीनेन्ट रामसिंह और कप्तान गोरधन की देखरेख में जयपत्तन से फौज भेजी गई जो आधुनिक हथियारों से लैस थी। नीमूचाना गांव की मोर्चाबन्दी की गई। सभी कुओं पर कब्जा कर लिया गया। सभा भंग करने के लिये राज्य की सेना ने बल प्रयोग किया। जब प्रदर्शनकारियों ने इसका विरोध किया तो दिनांक 14-5-1925 को कमाण्डर छाजूसिंह के आदेशों से सेना द्वारा गोली चलाई गई। पूरे गाँव में आग लगा दी गई। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ जो करीब 40 मिनट तक चला। इस काण्ड में महाराजा जयसिंह द्वारा जिन

लोगों को आर्थिक सहायता दी गई उनकी सूची परिशिष्ट 'ब' में संलग्न हैं जो कि अभिलेखागार अलवर से प्राप्त की गई है।

नीमूचाना गांव में गोली चलने के कारण व आग लगने के कारण लगभग 144 मकान जल गये, 60 मवेशी मर गये, 50 लोगों की मृत्यु हो गई 100 से अधिक लोग घायल हो गये तथा हजारों रुपये की सम्पत्ति जलकर राख हो गई जैसाकि दिनांक 31-5-1925, 24-12-1925 व 14-6-1926 में प्रकाशित समाचारों से ज्ञात होता है जो कि राज्य अभिलेखागार बीकानेर में अलवर राज्य के बस्ते में आज भी मौजूद है। वह सूचना Adm. Report से प्राप्त की गई है। इसका इतिहास की पुस्तकों में उल्लेख नहीं है।

महात्मा गांधीजी ने भी इस काण्ड की कड़ी निन्दा की और कहाँ कि यह अत्याचार तो कर्नल ओ. डायर जिसे जलियाँवाला बाग में काण्ड कराया था से भी गंभीर काण्ड है। यह खबर उर्दू समाचार पत्र 'रियासत में छपी थी जो कि लखनऊ से प्रकाशित हुआ है कि इस काण्ड में 13 आदमियों को नीमूचाना में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया तथा दिनांक 3-6-1925 को जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट अलवर पण्डित हरबक्श को इन केसेज को सुनने के लिए विशिष्ट न्यायाधीश नियुक्त किया गया तथा एक सत्र न्यायाधीश की शक्तियाँ प्रदान की गईं जैसा कि पत्र संख्या 964 जे/ दिनांक 10-6-1925 जो कि अलवर के न्यायिक दस्तावेज पत्रावली संख्या 315-जे/23/1925 में मौजूद है। महाराजा अलवर ने जरनल छाजूसिंह की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसमें लाला रामचरणलाल सिविल न्यायाधीश व ठाकुर सुलतानसिंह नाहरपुर को नीमूचाना में हुये एक काण्ड की जाँच हेतु लगाया। नीमूचाना काण्ड की सुनवाई एक माह में कर दी गई जो 39 आदमी गिरफ्तार किये थे जिसमें 9 आदमियों को सबूत नहीं मिलने के कारण छोड़ दिया गया और 30 आदमियों को 8-7-1925 को सजा दे दी गई। 1 अगस्त 1925 को 13 आदमियों को महाराजा के आदेशानुसार छोड़ दिया गया। उन्होंने लिखित में माफी मांगी थी जिनकी सूची अभिलेखागार के अभिलेखों में शामिल है। इस काण्ड को काफी समय तक छुपाकर रखा गया किन्तु जावली के जागीरदार दुर्जनसिंह जो कि महाराजा से असन्तुष्ट थे ने घटना की जानकारी सारे स्थानों पर पहुँचा दी तब महाराजा द्वारा एकतरफा जांच करवा कर लीपापोती कर दी गई। तत्पश्चात् 18-11-1925 को अलवर महाराजा जयसिंहजी स्वयं नीमूचाना गये तथा पुरानी दर से ही लगान वसूल करने के निर्देश दिये व किसानों की मुख्य मांगें स्वीकार कर ली गईं। इस काण्ड में जो लोग मुखिया थे उनमें से माधोसिंह, अमरसिंह व गंगूसिंह के बयान निम्नप्रकार है-

माधोसिंह का बयान

मैं यह बात और लिखता हूं कि जो पण्डित अलवर में माल के डिप्टी थे और उनके पास एक तहसीलदार रहा करता था। उनके पास गोविन्दसिंह, शिवदानसिंह, सुगनसिंह सरदार थे। तुम, लोगों को तार दो, इसलिए हमने तार दिया कि हमारे ऊपर जुल्म हुआ है।

गंगूसिंह का बयान

मैं गंगूसिंह पुत्र मोतीसिंह शेखावत ठाकुर ठिकाना अजयपुरा यह बयान लिखित में देता हूँ कि सबने पहिले राजपूतों से सलाह मशवरा किया कि कोई हाकिम बुलावे तो मत जावो, जमा मत दो, कानून राज का बदल जावेगा। जो चन्दा नहीं देते उसे जात बाहर कर देते थे। हमने 500-600 ठाकुरों की फौज तैयार की।

अमरसिंह का बयान

मैं कोक छावनी में पलटन नम्बर 2/6 में नौकर था। दिनांक 20-4-1925 को साढ़े तीन माह की छुट्टी पर मैं अपने घर आया। मेरे आने से पहिले ठाकुरों ने कई जगह कमेटी की और सभी ने यह सोच लिया कि बन्दोबस्त के अनुसार जमा नहीं देनी है। गाँव खेड़ा में करीब 200 ठाकुर जमा थे। सबके पास हथियार थे। किसी के पास लकड़ी, किसी के पास तलवार, किसी के पास बन्दूक। नीमूचाना में हमारे 800 आदमी होंगे। गिने तो नहीं। राज की फौज की खबर तो पहिले ही थी। हमें राज के अफसरों ने समझाया कि तुम अपने गाँव चले जाओ, लेकिन हम नहीं मानें। अब फौज इर्द-गिर्द हो गई तो हम ठाकुर लोग भी आये तथा हमने डराने के लिए पहिले फायर किया। मेरे पास से कारतूस छीन लिये गये। राज की फौज के लोग जब भागने लगे तो मैंने डर के मारे घाघरा लूंगड़ी पहिन लिये तथा किसी तरह जान बचाई। हमने यह सब इसलिए किया कि राजा के माल का कानून बदल जावे। नीमूचाना काण्ड में कुछ लोगों को सजायें दी गईं जिनकी सूची परिशिष्ट 'स' पर तथा जिन लोगों को आर्थिक सहायता महाराजा द्वारा दी गई वह परिशिष्ट 'ब' पर है।

2. उपरोक्त घटना के सात वर्ष पश्चात् 14 नवम्बर सन् 1932 में दूसरी घटना कृष्णगढ़ तहसील ग्राम धमूकड़ में घटी जो मेव आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुई तथा मेवाती बात साहित्य में धमूकड़ की लड़ाई के नाम से जानी जाती है। यह घटना पूर्वी क्षेत्र में घटित हुई थी। इस घटना में मेवों ने अपनी कई मांगे महाराजा के समक्ष पेश कीं और इस बात पर जोर दिया कि भूमिकर में कमी की जावे, खेती में हानि पहुँचाने वाले जंगली जानवरों को मारने की इजाजत दी जावे, कस्टम ड्यूटी हटा दी जावे। महाराजा इन बातों पर विचार कर ही रहे थे कि मेवों ने प्रान्तीय नाजीम को अपने

साथियों सहित जो जमा वसूली के लिए गये थे उसे मारा पीटा और पूरे क्षेत्र में अराजकता फैला दी। इस घटना का विवरण पत्रावली संख्या 743-पी/सीक्रेट/1933 में मौजूद है। यह अराजकता नीमूचाना काण्ड से कहीं बढ़कर हो गई। सब मेवों ने मिलकर राज्य का कर देना बन्द कर दिया। राज्य की 9 तहसीलों में से 4 तहसीलें तिजारा, किसनगढ़, रामगढ़ एवं लक्ष्मणगढ़ में सामूहिक उपद्रव उत्पन्न कर दिया तथा लूटपाट करने लगे। ईस्वी सन् 1934 पहली जनवरी को तिजारा लूट लिया गया। हिन्दुओं को मारा तथा मन्दिरों को तोड़ दिया। महाराजा ने बड़ी शान्ति से काम लिया और इन झगड़ों को शान्त करने का प्रयत्न करते रहे। इसी अन्तराल में महाराजा द्वारा राजपूताने के साहिब ऐजेन्ट गवर्नर जनरल को उस तरह की गतिविधियों के निरीक्षण करने के लिए अलवर आमंत्रित किया। साथ ही मिलट्री एडवाईजर भी अलवर आये। इन्हीं दिनों (गोविन्दगढ़ की बात) गोविन्दगढ़ में जब मेवों ने सरकारी सैनिकों को घेर लिया तब गोली काण्ड हुआ और अन्त में भारत सरकार की सेनाएँ मेव इलाके में आ पड़ी। दिनांक 1-2-1933 को मिस्टर इबटसन सहिब जो प्रथम राज्य के रेवेन्यू मिनिस्टर पद पर आये थे को रामगढ़, किशनगढ़, तिजारा तथा लक्ष्मणगढ़ क्षेत्रों के लिए प्रबन्धकर्ता नियत हुए और मार्च 1933 के अन्त में मिस्टर एफ.वी. वायली साहिब प्राईम मिनिस्टर होकर आये। उन्होंने महाराजा की सम्पति से प्रजा की बहुत सी माँगे पूरी कीं। ऐसी घटना होने के कई कारण कहे जाते हैं। पर इनका उत्तरदायित्व केवल समय की गति पर है। तिजारा की दूसरी घटना 'ताजिया गर्दी' के नाम से सन् 1934 में तिजारा कस्बे में घटित हुई (देखिये परिशिष्ट 'अ')

3. सन् 1925 में "अन्जूमन-ए-खादीउल इस्लाम" नामक संस्था द्वारा उकसाये जाने पर तिजारा में तथा सन् 1929 में गांव हरसाना (तहसील लक्ष्मणगढ़) रियासत अलवर में ताजिये निकालने के संबंध में हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव हो गये। इसे हरसाना की बात के नाम से जाना जाता है जिसमें रियासत की फौज भेजनी पड़ी। इस युद्ध में बूटोली का बास, चिमरावली जमालपुर आदि के मेव एकत्रित हुए थे। मेवों की मुख्य माँगें थी भूमिकर में कमी की जावे, खेतों में हानि पहुंचाने वाले सूअरों, हरिणों आदि को मारने की इजाजत दी जावे, जकात हटाई जावें, नाबालिगों के विवाह के नियम हटावें। इन मांगों पर विचार हो रहा था कि मई 1932 में बम्बई में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो गये। इसका प्रभाव अलवर पर भी पड़ा। जब 29-5-1932 को बहादरपुर में हजरत मुबारक अली की चादर चढ़ाने के लिए करीब 40,000 मेव एकत्रित हुए तो वहाँ पर हिन्दू मुस्लिम झगड़े हो गये जिसकी खबर कुछ मुस्लिम पत्रों में छपी। इसी के बाद 22-7-1932 को शुक्रवार की नवाज के पश्चात् अलवर में मुसलमानों ने बिना सरकार की अनुमति लिए चादर का जुलूस निकाला तब भी नगर में दंगा हो गया। स्थिति

गंभीर हो जाने पर तत्कालीन कार्यवाहक प्रधानमंत्री धाभाई गणेशीलाल को सेना बुलाकर गोली चलवानी पड़ी। मेवाती आन्दोलनात्मक घटनाओं के सम्बन्ध में मो. शकूर अहमद द्वारा लिखित तवारीख-ए-मेवात में भी वर्णन मिलता है।

उपरोक्त सभी घटनाओं के संबंध में विस्तार से किसी भी इतिहास की पुस्तक में वर्णन नहीं मिलता है न ही वीर विनोद में मिलता है। केवल एक घटना नीमूचाना के बारे में थोड़ा बहुत अवश्य लिखा गया है लेकिन अन्य सभी घटनाएँ जो काफी महत्वपूर्ण हैं और जिनका पूरा विवरण अलवर राज्य का बस्ता जो कि बीकानेर अभिलेखागार में अभी भी मौजूद है, में विस्तार से वर्णन है तथा कुछ सी.आई.डी. की रिपोर्ट इन घटनाओं के संबंध में अभिलेखागार, अलवर में भी मौजूद है। यह सभी घटनाएँ अलवर राज्य की महत्वपूर्ण घटनाएँ है जिनका इतिहास में वर्णन किया जाना अत्यन्त ही आवश्यक है ताकि शोधकर्त्ताओं को इससे लाभ प्राप्त हो सके।

परिशिष्ट 'अ'

अलवर राज्य में महाराजा जयसिंहजी के शासनकाल में कस्बा तिजारा में ताजिये मुस्लिम सम्प्रदाय द्वारा निकाले जाते थे। ताजिये दफन के लिये अलग से करबला नाम से एक स्थान भी तिजारा में नियत था। सम्वत् 1989 में ताजिये निकलते समय एक दुखद घटना इस कस्बे में घटित हुई। इसे ताजिया गर्दी के नाम से जाना जाता है। इस सम्वत् में मुस्लमानों द्वारा ताजिये ठन्डे करने के लिये जब करबला के मैदान में ले जाये जा रहे थे, उस राह में एक पीपल का वृक्ष था जो नीचे की ओर झुका हुआ था। उक्त वृक्ष की डाली ताजिये से टकराने के कारण कुछ मुस्लिम सम्प्रदाय के व्यक्ति उस वृक्ष की टहनी को काटने के लिये पीपल पर चढ़ गये। जिसे काटने से रोकने के लिए हिन्दुओं द्वारा एतराज किया गया। जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम विवाद उत्पन्न हो गया। जिसमें दोनों तरफ के काफी लोग घायल हो गये। हिन्दू परिवार इस झगड़े के आंतक से तिजारा छोड़कर बावल (हरियाणा) चले गये। शान्ति होने के पश्चात् वापिस तिजारा आ गये। उस समय से अलवर राज्य में मि. वायली अलवर के प्रधानमंत्री थे। इस दंगे के संबंध में राज्य दरबार में प्रकरण की सुनवाई भी की गई थी।

इस घटना के समय में तिजारा की आबादी करीब 8000 थी जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, खानजादें, भटियारे, कसाई, जुलाहे आदि जाति के लोग निवास करते थे।

परिशिष्ट 'ब'

निमूचणा (अलवर) काण्ड में हुई क्षति का ब्यौरा जिसमें महिलाओं को भी सम्पति से हाथ धोना पड़ा।

S. N.	Names of persons	Warrior	Estimate of amount			Amt. proposed to be given			No. of persons burnt or wounded
			Rs.	An.	P.	Rs.	An.	P.	
1.	Gangla S/o Ruro Gordsmith	2	21	12	–	13	–	–	–
2.	Mst. Hardei W/o Asta	3	27	4	–	16	–	–	1
3.	Mangla S/o Jagu Ram Mahajan	2	11	–	–	6	–	–	–
4.	Bedhu S/o Nengu Brabman	2	18	8	–	11	–	–	2
5.	Bhagwan Sahni S/o Sedhmal Brahman	1	13	–	–	8	–	–	–
6.	Ram Rakh S/o Sheoji Mahajan	3	23	–	–	13	–	–	–
7.	Mst. Bhuri W/o Sheoji Darogha	1	13	–	–	8	–	–	–
8.	Rmabux Singh S/o Mohkamsingh Thakur	3	27	4	–	16	–	–	–
9.	Sujan Singh S/o Jivan Singh Thakur	3	30	8	–	18	–	–	–
10.	Bhur Singh S/o Jawansingh Thakur	2	21	12	–	13	–	–	–
11.	Balla S/o Durjan Darogha	1	13	–	–	8	–	–	–

12.	Bairisal Singh S/o Mangal Singh Thakur	4	36	–	–	21	–	–	–
13.	Kishan Das Chela of Prem Das Swami	1	5	8	–	3	–	–	–
14.	Dula S/o Jadu Ahir	1	13	–	–	8	–	–	1
15.	Rishna S/o Jadu Ahir	3	30	8	–	18	–	–	–
16.	Rura S/o Jadu Ahir	4	40	4	–	24	–	–	–
17.	Banda S/o Dhanna Ahir	1	13	–	–	8	–	–	–
18.	Mst. Asti W/o Dayaram Kumar	3	30	8	–	18	–	–	1
19.	Mst. Anchi W/o Tulla Kumar	3	30	8	–	18	–	–	1
20.	Mamraj S/o Sheoji Kumhar	3	27	4	–	16	–	–	2
21.	Gyarasa S/o Nanga Kumhar	4	32	12	–	19	–	–	2
22.	Lada S/o Ajmeri Saqqa	1	13	–	–	8	–	–	1
23.	Nablu S/o Ajmeri Saqqa	1	13	–	–	8	–	–	1
24.	Kanha S/o Ajmeri Saqqa	2	18	8	–	11	–	–	1
25.	Malta S/o Ajmeri Saqqa	1	13	–	–	8	–	–	–
26.	Ram Narain S/o Lalu chamar	3	24	–	–	14	–	–	2

27.	Rura S/o Lalu Chamar	2	21	12	–	13	–	–	1
28.	Ramdhan S/o Mangla Chamar	2	26	–	–	16	–	–	2
29.	Sevja S/o Ram Sukh Chamar	2	21	12	–	13	–	–	1
30.	Chhaja S/o Jhunta Chamar	4	43	8	–	26	–	–	3
31.	Mst. Ani W/o Manga Chamar	1	13	–	–	8	–	–	1
32.	Moola S/o Natha Chamar.	2	21	12	–	13	–	–	2
33.	Ram Sahai S/o Hira Chamar	2	21	12	–	13	–	–	2
34.	Ghiaa S/o Bishan Chamar	3	30	8	–	18	–	–	2
35.	Haria S/o Ramnath Chamar	1	13	–	–	8	–	–	–
36.	Jhunta S/o Mula Chamar	2	21	12	–	13	–	–	2
37.	Mula S/o Jhunta Chamar	2	21	12	–	13	–	–	–
38.	Kishna S/o Dula Chamar	2	21	12	–	13	–	–	–
39.	Ganesha S/o Dula Chamar	2	21	12	–	13	–	–	–
40.	Sagra S/o Dhanna Chamar	3	27	4	–	16	–	–	1

41.	Mangya S/o Nanga Chamar	2	21	12	—	13	—	—	1
42.	Mangla S/o Sheoji Chamar	2	21	12	—	13	—	—	1
43.	Birdha S/o Lalla Chamar	4	32	12	—	19	—	—	—
44.	Bhura S/o Bhanro Chamar	2	21	12	—	13	—	—	—
45.	Bhiwra S/o Bhainro Chamar	3	27	4	—	16	—	—	1
46.	Jalma S/o Shainro Chamar	2	21	12	—	13	—	—	1
47.	Gangla S/o Bhainro Chamar	3	27	4	—	16	—	—	1
48.	Chhota S/o Bhainro Chamar	3	27	4	—	16	—	—	1
49.	Khushal Das Swami	1	13	—	—	8	—	—	1
50.	Mangla S/o Sedhu Chamar	3	27	4	—	16	—	—	2
51.	Hura S/o Sedhu Chamar	3	30	8	—	18	—	—	1
52.	Kishna S/o Sedhu Chamar	3	27	4	—	16	—	—	1
53.	Mangla S/o Natha Chamar	2	21	12	—	13	—	—	—
54.	Ghngla S/o Musa Chamar	3	30	8	—	18	—	—	1
55.	Lada S/o Mohan Chamar	3	27	4	—	16	—	—	—

56.	Mst. Singari W/o Mangla Chamar	2	21	12	–	13	–	–	–
57.	Kaliya S/o Kahna Chamar	3	27	4	–	16	–	–	1
58.	Mamla S/o Mangla Chamar	.2	21	12	–	13	–	–	–
59.	Rura S/o Khima Balai	3	27	4	–	16	–	–	5

List of persons who have been reffered in the disturbance at Mimuchana and require help.

No.	Name	Amount proposed/to be given
1.	Gangla son of Rura Goldamith	Rs. 10/-
2.	Widow of Basta Brahman	Rs. 7/-
3.	Mangla son of Jagu Ram Mahajan	Rs. 7/-
4.	Saidu son of Sanga Brahman	Rs. 5/-
5.	Bhagwan Sahai Brahman	Rs. 5/-
6.	Ram Rikh son of Sheoji Mahajan	Rs. 5/-
7.	Bhoopa Widow of Sheoji Darogha	Rs. 7/-
8.	Ram Bux Singh son of Mohkam Singh	Rs. 5/-
9.	Siman Singh son of Jawan Singh Thakur	Rs. 5/-
10.	Bhur Singh son of Jawan Singh Thakur	Rs. 5/-
11.	Bhalla Darogha	Rs. 5/-
12.	Beri Sal Singh son of Mangal Singh Thakur	Rs. 5/-
13.	Kishan Dass Sawami	Rs. 6/-

14.	Dalla son of Jado Ahir	Rs. 7/-
15.	Kishna son of Jado Ahir	Rs. 7/-
16.	Rura son of Jado Ahir	Rs. 7/-
17.	Nanda son of Dhana Ahir	Rs. 5/-
18.	Asli Widow Daiyaram Kumar	Rs. 7/-
19.	Anohi widow of Naula Kumar	Rs. 7/-
20.	Mamraj son of Sheoji	Rs. 5/-
21.	Ghairan son of Nanga Kumar	Rs. 6/-
22.	Ladha son of Ajmeri Sakka	Rs. 10/-
23.	Nabhu son of Ajmeri Sakka	Rs. 10/-
24.	Kana son of Ajmeri Sakka	Rs. 10/-
25.	Mehta son of Ajmeri Sakka	Rs. 10/-
26.	Ram Narain son of Lalla Chamar	Rs. 8/-
27.	Rura son of Lalla Chamar	Rs. 8/-
28.	Ram Dhan son of Mangla Chamar	Rs. 8/-
29.	Sevla son of Ram Sukh Chamar	Rs. 8/-
30.	Chhaja son of Sukha Chamar	Rs. 8/-
31.	Ani widow of Manga Chamar	Rs. 8/-
32.	Malla son of Nathu Chamar	Rs. 8/-
33.	Ram Sahai son of Hira Chamar	Rs. 8/-
34.	Chisa son of Bishna Chamar	Rs. 8/-
35.	Harla son of Ram Nath Chamar	Rs. 8/-
36.	Jhutha son of Dalla Chamar	Rs. 8/-
37.	Mula son of Jhutha Chamar	Rs. 8/-

38.	Kishna son of Dalla Chamar	Rs. 8/-
39.	Ganesh son of Dala Chamar	Rs. 8/-
40.	Sagra son of Dhana Chamar	Rs. 8/-
41.	Manga son of Sanga Chamar	Rs. 8/-
42.	Mangla son of Saidu Chamar	Rs. 8/-
43.	Birda son of Balla Chamar	Rs. 8/-
44.	Bhura son of Bhairon Chamar	Rs. 8/-
45.	Bhiwra son of Bhairon Chamar	Rs. 8/-
46.	Zalma son of Bhairon Chamar	Rs. 8/-
47.	Gangla son of Bhairon Chamar	Rs. 8/-
48.	Chhota son. of Bhairon Chamar	Rs. 8/-
49.	Khushal Dass	Rs. 7/-
50.	Mangla son of Saidu Chammar	Rs. 9/-
51.	Rura son of Saidu Chamar	Rs. 8/-
52.	Kishna son of Saidu Chamar	Rs. 8/-
53.	Mangla son of Natha Chamar	Rs. 8/-
54.	Ghagla son of Musa Chamar	Rs. 8/-
55.	Ladha son of Mohan Chamar	Rs. 8/-
56.	Widow of Begla Chamar	Rs. 9/-
57.	Kalla son of Sahna Chamar	Rs. 9/-
58.	Mamla son of Mangla Chamar	Rs. 8/-
59.	Rura son of Pama Balahi	Rs. 9/-
60.	Widow of Gohra Balahi	Rs. 8/-
61.	Madna son of Tulja Balahi	Rs. 9/-

62.	Chuha sweeper	Rs. 9/-
63.	Ram Niwas Mahajan	Rs. 8/-
	Total	Rs. 477/-

List of persons who have suffered in the recent disturbance Mimuchana and have already mace given help.

No.	Name	Amount given
1.	Wife of Saggar Singh Thakur	Rs. 12/-
2.	Sister of Nihal Singh Thakur	Rs. 12/-
3.	Wife of Bhim Singh Thakur	Rs. 12/-
4.	Wife of Dhari Singh Thakur	Rs. 12/-
5.	Widow of Bheeja Brahman	Rs. 5/-
6.	Widow of Sarupa Brahman	Rs. 5/-
7.	Sona son of Parta Brahman	Rs. 5/-
8.	Sheoji Nath Jogi	Rs. 5/-
9.	Sona Barber	Rs. 5/-
10.	Bhore Lal Brahman	Rs. 5/-
11.	Wife of Nihal Singh Thakur	Rs. 5/-
12.	Rura son of Nanga Brahman	Rs. 5/-
13.	Chander son of Ghoda Brahman	Rs. 5/-
14.	Phul Chand of Moda Brahman	Rs. 5/-
15.	Bharta Brahman	Rs. 5/-
16.	Sarupa son of Pam Dayal	Rs. 5/-
17.	Chhota Barber	Rs. 5/-

18.	Mamla Chamar	Rs. 5/-
19.	Badri Brahman	Rs. 5/-
20.	Bhura Brahman	Rs. 5/-
	Total	Rs. 128/-

परिशिष्ट 'स'

नीमूचाना काण्ड में न्यायिक मंत्री द्वारा 13 बन्दियों के बयान लिये गये जिनमें से 4 बन्दी जो कि रिंग लीडर थे जिनमें माधोसिंह एवं गोविन्दसिंह इन्हें 20 वर्ष की सजा दी गई तथा गंगूसिंह एवं अमरसिंह दोनों को 10 साल का कठोर कारावास दिया गया। बयानों से ऐसा ज्ञात होता है कि इन लोगों ने सर्वप्रथम ग्राम छत्रभुज, जयपुर की सीमा के अन्दर तथा ग्राम खेड़ा एवं नीमूचाना में निम्न लोगों के साथ सलाह मशवरा किया।

1. माधोसिंह निवासी बामनवास
2. गोविन्दसिंह निवासी कोथल
3. भंवरसिह निवासी खोहरी
4. श्री श्योदान सिंह निवासी खोहरी
5. श्री थान्दूसिंह निवासी छत्तरपुरा
6. सरदारसिंह निवासी बोतारी
7. श्री कल्याणसिंह निवासी नयाबास
8. श्री श्योनाथसिंह निवासी खेरा
9. श्री नारायणसिंह निवासी तसींग
10. श्री मंगलसिंह निवासी तसींग
11. श्री गंगूसिंह निवासी छत्तरपुरा
12. श्री लखदीरसिंह निवासी नीमूचाना

उपरोक्त दस्तावेज राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में फाईल संख्या 3 एस.जे./23 नीमूचाना काण्ड में मौजूद है।

मोहल्ला महताबसिंह का नोहरा
नई बस्ती, अलवर (राज.)

लोक इतिहास और वाचिक गद्य की भूमिका

डॉ. जीवन सिंह

भाषा की मूल प्रकृति वाचिक एवं सांस्कृतिक के साथ-साथ गद्यात्मक है। मनुष्य का सम्पूर्ण वैयक्तिक एवं सामाजिक व्यवहार गद्य की भाषा में व्यक्त होता है। यह अलग बात है कि जीवन की ओजस्विता, तेजस्विता व माधुर्य का प्रक्षेपण काव्य की भाषा में रूढ़ हो गया है। जब कि हम देखे तो हमारे लोकजीवन में जितनी प्राचीन परम्परा पद्यात्मक या काव्यात्मक साहित्य की प्राप्त होती है, गद्यात्मक लोकसाहित्य की परम्पराएं उससे भी अधिक प्राचीन हैं। अभिजात एवं लिखित परम्परा के साहित्य में गद्य की परम्पराएं, प्रायः पद्य साहित्य के बाद निर्मित हुई हैं। इसका एक बडा कारण गद्य का श्रुति-परम्परा के रूप में संरक्षित एवं सुरक्षित नहीं रह पाना रहा होगा। यद्यपि कहानी या बात साहित्य में जो कथा-क्रम और उसका प्रवाह रहता है, वह स्मृति और श्रुति परम्परा के बहुत अनुकूल रहा है, तथापि कुछ मान्यताएं और धारणाएं इस तरह रूढ हो गई हैं कि साहित्य के नाम पर काव्य की भूमिका ही केन्द्रीय रहती चली आई है। इसका कारण विधागत सामर्थ्य और रूप-परिवर्तन की कठिनाइयाँ भी अवश्य रही हैं। कविता, या गीत की तुलना में कहानी में, रूप परिवर्तन की संभावना अधिक रहती है। वहरहाल, किसी समाज, समुदाय, समूह या अंचल के इतिहास-निर्माण में, जो भूमिका काव्य की रही है, गद्य साहित्य की उससे बढ़कर नहीं, तो कम भी नहीं है।

मैने यहाँ लोक इतिहास जैसी शब्दावली का उपयोग जानबूझकर किया है। इसका एक पक्ष जहाँ एक ओर जमीन के स्तर पर क्रियाशील मनुष्य की व्यवहार एवं सम्बंध-प्रणाली का लेखा-जोखा करना है, वहीं दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय घटना-परिघटनाओं के इतिहास-क्रम में आंचलिक इतिहास की प्रतिष्ठा करना भी। कहना न होगा कि अभी तक हमारी इतिहासदृष्टि का जो कोण, प्रायः बनता है, वह ऊपर से नीचे की ओर ही रहा है, जब कि किसी समाज या देश के इतिहासप्रासाद का निर्माण लोकजीवन के स्तर पर घटित एवं सृजित उन बुनियादी क्रियात्मक चेष्टाओं में परिलक्षित होता है, जो अपनी वैभवशून्य, आडम्बर रहित सादगी की वजह से तिरस्कृत एवं उपेक्षणीय बना दी जाती है। दरअसल, अभी तक मनुष्य और मनुष्य का जो चलता फिरता इतिहास है, उसमें इतिहासतरु पर पका हुआ फल कम है, वह पाल या कृत्रिम साधनों से पकाकर तैयार किया गया ज्यादा है। इतिहास की यह विडम्बना और सचाई दोनों हैं कि उसके फल में क्रियाशील मनुष्य की मिठास की वजाय प्रशासकीय कडवाहट और कसैला

आस्वाद अधिक हैं। इतिहास प्राय: ऐसा सत्य बोलता है, जो सत्य होता है तो प्रिय नहीं होता और प्रिय होता है तो सत्य नहीं होता, जब कि हम दोनों बातें एक साथ चाहते हैं 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। यह बहु प्रचलित कथन अभी तक के इतिहाससत्य के प्रतिकूल पड़ता है।

लोकइतिहास का सत्य भी यदि हमारे पूर्व संस्कारित मन के प्रतिकूल पड़े तो आश्चर्य की बात नहीं होगी। दरअसल, लोक इतिहास उस राजमार्ग जैसा नहीं है, जिस पर सरपट दौड़ा जा सकता है। उसके ऊपर दौड़ते हुए झटके नहीं लगते। लोक इतिहास में अनेक ऊँची-नीची दुर्गम घाटियाँ हैं, बीहड़-जंगह हैं, जिन पर चलने से हमारे उस इतिहास-संस्कार को कठिनाई हो सकती है, जो आसान मार्ग पर चलने का अभ्यस्त हो गया है। जैसे मैं यहाँ पर मेवाती की एक बात 'मेव खाँ-घुरचढ़ी की बात' का उदाहरण दूँ, जो एक ओर अलवर रियासत के इतिहास का अवरोध है तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहास का, जब कि तीसरी ओर उसका अन्य पक्ष है मनुष्य की संस्कृति का। 'बात' यद्यपि इतिहास-निर्माण का तथ्यपरक स्रोत नहीं हैं, तथापि कुछ बातें ऐसी भी हैं, जो इतिहास के पृष्ठों को अपने भीतर संजोए हुए हैं। 'इतिहास के नये सीमान्त' पर विचार करते हुए प्रसिद्ध नृतत्वविद् डॉ. श्यामाचरण दुबे ने लिखा हैं- 'सामाजिक इतिहास में क्रमश: नयी प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। पहले, हमारा ध्यान ऐतिहासिक परिदृश्य के शिखरों और ऊँची पर्वतमालाओं से हटकर सामान्य जीवन के विशाल मैदानों को स्पर्श करने लगा है। समाज के उपेक्षित और उत्पीडित वर्ग भी इतिहास की विषयवस्तु बने हैं। दूसरे यह इतिहास सिर्फ वर्णन नहीं करता है, उसमें तीव्र विश्लेषण की प्रवृत्ति भी लक्षित होने लगी है। सामाजिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण के लिये इतिहास का संवाद अन्य सामाजिक विज्ञानों से होने लगा है।.....तीसरे समग्र इतिहास की मांग बढ़ रही है, जिसमें लोक चेतना और मनोवृत्तियों के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण माना गया हैं।' (इतिहास-बोध समय और संस्कृति, पृ. 50 प्रथम संस्क.) इस दृष्टि से लोक इतिहास की रचना में बिखरे हुए मौखिक बात-साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी, यह कहना गलत न होगा।

मैं यहाँ जिस मेवाती बात का उल्लेख कर रहा हूँ, उसका सम्बंध अलवर रियासत के उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के इतिहास से हैं। इस बात का नाम है- मेवखाँ घुरचढ़ी की बात। यद्यपि अलवर रियासत के इतिहासों में इस तरह की बातों को रचने वाली घटनाओं का कोई उल्लेख नहीं है तथापि तत्कालीन जन भावनाओं और सामाजिक सम्बंधों को जानने की दृष्टि से इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। इसका कारण हमारी वह इतिहास दृष्टि रही हैं, जो सदैव शिखरों को ही देखती रही है, उसकी बुनियाद में क्या घटित हुआ है, यह उसे मालूम नहीं। इस तरह हम अब तक इतिहास के नाम पर एक

आधा-अधूरा और खंड-खंड इतिहास पढ़ते रहे हैं। यही कारण है कि आज इतिहास भी नहीं करवटें ले रहा है। आज उसे आर्थिक-सामाजिक क्रियाओं के अतिरिक्त भौतिकी, जैविकी, रासायनिकी, भूगर्भशास्त्र आदि की गंभीर जानकारी की आवश्यकता भी इतिहास-लेखन के लिए महसूस होने लगी है। अभी तक इतिहासकार ने बस इतना ही समझा था कि इतिहास का सम्बंध केवल राजनीतिक-तंत्र से या अधिक से अधिक राजनीति-तंत्र के चारों ओर बुने हुए सामाजिक आर्थिक ताने-बाने से है। इसी लिए आज तक जो इतिहास लिखा गया है उसके केन्द्र में केवल शासक हैं, शासित उसकी परिधि पर है। इतिहास की नयी दृष्टि की विशेषता है कि वह अपने कोण को बदल रही है। यह सत्य है कि काल को रचने, मथने और संक्रमित करने वाली घटनाओं को जन्म देने और मोड देने में शासक व्यक्ति की बहुत बड़ी भूमिका रहती आई है लेकिन यह भी उतना ही बडा सच है कि आम जनता की सहमति, समर्थन, विरोध और प्रतिरोध ने भी उन घटनाओं को अपनी सक्रियता से प्रभावित किया है। आम जनता की बातों को, उनके प्रतिरोध, उनके विरोध और विद्रोह तथा अस्वीकार को इतिहास के पन्नों में तो दर्ज नहीं किया गया किन्तु उसी आम जनता के बीच रहकर सुख-दुख के साथी साहित्यकार ने उनकी अपनी बातों में पिरोया है और अपने समय के समाज की भावनाओं, विचारों का एक ऐसा सांस्कृतिक इतिहास लिखा है, जिसका न कोई शिलालेख है, न अभिलेख और न ही कोई ताम्रपत्र है। दरअसल इस तरह के इतिहास के अभिलेख लोक हृदय पर अंकित होते हैं तथा जातीय स्मृति के रूप में अदलते-बदलते हुए आगे बढ़ते रहते हैं।

जातीय स्मृति के रूप में रचे गये इस तरह के सांस्कृतिक इतिहास की एक परम्परा मेवाती के लोकसाहित्य में आज भी सुरक्षित है। यद्यपि इनमें जितना इतिहास का सत्य है, उतना इतिहास का तथ्य नहीं। इतिहास सत्य का यह नवनीत, इनको विभिन्न ज्ञानानुशासनों के सहयोग से मथने पर ही निकल सकता हैं। जैसा कि मैंने पूर्व में जिस मेवखाँ-घुरचढ़ी की बात का उल्लेख किया है, वह अलवर रियासत के पाचवें शासक महाराजा मंगलसिंह के काल की उन घटनाओं में से हैं, जिनका सम्बंध मेव-समुदाय से रहा है। इस बात से जहाँ एक ओर मेव समुदाय की सामूहिक प्रकृति का पता चलता है, वहीं दूसरी ओर मेव समुदाय की तत्कालीन धारणाओं एवं मान्यताओं का भी।

महाराजा मंगलसिंह का जन्म 30 अक्टूबर 1859 ई. को हुआ था और वह मात्र 15 वर्ष की अवयस्क अवस्था में 4 दिसम्बर 1874 ई. को सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसे शासन का पूर्णाधिकार 1878 ई. में प्राप्त हुआ तथा कुल 33 वर्ष की अल्पायु में

सन् 1892 में उसका निधन हो गया। अलवर राज्य का इतिहास लिखने वाले इतिहासकारों ने महाराजा मंगलसिंह को केन्द्र में रखकर जो इतिहास लिखा है, वह या तो मंगलसिंह के वैयक्तिक जीवन की अभिरूचियों, आदतों, स्वभाव, निर्णयों; आदि पर प्रकाश डालता है या ब्रिटिश शासकों से उसके सम्बंधों, समझौतों और आर्थिक सामाजिक प्रबंधों का उल्लेख करता है। इस समय जनता का भी अपना कोई अच्छा या बुरा पक्ष है, इसका पता इन इतिहासों से नहीं चलता। जब कि उस समय के 'बात साहित्य' से हम जनता के पक्ष के इतिहास की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से अलवर राज्य की स्थिति एक मिश्रित राज्य की रही है। इसमें एक ओर ढूंढाड़ी संस्कृति है तो दूसरी ओर राठी हरियाणवी। तीसरी दिशा में ब्रज है तो चौथी दिशा में मेवात। मेवात क्षेत्र में हमेशा से मेवा समुदाय का बाहुल्य रहा है, जो संस्कृतिक मान्यताओं तथा लोक व्यवहार मे हिन्दू जीवन पद्धति की भी अनेक बातों को मानता रहा है तथा इसके साथ ही ढीले-ढाले रूप में इस्लाम मतावलम्बी रहा है।[1] उत्पादन की दृष्टि से यह समुदाय पशु-पालक एवं खेती-बाड़ी करने वाला रहा है। आर्थिक दृष्टि से यह समुदाय सदैव पिछड़ेपन का शिकार रहा तथा थोड़े में अपना गुजर बसर कर संतोषभाव को प्रश्रय देता रहा, किन्तु अपने हठ, और आन-बान के लिए भी प्रसिद्ध रहा है। मेव समुदाय ने सभ्यता की दौड़ में कभी आगे निकलने की कोशिश नहीं की, लेकिन अपनी सामाजिक मान्यताओं तथा आत्मगौरव की बोधक परम्पराओं की रक्षा करने में इस समुदाय ने कभी कोई समझौता नहीं किया। मेव समुदाय के बारे में यह प्रसिद्ध है कि मेवात का, दिल्ली के समीप होने की स्थिति में मेवों ने कभी दिल्ली के शासकों को चैन की नींद नहीं सोने दिया। लोक गायक मीरासियों ने यह बात बना रखी हैं- डरपा मेवन सूं सदा खिलजी, मुगल, पठान।' यह तथ्य तो इतिहास के पन्नों में भी दर्ज है कि मेव समुदाय के लूटपाट और उपद्रवों से क्षुब्ध होकर गुलाम शासक बलवन ने लाखों मेवों को मौत के घाट उतरवा दिया था। दरअसल, राजसत्ता के सतत प्रतिरोध की अनेक घटनाओं से मेव समुदाय का इतिहास भरा पड़ा है।[2] अपने समाज और पाल के चौधरियों की बात इस समुदाय के लिए आज भी लोहे की लकीर है। यह समुदाय अपने पाल, गोत्र की मान्यताओं को जितना विश्वसनीय और प्रामाणिक मानकर उनका पालन करता रहा है, उतना राजसत्ता के उन कानूनों नियमों का नहीं, जो इनकी जिंदगी से न केवल बहुत दूर रहे हैं, बल्कि इनके जीवन व्यवहार को परिवर्तित एवं परिष्कृत करने में जिनका योगदान नहीं के बराबर रहा है।

अलवर राज्य के निर्माण 1775 ई. के बाद अलवर के दूसरे और तीसरे शासक

क्रमशः बख्तावरसिंह एवं विनयसिंह को भी मेवों द्वारा किये जाने वाले उपद्रवों का दमन करना पड़ा था। शिवदानसिंह, मंगलसिंह और जयसिंह के शासनकाल में भी यह सिलसिला बदस्तूर चलता रहा। 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय भी मेवों ने अंग्रेजों की रसद को लूट लिया था, जिसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजी फौज ने इनका दमन किया तथा कई मेवों को फाँसी पर चढ़ाया।

मेव-समुदाय में जहाँ सामूहिक प्रतिरोध की परम्पराएँ देखने को मिलती हैं, वहीं वैयक्तिक प्रतिरोध की मिसालें भी अनेक हैं। 'मेवखाँ-धुरचढ़ी की बात' दो भाइयों द्वारा राजसत्ता के प्रतिरोध और साहस की गाथा है, जिसे मीरासी आज भी जब मेवात में मेवसमुदाय के बीच गाते हैं, तो इसे पूरे उत्साह एवं शौर्य भाव के साथ सुना जाता है। यद्यपि, तत्कालीन राजसत्ता की दृष्टि में मेवखाँ-घुरचढ़ी के कारनामे कानून एवं समाज विरोधी हैं। यह उसी तरह है। जैसे शेखावटी के लोकनायक डूंगजी जवाहर जी, राजसत्ता की नजर में बारोठियें हैं, राजद्रोही हैं। मेवखाँ-घुरचढ़ी मेव समुदाय के लिए लोकनायक है, जब कि तत्कालीन महाराजा मंगलसिंह की राजसत्ता के कानून की नजर में लुटेरे, डाकू और बागी हैं। हम जानते हैं कि आम जनता के साहित्य के नायक ऐसे लोग कभी नहीं रहे हैं, जो कि क्रूर, अत्याचारी एवं मनुष्यता विरोधी रहे हो। लोक ने नायक उन्हीं को बनाया है, जो लोक की मनुष्यता के पक्ष में साहस के साथ, स्वयं से बड़ी शक्ति से लड़ने के लिए मैदान में जाकर खड़े हो गये हैं तथा जिन्होंने लोक के मानवीय भावों की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की बाजी लगा दी है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अलवर राज्य के किशनगढ़ परगने के एक गाँव चौंडावता में खुदाबक्श के घर जन्मे मेवखाँ और घुरचढ़ी नामक दो भाइयों द्वारा किये गये राजद्रोह की बात के प्रयोजन यद्यपि बहुत बड़े नहीं हैं तथापि इनका दूसरा मानवीय पक्ष इसको सामाजिक महत्ता प्रदान करता है। मीरासी इस बात का आरंभ इस तरह करते हैं-

'खुदाबकस की बीबी नै घुरचढ़ी के जनम के बाद वाके भागनकू जाणन की इच्छा सू पंडत बुलवायो और वासू कही कै तम झूँट कू दूर करकै सच्च-सच्च बताओ कै ई मेरौ बेटा कैसा बरण कौ है। पंडत नै बतलायों कै ई तैरौ घुरचढ़ी बौहत होनहार है। तेरा नाम कू दुनिया में रोसन करैगौ। पंडत नै.जाते-जाते वासूँ यों कही-

या कौ नाम घुरचढ़ी धर दियौ
का तू पूछा मोय।

ई सुत, जन्मो जीवणी
कदी तेरे हुयौ, न औजू होय ॥

'मेवखाँ-घुरचढ़ी की बात' का उक्त तथ्य इस बात का प्रमाण है कि इस्लाम मतावलम्बी मेव समाज की जीवन पद्धति में ऐसी अनेक बातें रही हैं, जिनका सम्बंध हिन्दू जीवन-पद्धति से रहा है। पंडित बुलवाकर बच्चे के जन्म के समय उसका भविष्य पूछना हिन्दू जीवन-पद्धति का अंग है। इसी तरह, मेवात के इलाके में झिरका फिरोजपुर कस्बे की पहाड़ियों में स्थित झिरका महादेव की लोकमान्यता दूर-दूर तक रही है। घुरचढ़ी मेवखाँ की बात से पता चलता है कि कभी यह मान्यता मेव समाज में भी थी। जब इन दोनों भाइयों को पकड़ने के लिये राज सैनिक, सरदार तथा मेव इनका पीछा करते हैं तो घुरचढ़ी, झिरका महादेव को इन शब्दों में याद करता है-

'बहौत चढ़ाया खौमचा, घणी भजी माला।

महादेव कित लू गया, मेरा झिर तीरथवाला॥

घुरचढ़ी, झिर का महादेव कू याद करतौ हुयौ कह रहयौ है कै हमणै तेरा पै बौहत पूआ-पापड़ी, खौमचा चढ़ाया हाँ और तेरी घणी माला फेरी हाँ। अब बखत आयौ है कै तू हमारी लज्जा राख। बस इतना करणा सूं ई घुरचढ़ी कौ हौसलौ उट गयौ और बानै बेरले में राड़ मांढ दी।'

इस सम्बंध में बात कथने वाले इस प्रकार कहते हैं-

'महादेव नै नूं कही, मैंने लीनौ है सोण।

गोली बहावो दल्ल में, तोकू रोकणहारौ कौन।

महादेव नै घुरचढ़ी कू सौण दियौ कै तू तौ दलन कै बीच जाकै गोली चला, तोकू रोकणहारौ कोई दूसरौ नांय॥'

यदि इस बात को तथ्य के रूप में मानें तो इतिहास के इस सत्य का बोध होता हैं कि मनुष्य की यात्रा, अनेक मनुष्यभावों, विचारों, क्रियाओं एवं प्रवृत्तियों की एक मिलीजुली यात्रा है। अन्यथा इस्लाम के अनुयायी मेव-समाज की बात में पंडित से भविष्य पूछना और संकटकाल में मेवात अंचल के केन्द्र में स्थित झिरका महादेव से अपनी रक्षा की प्रार्थना करना संभव नहीं था। इसके अलावा इस बात में कई प्रमाण इस तरह के हैं, जो लूटमार और डकैती डालने वाले इन मेव लोकनायकों की साधारण जनता के प्रति परहित भावना को प्रकट करते हैं। इस बात में एक घटना का उल्लेख

है कि जंगल में एक दिन एक स्त्री के रोने चिल्लाने की आवाज मेवखाँ घुरचढ़ी ने सुनी, तो ये दोनों उसके पास पहुंच कर उसके रोने का कारण पूछने लगे। वह स्त्री एक गूजरी थी। वे उससे पूछते हैं-

'अरी गूजरी मैया तू अपनी पीड़ कौ भेद हमकू बता। वजै कहा है जासूं तू रो रई है। क्या तेरा घर का तोसूं लड़ पड़ाँ हाँ। या तेरी कोई उम्मेद पूरी ना हुई है। याकू सुन कै गूजरी नै कहीं, के, अरा भाई मेवखाँ मोसूं कहा पूछै है। मेरौ तौ हिवडौ ई फटौ जा रह्यौ है। या जंगल में मेरी गाय कू एक सिंह नै फाड़ खाई है। या बात कू सुन के मेवखाँ और घुरचढ़ी ने कही कै तू धीरज रख और हमकू वा जगह कू बता, जहाँ सिंह नै गाय फाड़ी है;

जगह बता दे गाय की माणस कर गैले।

बदलौ वाकौ लेंगे, आधी सूँ पहले॥'

ऐसा कहकर वे दोनों गूजरी के द्वारा बतलाये हुए स्थान पर जाते हैं कि सामने से सिंह को आता हुआ देखकर घुरचढ़ी उसके ऊपर गोली दागता है। बात के तोड़ रूप में कहा गया हैं-

नाहर आवै कूदतौ, भरतौ आवै फुल्लांक।

कल छूटी गोली चली, नाहर नै खाई तीन कुलाँट॥

जब नाहर मर गया तो वे दोनों उसके कान पूँछ काटकर गूजरी को भेंट कर देते हैं। दूसरी घटना एक औरत के भात भरने की है। जैसा कि कहा जाता है कि इन दोनों भाइयों के साहस और मर्दानगी का पूरे मेवात में दूर-दूर तक शोर था। लोग इनके नाम से ही काँपने लगते थे, लेकिन यह बात भी सच है कि इन्होंने कभी साधारण जनता व स्त्रियों को नहीं सताया। जितना संभव हो सका, उतना उनकी सहायता की। इन्होंने राजसत्ता और सेठ साहूकारों का प्रतिरोध किया तथा उनकी लूटमार भी की। एक घटना का उल्लेख इस बात में आता है कि एक बार जंगल में जाते हुए इनको रास्ते में एक औरत मिली, जिसने अपने शरीर पर गहने जेवर आदि न पहन कर एक पोटली में उनको बाँध रखा था। वह अपने भाई के घर भात नौतने जा रही थी। जब रास्ते में घुरचढ़ी ने उससे उसका परिचय, कार्य तथा गहने उतारकर पोटली में बाँधने का कारण पूछा तो उसने बतलाया कि घुरचढ़ी के डर के कारण उसने ऐसा किया है। बात में यह संवाद इस प्रकार आता हैं-

घुरचढ़ी : 'अरी बावली बहना, हमने लूटा हाँ तो लाला स्याहूकार लूटा हाँ। किसान मजूर तो कबी ना लूटा। तू तो जिमीदार की बेटी है फिर बी तेणे गहणाँ कांई लू स्तार रखाँ हाँ। तू हमकू बता तो सही कै कहाँ की रहवणिया है।'

स्त्री : मोकूँ खुदाबक्स का बेटान सूं डर लगे। हीण घुरचढ़ी-मेवखाँ सू सब मेवात डरपै। नौ गाँवा मेरौ गाँव है और मेरे तीन खण की हवेली है। मेरे पिया को नाम सिकन्दर है। मेरे छोरा कौ बैसाख सुदी पांचै और चंदा के हिसाब सू सत्तरह तारीख को ब्याह है और मैं अपणा भैड़ कै घर भात नोंतण लू जा रही हूँ।'

उस स्त्री से यह बात जानकर वे दोनों उसके यहाँ भात भरने का संकल्प करते हैं और समय पर भात भरते हैं।

यह सच है कि महाराजा मंगलसिंह के शासन में ये पूरी मेवात में लूटमार करते थे। किशनगढ़ बास में राजा की रंडी को लूटने की इनकी एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। इनके मन में राजसत्ता का भय बिल्कुल नहीं था, व ब्रिटिश राज्य वाले मेवात में भी इन्होंने कई जगह टेलीफोन के तारों को काट लिया था। मेवात में इनकी समानान्तर सत्ता थी। इनको साधारण जनता का संरक्षण भी प्राप्त था। एक बार इनके काका उमराव ने ही इनकी रिपोर्ट लिखा दी थी कि- 'ना तो इनका साथ पटवारी हाँ, ना प्यादा-सिपाही हाँ, फिर बी इणको इतनो ख़ौफ है कै खेती की जमाँ (कृषि राजस्व) घुरचढ़ी ही लेवे है। पहलो राज अंग्रेज को है, दूसरो राज राजा मंगलसिंह को है और तीसरो राज घुरचढ़ी को है, जाको किलो पूरो काळो पहाड़ है-

एक राज अंग्रेज कौ, दूजो करै रिहाड़।

तीजौ राज घुरचढ़ी, जाकौ कालौ, किलौ पहाड़॥

इसी बात में इन दोनों की प्रशंसा में कहा जाता है-

बाघौड़ा की पाल में नाहर दो भाई।

तार काटौ अंग्रेज कौ, सारी अलवर थर्राई॥

अन्त में इनको मेवों ने ही धोखे से पकड़वा दिया। कहा जाता है कि इससे पहले भी ये जेल को तोड़कर भाग गये थे। बात में कहा जाता है कि अलवर महाराजा की रानी भी इनके शौर्य की प्रशंसा करती थी। जब इनको पकड़कर राजदरबार में पेश

किया गया, तब रानी ने राजा से कहा कि इन्होंने दूर-दूर तक अलवर का नाम निकाला

हैं, इसलिये ऐसे शूरवीरों को आपको पुरस्कार में गाँव देने चाहिये। लेकिन राजा ने कहा कि इनके मन में दया-धर्म नहीं है। ये मुझे भी मार सकते हैं। इसके बाद मेवात में यह बात फैल गई कि राजा और घुरचढ़ी मेवखाँ में समझौता हो गया है। जबकि इनको अंग्रेजों के सुपुर्द कर लाहौर भेज दिया गया था। इस बात में लाहौर में घुरचढ़ी द्वारा दिखाई गई साहसिकता का बखान भी मिलता है। जब एक अंग्रेज कलेक्टर की पत्नी के एक तम्बू में आग लग गई और उसे बाहर निकालने का कोई साहस नहीं कर सका, तो घुरचढ़ी ही उसको धधकती आग में घुसकर बाहर निकाल कर लाया। लेकिन, जब उसने ईनाम में राजा मंगलसिंह का खून माँगा तो उसने काले पानी की सजा में भेज दिया गया। कहा जाता है-

अंग्रेजन का लाट नै कलम फेर दी तेज।

मंगलसिंह का नाम सूं, उलटो दीनो काले पाणी भेज॥

यद्यपि इस बात में घुरचढ़ी-मेवखाँ के सम्बंध में कई अतिरंजनापूर्ण और लोकसाहित्यकारों द्वारा मनगढ़न्त बातों की संभावना भी है किन्तु इसके बावजूद इसमें लोकपक्ष के इतिहास का एक लघु पृष्ठ इनमें वर्णित है, जिसका सम्बंध लोकसंस्कृति के उस इतिहास से है, जो लोकहृदय में जातीय स्मृति के रूप में अभिलिखित है।

1/14, 'मुक्तिबोध'
अरावली विहार, अलवर-301001

संदर्भ संख्या—

1. मेवात अंचल में एक कहावत प्रचलित है-"जाट कौ कहा हिन्दू और मेव कौ कहा मुसलमान।"
2. "ये लोग प्राचीन काल में अपनी वीरता और शौर्य के लिए प्रसिद्ध थे। आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण ये लूटमार में ज्यादा लग गये और दिल्ली को भी इनसे खतरा हो गया था। इनकी लूटमार और बलवों की मुस्लिम युग के इतिहास में अनेक कथायें हैं।" ---कछवाहों का इतिहास : जगदीशसिंह गहलोत, 1966 ई. पृ. 0223-24

राजा किशनसिंह जी की चिट्ठी सन् 1923 ई. की समीक्षा

छत्रभानसिंह

यह चिट्ठी, सन् 1923 में राजा किशनसिंहजी राज्य भरतपुर द्वारा लिखी हुई है।

यह चिट्ठी श्री कर्नल बख्शी गिरधरसिंहजी को लिखी हुई है, ऐसा पता चलता है कि कोई शिकायत राजा भरतपुर के खिलाफ, किसी बडे अंग्रेज अफसर के यहाँ हुई है और उसमें जाँच निरन्तर हो रही है। राजा भरतपुर को भय है कि यदि नौकर ने और पी.डब्ल्यू.डी. विभाग के अहाते में रहने वाले सिपाहियों ने, राजा किशनसिह जी भरतपुर के खिलाफ गवाही दे दी, तो उनके लिये अहितकर बात हो जायेगी।

अत: वे अपने कान्फिडेन्शियल पत्र में अपने खास सरदार श्री गिरधरसिंहजी धाऊ को यह हिदायत दे रहे हैं कि किसी प्रकार से-

(1) उस नौकर (वाय) से अपने पक्ष में हलफिया बयान करवा लें.

(2) उस पी.डब्ल्यू.डी. के परिसर में कोई घटना 'ड्रिल' कर रहे सिपाहियों के सामने राजा किशनसिंह द्वारा ऐसे किस्म की कोई हरकत हुई, जो आपत्तिजनक होगी, अत: श्री राजा किशनसिंह जी चाहते हैं कि इन ऐसे संभावित सिपाहियों (गवाही योग्यों) को वहाँ से हटाकर अन्यत्र जी.एच.आई. 'गैरिजन इन्फैण्ट्री' मिलिटरी के रहने के स्थान पर पहुंचाया जावे।

पुलिस का अफसर डी.एस.पी. मालुम पड़ता है कि स्वेच्छा से तफ्तीश में कुछ कार्यवाही राजा के खिलाफ कर सकता है।

अत: राजा साहब अपने खास सरदार श्री गिरधरसिंहजी को यह दायित्व दे रहे हैं कि डी.एस.पी. को धमकाये, तथा उस लड़के के बयान राजा के 'फेवर' में करवायें।

'रावजी' यानि कि राज़ा का भाई अंग्रेज हुकूमत से राजा का बुरा करवाना चाहता हैं अत: राजा पत्र मे यह लिखते हैं कि रावजी की गतिविधियों पर नजर रखें यानि कि उन्हें ऐसा अवसर ही न दें।

एक अफसर गोग साहब जो पॉलिटिकल ऐजेन्ट मालुम पडते हैं, उनके विषय मे राजा साहब विचार लिखते हैं कि यह दिखावे को तो 'जाट और गूजर' फीलिग रखते हैं इसका तात्पर्य यह है कि जाट और गूजरों द्वारा संचालित रहे एवं बर्तानियाँ सरकार के सदैव हितैषी रहें। इस भरतपुर राज्य के राजा को किसी भी प्रकार से क्षीण न होने देने के लिये प्रयास शील बने रहने का विश्वास होना।

किन्तु राजा किशनसिंह जी अपने विशिष्ट हमराही वख्शी गिरधरसिंहजी से आंशका प्रकट करते हैं। कि सितारे गर्दिश में हैं अत: किसी के पक्षपात का भरोसा न करके अपनी स्वयं लेख की पूरी-पूरी तदवीरों को, चेष्टाशील रहकर करते रहो।

निष्कर्ष यह हैं कि वातावरण ऐसा बन चुका है कि राजाओं को भी पुलिस अफसरों और अंग्रेज अफसरों से भय लगता है और 'कानून' की सत्ता का अस्तित्व उनके बीच में जन्म ले रहा हैं।

जाट एवं गूजरों में ऐसा पुश्तैनी विश्वास पनपा और अन्त तक रहा कि जाट राजा और उनके आलिया गुर्जर सरदार अंत तक एक दूसरे के हितैषी रहे, उनमें घनिष्ट पारिवारिक सम्बन्ध बने रहे।

अध्यक्ष,
हिन्दी साहित्य समिति (पुस्त)
भरतपुर

चौहानवंशावली (वि.सं. 1899 सन् 1842 ई.)

डॉ. एम.पी. शर्मा

प्रस्तुत 'चौहानवंशावली' हमें नीमराणा राजवंश की इतिहास विषयक आधार-सामग्री की खोज करते हुए सन् 1980 ई. में स्व. राजा राजेन्द्रसिंहजी चौहान की कृपा एवं सौजन्य से प्राप्त हुई। यद्यपि यह प्रति बहुत प्राचीन नहीं है, फिर भी दीमकों ने इसे नष्ट प्रायः सा ही कर दिया है। इस प्रति के जीर्ण-शीर्ण, आधे अधूरे पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित हैं।

'चौहानवंशावली' नीमराणा के शासक राजा विजयसिंहदेव (सन् 1842-1856 ई.) के शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में संकलित की गई थी। जैसा कि 'वंशावली' की अन्तिम पंक्ति से प्रकट होता है 'कलियुग के नृप 162 सर्व संख्या 1143 महाराजा विजयसिंहजी देव विराजमान।' अर्थात् लगभग 150 वर्ष पूर्व इस वंशावली का संकलन किया गया था। इस वंशावली में अजमेर के पृथ्वीराज (तृतीय) के वंशजों से संबंधित नीमराना राजवंश की क्षेत्रीय भाटों द्वारा मान्य जानकारी संकलित है। बाद में राजा विजयसिंहदेव के पौत्र राजा भीमसिंह (सन् 1868-1877 ई.) के शासनकाल में उनकी आज्ञा से कवि शंकरराव ने रविवार, फरवरी 22, 1874 ई. को 'भीमविलास' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना प्रारंभ की। इस रचना में 'चौहानवंशावली' का भरपूर उपयोग किया गया है। 'भीमविलास' हमारे सम्पादन में सन् 1983 ई. में प्रकाशित हो चुका है।[1]

आजकल 'चौहानवंश' से सम्बंधित अनेक प्रामाणिक ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं। ऐसे में इस 'वंशावली' की क्या उपयोगिता हो सकती है ? डॉ. रघुवीरसिंह जी, महाराजकुमार सीतामऊ कहते हैं 'परन्तु पृथ्वीराज तृतीय की मृत्यु तथा अजमेर के चौहान राज्य का अन्त हो जाने पर पृथ्वीराज के भाई भतीजों का क्या हुआ? वे कहां गये? उनके वंशजों के घरानों ने कहाँ-कहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया? ऐसे सब ही प्रश्नों के प्रामाणिक सही उत्तर अब तक प्राप्त नहीं हो रहे हैं। उनके संदर्भ में इन दोनों ग्रंथों में जो संकेत हैं, उनकी गहराई तक जाँच की जानी चाहिए कि वे कहां तक ठीक हैं, और आगे की शोध में वे कहाँ तक उपयोगी हो सकेंगे, इसका पता लगाया जाना चाहिए।'[2] इस 'वंशावली' की यहाँ चर्चा करने का हमारा भी यही लक्ष्य रहा है कि विद्वत् समाज इसको जांचे-परखे और आगे का मार्ग दर्शन करावें।

नीमराणा के शासक सम्राट् पृथ्वीराज की वंश परम्परा में 'टांकायनी' माने जाते रहे हैं। जिस प्रकार 'द्वयाश्रकाव्य' में अर्णोराज चौहान को 'उदीच्यराट्' (उत्तरदेश का स्वामी)3 की उपाधि से सुशोभित किया गया है, उसी प्रकार उनके वंशज नीमराणा के शासकों को भी 'राठपति' (राठ क्षेत्र के स्वामी) कहा जाता रहा है। 'राठ-क्षेत्र' के बारे में मि.एम.एफ ओडवायर कहते हैं—

The estate lies in the tract known locally as the 'Raht' where the jurisdiction of Ulwar, Jeypore. Patiala. Nabha and British Govt. adjoin and which is pre-eminently the home of the Chohan Rajputs claiming descent from Prithvi Raj, the last Hindoo Emperor of Delhi. and among Rajputs acknowledged as the bravest of the brave. This trait of their character is enshrined in the proverb "Kaht hate Rath na hate". The plough handle may bend but not the Rath (Rajputs)- Assessment report of Neemarana Estate. 1897-99 page-5.

इस राठ क्षेत्र के राजा चन्द्रभानसिंह चौंहान के दरबारी कवि जोधराज ने 'हम्मीररासो' काव्यग्रथ की रचना की थी। उन्हीं चन्द्रभानसिंहजी चौहान के प्र-प्रपौत्र भीमसिंह के दरबारी कवि शंकरराव ने 'भीमविलास' ग्रंथ की रचना की थी।

'चौहानवंशावली' को हम दो भागों में बांटते हैं। प्रथम भाग की सामग्री जो भट्ट-भणन्त चली आ रही है तथा दूसरे भाग में नीमराणा राजवंश के इतिहास की सामग्री निहित है। इस वंशावली का उपयोग दूसरे भाग की दृष्टि से अधिक प्रामाणिक माना जाता हैं। संक्षेप में वंशावली का प्रारंभ इस प्रकार होता है—

'अथ चहुंआन वंशावली, 1. श्रीमन्नारायण. 2. ब्रह्मा. 3. भृगु ऋषि, 4. भार्गव ऋषि. 5. ऋचीक ऋषि, 6. यमदग्नि ऋषि, 7. परसराम ऋषि, 8. वत्स ऋषि, सतयुग नांहीं अग्निकुंड उत्पत्ति आहूति दई जब पुरष प्रकट हुयो।' इसके बाद क्रमांक 1 से 24 तक की पीढियों का विवरण वाला प्रति का अंश नष्ट हो गया। फिर 25 से 37 तक के बाद 61 तक की पीढियों का वर्णन भी नष्ट हो गया।

इसके बाद त्रेता, द्वापर की पीढियां शुरू होती हैं 'काशीरिषि से मंगलनाथ जोगी की दया सों पाल नाम कहायों।' मंगलपाल से खूंमपाल राजा तक 215 पीढियां पालविरुद से जानी जाती रही। 'खूंमपाल राजा आगे सूं सूर्य के वरदान सें पुत्र हुयो तासूं तीन

नाम कहायों। राजा खूमपाल कें पुत्र सूरदीत हुयो।' सूरदीत से केहरीदीत राजा तक 219 पीढियाँ 'दीत' विरुद से जानी जाती रही। 'पछै चन्द्रमा का वरदान तै चंद नाम राजा कहाये। चंद्र चंद राजा से लेकर हरिचंद राजा तक 208 पीढियाँ 'चंद' नाम से जानी जाती रही। 'तिन हरिचंद राजा को पुत्र पिंग राजा......नागपुत्री परणी सो नागपुत्री की औलाद 'मणी' नाम कहाये।' पिंगमणि राजा से लेकर राममणि राजा तक 87 पीढियाँ 'मणि' नाम से जानी जाती रही। 'राम मणि राजा तांही सतासी पुस्त मांडलपुर राज कियौ। आगै शिव के वरदान सूं पति नाम कहाये।' हरिपति राजा से अभैपति राजा तक 81 पुस्त तक अमरावती राज कियौ। इसके बाद नीमनांथजी कै बरदान से 'सैण' विरुद पड़ा। बुधसैण राजा से 62 पुस्त तक सैण नाम कहायो और अमरपुरी राज कियो।

विनैसैण राजा ने केदारनाथजी के ध्वजा चढाई तब से 'धुजाबंध' राजा नाम हुयो। धुजबंध से पंचाण ध्वज तक 39 पुस्तों ने हर-हरिगढ में राज्य कियो। यहाँ तक त्रेता-द्वापर युज के राजा हुए। अब कलियुग के राजाओं का वर्णन आता है।

राजा चन्द्रध्वज से राणा राजा हुए। राणा राजा से हरिभाण राजा तक 114 पीढी राज कियौ। हरिभाण के पुत्र माणिक्यराव हुए।

प्रस्तुत चौहानवंशावली माणिक्यराव से प्रारंभ होती है। सन् संवत् में बहुत गडबड है। प्रति भी काफी नष्ट प्राय: रही है। फिर भी भीमविलास की मदद से उसे पढा जा सकता हैं। कर्नल टॉड ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में इसी परम्परा का निर्वाह किया है[w] लेकिन बाद के इतिहासकार एवं ऐतिहासिक शोध से यह मेल नहीं खाता। फिर भी इस वंशावली के माध्यम से तत्कालीन राजा, उनकी सन्तानें, उनके विवाह और राणियों की काफी रोचक जानकारी प्राप्त होती है। 'चौहानवंशावली' के अनुसार जो परम्परा प्राप्त होती है, वह निम्न प्रकार हैं—

1. माणिकराव (वि.सं. 703) सांभर ग्राम बसायौ, कुलदेवी आशापुरा
2. संघराव (वि.सं. 730)
3. लाषणसी (वि.सं. 767), 24 पुत्र जिनसे 24 खाँपे चली
4. विजैराज
5. हरराज (वि.सं. 787) सांभर की गद्दी पर विराजे
6. पतमसी (वि.सं. 812)
7. सालभान (वि.सं. 835) गादी अजमेर

8. अजैपाल (वि.सं. 883)
9. वींसलदेव (वि.सं. 906)
10. आनाजी (अर्णोराज) (वि.सं. 962)
11. राजा पिथोरा (वि.सं. 984)
12. आल्हनसी
13. गूदराज (वि.सं. 1004) गादी संभलमुरादाबाद
14. कंडपाल (वि.सं. 1015)
15. अपरगंगेव (वि.सं. 1043)
16. सोमेश्वर (वि.सं. 1086)
17. प्रथीराज (वि.सं. 1177) गादी अजमेर

'वंशावली' की त्रुटित प्रति में पृथ्वीराज चौहान के बारे में लिखा है-

'प्रथीराज संवत् 1177 रानी 18 जन्म राजा के अजमेर को 1 संवत्....कनवज व्याह कियौ दिल्ली छूटी 1194 संवत्.... (1) प्रथम राणी पुष्करजी की हरकवरि 2..... पाटन की धनकंवरी 3. जादमजी राजा विजयसुर राज की पुत्रीं.... समद शिखर की नाम पदमावती 4. चौथी कछवाई नरवरगढ की नाम हांसकंवरि 5. पांचई राठौड़ जी राजा जयचंद की पुत्री कनवज की नाम संजोगता 13 और...महल घणा....राजा प्रथीराज अजमेर में 180 जिझ उगेरे चौरासी जागा लड़ाई...गादी दिल्ली राजकियो... कौ उगेरै गढ.....गोरी साह पातसाहवदीन....जीत्या प्रथीराज जी कै पुत्र 2 रैण कवार। दूजो बलभद्र....उ. नै व्याही हटराज जी...हलदवांडुजी गौड़ नै परनाई...प्रथीराजजी का पुत्र दोनू लडाई मैं.....(चाहड़देव) को वेटो भोमविजैराज जी गादी बैठयो सुथान संभलापुरी रहे प्रथीराज जी कै कवि चंदवरदियौ हुयौ जिन रासौ बनायौ सर्व लड़ाई वूरनन करी प्रथीराज...

18. राजा विजयराज राणी 6 पुत्र 7 गादी इठोली वैठयो संवत् 1160 1. प्रथम राणी वै राजा जैपाल की पुत्री हुडियावेडा की धनकंवरि 2. दूजी बुंदेलीजी राजा विजैसूर की पुत्री... रूपकंवरि नाम 4. चार और 1 कंवर बडो लाषनसी है गादी मांढिन....हजार घोड़ा बकस्या संवत 1204 रा (ठ) 2 दूजो कंवर गोपालदेव झिनौन कराने बैठया 3. तीजो कंवर पदमसी...सांचौरा चौहान 4. चोथौ कंवर वीरसैन रणतभंवर राज कियौ वीरसैण कौ वेटौ जैतराव जैतराव कौ वेटौ हमीर अलावदीन पातसाह सूं साकौ कियौ गढ रणतभंवर जिनका बेटा पौता मेवाड़ की धरती मै राज करै छै 3 तीन बेटा कौ...
19. लाषनसी (वि.सं. 1204 राठदेश में गादी मांढण)
20. संघट राणा (वि.सं. 120....) 22 पुत्र हुए जो विभिन्न जगह गये

21. लाहदेव (वि.सं. 1292) गादी माढ्ण
22. अंजनदेव (वि.सं.) “”
23. मदनसींदेव (वि.सं. 1305) “”
24. पदमसी (वि.सं. 1342) गादी मुंडावर
25. मोकलसी (वि.सं. 1351) “”
26. धांग्देवजी (वि.सं. 1360) “”
27. अनेसीजी (वि.सं. 1382) “”
28. नानगदेवजी (वि.सं...) “”
29. वीहड़देवजी (वि.सं.....) “”
30. हालाजी (वि.सं. 1457) “”

हालाजी के सम्बंध में 'वंशावली' में कहा है 'राणा हालाजी राणी 6 पुत्र 7 गादी मुंडावर संवत 1457 प्रथम राणी.... रामपुरा की 2 दूजी मोलपनी जी....की नाम दाड़म दे 3. तीसरी नरूकी जी...की पोती भैराणा की... 3. और... 1 कंवर हासोजी...गादी मुंडावर 1. हांसोजी मुसलमान हुयौ मुंडावर रह्यौ भोमि राषि राव वाज्या पातसाह की मेहरबानगी हुई...नयो परगनो राज मिल्यौ, 2. राजा राजद्योजी नीवराणे बैठया तिमरलिंग पातसाह की समय में हरेई के पातसाह कूं पकरि गिरायो नीवराणो वसायौ संवत 1521 3. विडदेव जी वडांद बैठयो और राणा जी वाज्या 4....पातसाही में 5. तेजसिंह वडाली बैठया 6. रूदोंजी वड़ली बैठयो छटो 7 सातवा भोजराजजी.....

31. राजा राजद्योजी.... नीवराणो वसायो (वि.सं. 1521) गादी नीवंराणा
32. पूरणमलजी (वि.सं. 1527) गादी नीवराणा
33. वीझलदेवजी (वि.सं. 1575) “”
34. नरदेवजी (वि.सं. 1584) “”
35. जैतसिंहजी (वि.सं. 1593) “”
36. प्रतापसिंहजी (वि.सं.....) “”
37. डूंगरसिंहजी (वि.सं. 1614) “”
38. षडगसिंहजी (वि.सं. 1627) “”
39. कल्याणसिंहजी (वि.सं. 1642) “”
40. बलकरणदेवजी (वि.सं. 1657) “”
41. रघुनाथसिंहजी (वि.सं. 1670) “”
42. जैतसिंहदेवजी (वि.सं. 1684) “”
43. राजा प्रतापसिंहजी (वि.सं. 1695) “”

44. चत्रसिंहजी (वि.सं. 1707) "
45. राजा टोडरमलजी (वि.सं. 1717) "
46. महासिंहजी (वि.सं. 1796) "
47. चन्द्रभानजी (वि.सं. 1827) "
48. पृथ्वीसिंहजी (वि.सं. 1880) "
49. विजयसिंहजी (वि.सं. 1899) "

इस प्रकार इस वंशावली में 1143 पीढ़ियों का वर्णन है, जिनमें 9 रिषी, 61 रिषिराव, 215 पाल 219 दीत, 208 चंद, 87 मणि, 81 पति, 62 सैण 39 ध्वज और 162 कलियुग के राजाओं की पीढ़ियाँ सम्मिलित हैं ।

इस 'वंशावली' की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिन्ह लग सकता है, किन्तु नीमराणा के चौहान शासकों का इतिहास जो विद्वानों की नजर से ओझल था, वह स्पष्ट हो जाता है । यही पक्ष इसका ऐतिहासिक पक्ष कहा जा सकता है । कुल मिलाकर पृथ्वीराज चौहान के बाद छुटभैये कहाँ-कहाँ गये, इसका ब्यौरा वंशावली से प्रकट होता है, यही इसकी देन कही जा सकती है ।

---

1. सं. 1803 वि.में चामुण्डा का मंदिर बनवाया । प्रस्तर लेख में लिखा है कि उस समय बादशाह मोहम्मदशाह का शासन था ।

चारणों की वंशावली का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

डॉ. अंबादान रोहड़िया

भारतीय समाज और संस्कृति का यथातथ्य परिचय पाने के लिए इतिहास का अध्ययन आवश्यक है । वैसे, भारतवर्ष का शृंखलाबंध इतिहास उपलब्ध नहीं है । इतिहास लेखन के लिए आवश्यक ऐतहासिक दस्तावेज उपलब्ध न होने के कारण ऐसा हुआ है । लेकिन जहाँ दस्तावेज प्रमाण उपलब्ध न हो वहाँ अन्य स्रोत भी देखने चाहिए । अन्य स्रोत से प्राप्त ऐतहासिक सामग्री का चयन कर के उसकी समीक्षा से यह जानना जरूरी हो जाता है कि उस में कहाँ तक ऐतिहासिक सत्य प्रकट हुआ है । इतिहास के पुन: लेखन में और टूटती कड़ियों को जोड़ने में इस सामग्री का समुचित विनियोग आवश्यक है । इतिहास विषयक अन्य स्रोत में ऐतहासिक गद्य-पद्य साहित्य, ताम्रपत्र और वंशावली आदि का विशेष महत्त्व है । इसलिये यहाँ चारणों की वंशावली से प्राप्त ऐतिहासिक दस्तावेज विषयक तथ्यों को प्रकट करने का उपक्रम है ।

चारणों की वंशावली से प्राप्त ऐतिहासिक दस्तावेज विषयक इस शोध पत्र में मैंने चारणों की 'वही' (वंशावली - ग्रन्थ) रखने वाले रावलदेवों की 'वहियों' से जानकारी एकत्रित की है । रावलदेवों द्वारा लिखी हुई इन 'वहियों' का अध्ययन करने से इस बात की प्रतीति होती है कि 'वहियों' में इतिहास विषयक बहुत सामग्री संगृहित हुई है । यदि दस्तावेजी द्दष्टिबिंदु से उसका परीक्षण किया जाय तो इतिहास की लुप्त कड़ियों को सुचारु रूप से जोड़ा जा सकता है । 'वही' में चारणों की व्युत्पत्तिविषयक जानकारी प्राप्त होती है तो समकालीन एतिहासिक घटनाओं का लेखन भी हुआ है । इतना ही नहीं अपने यजमान द्वारा बँधवाये गये मंदिर और कुँए, आदि स्थापत्य का लेखन भी मिलता है । उनके रहन-सहन, वेशभूषा, कला और संस्कृति विषयक विवरण भी मिलता हैं । इन सब बातों को मध्य नज़र रखते हुए उसकी ऐतिहासिक द्दष्टिबिन्दु से समीक्षा होनी चाहिए, जिससे तत्कालीन समाज का सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक चित्र अंकित किया जा सके ।

राजस्थान और गुजरात में चारणों का बड़ा आदर किया जाता है । मध्यकालीन राजाओं ने चारणों को लाख पसाव, करोड़ पसाव और अरब पसाव दिये हैं । कतिपय

चारणों को गाँव मिले थे । भारत स्वतंत्र हुआ तब तक उन गाँवों पर चारणों का अधिकार रहा । तत्कालीन समाज में चारणों को 'देवीपुत्र' कहते हुअे उनका आदर-सत्कार किया जाता था । सत्य और सरस्वती की आराधना करते हुए चारणों ने भारतीय संस्कृति की आन बान और शान के लिए अपना सबकुछ न्यौच्छावर कर दिया था । इससे प्रभावित होकर राजपूतों ने चारणों को 'गाँव-गरास' दिये थे । चारणों को मिले हुए गाँव और मान-सम्मान विषयक ऐतिहासिक विवरण और ताम्रपत्रों की प्रतिलिपि वंशावली-ग्रन्थ (वही) में मिलती हैं । उसमें साल, संवत् तथा दान देनेवाले राजा का उल्लेख भी है । अत: ये बातें ऐतिहासिक दस्तावेज बन जाती हैं ।

मैंने इस शोध-पत्र को तीन खंड़ों में विभाजित किया है । प्रथम खंड़ में ऐसे दो गाँवों का उल्लेख किया है जिनकी जानकारी वंशावली में और इतिहास विषयक ग्रन्थों में उपलब्ध है । दूसरे खंड़ में ऐसे गाँवों का उल्लेख किया है, जिनका उल्लेख 'वही' में प्राप्त है और उनके ताम्रपत्र भी मिलते हैं । तृतीय खंड़ में उन गाँवों का उल्लेख किया है, जो 'वही' में भी मिलते है, लेकिन इतिहास तथा ताम्रपत्रों में उनका जिक्र नहीं है । मैंने निष्कर्ष में यह स्पष्ट किया है कि इतिहास विषयक इस स्रोत का यथोचित परीक्षण कर के उसका समुचित विनियोग होना चाहिए जिससे इतिहास की विशृंखलित कड़ियों को सुचारु रूप से जोड़ा जा सके ।

: १ :

इस प्रथम खंड़ में मैंने चारण महात्मा ईसरदास रोहड़िया और सांयाजी झूला को प्राप्त संचाणा और कुवावा गाँव का उल्लेख किया है । 'वही' से प्राप्त इस बात को इतिहास और साहित्य का समर्थन मिलता है तथा मैंने दोनों गाँवों की यात्रा करके इस बात की जांच-पड़ताल की है ।

(क) इसरदास रोहड़िया को करोड पसाव के साथ 'संचाणा' मिला :

राजस्थान के भाद्रेश गाँव के ईसरदासजी रोहड़िया को जाम रावल ने (वि.सं. 1494-1618)[1] करोड पसाव दिया था । इस बात का उल्लेख रावलदेव वाघा मामेया के पूर्वजों की लिखी हुई चारणों की 'वही' में मिलता है ।

''बारोट इसरदास देस हालार में आये और जाम रावल ने बार गाँव सहित संचाणु गाम कोड-पसाओ एमां दाम (दान) आपुं ।''[2]

इसरदास को करोडपसाव के साथ मिले संचाणा गाँव का उल्लेख 'यदुवंशप्रकाश'[3], 'विभाविलास'[4], 'बांकी दास री ख्यात'[5] और 'मुहणोत नेणसी री ख्यात'[6] आदि इतिहास ग्रन्थों में मिलता है । श्री शंकरदान देथा[7], रतुदान रोहड़िया[8], डॉ. शिवदान चारण[9] और

डॉ. अंबादान रोहड़िया[10]ने अपने साहित्यिक ग्रन्थों में भी इस बात का समर्थन किया है। शोधयात्रा के दौरान मैंने जामनगर जिल्ले में स्थित संचाणा गाँव की यात्रा की है। ईसरदास जी के वंशज श्री जबरदान जी ने भी इस बात का समर्थन किया है।

(ख) सांया जी झूला को 'कुवांवा' गाँव :

भीमजी भारमल रावलदेव के पूर्वजों के द्वारा लिखी 'वही' में चारणकवि सांयाजी झूला को 'कुंवावा' गाँव मिलने की घटना इस तरह अंकित हुई है

''साया झूला : गाम : नीलछा : कुआवा : भाईजी : न : साईदान : गाम : कुआवा : दीधो : श्री कल्याणमल्ल दीधो : संवत सोला : एकसठ फागण वद त्रीज :'' ।[11]

ईड़र के राजा राठोड कल्याणमल्ल ने (वि.सं. 1653-1700)[12] सांयाजी को कुवावा गाँव दिया था। ईड़र राज्य के इतिहास में भी इस बात का उल्लेख मिलता है। मैंने कुवावा गाँव की यात्रा करके उसंके वंशजों से भी जानकारी प्राप्त की है। सांयाजी द्वारा बनवाये गये दरबारगढ़ की द्यौढी में खुदवाये लेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।[13], रतुदान रोहड़िया[14], हमीरदान मोतीसर[15], हिरालाल माहेश्वरी[16] और डॉ. अंबादान रोहड़िया[17] ने भी इस बात का समर्थन दिया है।

इस तरह 'वही' से प्राप्त इन दो गाँवों की घटनाओं की इतिहास, साहित्य और उनके वंशजों से समर्थन प्राप्त होता है।

: २ :

इस दूसरे खंड़ में भीमजी भारमल की 'वही' से मिले 'पाघरडी' गाँव की जानकारी को प्रस्तुत करता हूँ। 'वही' से प्राप्त इस बात को ताम्रपत्र का समर्थन मिलता है। सुरताणीया चारणों की 'वही' में उल्लेखनीय इस लेख में साल, संवत् भी मिलते हैं। यथा,

''राणा श्री वनाजी लखावतंग वाघेला नी दान सोरताणीया खेंगार जी ने प्रोड बारोट थापी ने गाम पाघरड़ी सांसण दीधो छे। दीकरो-दीकरी परणी तेरा लगा डापा करी दिधा छे। दीकरो परणे तो तोरण घोड़ो तथा वीरमूठ प्रोड दापो। दीकरी परणे त्यारे ओढ़ामणी तथा वहुवर नो सोवाधो : गामना सीमाडानी विगत : उतरादी कोरे गाम जाटावाडा तथा बालासर नी सीम : दखणादी कोरे गाम डावरी खारी नदी नी हद : आथमणी कोरे खंभानी सीम पाघरड़ी नी छे : ऐवी

रीते सेढा चार बंध संवत् १४३१ नां मोहा विद ७ भोमवार नां दी ताम्रपत्र दीधो छे : श्री सूरज नी साखे सेलोत दगु नी साख सेलोत गांगाजी डाआ नी सांख : ली : कामदार भीमजी डाया, गांगाजी डायानी विगत : सरताणीया खेंगारजी दंसोदी थापी दीकरी परणे त्यारे कोरी ५, डायानी : दीकरी परणे त्यारे ओढामणी प्रवा करी दीधो छे : ।[18]

सरताणीया खेंगार जी को मिले 'पाघरड़ी' गाँव का ताम्रपत्र भी मिलता है । यथा

1. राजा श्री वनजी सलखवत वाघेलानी
2. दत सरताणीया खेंधरजी ने पोल बारट थापी ने
3. गाम पाघरली सांसण दीधुं छे : दीकरो दीकरी
4. परणे तेना लाग दापा करी दीधा छे : दीकरी परणे तोरण
5. धोलो तथा ली मूठ पोते प्रवा दीकरो परणे त्यारे
6. ओढामणी तथ वउअर नो सवाधो तथा पाघरल
7. नी गाम सेम अदागर, हीदुंआणे गाये मसलमाने सु
8. वर अेवी रीते त्राबा पत्र लखी देधेल छे ।। तथा गमना ।।
9. संभलानी वगत अत्राधी कोर गाम जाटावडा तथा
10. बालसर न संभले खरी नदी नी हद उगमणी करे
11. गाम गेड़ी सेमाडे फरीधार डुंगर की हद अथ
12. मणी कर पनांसंम पाघरली नी छे पाघरली तळाव
13. वाहक छे. अेणी रीते वनजी अे हदे चार संव (त्)
14. 1431 मां वीद 7 भोमवार ने दी ध्रमपत्र दीधुं
15. छे. श्री सुरजी नी साख : सेलोत हलुजीनी साख
16. सेलाते गंगाजी दआनी साख लखीतंघ कामदार
17. भंमजी डाया गांगाजीना, लग दापानी वगत सरताणीया
18. खंगारजी ने दसौंदी थापी ने दीकरी परणे तारे कोरी 5 दापा ।
19. दीकरो परणे तेनी ओढामणी त्रथ आले सही अेवी रीते ल
20. ग दापा करी दीधा छे दत्रे गांगोजी करी दीधो छे ।[19]

इस ताम्रपत्र की चौडाई 8।। इंच, लंबाई 14।। इंच, पंक्ति संख्या 20, प्रति पंक्ति में अक्षर संख्या 20 से 22, वजन 840 ग्राम तथा तीन इंच भाग खाली है ।

'राजपूत वंशसागर' में प्राप्त थराद के वाघेला राजाओं की वंशावली में थराद की गद्दी पानेवाले लूणकरणजी के पौत्र वनाजी का नामोल्लेख मिलता है ।[20] तथा गेडी में भी जाम रावल के समय तक वाघेलाओं का शासन था । जाम रावल ने 'गेडी गाँव' को तीन बार उज़ाड दिया था तथा मेकरण वाघेला का संहार किया था ।[21] इस तरह 'वही' से प्राप्त इस विषय का दस्तावेजी मूल्य है ।

: ३ :

तीसरे खंड़ में मैंने 'वही' से प्राप्त कुछ ऐसे गाँवों का उल्लेख किया है, जिनका उल्लेख इतिहास में तथा साहित्य में शायद ही कहीं हुआ है । मगर आज भी वहाँ इस चारणों के वंशज रहते हैं तथा 'वही' की बात को समर्थित करते हैं । मैंने ऐसे गाँवों की यात्रा करके इस बात की जांच की है, तथा इतिहास विषयक ग्रन्थों में से अन्य स्रोतों से उसका परीक्षण करने का विनम्र प्रयास किया है । यद्यपि मैं इतिहास अभ्यासु नहीं हूँ तथापि इतिहासविद् इन तथ्यों का परीक्षण कर के उन में निहित सत्य की जांच करेंगे तो इतिहास लेखन के लिए आवश्यक विवरण मिल सकता है ।

(ग) हरदासजी खीमाजी मिसण को ''पनोरिया'' गाँव :

रावल भीमजी भारमल के पूर्वजों के द्वारा लिखी हुई 'वही' में मिसण चारणों की वंशावली मिलती है । मिसण चारणों के विभिन्न गाँवों का उल्लेख इस 'वही' में मिलता है । श्री हरदासजी मिसण को 'पनोरिया' गाँव मिला । इस विषय में लिखा गया है कि :

''गाँव पनोरियुं ते संवत १५ ने वरस ३६ से आसु सोद पंचमथी जडेआ छे : ते चवाण सौनागरा : राणो अखेराजजी ते दलाजीआंणी नुं दान पसव दीधो छे : ते मिसण हरदास : खीमांणी ने देओ तेनी हद दस ४ नी वगत छे : परथम दस उगमणीनी वगत, धोनी गात्रन पासे आथमणे गाम पनोरिआनी हद उपरथी नीची कोरे गाम बनाहठास नीसो तेनी छे : हद अेणी रीते उमगणी दस बीजी ओतराधो तेनी वगत खेतर झलालो तेथी ओतराधो मांटोडी गामह तेथी दखणाधो पनोरिओ झलालो सरवे पनोरियानी हदमां छे : माटुडारा मारगथी धलतल अेथी उगमणे गडारो धोरो आथमणे तेरो पांणी ढाल री हद 'सगरवाव'मां छे :[22]

चारण साहित्य की शोध यात्रा के दौरान मैं 'पनोरिया' गाँव गया हूँ । राजस्थान के बाडमेर जिलेमें चोटण तेहसिल में 'पनोरिया' गाँव स्थित है । मूल पनोरिया गाँव हाल नष्ट हो गया है । इस पुराने गाँव से एक कीलोमीटर दूर 'नया पनोरिया' गाँव बसा है । हरदासजी के वंशजों से किये गये वार्तालाप के अनुसार हरदासजी के पिताने अखेराजजी

की बाल्यावस्था में उसको आश्रय दिया था। अखेराजजी ने अपना राज्य पाने के बाद इस उपकारवश हरदासजी को 'पनोरिया' गाँव दिया था।[23] सोनगरा चौहाणों के इतिहास में अखेराजजी का नाम मिलता है। उसमें उसके पिताजी का नाम रणधीर है, और चाचा का नाम दलाजी है। अखेराजजी वि.सं. 1600 में जोधपुर की ओर से बादशाही फौज़ के साथ लड़े थे और उन्होंने वीरगति पाई थी।[24]

(घ) हरदासजी के वंशज जोधाजी मिसण को 'सगरवाव' गाँव :

'पनोरिया' गाँव की यात्रा के दौरान जानकारी प्राप्त हुई कि 'पनोरिया' के पास स्थित 'सगरवाव' गाँव भी हरदासजी के वंशज जोधाजी को दान पसाव में मिला था। मिसणों की 'वही' में सगरवाव गाँव का उल्लेख भी मिलता है, यथा

"संवत् १७ ने ८७ नो वरसमा कारतक सोद ७ थी गाम श्री सगरवाव ते : राणा श्री प्रथीराजजी अे दान पसव मिसंण जोधा ने दीधो छे : चंदा सूरज उगे ता लग राणा श्री प्रथीराज जीना वंस ज पाले सई : मिसणं : जोधाना वंसना खाअे सई : ॥

गाम सगरवाव : ते वचमा जोधा देरीथी प्रथीराजे जोधाने सरौगरवाव दईने जोधादेरीथी सीमाडो करी दीधो छई । आंफरतो सगरवावथी आथमणो धोरो ते फागलीयाथी उगमणो धोरो तेनुं पाणी ढल उगमणे सगरवावमां हद छे : तेमां वावथी उगमणो धोरो तेरो उगमणो पांणी ढाल ते पनोरियानी हदमां छे : तेओथी वेतरववावथी आथमणो धोरे सीमाडो छे : काठ्थी दखणाधी पालथी गाम ने उगमणी पालेथी उगमणी गात्रे भाई मारगथी आथमणो धोरो तेथी हद छे : काठ्थी दखणाधो कांठ ने धोवी ने सीमाडो, कांठ्थी उगमणो जता बोली रेगात्रे आथमणे भरडे धोरे तेथी सेढो गाम सगरवाव ने बीजू गाम पनोरिओ ते गाम बेनी हद फरती दस ४ नी लखी छे :[25]

(च) राजडदान रोहड़िया को "खडकाणां" गाँव :

राधनपुर के पास स्थित जंडाणा गाँव के राजडदान रोहड़िया को जसदण के राजवी वाजसुर खाचर ने 'खडकाणां' गाँव दिया था। इस बात का उल्लेख मालीया गाँव के रावलदेव श्री केसरभाई के पूर्वजों की लिखि वही से मिलता है, यथा

॥ "गाँव : खडकाणुं : देश पांचाल : खाचर वाजसुरनुं आलंल : गढवी राजड ने आपेल : गढवी राजड गोडी दासना : सूरज चंद्रमानी साखे : वाजसुरना वंसना पाळे : राजड वंशना खाय : हिन्दुनी गा ' मसलमाने सुवर : ॥[26]

राजकोट जिले के जसदण तेहसील में स्थित खडकाणां गाँव में आज भी राजडदान रोहड़िया के वंशज रहते हैं। उनके कथनानुसार जब जामनगर के राजवी जाम जसाजी (वि.सं. 1824-1870)[27] ने वाजसुर खाचर पर आक्रमण करके जसदण पर कब्जा कर लिया, तब राजडदानने वाजसुर खाचर को मदद की थी। जाम जसाजी से समाधान करवा के उसको आटकोट चांदला में दिलवाया था और वाजसुर खाचर को जसदण वापिस दिलवाया था। इस उपकारवश वाजसुर खाचरने राजडदान रोहडिया को वि.सं. 1860 के करीब 'खडकाणां' गाँव दिया था।[28]

(छ) अवचळ गोरवीयाला को चार गाँव :

रावल देव केसरभाई की वही में उल्लेख मिलता है कि ।। **"गाम : गोरवीयाळु : गाम दात्राणु : गाम मोणिउ : गाम पीपरलु : राओळ अखेराजजी नुं दीधेल : अवचळने : गाम : मूळिया पाट : लाठीया सधमलनुं दीधल : ।।**[29]

जूनागढ़ जिल्ले में स्थित गोरवीयाला, दात्राणा और मोणिया नामक गाँवो में आज भी गोरवीयाळाशाख के चारण रहते हैं। इन तीनों गाँवों की मुलाकात मैंने ली है और वहाँ स्थित अवचल गोखीयाला के वंशजोंने भी इस बात को समर्थित किया है।[30] भावनगर के आईदानदेव के पूर्वजों ने लिखी वहिओं में से भी इस बात को समर्थन मिलता है।[31]

(ज) कुंचाला और मिसण शाख के चारणों को गाँव :

भावनगर के आईदानदेव की वही में उल्लेख मिलता है कि ।। **"संवत सतर पनरनी सालमां गोअेल कांधाजीनुं दिथेल : कुचाणा जीवाने गाम : सेवाळीउ : ।। संवत अढार छत्रीसनी साल खसीया हमीरे : वीसाने दिथेल : गाम आंगणकुं : कुंचाळाने दिधुं ।। संवत अढार पांत्रीसनी साले गाम : मोभीयाणुं खसीया जसा मसरीअे दिथेल : मिसण जीजीने : ।।"**[32]

पालीताणे के गोहिलवंशी राजवी कांधाजी उनडली सेजकजी गोहिल की उनीसवी पीढी में हुअे हैं। उन्होंने कुचाळा जीवा को सेवालिया गाँव दिया था। वि.सं. 1749 तक वाघनगर पर हमीर खसिया का और महुआ पर जसा मसरी खसिया का राज्य था। भावनगर के वखतसिंह गोहिल (वि.सं. 1749) ने दोनों को पराजित किया।[33] इन तीनों गाँवों की रुबरु मुलाकात से भी इस बात को समर्थन मिलता है। केसर देव की वही से भी इस बात को समर्थन मिलता है।[34]

(झ) सुरताणिया जगा को 'मोरजर' गाँव :

भीमजी भारमल रावलदेव की वही में सुरताणीया जगा को मिले गाँव का उल्लेख है, यथा :

।। देस कछ : गाम : मोरझर : जाडेजा श्री देवाजीअे सोरताणिया जगाने दान पसा दीधो : संवत १६ ने ४२नी साले दिधो छे :[35]

कच्छ-भूज जिल्ले के नखत्राणा तेहसिल में स्थित मोरझर गाँव की यात्रा के दौरान मैंने जगाजी के वंशज भारतदानजी सुरताणिया से वार्तालाप किया तो उसने वही में लिखित विगत का समर्थन किया था। तथा वहाँ आज भी सुरताणिया शाखा के चारण रहते हैं।[36]

(त) लांगावदरा राजदे को मेथली गाँव :

भावनगर के रावलदेव आइदानजी के पूर्वजों द्वारा लिखी वही में राजदे लांगावदरा को मिले मेथनी गाँव का उल्लेख मिलता है। यथा,

।। गाम : मेरथळी : राजदे नानपळने दिधल : लाठीआ अरजणजी हमीरजीअे दीधेल :[37]

मारवाड़ से सौराष्ट्र में आये सेजकजी गोहिल के वंशज और लाठी (अरठीला) के राजवी अरजणजी हमीरजी गोहिल का नाम इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। लाठी के गोहिल राजवीओं को लाठीया-गोहिल कहने की उस वक्त परंपरा थी। भावनगर जिल्ले के पालीताणा में स्थित मेथली गाँव में आज लांगावदरा शाख के चारण नहीं रहते हैं। मगर वहाँ से स्थानांतर करके भावनगर, पालीताणा और अन्य गाँवों में रहते हैं। तथा वही की बात को समर्थित करते हैं।[38]

(थ) गेला खडिया को गाँव :

खडिया शाख के चारणकवि गेलाजी आवडदान को 'कुआडिया', 'सुवागड' और 'तरपाळु' तीन गाँव मिले थे। इस बात की गवाही आईदान देव की वही से मिलती है। यथा

।। खडिया : गला : न : आवड : न : गाम : कुआडीया झाला चंद्रसालनुं दीधल : गाम तरपाळु : राउल अखेराजजी अे दिधल : गला : अवडने दिधेल : सुवागड गाम : लाठीआ वीजे दिधेल : गला : अवड : न दिधल : ।।[39]

मैंने इन तीनों गाँवों की यात्रा की है तथा वहाँ स्थित खडिया शाख के चारणों ने इस बात को समर्थित किया है। इतिहास ग्रन्थों में देखा तो झाला चंद्रसाल रायसिंह (वि.सं. 1640-1684) धांगध्रा के राजवी थे[40] तो शिहोर के राजवी राओल अखेराजजी वि.सं. 1678-1776 राजगद्दी पर थे।[41] तथा लाठी के गोहिलवंशी राजविओं में से सेजकजी की बारहवी पीढी में हुअे वनाजी गोहिल अरठिला-लाठी की गद्दी पर थे।[42] इस तरह तीनों राजविओं का समय मिलता है।

ईस तरह गेलाभाई (घेलाभाई) आवडदान खडिया को गाँव देनेवाले राजविओं का भी इतिहास में उल्लेख मिलता है। घेला खडियाने राव दुहा हाडा (बुंदी के राजवी) की बियाखरी भी लिखी है तथा उसके वंशज जगा खडियाने 'राठोड रतनसिंह की वचनिका' भी लिखी है। चारणो की वंशावली में चारणों को मिले गाँवों के बारेमें इतनी विपुल मात्रा में सामग्री मिलती है कि अेक स्वतंत्र शोधनिबंध लिखा जा सकता है।

❑ **निष्कर्ष :**

'चारणोंकी वंशावली से प्राप्त ऐतिहासिक दस्तावेजो' विषयक कवितों का विश्लेषण करने से वहिओं से इस बात की प्रतीति होती है कि वहिओं से भी ऐतिहासिक विषयक जानकारी मिलती है। यदि हम उसका निर-क्षीर विवेक से अध्ययन करके तथ्यों को परखें तो इतिहासकी टूटती कडियो को जोडने में सुविधा हो सकती है। हालांकि इस वहिओं का उपयोग करना इतना आसान नहीं है। क्यों कि बारोटो-रावलोने वहिओं पर अपना अेकाधिकार जमाने के लिअे वहिओं में सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया है। वही लेखन के संकेतो को समझाने से वे आज भी झिझकते हैं। वे अपनी वहिओं की प्रतिलिपि भी नहीं करने देते है। संकुचित मानस के कारण वे ऐसां करते हैं। उनको विश्वास में लेकर इस स्तोत्र का समुचित विनियोग करना चाहिये। वही में कई सुनी-सूनाई बातों को भी उन्होंने लिखा है। वही ग्रंथों की स्थिति भी जर्जरित सी होती है। इसलिए पूरी वंशावली यथातथ्य रूप में नहीं मिलती है। कभी-कभी वह एक ही व्यक्ति का उपनाम लिखते हैं। इसलिये सत्य की खोज करना बहुत कठिन हो जाता है। मगर इन सब कठिनाइयों को पार कर पायें तो ऐतिहासिक तथ्यों का विपुल स्रोत मिल सकता है।

इतिहास लेखन में वहियों का समुचित विनियोग करना अत्यंत आवश्यक है। क्यों कि वही से प्राप्त घटनाएँ इतिहास और साहित्य में मिलती है। तथा उस घटना विषयक ताम्रपत्र भी मिलते हैं। इस प्रकार वही का ऐतिहासिक महत्व सिध्ध होता है। संशोधन करने से वहिओं में से कुछ ऐसी जानकारी मिलती हैं जिसका इतिहास में

उल्लेख नहीं है । यदि हम इस ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन करें और उसमें निहित सत्य को प्रकाश में ला सकें तो इतिहास की कितनी ही टूटती कडियों को सुचारु रुप में जोडा जा सकता है । मुझे विश्वास है कि आनेवाले समय में इतिहासविद् वहिओं का अध्ययन करके ऐतिहासिक दस्तावेजों को ढूँढ निकालेंगे ।

संदर्भ सूची

1. मावदानजी रतनु : 'यदुवंश प्रकाश - भाग-१, पृ. 94
2. मोरबी (जि. राजकोट) के रावलदेव वाघा मामैया के पूर्वजोने लिखी चारणो की वहिअें में से 'रोहडिया' की वही से प्राप्त विवरण
3. सन्दर्भ नोंध : 1 अनुसार, पृ. 122
4. विभाजी महेडु : 'विभा विलास', पृ. 140
5. सं. रामकरण आसोया : 'बांकीदास की ख्यात', पृ. 80
6. बदरीप्रसाद साकरिया : 'मुहणोत नेणसी री ख्यात', पृ. 121
7. शंकरदान देथा : संपादक : 'हरिरस', पृ. 35
8. रतुदान रोहडिया : 'गुजरातना चारणी साहित्यनो इतिहास' पृ. 285
9. डॉ. शिवदान चारण : 'भक्त कवि इसरदासनी भक्ति भावना', पृ. 172
10. डॉ. अंबादान रोहडिया : 'हरदास मिसण : एक अध्ययन', अप्रगट शोधनिंबध, पृ. 28
11. भीमजी भारमल रावल देव (मु. मोरझर, जि. भुज-कच्छ) की वही से प्राप्त लिगत और दिनांक 18-6-87 को भीमजीदेव से हुआ वार्तालाप.
12. गोपालदास जोगीदास जोशी : 'ईडर राज्यनो इतिहास', पृ. 215
13. सांयाजी झूला के गढमें प्रवेश के समय, पडथार में पश्चिम की और दिवाल में पूर्वाभिमुख एक लेख मिलता है । उस में राव कल्याणमल की और से मिले कुवावा गाँव का उल्लेख मिलता है । दिनांक 29-9-87 को मेंने इस लेख को देखा है ।
14. सं. रतुदान रोहडिया : 'नागदमण', पृ. 5
15. सं. हमीरदान मोतीसर :'नागदमण', पृ. 8
16. हिरालाल माहेश्वरी : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ. 117
17. सं. अंबादान रोहडिया, रतुदान रोहडिया : 'रुकिमणीहरण', पृ. 6-10
18. सन्दर्भ नोंध : अनुसार
19. भारतदानजी सुरताणिया (मु. मोरझर, जि. भूज) के संग्रह में स्थित ताम्रपत्र की दिनांक 18-6-87 के रोज की नकल
20. गोहिल अजितसिंह : 'राजपूत वंश सागर', भाग १, पृ. 496
21. सन्दर्भ नोंध 1 अनुसार, पृ. 152

22. सन्दर्भ नोंध 11 अनुसार
23. पनोरिया (ते. चोटण, जि. बाडमेरा) में स्थित हरदासजी के वंशज हरिदानजी मिसण और प्रभुदानजी मिसण से दिनांक 16-3-88 के दिन हुआ वार्तालाप
24. देसाइ लल्लुभाई भीमभाई : 'चौहाण कुल कल्पद्रुम', पृ. 189
25. सन्दर्भ नोंध 11 अनुसार
26. रावलदेव श्री केसरभाई (रे. माळीया, जि. राजकोट) के पूर्वजोने लिखी वही से दिनांक 10-2-95 के रोज प्राप्त की बातें ।
27. सन्दर्भ नोंध 1 अनुसार, पृ. 267
28. राजडदान रोहडिया के वंशज खीमराजभाई देवाभाई रोहडिया से खडकाणा गाँवमें दिनांक 10-11-87 के रोज वार्तालाप
29. सन्दर्भ नोंध 26 अनुसार
30. अ. गोरवीयाळा गांव में अजुभाई गोरवीयाळा से दिनांक 15-4-88 को हुई चर्चा,
    ब. नाथुभाई गोरवीयाळा (मु.दात्राणा, जि.जूनागढ) से दिनांक 16-4-88 को हुई चर्चा,
    क. गगुभाई गढवी (मु. मोणिया, ता. विसावदर, जि. जुनागढ) से दिनांक 20-5-88 को हुई चर्चा.
31. आइदानजी रावलदेव (मु. भावनगर) के पूर्वजों द्वारा लिखी वही से प्राप्त विगत अनुसार दिनांक 10-7-95
32. सन्दर्भ नोंध 26 अनुसार
33. सन्दर्भ नोंध 31 अनुसार
34. शंभुप्रसाद देसाई, 'सौराष्ट्रनो इतिहास', पृ. 696
35. सन्दर्भ नोंध 11 अनुसार
36. श्री भारतदानजी सुरताणिया (मु. मोरझर, जि. भूज) से दिनांक 28-6-87 के रोज हुआ वार्तालाप
37. सन्दर्भ नोंध 31 अनुसार
38. श्री धीरुभाई लांगावदरा (मूल गाँव मेथली, हाल : भावनगर) से दिनांक 11-7-95 के दिन हुआ वार्तालाप
39. सन्दर्भ नोंध 31 अनुसार
40. सन्दर्भ नोंध 20 अनुसार, पृ. 306
41. ऐजन : पृ. 260
42. ऐजन : पृ. 282

✍ डॉ. अंबादान रोहड़िया - रीडर, गुजराती भाषा-साहित्य भवन, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट(गुज.)

भाद्राजून की तवारीख

- डॉ. भगवतीलाल व्यास

तवारीख का प्रारंभ मालदेव के पुत्र रतनसिंह द्वारा गाँव गोदावा बसाने से प्रारम्भ होता है। रतनसिंह सांगाजी की सेवा में भी रहे। सांगा ने उन्हें गाँव "चौरासी फूलियां री" इनायत किया था। रतनसिंह 1610 वि. सं. में गाँव आया। मेड़ता के राव वीरमदेव के विरुद्ध मालदेव की फौज में लड़ते हुये वे काम आ गये। रतनसिंह के पुत्र सादूलसिंह के पुत्र रतनदास सूरसिंह की सेवा में रहे। हुकमदास के पुत्र उदयभान हुये। उदयभान नं बादशाह का दिया हुआ पट्टा स्वीकार नहीं किया।

रतनसिंह की तरह उदयभान भी उदयपुर राणाजी की सेवा में रहे। उदयपुर महाराणा के भाई की लड़की का उदयभान के साथ विवाह का उल्लेख इस तवारीख में मिलता है। उदयभान को महाराणा ने सादड़ी सहित नौ गाँव इनायत किये थे। बाद में उदयभान ने महाराजा जसवन्तसिंहजी की भी सेवा की।

महारानी आढीज़ी द्वारा बादशाह की फौज से झगड़ा किया गया था। पर बाद में महाराजा अजीतसिंह को लेकर दुर्गादास राजधानी की सीमा से मारवाड़ की तरफ आ रहे थे। उस समय भी उदयभाण उनके साथ था और झगड़े में घायल हुआ था, ऐसा उल्लेख इस तवारीख में मिलता है। इसी युद्ध में उदयभाण काम आ गये थे। उदयभान के पुत्र बिहारीदास महाराजा अजीतसिंह की सेवा में रहे और धुलाड़ा के युद्ध में उन्होंने अच्छी तलवार बजाई थी।

बिहारीदास के पुत्र बाघसिंहजी महाराजा अभयसिंहजी की सेवा में रहे और अहमदाबाद के युद्ध में अच्छा शौर्य प्रदर्शन किया था। बाघसिंहजी के पुत्र उदयराज हुये और उदयराज और उन्होंने बखतसिंह और उदयसिंह की सेवा की। नागौर में मराठों से हुये युद्ध में उदयराजजी काम आ गये। उदयराज के पुत्र उम्मेदसिंहजी हुये जो सिंधिया के साथ हुई लड़ाई में घायल हुये जिनका जिक्र भी मिलता है। उम्मेदसिंह के दो पुत्र थे – जालमसिंह और जगत्सिंह। महाराजा धौलसिंह के समय तक

जालमसिंह महाराजा भीमसिंह की बंदगी में रहे। कृष्णाकुमारी के प्रसंग में महाराजा मानसिंह की ओर से जो फौज गई थी उसमें जालमसिंह भी थे। जालमसिंह के पुत्र बखतावरसिंह हुये और बखतावरसिंह का दूसरा नाम इन्द्रभान हुआ। इन्द्रभान महाराजा तखतसिंहजी की सेवा में रहे।

भाद्राजून के ठाकुरों द्वारा महाराजा के साथ अनेक युद्धों में जो शौर्य प्रदर्शन किया उसके अनेक उल्लेख इस तवारीख में मिलते हैं और उसके अलावा उनके परिवार का भी पूरा वर्णन उस तवारीख में दिया गया है। उदाहरण के लिए रतनसिंह के 10 पुत्र हुये थे। उन्होंने दो विवाह किये थे। देवालिया के सिसोदिया नखद की पुत्री रूपकंवर से उनका पहला विवाह हुआ और दूसरा विवाह रावलोत भाटी खेतसिंह की पोती हीरकंवर के साथ हुआ।

सादूलसिंह के अलावा उनके 10 पुत्रों में सुल्तानसिंह, भीमसिंह, जैतसिंह, दलपतसिंह, सिरदारसिंह, नाथूसिंह, माधोसिंह और तेजसिंह थे। इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के प्रथम चरण तक भाद्राजून की पूरी वंशावली उनके विवाह और संतति और मारवाड़ के शासकों की बंदगी में भाद्राजून के ठाकुरों के द्वारा की गई उल्लेखनीय सेवाओं के प्रमाण मिलते हैं।

— असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

गोगुन्दा ठिकाने के पट्टे-परवानों का ऐतिहासिक महत्त्व

- डॉ. सरोज गुप्ता

पट्टे व परवाने आदि पुरालेखीय दस्तावेज इतिहास जानने के प्रामाणिक स्रोत हैं। एक–दूसरे को लिखे गए पत्रों और राज्य की ओर से जारी किए गये जागीर–पट्टों में राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक व सामाजिक पहलुओं के बारे में जानकारी मिलने के साथ–साथ राज्य व ठिकानों के आपसी सम्बन्धों का बोध भी होता है। पट्टे–परवाने ख्यात–बात साहित्य से अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं। मेवाड़ के इतिहास में तवारीखों के बहुत कम लिखे जाने के कारण ठिकानों का इतिहास अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। समय के साथ–साथ अधिकांश ठिकानों की सामग्री नष्ट हो गई है। फिर भी कुछ ठिकानों के पट्टे–परवाने किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं जिनके आधार पर हमें मेवाड़ राज्य के ठिकानों का इतिहास समझने में सहायता मिलती है।

सर्वप्रथम डॉ. के.एस.गुप्ता ने ठिकाना बनेड़ा व स्वर्गीय डॉ. नारायण सिंह भाटी ने मेवाड़–मारवाड़ के दस्तावेजों को प्रकाश में लाने का उल्लेखनीय काम किया है। अनन्तर कानोता, बनेड़ा, मंडावा, रूपोहली, करेड़ा व बेदला आदि ठिकानों के पत्रों का सर्वेक्षण करके डॉ. राजेन्द्र जोशी के द्वारा उनका ऐतिहासिक महत्त्व उजागर किया गया। डॉ. हुकुम सिंह भाटी ने विजेपुर ठिकाने के पट्टे–परवानों का सम्पादन व प्रकाशन का कार्य किया है। राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली द्वारा स्वीकृत योजना के अन्तर्गत इस कार्य को आगे बढ़ाया गया व देराश्री संग्रह (बनेड़ा) के अलावा भींडर, सरदारगढ़ और गोगुन्दा ठिकानों के कतिपय महत्त्वपूर्ण पट्टे–परवाने आदि पुरालेखीय दस्तावेजों का संकलन व सम्पादन का कार्य किया।

(देराश्री संग्रह मूलतः बनेड़ा दान–पत्रों का ही संग्रह है। अभिलेखों में ग्रास, सांसण व डोहली शब्द का प्रयोग किया गया है। ये शब्द मुख्य रूप से आजीविका हेतु दान में दी गई भूमि के लिए प्रयुक्त किए गए हैं।)

ठिकाना गोगुन्दा से हमें कई पट्टे–परवाने प्राप्त हुए हैं, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण पट्टों के विवरण निम्नलिखित हैं :

1. महाराणा करणसिंह द्वारा प्रदत्त पट्टा कान्हसिंह झाला गोगुन्दा को (वि.सं. 1678) –

महाराणा करणसिंह ने गोगुन्दा के झाला कान्हसिंह को 12 गाँव के रूप में व 12 गाँव 'रखवाली' के प्रदान किए।

(राज्य की सैनिक व प्रशासनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए गाँवों के पट्टे दिये जाते थे और कर्त्तव्य का निर्वाह करने तक यह पट्टे वैधानिक माने जाते थे। सैनिक सेवाओं के अलावा लुटेरों व डकैतों से जनता की रक्षा करने वाले जागीरदारों को राज्य की ओर से 'रखवाली' निमित्त अतिरिक्त गाँव प्रदान किए जाते थे जिसका उपभोग वे रखवाली का दायित्त्व निभाने तक करते रहते थे।)

2. महाराणा करणसिंह द्वारा प्रदत्त पट्टा काहू झाला गोगुन्दा को (वि.सं. 1679) –

गोगुन्दा के काहसिंह झाला को पहले 12 गाँव जो पट्टे में थे उसकी विगत दी है, फिर ताणा के बदले 13 गाँव प्रदान किये उसका ब्यौरा दिया है।

3. महाराणा जगत्‌सिंह द्वारा प्रदत्त पट्टा काहू झाला गोगुन्दा को (वि.सं. 1707) –

महाराणा जगत्‌सिंह ने काहसिंह झाला को बगड़ी गाँव का पुनः पट्टा दिया।

4. महाराणा राजसिंह का पत्र झाला जसवंतसिंह के नाम (वि.सं. 1728) –

महाराणा राजसिंह (प्रथम) ने झाला जसवंतसिंह को ससैन्य मेवल पहुँचने का आदेश दिया था।

5. महाराणा जयसिंह का पत्र कंवर रामसिंह झाला के नाम (वि.सं. 1743) –

कंवर रामसिंह झाला ने महाराणा से पूछा कि शाहजादा अकबर एक बड़ी सेना के साथ इधर आ रहा है और इस स्थिति में

क्या करना चाहिए? तब महाराणा जयसिंह ने लिखा कि एक विश्वासपात्र आदमी भेजकर दुर्गादास राठौड़ जो अकबर का पक्षधर है उसे बतावें कि अकबर का मेवाड़ आना उचित नहीं है। वनेरा के घाटे की पूरी सुरक्षा का प्रबन्ध करना।

6. महाराणा जयसिंह का पत्र रामसिंह झाला के नाम (वि.सं. 1761) –

महाराणा की ओर से लिखे पत्र में रामसिंह झाला को जसनमर की चौकी का प्रबन्ध करने के निर्देश दिए हैं।

7. महाराणा अमरसिंह की ओर से पत्र पटेलों के नाम (वि.सं. 1784) –

ठिकाना गोगुन्दा की सीमा पर पड़ने वाले मजावड़ी गाँव के पटेल लोगों को यह निर्देश दिया है कि अपनी हद में खेती करें। (गोगुन्दा की हद में प्रवेश करने का प्रयास नहीं करें।)

8. महाराणा संग्रामसिंह द्वारा प्रदत्त पट्टा अजयसिंह झाला को (वि.सं. 1796) –

अजयसिंह झाला को परावली के गादोटा घाटा के गाँव दिये जाने का उल्लेख हुआ है। वहाँ सुरक्षा के लिए गढ़ी का निर्माण करने के निर्देश दिए हैं। ये गांव किससे 'तागीर' कर दिए इसका उल्लेख भी हुआ है। (पट्टे के गाँव हस्तान्तरित करने पर अथवा जब्त करने की स्थिति में पट्टेधारी का स्वामित्व उस गाँव से खत्म हो जाता था इसके लिए तागीर शब्द प्रयुक्त हुआ है)

9. महाराणा संग्रामसिंह द्वारा प्रदत्त पट्टा अजयसिंह झाला को (वि.सं. 1768) –

महाराणा संग्रामसिंह के आदेश से परावली पाँच गाँवों से 'वधारे' स्वरूप अजयसिंह झाला को प्रदान की गई।

10. शाह सदाराम का पत्र गांव पटेलों के नाम (वि.सं. 1818) –

गोडवाड परगने के दो गाँव पालड़ी व कोरते वधारे स्वरूप जसवंतसिंह को प्रदान किये हैं; अतः वहाँ पर उनका कब्जा करने

दें। कोरतो गाँव आस–पास के क्षेत्र सहित दिया है; अतः स्वयं वहाँ जाकर बसे। पट्टे के अनुरूप राज्य की सेवा करें।

11. महाराणा भीमसिंह का पत्र छत्रसाल झाला के नाम (वि.सं. 1853) –

तलवार बंधाई के समय महाराणा को नजराना देने की आवश्यकता नहीं है। (गोगुन्दा ठिकाने के लिए इसकी छूट रही है।) इस अवसर पर महाराणा की ओर से अब हाथी, मोतियों की जोड़ी व गाँव इत्यादि प्रदान किये जायेंगे।

(जागीरदार की गद्दीनशीनी के समय तलवार बंधाई की रस्म अदा की जाती थी, उस समय जागीरदार को 'तलवार बंधाई' का नजराना महाराणा को नजर करना पड़ता था। गोगुन्दा जैसे बड़े जागीरदार तलवार बंधाई के नजराने से मुक्त थे, बल्कि गद्दीनशीनी के अवसर पर राज्य की ओर से हाथी घोड़े के अलावा बहुमूल्य आभूषण प्रदान कर जागीरदार को सम्मानित किया जाता था।) गद्दीनशीनी के समय महाराणा की ओर से तलवार बंधाई की रस्म अदा कर एक निश्चित रकम ठिकाने वालों से ली जाती थी।

12. महाराणा भीमसिंह द्वारा प्रदत्त पट्टा छत्रसाल झाला को (वि.सं. 1853) –

इसमें महाराणा भीमसिंह द्वारा छत्रसाल झाला को दिये गये पट्टे के गाँवों का उल्लेख है। महाराणा की आज्ञानुसार अच्छे घोड़े व कुशल सैनिकों के साथ सेवाएँ देनी होंगी।

13. राज्य की ओर से गाँव पटेलों के नाम पत्र (वि.सं. 1875) –

छत्रसाल झाला को जो गाँव मिले हैं वहाँ अमल (कब्जा) कराने में मदद करें।

14. महाराणा भीमसिंह का पत्र छत्रसाल झाला के नाम (वि.सं. 1853) –

छत्रसाल झाला को रामसिंह की हवेली व बाड़ी की 10 बीघा भूमि प्रदान करनी है। इसमें रद्दोबदल नहीं होगी।

15. उदयपुर राज्य की ओर का पत्र गाँव पटेलों के नाम (वि.सं. 1886) –

महाराणा (जवानसिंह) गोगुन्दा आये उस समय उनकी अच्छी खातिर की तब महाराणा ने खुश होकर चीपाला का गुड़ा ग्राम कुंवर लालसिंह को प्रदान किया, उस पर अधिकार करावें।

16. मेहता रायसिंह का पत्र कुंवर लालसिंह झाला के नाम (वि.सं. 1896) –

परम्परागत सेवा चाकरी करते आये हैं वैसे करते रहें, आने में विलम्ब नहीं करें।

17. लालसिंह झाला के नाम रुक्का (वि.सं. 1896) –

यथाशीघ्र गढ़बोर के शिविर में आकर महाराणा से मिलें, किसी बात का संदेह नहीं करें। डेढ़ वर्ष बखेड़ा रहा इसमें जो खर्चा लगा वह दिया जायगा। स्वामिभक्त रहकर सेवा करें। तुम्हारे ऊपर जो इल्जाम लगाया गया, वह रद्द किया जाता है।

(टिप्पणी – गोगुन्दा के स्वामी शत्रुसाल के पुत्र लालसिंह ने अपने पिता से ठिकाने का अधिकार छीन लिया इस पर शत्रुसाल ने लालसिंह का हक समाप्त कर अपने पौत्र मानसिंह को उत्तराधिकारी बनाने का प्रयास किया। शार्दूलसिंह का पक्ष लिये जाने पर महाराणा सरदारसिंह लालसिंह से द्वेष रखता था। इसलिए उस पर जादू–टोने का अपराध लगाकर उसे खत्म करने के लिए शाहपुरा के राजाधिराज माधवसिंह को जाने की आज्ञा दी, परन्तु बेगू, कोठारिया, सलुम्बर आदि उमरावों ने इसका विरोध किया क्योंकि लालसिंह का अपराध प्रमाणित हुए बिना यह कदम उठाना अनुचित था – गोगुन्दा री ख्यात, पृ. 24 बही, प्रताप शोध प्रतिष्ठान)

18. महाराणा स्वरूपसिंह का पत्र लालसिंह झाला के नाम (वि.सं. 1911) –

गोगुन्दा ठिकाने का परम्परागत जो दस्तूर चलता आया है, वह रहेगा, उसमें अन्तर नहीं आयेगा।

19. उदयपुर महाराणा स्वरूपसिंह की ओर से लालसिंह झाला के नाम पत्र (वि.सं. 1918) –

तलवार बंधाई के समय नजराने की छूट परम्परागत रही है। नेग के रुपये पहले दिये जाते थे, वैसे देवें। कैद नजराना देने में ढील नहीं होगी। राज्य की ओर से हाथी, घोड़ा, सिरोपाव, मोतियों की कंठी, तलवार आदि प्रदान किये जायेंगे।

(जागीर के नये गाँव प्राप्त करते समय अथवा जब्त किये गये गाँव का पट्टा पुनः करते समय जागीरदार को 'कैद' की राशि देनी पड़ती थी।)

गोगुन्दा ठिकाने के पट्टे-परवानों का अध्ययन कर हमें पता चलता है कि तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक जीवन के क्या मुख्य पहलू थे।

व्याख्याता
Tribal Research Institute
उदयपुर

छत्तीस राजवंश और मोहिल

— डॉ. रतनलाल मिश्र

हमारे देश में राजवंशों की संख्या पारम्परिक रूप से छत्तीस मानी जाती रही हैं। यह संख्या कोई प्रामाणिक आधार लिये हुए नहीं है। प्राचीनकाल से ही सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, अग्निवंशी और ऋषि से समुत्पन्न राजवंशों की बात सुनी जाती है।

प्राचीनकाल की परिस्थितियों का दिग्दर्शन करने से वास्तविक तथ्य प्रकाश में आते हैं। उस युग में अनेक कबीलों के लोग देश के विभिन्न भू–भागों में बसे हुये थे। इनकी अपनी जीवन पद्धति थी। पारस्परिक सम्पर्क के अभाव में इन कबीलों के लोग सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाये थे। इन कबीलों में अधिकांशतः विकास की प्रारम्भिक स्थिति में थे। आर्यों के आगमन से पूर्व कुछ कबीले ऐसे भी थे जो अनेक दृष्टियों से विकसित कहे जा सकते हैं। राइस डेविड्स की मान्यता है कि यह कहना कि सभी कबीले विकास की प्रारम्भिक स्थिति में थे, ठीक नहीं है।[1] इस धारणा ने अनेक अध्ययनों को दूषित किया है।

धीरे–धीरे इनमें से कुछ कबीलों के लोगों में पारस्परिक सम्पर्क हुआ और सामाजिक भावना का सूत्रपात हुआ। इस सम्पर्क के कारण ये कबीले एक दूसरे की जीवन पद्धतियों, विचारधाराओं, मान्यताओं से परिचित हुये। उनकी अपनी जीवनप्रणाली में भी निरन्तर सुधार होता रहा। कालान्तर में, वस्तुतः एक लम्बे अन्तराल के पश्चात्, इनमें से कुछ सत्ता से संयुक्त हो गये, तो इन्हें राजवंशों में विभिन्न नामों से सम्मिलित कर लिया गया। पारम्परिक छत्तीस राजवंशों की सूची में अधिकांशतः इन्हीं कबीलों के लोग हैं।

इसके साथ–साथ एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। विश्व में अनेक वर्षों से अतीव प्राचीनकाल से आवागमन और प्रव्रजन की प्रक्रिया चलती रही है। अनेक वंशों, जातियों के लोग अनेक कारणों से अपने स्थानों को छोड़कर अन्यत्र जाने को बाध्य हुये हैं। इन कारणों में दूसरी शक्तिशाली जाति का आक्रमण, अच्छे भोजनादि एवं पशु आहार की संभावना, सुखद वसनीय स्थान की खोज आदि प्रमुख है।

उपर्युक्त कारणों से विस्थापित होकर अनेक जातियाँ इधर–उधर भटकती हुई विभिन्न भू–भागों में चली आयीं और कालान्तर में इन नये भू–भागों में बस गयीं। इन जातियों में कुछ सत्ता से संयुक्त हो गयीं। इन्हीं विदेशी जातियों को क्षत्रियत्व का दर्जा देकर राजकुलों में सम्मिलित कर लिया गया। किसी को सूर्य से संमुत्पन्न, किसी को चन्द्र से समुद्भूत और किसी को अग्नि से संभूत मान लिया गया।

इस सम्बन्ध में उस धारणा के उद्गम की ओर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है, जिसके कारण इन विदेशी शासक जातियों को सूर्य, चन्द्र, अग्नि से संपर्कित किया गया। शासक जातियाँ विश्व में सर्वत्र ही अपनी उत्पत्ति में दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती रही हैं। वे अपने आपको देवों की संतान मानती रही हैं। सामान्य लोगों से अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने की भावना ही इसका प्रमुख कारण है। देवपुत्र, देवानांप्रिय जैसी उपाधियों को धारण कर वे समाज में अपनी जन्मजात श्रेष्ठता स्थापित करते रहे हैं। भाटों और चारणों का भरपूर सहयोग उनको इस कार्य में मिलता रहा है।

इस संक्षिप्त भूमिका के पश्चात् हम छत्तीस राजकुलों की बात प्रारम्भ करते हैं। कर्नल टाड ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "एनल्स् एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान" का प्रणयन करते समय इन छत्तीस कुलों की सूचियाँ विभिन्न सूत्रों से संगृहीत की थीं। उसने उन सभी सूचियों का मिलान करके एक संशोधित सूची भी तैयार की थी, जो उसकी दृष्टि में ठीक थी।[2]

प्रथम सूची टॉड ने एक प्राचीन ग्रंथ के छुटकर पत्र से ली थी जो मारवाड़ के प्राचीन नगर नाडोल के जैन मन्दिर के एक यति से प्राप्त हुआ था। दूसरी सूची कवि चन्दवरदायी की थी तथा तीसरी कुमारपाल चरित नामक ग्रंथ से ली गयी थी। चौथी सूची खीचियों के एक भाट से ली गयी थी तथा पाँचवी संशोधित सूची स्वयं टॉड ने प्रस्तुत की थी।[3]

प्रथम सूची में प्रायः सभी प्रमुख राजकुलों के नाम दिये गये हैं। इस सूची में मोहिल राजवंश का नाम नहीं है। यद्यपि चौहान वंश का नाम दिया गया है। चन्दबरदायी वाली सूची में यदु, चौहान, चालुक्य, पड़िहार, राठौड़ आदि के नाम संख्या 30 तक दिये गये हैं। इस सूची में भी मोहिल राजवंश को सम्मिलित नहीं किया गया है। शेष अन्य सूचियों में भी इस राजवंश का नामोल्लेख नहीं मिलता है। टॉड ने इन सभी सूचियों और मध्यकालीन

राजस्थान के इतिहास के कथाक्रम को ध्यान में रखकर एक संशोधित सूची उपस्थित की है। इस सूची में संख्या 33 पर मोहिल राजवंश का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।[4]

उपर्युक्त राजवंशों की नामावली चन्दबरदायी ने निम्नलिखित प्रसिद्ध पद्य में दी है –

रवि ससि जाधव वंश, ककुत्स्थ परमार सदावर।।
चहुवान चालुक्क, छंदक सिलार अभीयर।
दोयमत्त मकावन, गरूअ, गोहिल गोहिल पुत।।
चापोत्कट परिहार, राव राठौड़ रोस जुत।।
देवड़ा टाक सैंधव अनिग, योतिक प्रतिहार दधिषट्।।
कारट्टपाल कीटपाल हुल्ल, हरितट गोर कलाप मट।।
धन्य पालक निकुम्मवर, राजपाल कविनीस।।
काल वधुर के आदि दे, बसे वंस छत्तीस।।[5]

इस पद्य के अनेक पाठ–भेद मिलते हैं और अर्थ भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हैं। कुमारपालप्रबन्ध विक्रमी 1492 की रचना है, जिसमें छत्तीस राजकुलों की सूची मिलती है। टॉड द्वारा दी गयी सूची वस्तुतः इसी के आधार पर है।

इन छत्तीस राजवंशों की नामावली में जिन राजवंशों का उल्लेख किया गया है उनके सम्बन्ध में एक प्राचीन पद्य सुविख्यात है।

दस रवि सो दस चन्द्र सो, द्वादश ऋषि प्रवाण।
चार हुताशन से भये, वंश छत्तीस बखाण।।

राजस्थान के विख्यात इतिहासकार डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने "राजपूताने का इतिहास" प्रथम भाग में कुछ राजवंशों का उल्लेख किया है। इनमें मौर्य, मालव, यूनानी, अर्जुनायन, क्षत्रप, कुशन, गुप्त, गुर्जर, वैस, चावड़ा, प्रतिहार, परमार, सोलंकी, नाग, यौधेय, तँवर, दहिया, दाहिमा, निकुंभ, डोडिया और गौड़ हैं।[6]

टॉड ने यद्यपि मोहिलों को छत्तीस राजवंशों में माना है, तथापि आगे इस वंश पर टिप्पणी करते हुये उसका कथन निम्न प्रकार से है।

"वंशावली लिखने वालों ने जिन कारणों से इस जाति को यह (उच्च) स्थान दिया है उन (कारणों) पर विचार करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है। इनके प्राचीन इतिहास से केवल मात्र इतना ही जाना जा सका है कि वर्तमान बीकानेर राज्य की स्थापना से पूर्व यह जाति इस प्रदेश के बड़े भू–भाग में बसी हुई थी। राठौड़ राज्य के संस्थापकों ने यद्यपि मोहिलों का सर्वनाश नहीं किया तो भी उन्हें वहाँ से खदेड़ अवश्य दिया।"

कर्नल टॉड के अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों ने भी छत्तीस राजवंशों की नामावली अपनी रचनाओं में दी है। मुंहता नैणसी ने अनेक राजवंशों का उल्लेख किया है। उसने उन वंशों की विभिन्न शाखाओं का भी उल्लेख किया है।

अनेक लेखक मोहिलों की गणना चौहानों की शाखा में करते हैं तथा उनको अलग से एक राजवंश नहीं मानते हैं। मुंहता नैणसी ने चौहानों की 24 शाखायें दी हैं। हाडा, खीची, सोनिगरा, देवड़ा, राकसिया, बंटक, गीला, देडरिया, बगसरिया, चीबा, चाहिल, सेलोत, बेहल, बीडा, बोलत, गोलासण, बैस, सेपटा, डीमडिया, म्हालण, कांपलिया, नहरवण और हुरड़ा। (वस्तुतः ये शाखायें 23 हैं)

उपर्युक्त सूची में चाहिलों का नाम है, पर मोहिलों का नहीं है।[8] इसी से मिलती जुलती सूची बांकीदास ने दी है। इस सूची में संख्या 22 पर मोहिलों का उल्लेख किया गया है। चाहिलों का उल्लेख संख्या 5 पर आता है। टॉड ने चौहानों की जिन शाखाओं का उल्लेख किया है उसमें मोहिलों का नाम नहीं है क्योंकि टॉड मोहिलों को अलग वंश मानता है। इसी प्रकार नैणसी की चौहानों की शाखा में भी मोहिलों का नाम नहीं आता है। जगदीशसिंह गहलोत ने अपने राजस्थान के राजवंशों के इतिहास में मोहिलों का नाम दिया है।[9]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात है कि कुछ विद्वान् मोहिलों को स्वतन्त्र राजवंश मानते हैं तथा कुछ उन्हें चौहानों की एक शाखा मानते हैं। इस बात पर आगे चलकर विस्तृत रूप से विचार किया जावेगा।

कवि चन्दबरदायी ने चार क्षत्रिय कुलों को अग्निकुंड से उत्पन्न मानने की नयी कल्पना की थी। ये कुल थे – परमार, सोलंकी, प्रतिहार

औ. चौहान।[10] अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने की इस कल्पना को आधुनिक काल में विद्वानों ने सर्वथा निरादृत कर दिया है। इसके विभिन्न अर्थ निकाले गये हैं। "चन्दबरदायी की इस कवि–कल्पना से सीधा ऐतिहासिक तथ्य निकलता है कि जब दैत्यों (हूणों और उनके पीछे अरबों) ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तो प्रसिद्ध क्षत्रियवंशों ने जो आबू के आस–पास स्थित थे देश और धर्म की रक्षा के लिये अग्नि और ब्राह्मणों के सामने व्रत लिया और वीरोचित नयी उपाधियाँ धारण कीं।"[11]

अगर अग्निकुल वाले क्षत्रियों के अग्निकुंड से समुत्पत्ति की कथा का गहन अध्ययन किया जावे तो इसमें अनेक विसंगतियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। बरदायी जिन कुलों को अग्निकुण्ड से उद्भूत बताता है उनमें से कई आज अपने को अग्निवंशी न मानकर सूर्यवंशी या रघुवंशी मानते हैं। प्रतिहार अपने को सूर्यवंशी मानते हैं जबकि बरदायी उन्हें अग्निकुलीय बताता है।

'स्वभ्रात्रा रामभद्रस्य प्रतिहार्यं कृतं यतः।
श्रीप्रतिहारवंशोऽयम् तश्चौन्नतिमाप्नुयात्।।[12]

अग्निकुण्ड में डाली हुयी आहुतियाँ भस्म हो जाती हैं। अग्नि का प्रधान धर्म जलाना है, उत्पन्न करना नहीं, ऐसी स्थिति में अगर दैवी अवधारणा में विश्वास नहीं करें तो अग्निकुंड से क्षत्रियों की उत्पत्ति के सिद्धान्त को मानने में कठिनाई उपस्थित होती है।

वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है कि जब विदेशी जातियों ने सत्ता पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तो समाज में उनको उच्च.स्थान देना अनिवार्य हो गया। किसी को प्राचीन क्षत्रियों की भांति सूर्यवंशी, किसी को चन्द्र और अग्निवंशी बताकर तत्कालीन समाज में उनकी ग्राह्यता प्रस्थापित की गयी। यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी अतीव आवश्यक है कि पुराणों एवं अन्य प्राचीन ग्रंथों में छत्तीस राजकुलों का वर्णन नहीं मिलता है।

आज ऐतिहासिक शोध आगे बढ़ चुकी है। अनेक विद्वानों ने शासकीय वंशों के उद्गम आदि पर शोधग्रन्थों का प्रणयन किया है। इन ग्रंथ कर्त्ताओं ने अनेक राजवंशों को विदेशी माना है। ऐसे विद्वानों में डॉ.

भण्डारकर, वी. स्मिथ, कर्नल टॉड, क्रुक आदि देशी–विदेशी विद्वान् हैं। कुछ भारतीय इतिहासकार इन विदेशियों को विशुद्ध आर्य संतान मानती है। ऐसे विद्वानों में डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सी.वी. वैद्य आदि हैं। वस्तुतः हिन्दुत्व के बढ़े हुये व्यामोह ने इन विद्वानों की ऐतिहासिक दृष्टि को मन्द कर दिया है। ये विद्वान् हूण, कुषाण, शक और यूची आदि स्पष्ट रूप से ज्ञात विदेशी जातियों को भी क्षत्रियत्व की सीमा में ले आते हैं। उनका कथन है कि ब्राह्मणों के अदर्शन से ये क्षत्रिय जातियाँ वृषलत्व को प्राप्त हो गयी थीं। 'अदर्शनात्' से वास्तव में मनु का क्या तात्पर्य था यह भी स्पष्ट नहीं है।[13] मनु ने इन विदेशी जातियों को वर्णाश्रम धर्म में भी सम्मिलित कर लिया। यद्यपि यवनों, पल्लवों, और पारदों जैसे हीन क्षत्रियों के रूप में उन्होंने अन्तर्जातीय विवाहों और उनके परिणामों, संकर जातियों के उदय और जातिहीन यवनों, शकों, चिनों, पल्लवों और द्रविड़ों आदि के ब्रात्यों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। चूँकि भारत में प्रवेश करने वाली जातियाँ विजेताओं के रूप में आयी थीं; अतः उनकी अवहेलना और अपमान संभव नहीं था। उनको प्रायः क्षत्रियों के समकक्ष स्थान देना पड़ा।[14] आज इस धारणा के प्रति विद्वानों में कोई आस्था शेष नहीं रही है।

दूसरी ओर वी. स्मिथ ने अग्निकुंड से चार क्षत्रियवंश की उत्पत्ति के चन्दबरदायी के मत के सम्बन्ध में क्रुक को अपनी पुस्तक में स्वीकृतिपूर्वक उद्धृत किया है। "अग्निकुंड वाली कथा अग्नि से शुद्धिकरण के संस्कार का प्रतिनिधित्व करती है। यह घटना दक्षिणी राजस्थान में हुई। इसके द्वारा विदेशी जातियों की अशुद्धि, अपवित्रता दूर करके उन्हें शुद्ध किया गया और उन्हें हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में स्वीकार करने के योग्य बनाया गया।"[15]

मोहिलों को अधिकांश विद्वान्, जैसा कि पूर्व में कहा गया है, चौहानों की शाखा मानते हैं। वे उन्हें स्वतंत्र राजकुल नहीं मानते हैं। मुंहणोत नैणसी ने चौहानों के प्रकरण में अपनी ख्यात में मोहिलों का वर्णन किया है। उसने चौहानों की 23 शाखाओं में मोहिलों का नाम नहीं दिया है। वह मोहिलों की उत्पत्ति श्रीमोर के राणा सजन के पुत्र मोहिल से मानता है। सोनगरा, हाड़ा, राकसिया, चाहिल, मोहिल ओर खीच्ची सभी चौहानों की शाखायें हैं।[16] ऐसा नैणसी का मत है।

बीकानेर राज्य के इतिहास में गौरीशंकर हीराचंद ओझा का कथन है कि मोहिल चौहानों की एक शाखा है जिसके स्वामियों ने राणा विरुद धारण कर 16वीं शती के प्रारम्भ तक राज्य किया।"

यद्यपि टॉड ने मोहिलों का स्वतंत्र राजवंश मानते हुये उनका सम्बन्ध प्राचीनकाल की मल्लोई जाति से जोड़ा है तथापि इस सम्बन्ध में नाम–साम्य को छोड़कर अन्य कोई प्रमाण उसने नहीं दिये हैं। टॉड की यह धारणा सर्वथा निर्मूल भी नहीं कही जा सकती है। आगे चलकर इस विषय के सम्बन्ध में विचार किया जावेगा।

मोहिलों से सम्बन्धित प्राप्त सामग्री के गहन अध्ययन के पश्चात् यह मानने का विचार बनता है कि वस्तुतः मोहिल राजवंश चौहानों की अन्य शाखाओं की तरह एक शाखा ही है। राणा विरुद वाली इस शाखा का राज्य एक विस्तृत क्षेत्र में शताब्दियों तक चलता रहा। अन्त में 16वीं शती के प्रारम्भ में इसे राठौड़ों की रौंद सहनी पड़ी। राठौड़ों ने इस भूभाग को मोहिलों से छीनकर अपने हस्तगत कर लिया; फलस्वरूप राज्याधिकार से वंचित होकर मोहिल इधर–उधर भटक गये। मूलवंश प्रारम्भ में एक ही होता है जिससे कालान्तर में अनेक शाखायें–प्रशाखायें निकलती हैं। अगर किसी वंश में कोई सविशेष शक्तिशाली पुरुष होता है तो उसके वंशज उसी के नाम से जाने जाते हैं और मूलवंश का नाम पीछे छूट जाता है। राणा सजन तक मोहिल शाखा का उदय नहीं हुआ था। उस समय तक वे चौहान ही कहलाते थे, पर राणा सजन का पुत्र मोहिल बड़ा शक्तिशाली हुआ जिसके कारण मोहिल शाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

कई बार स्थान विशेष में बसने के कारण भी कोई कुल की शाखा का नामकरण होता है। जैसे बागड़िये, सांभरिये और नाडूलिये। मोहिल शाखा का मूल पुरुष चौहान था जिससे अनेक खांपों या शाखाओं का उदय हुआ। मोहिल भी इनमें से एक शाखा से सम्बन्धित थे।

मोहिलों ने स्वयं अपने आपको चौहान वंश का बताया है। चरजू में वि. 1200 की देवली में "(चा)हमानान्वय विष्णुदत्त" पद आया है। दूसरी देवलियों में भी 'चवाण' शब्द का उल्लेख किया गया है।

मोहिल राजवंश राजस्थान का एक प्रसिद्ध राजवंश रहा है। इस

राजवंश का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। इस इतिहास को हम मोहिलों की ख्यात, बीदावतों की ख्यात, नैणसी की ख्यात के आधार पर प्रस्तुत कर रहे हैं।

यह वंश राणा सजन के पुत्र मोहिल से प्रारंभ हुआ। इन्होंने सर्वप्रथम छापर–द्रोणपुर का क्षेत्र बागड़िया राजपूतों से जीता। इनके राज्य का निरन्तर विस्तार होता रहा। एक समय इनके राज्य में 1400 गांव, कस्बे हो गये थे। ख्यातों के अनुसार मोहिलों का राज्य चार पट्टियों में फैला हुआ था। ये पट्टियाँ थीं छापर, लाडनूं, किरतावाटी और करणावाटी।[18] मोहिलों ने यह इलाका बागड़ियों से छीना जिन्होंने इसे डाहलिया राजपूतों को हराकर प्राप्त किया था। बांकीदास ने इस क्षेत्र के प्रसिद्ध नगर लाडनूं को डाहलियों द्वारा बसाया हुआ माना है।[19]

अनेक ग्रंथों से विशेषकर मोहिलों की ख्यात से हम मोहिल शासकों का उल्लेख कर रहे हैं। लम्बी अवधि तक इस भूभाग पर अनेक मोहिल शासकों ने शासन किया। उन्होंने सुदूर अतीत में होने वाले अनेक राजनैतिक घटनाचक्रों में भाग लिया। उनका क्षेत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा था जिसके एक ओर बीकानेर और दूसरी ओर आगे चलकर जोधपुर बसा तथा नयी शासक शक्तियों का इस क्षेत्र में प्रवेश हुआ। भूमि की बढ़ी हुयी भूख ने इस नयी राठौड़ शक्ति को पहले से प्रस्थापित मोहिल शक्ति पर आक्रमण करने को बाध्य किया। इससे संघर्ष की शुरूआत हुई जिससे यह शान्त क्षेत्र अशान्त हो चला।

मोहिल शासकों में ख्यातों के अनुसार सजन पहला शासक था जो श्रीमोर परगने का अधिपति था। उसका पुत्र मोहिल हुआ। यह प्रतापी शासक था जिसने अपने पैतृक राज्य का विस्तार किया। इसका पुत्र हरदत्त हुआ। इसे दृहड़ भी कहा गया है। इसका शिलालेख जीणमाता के मंदिर में प्राप्त है जिसमें इसके द्वारा मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने की बात कही गयी है।[20] यह लेख वि. 1160 का है।

हरदत्त के पश्चात् वरसींह, बालहर, आसल, आहड़, रणसी और सोहणपाल हुये। सोहणपाल की वि. 1311 की देवली छापर में है। आहड़ और उसके पुत्र अम्बरक की मृत्यु वि. 1241 में नागौर के युद्ध में हुयी थी।

इसी युद्ध में घायल होकर मोहिल इन्द्रपाल की मृत्यु सम्वत् 1241 में हुयी। इसकी देवली सरदारशहर में मिली है।

सोहणपाल के पश्चात लोहट, बोबाराव, वेग और माणकराव हुये। माणकराव शक्तिशाली शासक था। प्रसिद्ध वीरांगना कोड़मदे इसी की पुत्री थी। कोड़मदे भाटी शार्दूल के प्रेम में निमग्न हुयी। इस पर अरड़कमल राठौड़ ने आक्रमण कर भाटी शार्दूल को मार डाला जब यह नववधू को लेकर अपने घर लौट रहा था। इस पर कोड़मदे सती हो गयी (सं. 1462)।

माणकराव के दो पुत्र सांगा और सामंतसिंह थे। माणकराव के बाद सांगा गद्दी पर बैठा। सामंतसिंह के पास अन्य भूभाग था। सामंतसिंह का पुत्र अजीत मोहिल राठौड़ जोधा का जँवाई था। वह बड़ा शूरवीर राजपूत था। इसे राठौड़ों ने आक्रमण कर जोधा के कहने पर मार डाला था। इससे मोहिलों और राठौड़ों में बड़ा वैर बंध गया था।[21]

सांगा का पुत्र बछराज था जिस पर राव जोधा ने चढ़ाई की। यह हमला वि. 1523 में हुआ था। इसमें बछराज मारा गया तथा उसके भूभाग पर राव जोधा का अधिकार हो गया।[22]

बछराज का पुत्र मेघा बड़ा बलवान योद्धा था। उसने राठौड़ों द्वारा अधिकृत भूभाग पर निरन्तर हमले कर उसे बर्बाद कर डाला था। उसने अपने पिता द्वारा खोयी भूमि पर फिर से अधिकार कर लिया था। राठौड़ों ने मेघा को मारने के अनेक प्रयत्न किये, पर कोई सफलता नहीं मिली। दैवयोग से कुछ समय बाद मेघा की प्राकृतिक मृत्यु हो गयी तो राठौड़ों की बन आयी। जोधा ने सं. 1531 में दूसरी बार हमला किया। मेघा के पुत्र नरबद और बरसल ने मुकाबिला किया, पर हार गये।[23]

आगे चलकर दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी ने उनकी सहायतार्थ सारंगखान को सेना देकर भेजा। इस पर अपने को लड़ने में असमर्थ जान बीदा बीकानेर चला गया और इस क्षेत्र पर पुनः मोहिलों का अधिकार हो गया। आगे चलकर बीका ने नरबद और वैरसल पर आक्रमण किया जिसमें दोनों भाई मारे गये और यह क्षेत्र राठौड़ों के नीचे चला गया।[24]

नरबद बरसल के समय मोहिलों का भू–भाग अनेक शासकों में विभक्त हो गया था। ये शासक आपस में लड़ते थे। इससे इनकी शक्ति

कमजोर पड़ गयी। अतः राज्य इनके हाथ से निकल गया। इतना होते हुये भी कुछ स्थानों पर इनके छुटपुट राज्य आगे के काल तक चलते रहे। लाडनूं में बसने वाले मोहिल मुसलमान हैं पर लाडनूं के आसपास के गांवों में मोहिल हिन्दू हैं। अनेक स्थानों पर मोहिल परिवार बसे हुये हैं जिनमें अधिकांश मुसलमान है।

मोहिलों की ख्यात जिसके रचयिता मोहिल मौलाबक्स थे, आगे के काल का वृत्त प्रमुखता से देती है। लाडनूं पर एक समय गिरदोजी मुसलमानों का अधिकार था। द्रोणपुर के शासक अरड़कमल ने आकर उनको हराया। ख्यात के अनुसार आसोज सुदि 10, सम्वत् 1489 को यह विजय प्राप्त हुयी थी।[25]

अरड़क के बाद उसका पुत्र भोजराज लाडनूं का शासक हुआ। उसके मरने पर राव जयसिंह लाडनूं का अधिपति बना। इसने लाडनूं में राव तालाब, राव दरवाजा, शिवमन्दिर और राव बावड़ी आदि बनवाये।[26] इसने जसुदान बारहठ को 1500 बीघा भूमि दान में दी थी।[27] इस ख्यात के अनुसार 12 हिन्दू स्त्रियाँ थी। एक स्त्री जोहिया वंश की जोहियाणी थी। जोहिया पहिले हिन्दू थे, पर आगे चलकर मुसलमान बन गये थे।

जयसिंह से जोहियाणी के 5 पुत्र हुये।[28] जोहियाणी से उत्पन्न पुत्र मुसलमान कहलाये। उन्होंने जयसिंह एवं जोहियाणी पर उसकी मृत्यु के बाद कब्र बनायी जो एक मकबरे की तल भाग में है। जयसिंह के शेष पुत्र हिन्दू मोहिल कहलाये। आज लाडनूं के आसपास हिन्दू एवं मुसलमान दोनों मोहिल मिलते हैं।

आगे चलकर लाडनूं भी मोहिलों के हाथ से निकल गया। राठौड़ों ने इस पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार लम्बे समय तक शासन करने के बाद मोहिल सत्ताच्युत होकर इस देश के महामानव समुद्र में विलीन हो गये।

संदर्भ

1. राइस् डेविड्स; दी रिलेशन्स विटविन अरली बुद्धिज्म एण्ड ब्राह्मनिज्म; पृ. 23
2. राजपूत जातियों का इतिहास; जेम्स टाड; अनुवादक – डॉ. देवीलाल पालीवाल, पृ. 145
3. वही, पृ. 144
4. वही, पृ. 147
5. वही, पृ. 193
6. राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर, 1937, पृ. 106
7. राजपूत जातियों का इतिहास, टॉड, पृ. 191
8. कायमखानी वंश का इतिहास; डॉ. रतनलाल मिश्र, देखें बांकीदास की ख्यात, मुंहता नैणसी की ख्यात।
9. राजस्थान के राजवंश; जगदीशसिंह गहलोत, पृ. 30–31
10. भुज प्रचंड चव चार मुख रक्त व्रन्न तन तुंग।
    अतल कुंड उपज्यो अनल, चहुवान चतुरंग।।
    पृथ्वीराज रासो रूपक – 132–3 छन्द 255–256
11. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृ. 339
12. एपीग्राफिका इण्डिका जिल्द 18, पृ. 95
13. 'वृषलत्वं गताः लोके ब्राह्मणानामदर्शनात्।
14. भारतीय संस्कृति के स्रोत; भगवतशरण उपाध्याय, नई दिल्ली, 1973, पृ. 74–75
15. अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया; बी. स्मिथ, पृ. 412
16. सोनगरा हाडा सकल राकसिया निरवाण।
    चाहिल, मोहिल खीचिया ऐता सौह चौहान।
    (चांपा सामोर का दोहा) – नैणसी प्रथम खण्ड पृ. 191
17. बीकानेर राज्य का इतिहास, ओझा, 1939, अजमेर, पृ. 59–60, पृ. 70, पृ. 101 का पाद टिप्पण।
18. चरलू की देवलियाँ – अरली चौहान डाइनेस्टी; दशरथ शर्मा, पृ. 93–94

19. नैणसी की ख्यात, पृ. 154–57
20. बांकीदास की ख्यात, पृ. 201
21. राजस्थान के अभिलेख, रतनलाल मिश्र, पृ. 60
22. नैणसी की ख्यात, पृ. 190
23. नैणसी की ख्यात, पृ. 164
24. ओझा; बीकानेर का इतिहास, पृ. 101–102
25. मोहिलों की ख्यात, पृ. 1–3
26. वही, पृ. 4
27. वही, पृ. 2–3
28. वही, पृ. 12–14

— 44 / 62 किरण पथ, मानसरोवर
जयपुर
स्थायी पता–पो. मंडावा,
जिला झुंझुनू (राज.)

खेड के गोहिलों का सौराष्ट्रगमन समय

— सुतरिया. नीता. सी.

भूतकाल में सौराष्ट्र में भावनगर, लाठी, पालीताना जैसे गोहिल राजवंश के राज्य थे। ये गोहिल राजवंश सौराष्ट्र में आने से पूर्व राजस्थान के खेड़गढ़ में राज्य करते थे। यह खेड़गढ़ अब नष्ट हो गया है। इसके खण्डहर बाड़मेर जिले के बालोतरा कस्बे के पास देखे जा सकते हैं।[1]

गुजरात के इतिहासकारों का मत है कि खेड़गढ़ के राजवी मोहोदास को सीहाजी राठौड़ ने मार कर खेड़ का राज्य हस्तगत किया था।[2] ये मोहोदासजी सौराष्ट्र के गोहिल राज्य के संस्थापक सेजकजी के पितामह थे।[3] इतिहासकार लिखते हैं कि सेजकजी वि. 1306 में सौराष्ट्र में आये थे।[4]

अपने इन मन्तव्यों की पुष्टि के लिये श्री अमृतलाल. यू. शाह ने कोई ठोस प्रमाण नहीं दिया है, अतः इन मान्यताओं का वैसा महत्व नहीं है।

भावनगर के शासक रावल (1772 – 1816 ई.) के समय में सौराष्ट्र आये हुए कर्नल वोकर ने अनुश्रुतियों के आधार पर सेजकजी कां सौराष्ट्र आगमन समय वि. 1256 स्वीकार किया है[5] परन्तु प्रमाण के अभाव में इसे स्वीकारना भी संभव नहीं है।

श्री शंभुप्रसाद देसाई,[6] श्री के. का. शास्त्री,[7] व यू. एम्. चोकसी [8] आदि विद्वानों ने सेजकजी के सौराष्ट्र में आने का समय वि. 1306 माना हैं किन्तु पुष्ट प्रमाण के अभाव में इन्हें अनुमान–मात्र मानना ही ठीक होगा।

श्री हरिशंकर शास्त्री इस मत के हैं कि सेजकजी ई. 1104 में सौराष्ट्र आ गये थे। अपने मत की पुष्टि में श्री शास्त्री दो शिलालेखों को उद्धृत करते हैं – (1) जशदण के कालूपीर के स्तंभ का शिलालेख वि. 1292 (2) शियालवेट का शिलालेख वि. 1300।[9] इन शिलालेखों से सेजकजी का सौराष्ट्र आने का समय तो सिद्ध नहीं होता है परन्तु इनसे

केवल इतना ही फलित हो सकता है कि वि. 1292 से पूर्व सेजकजी की राजधानी सेजकपुर बस गयी थी व समृद्ध हो गयी थी। सौराष्ट्र में सेजक–वंश के स्थिर होने के प्रमाण के रूप में इन्हें देखा जा सकता है।

रियासत पालीताणा की वंशावली के अनुसार सेजकजी का वि. 1250 में सौराष्ट्र में आना सिद्ध होता है।[10] परन्तु इस मत की भी पुष्टि भी अन्य प्रमाणों से नहीं होती है। इस प्रकार राजस्थान से सेजकजी के सौराष्ट्र आने के विषय में अनेक मत–मतान्तर हैं जो प्रमाण की अपेक्षा रखते हैं।

सौराष्ट्र के भाटों की ख्यातों से एक अन्य प्रकार की विगत प्राप्त होती है जिसके अनुसार सेजकजी जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के राजवी महीपाल (III) के समय में सौराष्ट्र आये तथा उन्होंने अपनी पुत्री बालमकँवर का विवाह महीपाल के पुत्र खेंगार के साथ कराया।[11] महीपाल का शासनकाल वि. 1286 से 1309 स्वीकार किया गया है।[12]

जसदन (सौराष्ट्र) के कालूपीर की दरगाह के स्तम्भ लेख के आधार पर यद्यपि वि.स. 1292 तक सेजकपुर का समृद्ध राजधानी के रूप में विकसित होना सिद्ध होता है तथापि वि.स. 1206 में सेजकजी का सौराष्ट्र आगमन काल्पनिक ही कहा जा सकता है। सेजकपुर के वर्तमान खण्डहर नवलखा मन्दिर तथा अन्य मूर्त्तियों को देखते हुए गुहिल शासकों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण की सराहना ही करनी पड़ेगी।

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार राव आस्थानजी ने सेजकजी को हराकर खेड़ की जागीर प्राप्त की थी।[13] ठाकुर गोपालसिंह मेड़तिया भी इसी मत को स्वीकार करते हैं[14] परन्तु वि.स. 1292 से पूर्व सेजकपुर के समृद्ध होने के शिलालेखीय प्रमाण इन दोनों ही मतों को निराधार बनाते हैं, इन दोनों मतों का आधार भाटों की बहियां हैं, स्वयं ओझाजी भी बहियों को काल्पनिक या कहीयात मानते हैं[15]। इसीलिए यह कहना होगा कि वि.स. 1330 के आसपास जब राव आस्थान गद्दीनशीन हुए थे[16] को सेजग के सौराष्ट्र आने का समय नहीं माना जा सकता है।

सेजकजी के सौराष्ट्र आगमन के समय को सिद्ध करनेवाला एक ठोस प्रमाण प्राप्त हुआ है[17] और वह है मांगरोल के सोढली वाव नामक स्थान पर उपलब्ध शिलालेख। यह लेख वि. 1202 का है जिसे सोमनाथ ने अपने पिता राहिल (राहिजिग) के पुण्यार्थ बनाये राहिजिगेश्वर महादेव के मन्दिर में खुदवाया है।[18]

इस समय में सोरठ प्रान्त में गोहिल वंशी सहार नामक क्षत्रिय का राज्य था। यह शिलालेख स्वयं इस तथ्य का प्रमाण है कि सेजकजी 1202 वि.स. से पूर्व सौराष्ट्र पहुँच गये थे। गुजरात में गोहिलों को चंद्रवंशी माना गया है[19] तथा शंभुप्रसाद देसाई जैसे इतिहासकारों ने भी इस मत को स्वीकार किया है[20]

श्री गौ. ही. ओझा गोहिलों को सूर्यवंशी [21] तथा सोढ़ली वाव के शिलालेखों में अंकित राहजिग (राहिल) को गोहिलवंशी मानते हैं।[22] "मंडलीक काव्य" के रचयिता गंगाधर ने भी सौराष्ट्र के गोहिलों को सूर्यवंशी स्वीकार किया है।[23] परन्तु राजस्थान से सौराष्ट्र आये गोहिलों के भाट–बडवे उन्हें चंद्रवंशी मानते हैं[24] जबकि सौराष्ट्र के बडवे गोहिलों को चंद्रवंशी कहते हैं।[25]

गुजरात का चारण साहित्य भी गोहिलों को सूर्यवंशी मानता है। यथा–

वखतु गुहिल डारक वंश।[26]
कूक भागिरथ वखत कहावि।।[27]

श्री शम्भूप्रसाद देसाई[28] और श्री के.का. शास्त्री[29] सोढलीवाव के शिलालेख में उल्लिखित राहिल अथवा राहजिग से भावनगर के संस्थापक सेजकजी को अलग मानते हैं। यह दूसरी बात है कि इन दोनों ने ही अपने मत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिये हैं। यह भी अनुश्रुति है कि सेजकजी ने अपनी पुत्री बालमकँवरी का विवाह जूनागढ़ के राजकुमार खेंगार के साथ किया था।[30] चूंकि वि.स. 1202 के शिलालेख के आधार पर यह पहले ही सिद्ध हो चुका है कि सेजकजी इससे पूर्व ही सौराष्ट्र आये

थे। अतः बालमकँवरी के पति खेंगार का समय 1154 से 1170 वि. मानना उचित होगा जो पाटण पति सिद्धराज जयसिंह के साथ हुए युद्ध में मारे गये थें।

उपर्युक्त चर्चा से यह अनुमान किया जा सकता है कि सेजग द्वारा खेड को छोड़कर सौराष्ट्र आने में राठौड़ों की कोई महती भूमिका नहीं है तथा वि.स. की 12 वी सदी के पूवार्द्ध में सेजग तथा उसके परिवार ने सौराष्ट्र में अपने पांव पसारना प्रारम्भ कर दिया था। चूंकि गोहिल मूलतः राजस्थान से ही गये है अतः राजस्थान के भाटों की श्रुति परम्परा के अनुसार उन्हें सूर्यवंशी मानना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

– सुतरिया नीता सी

प्राध्यापक के. ओ. शाह
आर्टस व कामर्स कालेज
धोराली – राजकोट

1. प्रो. रितुदान रोहड़िया कृत शोधबोध
2. भारत राज्यमण्डल : अमृतलाल यू. शाह, पृ. 83
3. वही
4. वही
5. कर्नल वोकर की रिपोर्ट, पृ. 129
6. सौराष्ट्र का इतिहास, शम्भुप्रसाद देसाई, पृ. 284
7. गुजरात का राजकीय एवं सांस्कृतिक इतिहास : ग्रन्थ4 में के.का. शास्त्री का लेख, पृ. 215
8. भावनगर जिला सर्वसंग्रह, यू.एम. चोकली, पृ. 100
9. यत् किंचित्, हरिशंकर शास्त्री, पृ. 215
10. राजकोट के श्री कर्णसिंह गोहिल के पास सुरक्षित वंशावली का दिनांक 12.02.97 को अवलोकन
11. अ. भारत राज्यमण्डल; पृ. 85
    ब. सौराष्ट्र का इतिहास, पृ. 292
12. वही
13. जोधपुर राज्य का इतिहास, गो. ही. ओझा, पृ. 165
14. जयमल्लवंश प्रकाश, ठाकुर गोपालसिंह मेड़तिया, पृ. 87
15. जोधपुर राज्य का इतिहास, ओझा, पृ. 138–139
16. वही, पृ. 164
17. प्राकृत एण्ड संस्कृत इनस्क्रिपशन्स, वजैराम–गो. ओझा, पृ.1–10
18. वही
19. भारत राज्यमण्डल, पृ. 83
20. सौराष्ट्र का इतिहास; पृ. 293–294
21. गुजराती साहित्य प्रसार (नडियाद का आहवाल अने निबन्ध संग्रह, इतिहास विभाग, पृ. 14)
22. वही

23. वही
24. दिनांक 3.11.96 को राजस्थली जि. भावनगर के सज्जनसिंह गोहिल से साक्षात्कार
25. श्री सागरकुमार वारोट से दिनांक 6.12.96 को साक्षात्कार
26. बखतबलंद ; अप्रकाशित काव्य; सम्पादक रितुदान रोहड़िया; पृ. 7
27. वही; पृ. 7
28. सौराष्ट्र का इतिहास, पृ. 293–294
29. गुजरात का राजकीय एवं सांस्कृतिक इतिहास, ग्रन्थ 4, पृ. 111
30. भारत राज्य मण्डल, पृ. 84